B.Com-203

व्यावसायिक पर्यावरण

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

खण्ड 1 – व्यावसायिक पर्यावरण का परिचय **3–78**

इकाई –1 व्यावसायिक पर्यावरण के स्वरूप तथा आयाम 7–28

इकाई –2 आर्थिक पर्यावरण एक अवलोकन 29–52

इकाई –3 सामाजिक और सांस्कृतिक पर्यावरण 53–80

खंण्ड 2– व्यवसाय और सरकार **81–180**

इकाई –4 भारतीय अर्थव्यवस्था का ढांचा 85–106

इकाई –5 व्यवसाय में सरकार की भूमिका 107–122

इकाई –6 समष्टि आर्थिक नीतियां 123–150

इकाई –7 उपभोक्ता संरक्षण 151–180

खंण्ड 3 – आर्थिक नीति और ढांचा **181–282**

इकाई –8 उद्योग नीति 185–212

इकाई –9 औद्योगिक रूग्णता 213–234

इकाई –10 औद्योगिक संबंध 235–256

इकाई –11 छोटे पैमाने का क्षेत्र 257–282

खंण्ड 4 – बाह्य क्षेत्र और आर्थिक सुधार **283–422**

इकाई –12 विदेशी निवेश और बहुराष्ट्रीय निगम 287–316

इकाई –13 भारत का विदेश व्यापार 317–346

इकाई –14 भुगतान शेष और निर्यात–आयात नीति 347–378

इकाई –15 अंर्तराष्ट्रीय व्यापार संबंध 379–400

इकाई –16 नई आर्थिक नीति 401–423

B.Com-203

व्यावसायिक पर्यावरण

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

खण्ड–1

व्यावसायिक पर्यावरण का परिचय

इकाई 1 व्यावसायिक पर्यावरण के स्वरूप तथा आयाम

इकाई 2 आर्थिक पर्यावरण एक अवलोकन

इकाई 3 सामाजिक और सांस्कृतिक पर्यावरण

विशेषज्ञ समिति

डॉ. ओमजी गुप्ता, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

डॉ देवश रंजन त्रिपाठी, सहायक आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

प्रो. आर.सी. मिश्रा निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन एवं वाणिज्य विद्याशाखा, उत्तराखण्उ मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

प्रो. लवकुश मिश्रा निदेशक, इंस्टीट्यूट ऑफ टूरिज्म एण्ड होटल मैनेजमेंट, श्री भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा।

प्रो. सोमेश शुक्ला, विभागाध्यक्ष, वाणिज्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

प्रो. राधेश्याम सिंह, आचार्य, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

लेखक

डॉ देवेश रंजन त्रिपाठी, सह-आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ. प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

सम्पादक

प्रो. एसबी गुप्ता अर्थशास्त्र विभाग, एमएमपीजी कॉलेज, कालाकांकर, रज्जू भैय्या राज्य विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

संयोजकः

डॉ देवेश रंजन त्रिपाठी, सह-आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ. प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

ISBN: 978-93-83328-81-09

(c) उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट–पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशकः कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज 2025.

मुद्रक : चन्द्रकला यूनिवर्सल प्रा० लि० 42/7 जवाहर लाल नेहरु रोड, प्रयागराज

खंण्ड 1 व्यावसायिक पर्यावरण का परिचय

व्यावसायिक पर्यावरण वह बाहरी वातावरण है, जिसमें व्यवसाय संचालित होता है। यह आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, कानूनी और तकनीकी कारकों से बना होता है। व्यावसायिक पर्यावरण व्यवसाय के प्रबंधन के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह व्यवसाय की सफलता या विफलता को प्रभावित कर सकता है।

इकाई 1: व्यावसायिक पर्यावरण के स्वरूप और आयाम, यह इकाई व्यावसायिक पर्यावरण की परिभाषा और आयामों की व्याख्या करती है। यह व्यावसायिक पर्यावरण के महत्व और इसके विभिन्न घटकों के बीच संबंधों पर भी चर्चा करती है।

इकाई 2: आर्थिक पर्यावरण विहंगावलोकन, यह इकाई भारत के आर्थिक पर्यावरण का अवलोकन प्रदान करती है। यह भारत की अर्थव्यवस्था की विशेषताओं, आर्थिक विकास के कारकों और आर्थिक नीतियों की व्याख्या करती है।

इकाई 3: सामाजिक और सांस्कृतिक पर्यावरण, यह इकाई सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों की व्याख्या करती है जो व्यवसाय को प्रभावित करते हैं। यह सामाजिक संस्थाओं, सांस्कृतिक मूल्यों और प्रौद्योगिकी के विकास पर चर्चा करती है।

इकाई 1 व्यावसायिक पर्यावरण के स्वरूप तथा आयाम

इकाई रूपरेखा

1.0. उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 व्यावसायिक पर्यावरण का अर्थ एवं महत्व

1.3 व्यावसायिक पर्यावरण के कारक

1.3.1 आर्थिक पर्यावरण

1.3.2 गैर आर्थिक पर्यावरण

1.3.3 आर्थिक और गैर आर्थिक पर्यावरण की तुलना

1.4 व्यावसायिक पर्यावरण के विभिन्न स्तर

1.4.1 क्षेत्रीय स्तर

1.4.2 राष्ट्रीय स्तर

1.4.3 अंर्तराष्ट्रीय स्तर

1.5 व्यवसाय और पर्यावरण के बीच की स्थिति

1.6 सारांश

1.7 उपयोगी शब्दावली

1.8 महत्वपूर्ण प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेगे कि ;–

- व्यावसायिक पर्यावरण के अर्थ को सुस्पष्ट स्पष्ट कर सकेंगे,
- व्यावसायिक वातावरण की विशेषताओं को सूचिबद्ध कर सकेगें,
- व्यावसायिक वातावरण के विभिन्न घटकों का विस्तार से समझ सकेगें तथा
- व्यावसायिक वातावरण के महत्व को स्थापित कर सकेगें।

1.1 प्रस्तावना

किसी भी स्थान पर एक व्यवसाय इकाई को सुव्यवस्थित रूप से संचालित करने के लिए उस पर्यावरण वातावरण को समझना; जिसके अंतर्गत व्यवसाय को संचालित करना है, अत्यन्त उपयोगी एवं महत्वपूर्ण होता है। क्योंकि, पर्यावरणीय तत्व व्यवसाय के लगभग हर चरण को प्रभावित करते हैं, चाहे वह इसकी प्रकृति, इसका स्थान, उत्पादों की कीमतें, वितरण प्रणाली या कार्मिक नीतियां हों। इसलिए व्यावसायिक वातावरण के विभिन्न कारकों के बारे में जानना महत्वपूर्ण है, जिसमें आर्थिक कारक सामाजिक– सांस्कृतिक कारक राजनीतिक संरचना, कानूनी मूद्दे और तकनीकी कारक आदि होते है। प्रत्येक व्यवसाय की सफलता उस वातावरण के अनुकूल होने पर पूर्णतः निर्भर करती है जिसके अन्तर्गत वह कार्य करता है। उदाहरण के लिए, जब सरकारी नीतियों में बदलाव होता है, तो व्यवसाय को नई नीतियों में इसे अपनाने के लिए आवश्यक बदलाव करने पड़ते हैं। इसलिए व्यवसायिक इकाइयों को जीवित रहने और व्यवसाय में सफल होने के लिए इन परिवर्तनों के अनुसार खुद को परिवर्तित करना होता हैं इसलिए,एक प्रबन्धक को व्यावसायिक वातावरण की अवधारणा और इसके विभिन्न कारको की प्रकृति की स्पष्ट समझ होना अत्यन्त आवश्यक होता है।

1.2 व्यावसायिक पर्यावरण का अर्थ एवं महत्व

प्रायः सामान्य अर्थ में, सभी व्यवसायों का लक्ष्य कई उद्देश्यों को सफलता पूर्वक प्राप्त करना होता है। एक व्यवसाय प्रबंधक अस्तित्व, स्थिरता, विकास, लाभप्रदता और दक्षता जैसे कुछ महत्वपूर्ण उद्देश्यों की पहचान करता है और उन्हें निर्धारित करता है। इकाईयो को इन उद्देश्यों को संतुलित करने की आवश्यकता होती है। लाभ इन इकाईयो के अस्तित्व और उसके भविष्य के विकास के लिए सबसे बडी चाभी होती है। व्यापार में सदैव एक प्रकार का जोखिम शामिल होता है और लाभ जोखिम उठाने का प्रतिफल होता है। व्यावसायिक इकाईयां स्थापित की जा सकती है, लेकिन इस प्रतिस्पर्धी बाजार में टिके रहना मुश्किल है जहां पूरी दुनिया एक बाजार के रूप में दिखाई पडती है। इसलिए, व्यवसाय के लिए पर्यावरण की समझ होना एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है।

पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ है वह परिस्थितियाँ जिसके अंतर्गत कोई व्यक्ति मौजूद होता है। किसी भी संगठन का पर्यावरण ''सभी स्थितियों, घटनाओं और प्रभावों का योग है जो इसे घेरता है और प्रभावित करता है।

पर्यावरण उन सभी बाहरी शक्तियों को इंगित करता है, जिनका व्यवसाय के

कामकाज पर सीधा असर पड़ता है। अतः हम कह सकते है;कि ''पर्यावरण में पर्यावरण के बाहर के कारक शामिल होते हैं ; जो इकाइयो के लिये अवसर या चुनौतियां पैदा कर सकती है। हालांकि ऐसे कई कारक हैं जिनमें सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र सामाजिक– आर्थिक, तकनीकी, आपूर्तिकर्ता, प्रतियोगी और सरकार को माना जाता हैं।''

आइये विभिन्न विद्धानो द्धारा व्यावसायिक पर्यावरण के सन्दर्भ में दी गई अवधारणाओं को समझने का प्रयास करे;–

(क) कीथ डेविस के अनुसार, "व्यावसायिक पर्यावरण उन सभी स्थितियों, घटनाओं और प्रभावों का योग है जो इसे घेरते हैं और प्रभावित करते हैं"।

(ख) रीनेके और शोएल के अनुसार, "व्यवसाय के पर्यावरण में वे सभी शामिल हैं बाहरी चीजें जिनसे यह उजागर होता है और जिनसे यह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हो सकता है"।

वस्तुतः हम कह सकते है कि पर्यावरण उन सभी बाहरी शक्तियों को संदर्भित करता है जो व्यवसाय के कामकाज को प्रभावित करती हैं। पर्यावरणीय घटक बड़े पैमाने पर विस्तारित होते हैं, यदि पूरी तरह से, बाहरी और व्यक्तिगत व्यावसायिक उद्यमों और उनके प्रबंधन के नियंत्रण से परे हैं। अतः वह परिवेश जिसमें व्यवसाय संचालित होता है, व्यावसायिक पर्यावरण कहलाता है।

1.2.1 व्यावसायिक पर्यावरण की विशेषताएं

उपरोक्त चर्चा के आधार पर आइये व्यावसायिक वातावरण की विभिन्न विशेषताओं को सूचिबद्ध कर समझनें का प्रयास करे;–

- व्यावसायिक पर्यावरण व्यावसायिक इकाई के लिए बाहय सभी घटकों का कुल योग है, जो उनके कामकाज को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है।
- इसमें ग्राहकों, प्रतिस्पर्धियों, आपूर्तिकर्ताओं, सरकार और सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, तकनीकी और कानूनी स्थितियों जैसे कारकों और बलों को शामिल किया गया है।
- व्यावसायिक पर्यावरण प्रकृति में गतिशील है अर्थात् यह निरन्तर परिवर्तनशील होता है।
- व्यावसायिक पर्यावरण में परिवर्तन अप्रत्याशित हैं। भविष्य में होने वाली घटनाओं की सटीक प्रकृति और आर्थिक और सामाजिक वातावरण में बदलाव की भविष्यवाणी करना बहुत मुश्किल है।

- व्यावसायिक पर्यावरण एक स्थान से दूसरे स्थान, क्षेत्र से क्षेत्र और देश से देश में भिन्न होता है। भारत में राजनीतिक परिस्थितियाँ नेपाल से भिन्न हैं। भारत और नेपाल में आम जनता द्वारा पसंद किए जाने वाले उत्पादो के स्वाद और मूल्यों में काफी भिन्नता पाई जाती है।

1.2.2 व्यावसायिक पर्यावरण का महत्व

आइये निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से व्यावसायिक पर्यावरण के महत्व को समझनें का प्रयास करे –

- व्यावसायिक पर्यावरण द्वारा संगठन को अनेक अवसर प्रदान किए जाते हैं। व्यावसायिक पर्यावरण को अच्छी प्रकार समझने से कारोबार को लाभ प्राप्त करने में मदद मिलती है। यदि इसमें होने वाले परिवर्तनों का ध्यानपूर्वक विश्लेषण किया जाए, तो वे व्यावसायिक सफलता का कारण हो सकते हैं।

- विभिन्न संसाधन जैसे कच्चा माल, मशीन, पैसा, श्रम आदि व्यवसाय के लिए इनपुट हैं। ये सभी इनपुट व्यावसायिक इकाइयों को उनकी गतिविधियों को बढानें के लिए पर्यावरण द्वारा प्रदान किए जाते हैं और बदले में कुछ उम्मीद भी की जाती हैं।

- पर्यावरण में हो रहे परिवर्तन का विश्लेषण कराने वाली व्यावसायिक चुनौतियों को समझा जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई भी नई बहुराष्ट्रीय कंपनी भारतीय बाजार में प्रवेश कर रही है, तब यह इस कंपनी के उत्पाद से निपटना भारतीय फर्म के प्रबंधक को एक चेतावनी का संकेत होना चाहिए। इसी प्रकार बहुराष्ट्रीय कम्पनी द्वारा अपना उत्पाद लॉन्च करने से पहले, प्रबंधक को अपने उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार और भारी विज्ञापन जैसे उपायों को लागू करना चाहिए जिससे अधिक से अधिक बाजार पर कब्जा किया जा सके।

- इन परिवर्तनों का प्रभावी ढंग से सामना करने के लिए, प्रबंधकों को व्यावसायिक पर्यावरण को समझना चाहिए और सही समय पर कार्यवाही की अनुकूल रणनीति अपनानी चाहिए। यह प्रबंधन ग्रहक को परिर्वतनो के प्रति अधिक संवेदनशील बनने में मदद करता है, जिससे उनकी जरूरतो को प्रभावी ढंग से पूर्ण किया जा सकता है जिससे वे ऐसे परिवर्तनों का प्रभावी ढंग से जवाब देने में सक्षम होते हैं।

- इससे इकाइयों को प्रतियोगियों की रणनीतियों का विश्लेषण करने और तदनुसार अपनी रणनीति तैयार करने में विभिन्न स्तरों पर सहायता प्राप्त होती है।

- तकनीकी और वैश्विक विकास के मद्देनजर व्यावसायिक पर्यावरण व्यक्तिगत ताकत और कमजोरी की पहचान करने में मदद करता है।
- व्यावसायिक पर्यावरण व्यवसाय के लिए चुनौतियों और अवसर दोनों लाता है। व्यावसायिक पर्यावरण की अच्छी समझ होने से किसी संगठन के प्रबंधन को उनके भविष्य की योजना बनाने और निर्णय लेने के प्रयासों में काफी मदद मिल सकती है। उदाहरण के लिए, बाजार में नई इलेक्ट्रानिक इकाईयों के प्रवेश से ई–बाजार में प्रतिस्पर्धा बढ़ती है।
- नए प्रतिस्पर्धियों से निपटने के लिए प्रबंधन को नई योजनाओं और नीतियों का मसौदा तैयार करना पड़ता है। पर्यावरण जागरूकता योजनाकारों को उनके निर्णय लेने में बौद्धिक उत्तेजना प्रदान करती है। ये अपनी योजनाओं में कुशलतापूर्वक और प्रभावी ढंग से परिवर्तन कर सकते हैं।

1.2.3 व्यवसाय परिवेश का स्वरूप

उपरोक्त विवेचना के उपरान्त आइये व्यावसायिक परिवेश को समझनें का प्रयास करें :–

- परिवेश कई तत्वों, घटनाओं, स्थितियों से बना होता है जो व्यवसाय पर प्रभाव डालते हैं, इसलिए ये व्यवसाय को जटिल बनाते हैं।
- सामाजिक, आर्थिक, कानूनी, सांस्कृतिक आदि जैसे कारक व्यवसाय परिवेश पर प्रभाव डालने वाले कारक आपस में अभिन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, एक विकसित देश प्रत्यक्ष अनुसंधान और विकास पर पर्याप्त खर्च कर सकता है।
- व्यवसाय का परिवेश सदैव गतिशील होता है क्योंकि यह तकनीकी सुधार, उपभोक्ताओं की पसंद में परिवर्तन, नए प्रतिस्पर्धियों के प्रवेश आदि के आधार पर बदलता रहता है।
- व्यवसाय का परिवेश बड़ी हद तक अनिश्चित होता है क्योंकि भविष्य की घटनाओं का पूर्वानुमान बहुत मुश्किल होता है।
- व्यवसाय का परिवेश एक सापेक्ष अवधारणा है क्योंकि यह देश से देश और क्षेत्र से क्षेत्र के भिन्न होता है। उदाहरण के लिए, साड़ी की मांग भारत में अन्य देशों की तुलना में अधिक होती है।
- विशिष्ट बल व्यक्तिगत उद्यमों पर प्रत्यक्ष और तुरंत प्रभाव डालते हैं जबकि सामान्य बल सभी व्यवसाय उद्यमों पर प्रभाव डालते हैं।

- बहुत से विकास जैसे ब्याज दर के तेज उतार–चढ़ाव, मुद्रास्फीति की दर आदि का अनुमान लंबे समय तक करना मुश्किल होता है जो व्यवसाय परिवेश को बनाए रखना मुश्किल बनाता है।

1.3 व्यावसायिक पर्यावरण के कारक

आइये व्यावसायिक कारको के प्रति स्पष्ट समझ विकसित करने हेतु इस सरंचना को तीन व्यापक आयामों में विभाजित कर समझाने का प्रयास करें

- आंतरिक पर्यावरण
- बाहरी पर्यावरण → स्थूल पर्यावरण
  → सूक्ष्म पर्यावरण

आंतरिक पर्यावरण

आंतरिक पर्यावरण संगठन के लिए पूर्णतः आंतरिक होता है तथा यह नियंत्रणीय है। आइये इसके विभिन्न प्रकारो को सूचिबद्ध कर समझने कर समझने का प्रयास करें –

क. संस्कृति और मूल्य प्रणालीः संगठनात्मक संस्कृति को समन्वित मूल्यों और विश्वासों की एक प्रणाली के रूप में देखा जा सकता है जो कंपनी के व्यवहार संबंधी मापदंडों को आकार प्रदान करता है। एक मूल्य आचरण के एक तरीके या अंत– राज्य के लिए एक स्थायी वरीयता है। संस्थापकों की मूल्य प्रणाली का संगठन की मूल्य प्रणाली पर प्रत्यक्ष और स्थायी प्रभाव पड़ता है। मूल्य प्रणाली न केवल संचालन और व्यवहार को प्रभावित करती है बल्कि व्यवसाय की पसंद को भी प्रभावित करती है।

ख. मिशन और उद्देश्यः कंपनी की व्यावसायिक दृष्टि। मिशन और उद्देश्य कंपनी की प्राथमिकताओं, दिशा, विकास, व्यापार दर्शन, और व्यापार नीति के निर्धारण मे सहायक होती है।

ग. प्रबंधन संरचना और प्रकृतिः संरचना वह तरीका है जिसमें कार्य और उप कार्य संबंधित होते हैं। संरचना विभिन्न कार्यात्मक क्षेत्रों के बीच पदानुक्रमित संबंध, प्रबंधन संबंधों की अवधि के बारे में है इसके अन्तर्गत शीर्ष प्रबंधन की संरचना, शेयर होल्डिंग का पैटर्न आदि को सम्मिलित किया जाता है।

घ. मानव संसाधनः यह जनशक्ति नियोजन, भर्ती और चयन, विकास, मुआवजा, संचार और मूल्यांकन जैसे कारकों से संबंधित है। इसके अलावा आंतरिक पर्यावरण में कॉर्पोरेट संसाधन, वस्तु और सेवाओं का उत्पादन संचालन,

वित्त और लेखा प्रणाली और , विपणन और वितरण आदि सम्मिलित किये जाते है।

बाहरी पर्यावरण

बाहरी वातावरणः ये वे कारक और स्थितिय होती हैं जो संगठन के बाहर से कार्य और प्रभावित करती हैं जिससे और व्यवसाय का प्रदर्शन प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होत हैं। बाहरी कारकों पुनः दो भागो मे यथा; सूक्ष्म पर्यावरण और मैक्रो /स्थूल पर्यावरण में विभाजित किया गया है आइये इन दोनों ही प्रकारो को समझने का प्रयास करे

क. सूक्ष्म पर्यावरण

ऐसे व्यावसायिक कारक जिनका व्यवसाय पर सीधा प्रभाव पड़ता है। सूक्ष्म परर्यावरण के अन्तर्गत सम्मिलित किए जाते हैं। सूक्ष्म पर्यावरण के तहत विभिन्न घटक इस प्रकार से है। आइये इन्हें सम्बद्ध कर समझने का प्रयास करें।

- **इनपुट के आपूर्तिकर्ताः** इनपुट के आपूर्तिकर्ता एक फर्म के बाहरी सूक्ष्म पर्यावरण में महत्वपूर्ण कारक हैं। आपूर्तिकर्ता फर्म को कच्चा माल और संसाधन उपलब्ध कराते हैं। इनपुट के उचित प्रवाह के लिए एक फर्म के पास एक से अधिक आपूर्तिकर्ता होने चाहिए।

- **ग्राहकः** वे फर्म के उत्पादों और सेवाओं के खरीदार होते हैं। ग्राहक बाहरी सूक्ष्म पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं क्योंकि। बिक्री फर्म के अस्तित्व और विकास के लिए उत्पाद या सेवा महत्वपूर्ण हैं, इसलिए यह ग्राहकों को संतुष्ट रखने के लिए आवश्यक है।

- **विपणन मध्यस्थ;** मध्यस्थ अंतिम ग्राहकों को अपने उत्पादों को बेचने और वितरित करने में एक आवश्यक भूमिका निभाते हैं। विपणन मध्यस्थ एक व्यावसायिक फर्म और उसके अंतिम ग्राहकों के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं। खुदरा विक्रेता और थोक व्यापारी थोक में खरीदते हैं और अंतिम उपभोक्ता को व्यावसायिक उत्पाद और सेवाएँ बेचते हैं।

- **प्रतियोगीः** प्रतियोगी व्यवसाय में प्रतियोगिता कर सकता है उत्पादों के मूल्य निर्धारण के आधार पर या प्रतिस्पर्धी विज्ञापन के आधार पर– उदाहरण के लिए, संगठन बिक्री को बढ़ावा देने के लिए कुछ आयोजनों को प्रायोजित कर सकते हैं उनके उत्पादों की विभिन्न किस्में और मॉडल। व्यापार रणनीतियाँ तैयार करता है अपने प्रतियोगी का विश्लेषण करने के बाद।

- **जनता या समूहः** जैसे पर्यावरणविद्, मीडिया समूह, महिला संघ, उपभोक्ता संरक्षण समूह, महत्वपूर्ण कारक हैं बाहरी सूक्ष्म पर्यावरण में। जनता, फिलिप

कोटलर के अनुसार, कोई भी समूह है जिसका कंपनी की क्षमता में वास्तविक या संभावित हित या प्रभाव है अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए।

ख. स्थूल पर्यावरण

स्थूल पर्यावरण में व्यावसायिक इकाई के बाहरी कारक शामिल होते हैं जो फर्म की रणनीतियों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकते हैं। अद्यमन की दृष्टि में यहां हम छह व्यापक आयामों को देखेंगेः जनसांख्यिकीय, सामाजिक–सांस्कृतिक, राजनीतिक/कानूनी, तकनीकी, आर्थिक और वैश्विक। सामान्य पर्यावरण के ये सभी आयाम परस्पर जुड़े हुए हैं। ये आयाम न केवल व्यवसायों को प्रभावित करते हैं बल्कि एक दूसरे को भी प्रभावित करते हैं। 1991 में एक राजनीतिक परिवर्तन के बाद, जब सरकार सत्ता में तब उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण के रूप में बड़ा आर्थिक परिवर्तन हुआ। इससे देश के तकनीकी पर्यावरण में वृद्धि हुई; इस तकनीकी और आर्थिक परिवर्तन ने देश के सामाजिक–सांस्कृतिक पर्यावरण को बदल दिया है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव व्यावसायिक इकाईयो पर पडा; कुछ बन्द हो गई और कुछ ने महत्वपूर्ण प्रगति का लाभ कमाया।

वैश्वीकरण ने भारत को दुनिया की सॉफ्टवेयर महाशक्ति बनने में भी सक्षम बनाया है। सभी वैश्विक संगठनों के पास अब एक नया और विशाल बाजार है, साथ ही सस्ता विनिर्माण केंद्र भी है, जिसने उन्हें अपनी वैश्विक विपणन और निर्माण रणनीतियों को बदलने के लिए मजबूर किया है। इसके साथ, पिछले कुछ वर्षों में प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के रूप में भारत की जनसांख्यिकीय संरचना में भी भारी बदलाव आया है। उपलब्धि हासिल करने वाले युवा और उच्च कमाई करने वालों की संख्या में भारी वृद्धि हुई है, जिसने उत्पादों की संपूर्ण मांग अनुसूची को बदल दिया है। व्यावसायिक पर्यावरण को बेकाबू बाहरी कारकों तक सीमित रखते हुए, इसे आर्थिक माहौल के रूप तथा गैर– आर्थिक पर्यावरण में वर्गीकृत किया जा सकता हैय। आर्थिक पर्यावरण में देश की आर्थिक स्थिति, आर्थिक नीतियां और आर्थिक प्रणाली शामिल हैं। गैर– आर्थिक पर्यावरण में सामाजिक, राजनीतिक, कानूनी, तकनीकी, जनसांख्यिकीय और प्राकृतिक पर्यावरण शामिल हैं। इन सभी का फर्मों द्वारा अपनाई गई रणनीतियों पर असर पड़ता है और इन क्षेत्रों में किसी भी बदलाव का उनके संचालन पर दूरगामी प्रभाव पड़ने की संभावना है। आइए हम व्यावसायिक पर्यावरण के इन क्षेत्रों में से प्रत्येक के बारे में क्रमशः कुछ समझ विकसित करनें का प्रयास करें;–

1.3.1 व्यवसाय का आर्थिक पर्यावरण

प्रत्येक व्यावसायिक उद्यम का अस्तित्व और सफलता पूरी तरह से उसके आर्थिक पर्यावरण पर निर्भर करती है। आर्थिक पर्यावरण को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक निम्नवत् है, इन्हें सूचीबद्ध करते हुए समझने का प्रयास करें

- **आर्थिक स्थितियाँः** किसी राष्ट्र की आर्थिक स्थितियाँ आर्थिक कारकों के एक समूह को संदर्भित करती हैं जिनका व्यावसायिक संगठनों और उनके संचालन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। इनमें सकल घरेलू उत्पाद, प्रति व्यक्ति आय, वस्तुओं और सेवाओं के लिए बाजार, पूंजी की उपलब्धता, विदेशी मुद्रा भंडार, विदेशी व्यापार की वृद्धि, पूंजी बाजार की ताकत आदि शामिल हैं। ये सभी आर्थिक विकास की गति को सुधारने में मदद करते हैं।

- **आर्थिक नीतियांः** सभी व्यावसायिक गतिविधियां और संचालन सरकार द्वारा समय– समय पर बनाई गई आर्थिक नीतियों से सीधे प्रभावित होते हैं। कुछ महत्वपूर्ण आर्थिक नीतियां निम्नवत् हैंः

    1. औद्योगिक नीति
    2. राजकोषीय नीति
    3. मौद्रिक नीति
    4. विदेशी निवेश नीति
    5. निर्यात–आयात नीति (एक्जिम नीति)

केन्द्र तथा राज्य सरकार समय–समय पर आर्थिक परिदृश्य में हो रहे विकास, राजनीतिक औचित्य और बदलती आवश्यकता को देखते हुए इन नीतियों में बदलाव करती रहती है। प्रत्येक व्यावसायिक फर्म को नीतिगत ढांचे के भीतर कड़ाई से कार्य करना होता है और उसमें परिवर्तनों का जवाब देना होता है। आइये उपरोक्त सूचिबद्ध नीतियो का अध्ययन क्रमशः करने का प्रयास करें;–

- **औद्योगिक नीतिः** सरकार की औद्योगिक नीति में उन सभी सिद्धांतों, नीतियों, नियमों, विनियमों और प्रक्रियाओं को शामिल किया गया है, जो देश के औद्योगिक उद्यमों को निर्देशित और नियंत्रित करते हैं और औद्योगिक विकास के पैटर्न को आकार देते हैं।

- **राजकोषीय नीतिः** इसमें जनता के संबंध में सरकार की नीति शामिल है व्यय, कराधान और सार्वजनिक ऋण।

- **मौद्रिक नीतिः** इसमें वे सभी गतिविधियाँ और हस्तक्षेप शामिल हैं जिनका उद्देश्य व्यवसाय को ऋण की सुचारू आपूर्ति और व्यापार और उद्योग को

बढ़ावा देना है।

- **विदेशी निवेश नीतिः** इस नीति का उद्देश्य औद्योगिक विकास को गति देने और आधुनिक तकनीक का लाभ उठाने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में विदेशी निवेश के प्रवाह को विनियमित करना है।

- **निर्यात–आयात नीति :** इसका उद्देश्य निर्यात में वृद्धि करना है और निर्यात और आयात के बीच की खाई को पाटना। इस नीति के माध्यम से सरकार विभिन्न कर्तव्योंध लेवी की घोषणा करती है। अब–दिन बाधाओं और नियंत्रणों को हटाने और रिवाज को कम करने पर टिके होते हैं कर्तव्यों।

- **आर्थिक प्रणालीः** विश्व अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से तीन प्रकार की आर्थिक प्रणालियों द्वारा शासित होती है, अर्थात, (i) पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाय (ii) समाजवादी अर्थव्यवस्थाय और (iii) मिश्रित अर्थव्यवस्था, भारत ने मिश्रित अर्थव्यवस्था प्रणाली को अपनाया है जिसका तात्पर्य सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र के सह– अस्तित्व से है।

1.3.2 व्यवसाय का गैर–आर्थिक पर्यावरण

गैर–आर्थिक पर्यावरण के विभिन्न तत्वो में निम्नलिखित को सम्मिलित किया जा सकता है, आइये इन्हें क्रमबद्ध कर समझने का प्रयास करें–

- **सामाजिक और संस्कृति पर्यावरणः** समाज लोगों के विश्वासों, मूल्यों, मानदंडों, दृष्टिकोणों, शिक्षा और नैतिकता को आकार देता है जिसमें वे बड़े होते हैं और ये कारक उन व्यवसायों पर बहुत प्रभाव डालते हैं जो अब तक कंपनी के नियंत्रण से बाहर हैं। इन सभी कारकों को व्यवसाय के सामाजिक– सांस्कृतिक कारकों के रूप में वर्गीकृत किया गया है। व्यवसाय के सामाजिक पर्यावरण में रीति– रिवाजों, परंपराओं, मूल्यों, विश्वासों, गरीबी, साक्षरता, जीवन प्रत्याशी दर आदि जैसे सामाजिक कारक शामिल हैं। उदाहरण के लिए, त्योहारों के मौसम में नए कपड़े, मिठाई, फल, फूल आदि की मांग में वृद्धि होती है। साक्षरता दर में वृद्धि के कारण उपभोक्ता उत्पादों की गुणवत्ता के प्रति अधिक जागरूक हो रहे हैं। परिवार की संरचना में बदलाव के कारण, एकल बच्चे की अवधारणा वाले अधिक एकल परिवार सामने आए हैं। इससे विभिन्न प्रकार के घरेलू सामानों की मांग बढ़ जाती है। यह ध्यान दिया जा सकता है कि विभिन्न सामाजिक संरचनाओं और संस्कृति से संबंधित लोगों के उपभोग पैटर्न, पहनावे और जीवन शैली में काफी भिन्नता है।

- **राजनीतिक पर्यावरणः** इसमें राजनीतिक व्यवस्था, सरकार की नीतियां और

व्यापारिक समुदाय और संघवाद के प्रति रवैया शामिल है। इन सभी पहलुओं का व्यावसायिक फर्मों द्वारा अपनाई गई रणनीतियों पर प्रभाव पड़ता है। सरकार की स्थिरता भी व्यापार और संबंधित गतिविधियों को काफी हद तक प्रभावित करती है। यह विभिन्न हित समूहों और निवेशकों को शक्ति, विश्वास का संकेत भेजता है। इसके अलावा, राजनीतिक दल की विचारधारा भी व्यावसायिक संगठन और उसके संचालन को प्रभावित करती है। आप शायद जानते होंगे कि कोका–कोला, एक शीतल पेय, जिसका अभी भी व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है, इसे सत्तर के दशक के अंत में भारत में परिचालन बंद करना पड़ा था। ट्रेड यूनियन गतिविधियाँ भी व्यावसायिक उद्यमों के संचालन को प्रभावित करती हैं। भारत में अधिकांश श्रमिक संघ विभिन्न राजनीतिक दलों से संबद्ध हैं। हड़ताल, तालाबंदी और श्रमिक विवाद आदि भी व्यावसायिक कार्यों पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। हालांकि, प्रतिस्पर्धी व्यावसायिक पर्यावरण के साथ, ट्रेड यूनियन अब काफी परिपक्वता दिखा रहे हैं और प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी के माध्यम से व्यापार संगठन और इसके संचालन की सफलता में सकारात्मक योगदान देना शुरू कर दिया है।

- **कानूनी पर्यावरणः** यह कानूनों, विनियमों के समूह को संदर्भित करता है, जो व्यापारिक संगठनों और उनके संचालन को प्रभावित करते हैं। प्रत्येक व्यावसायिक संगठन को पालन और कानून के दायरे में रहकर काम करना पड़ता है। महत्वपूर्ण विधान कि चिंता व्यापार उद्यमों में शामिल हैंः

  (क) कंपनी अधिनियम, 1956

  (ख) विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम, 1999

  (ग) कारखाना अधिनियम, 1948

  (ध) औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1972

  (च) ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972

  (छ) उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951

  (ज) खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954

  (झ) आवश्यक वस्तु अधिनियम, 2002

  (ट) बाट और माप अधिनियम, 1956 के मानक

  (ठ) एकाधिकार और प्रतिबंधित व्यापार व्यवहार अधिनियम, 1969

(ङ) ट्रेड माक्र अधिनियम, 1999

(ढ) भारतीय मानक ब्यूरो अधिनियम, 1986

(ण) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986

(त) पर्यावरण संरक्षण अधिनियम

(थ) प्रतिस्पर्धा अधिनियम, 2002

उपरोक्त कानूनों के अलावा, निम्नलिखित भी व्यवसाय के कानूनी पर्यावरण का हिस्सा हैं।

(क) संविधान के प्रावधानः भारतीय संविधान के अनुच्छेदों के विभिन्न प्रावधान, विशेष रूप से नीति निर्देशक सिद्धांत, नागरिकों के अधिकार और कर्तव्य, केंद्र और राज्य सरकार की विधायी शक्तियाँ भी व्यावसायिक उद्यमों के संचालन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं।

(ख) न्यायिक निर्णयः मा0 न्यायपालिका को यह सुनिश्चित करना है कि विधायिका और सरकार जनता के हित में कार्य करती है या संविधान की सीमाओं के भीतर कार्य करती है। व्यापार और उद्योग से संबंधित विभिन्न मामलों में न्यायालय द्वारा दिए गए विभिन्न निर्णय भी व्यावसायिक गतिविधियों को प्रभावित करते हैं।

- **तकनीकी पर्यावरणः** तकनीकी पर्यावरण में उत्पादों और सेवाओं के उत्पादन और इसके वितरण के लिए अपनाई जाने वाली विधियां, तकनीक और दृ ष्टिकोण शामिल हैं। विभिन्न देशों के अलग– अलग तकनीकी पर्यावरण उत्पादों के डिजाइन को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका और कई अन्य देशों में बिजली के उपकरणों को 110 वोल्ट के लिए डिजाइन किया गया है। लेकिन जब ये भारत के लिए बने हों तो इन्हें 220 वोल्ट का होना चाहिए। आधुनिक प्रतिस्पर्धी युग में तकनीकी परिवर्तनों की गति बहुत तेज है। इसलिए, प्रतिस्पर्धा में जीवित रहने और बढ़ने के लिए, एक व्यवसाय को समय– समय पर तकनीकी परिवर्तनों को अपनाना पड़ता है। यह ध्यान दिया जा सकता है कि अधिकांश बड़े औद्योगिक संगठनों में उत्पादों और सेवाओं में सुधार और नवाचार के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान एक नियमित गतिविधि है। वास्तव में आजकल कोई भी फर्म पुरानी तकनीकों के साथ बने रहने का जोखिम नहीं उठा सकती है।
- **जनसांख्यिकीय पर्यावरणः** यह जनसंख्या के आकार, घनत्व, वितरण और वृद्धि दर को संदर्भित करता है। इन सभी कारकों का विभिन्न वस्तुओं और

सेवाओं की मांग पर सीधा प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए एक देश जहां जनसंख्या दर उच्च है और बच्चे आबादी का एक बड़ा हिस्सा हैं, तो शिशु उत्पादों की मांग अधिक होती है। इसी तरह शहरों और कस्बों के लोगों की मांग ग्रामीण इलाकों के लोगों से अलग होती है। जनसंख्या की उच्च वृद्धि श्रम की आसान उपलब्धता को इंगित करती है। ये व्यावसायिक इकाईयो को उत्पादन की श्रम गहन तकनीकों का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। इसके अलावा, कुछ क्षेत्रों में कौशल श्रम की उपलब्धता इकाईयो को ऐसे क्षेत्र में अपनी अन्य इकाइयां स्थापित करने के लिए प्रेरित करती है। उदाहरण के लिए, अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, जर्मनी, यूके से व्यावसायिक इकाइयाँ कुशल जनशक्ति की आसान उपलब्धता के कारण निरन्तर भारत आ रही हैं। इस प्रकार, एक फर्म जो जनसांख्यिकीय मोर्चे पर परिवर्तनों पर नजर रखती है और उन्हें सटीक रूप से विश्लेषित करती है, वह अपने दरवाजे पर दस्तक देने के अवसर प्राप्त करती है और लाभ कमाती हैं

- **वैश्विक या अंर्तराष्ट्रीय पर्यावरणः** व्यावसायिक गतिविधि को आकार देने के लिए वैश्विक पर्यावरण भी महत्वपूर्ण है। वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में पूरी दुनिया एक बाजार है व्यवसाय परिवर्तनों से निपटने के लिए अंर्तराष्ट्रीय पर्यावरण का विश्लेषण नितान्त महत्वपूर्ण है।

- **प्राकृतिक पर्यावरणः** प्राकृतिक पर्यावरण में भौगोलिक और पारिस्थितिक कारक शामिल हैं जो व्यवसाय के संचालन को प्रभावित करते हैं। इन कारकों में प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता, मौसम और जलवायु की स्थिति, स्थान का पहलू, स्थलाकृतिक कारक आदि शामिल हैं। व्यवसाय प्राकृतिक पर्यावरण की प्रकृति से बहुत प्रभावित होता है। उदाहरण के लिए, चीनी के कारखाने केवल उन्हीं स्थानों पर स्थापित किए जाते हैं जहाँ गन्ना उगाया जा सकता है। निर्माण इकाई को आगत के स्त्रोतों के निकट ही स्थापित करना हमेशा बेहतर माना जाता है। इसके अलावा, पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण आदि के लिए सरकार की नीतियां अतिरिक्त जिम्मेदारी डालती हैं।

1.3.3 अर्थिक और गैर– आर्थिक पर्यावरण की तुलना

- अर्थिक और गैर–आर्थिक पर्यावरण एक दूसरे पर गहरा प्रभाव डालते हैं। अर्थिक पर्यावरण, व्यवसाय और उद्योग के लिए बहुत महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इसमें अर्थव्यवस्था, संभावित रोजगार की स्थिति, बाजार के स्थिति, उत्पादों और सेवाओं की मांग और पूंजी का उपयोग जैसे मामले शामिल होते हैं। दूसरी ओर, गैर–आर्थिक पर्यावरण, जैसे कि सामाजिक, सांस्कृतिक और

पर्यावरणीय पर्यावरण आदि, भी व्यवसायों के लिए महत्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए, ग्राहकों की सोच, विभिन्न क्षेत्रों के नियम और विनियमों के बारे में जानकारी, उत्पादों के प्रभाव और जीवन शैली के बदलते ट्रेंड जैसी मामलों में गैर–आर्थिक पर्यावरण का महत्व होता है। इन दोनों पर्यावरणों के संयोग से व्यवसाय अपने उत्पादों और सेवाओं को विकसित करते हुए सामाजिक, सांस्कृतिक, पर्यावरणीय और अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से सही निर्णय ले सकते हैं।

तुलना के लिए आधार	**आर्थिक गतिविधि**	**गैर–आर्थिक गतिविधि**
अर्थ	आर्थिक गतिविधि वस्तुओं के उत्पादन और खपत से संबंधित एक मानवीय गतिविधि को संदर्भित करती है और आर्थिक लाभ के लिए सेवाएं।	गैर–आर्थिक गतिविधि एक ऐसी गतिविधि है जो दूसरों को सेवाएं प्रदान करने के उद्देश्य से खुशी–खुशी की जाती है बिना धन लाभ के संबंध में।
प्रेरणा	आर्थिक, यानी कमाने के लिए धन।	सामाजिक या मनो वैज्ञानिक, यानी प्यार, स्नेह आदि से
धन माप	मौद्रिक प्रकृति की माप एवं	पैसे के माप में कमी।
दृष्टिकोण	व्यावहारिक	आदर्शवादी
परिणाम	धन का निर्माण और संपत्तियां।	संतोष और खुशी।
राष्ट्रीय आय	राष्ट्रीय आय में मूल्य जोड़ता है।	राष्ट्रीय आय को प्रभावित नहीं करता है।

1.4 व्यावसायिक पर्यावरण के विभिन्न स्तर

व्यावसायिक पर्यावरण तीन स्तरों पर विभाजित किया जा सकता है: क्षेत्रीय स्तर, राष्ट्रीय स्तर और अंर्तराष्ट्रीय स्तर। इन स्तरों का उपयोग व्यवसायों द्वारा अपने पर्यावरणीय प्रभाव को नियंत्रित करने और कम करने के लिए किया जाता है।

- **क्षेत्रीय स्तरः** क्षेत्रीय स्तर पर व्यावसायिक पर्यावरण उन स्थानों को संदर्भित करता है जहां व्यावसायिक गतिविधियां स्थानांतरित नहीं होती हैं। उदाहरण के

लिए, एक छोटा कारखाना या स्थानीय बिजली कंपनी क्षेत्रीय स्तर पर आता है।

- **राष्ट्रीय स्तरः** राष्ट्रीय स्तर पर व्यावसायिक पर्यावरण उन सभी व्यावसायों को संदर्भित करता है जो एक देश में व्यवसाय करते हैं। उदाहरण के लिए, एक बड़ी उद्योग या बैंक राष्ट्रीय स्तर पर आते हैं।
- **अंर्तराष्ट्रीय स्तरः** अंर्तराष्ट्रीय स्तर पर व्यावसायिक पर्यावरण उन सभी व्यावसायों को संदर्भित करता है जो एक देश से दूसरे देशों में व्यवसाय करते हैं। कोई व्यवसाय राष्ट्रीय स्तर पर घटने वाली घटनाओं या परिस्थितियों से उतना ही प्रभावित होता है जितना कि शेष विश्व की घटनाओं और परिस्थितियों से होता है।

1.4.1 क्षेत्रीय स्तर

क्षेत्रीय स्तर पर व्यावसायिक पर्यावरण उन स्थानों को संदर्भित करता है जहां व्यावसायिक गतिविधियां स्थानांतरित नहीं होती हैं। उदाहरण के लिए, एक छोटा कारखाना या स्थानीय बिजली कंपनी क्षेत्रीय स्तर पर आता है। इसमें व्यवसायों को उनके स्थानों के लिए पर्यावरणीय नियमों और अनुमतियों का पालन करना चाहिए। इस स्तर पर, स्थानीय शासन और प्रशासन व्यवसायों को नियंत्रित करने में मदद करते हैं। वे श्रम संबंधी कानूनों, भूमि विनियमों और पानी और वायु प्रदूषण जैसी नियमों का पालन करने की जिम्मेदारी लेते हैं।

क्षेत्रीय स्तर पर पर्यावरणी विश्लेषण के लिए उन विभिन्न स्थितियों का विश्लेषण करना आवश्यक होगा जो किसी व्यावसायिक फर्म के क्षेत्र में होती हैं। यदि कोई व्यावसायिक फर्म किसी नए क्षेत्र में अपने कार्य का विस्तार करने को सोच रही है तथा उस संबंध में योजना बना रही है जो उसे उस क्षेत्र के पर्यावरणी परिस्थितियों का भी परीक्षण करना होगा। उदाहरण यदि किसी व्यावसायिक फर्म की रुचि का क्षेत्र केवल उत्तरी भारत तक ही सीमित है तो उसे उत्तरी भारत के लोगों की सामाजिक और सांस्कृतिक आदलले. उनकी जीवन शैली, उनकी खर्च करने की आदतों, उनके त्यौहारों और रीति–रिवाजों, उनके आय स्तर राजनीतिक कार्यकलापों, स्थानीय कानूनों आदि संबंधी आवश्यक सूचनाएं एकत्रित करनी होंगी। उत्तरी भारत का यह पर्यावरण पूर्वी, पश्चिमी या दक्षिण भारत के पर्यावरण से बिल्कुल ही भिन्न हो सकता है। किसी एक क्षेत्र के कारोबार के लिए उपयुक्त प्रथा अन्य क्षेत्रों के लिए उपयुक्त नहीं भी हो सकती है। कोई सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पर्यावरण किसी विशेष क्षेत्र के लिए ही उपयुक्त होता है, अतः उसका विश्लेषण उसी रूप में होना चाहिए।

1.4.2 राष्टोय स्तर

राष्ट्रीय स्तर पर व्यावसायिक पर्यावरण उन सभी व्यावसायों को संदर्भित करता है जो एक देश में व्यवसाय करते हैं। उदाहरण के लिए, एक बड़ी उद्योग या बैंक राष्ट्रीय स्तर पर आते हैं। व्यवसायों को राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित पर्यावरणीय नियमों और अनुमतियों का पालन करना चाहिए। इस स्तर पर, संघीय शासन और प्रशासन व्यवसायों को नियंत्रित करने में मदद करते हैं। वे प्रदूषण नियंत्रण, जल विनियमन, वन नीति, जैव विविधता और प्रदूषण प्रबंधन जैसी महत्वपूर्ण मुद्दों पर निर्णय लेते है और व्यवसायों को इन नियमों का पालन करने के लिए जिम्मेदार होने के लिए नियुक्त किए जाते हैं। इस स्तर पर व्यवसायों को अपने उत्पादों और सेवाओं के प्रभाव का मूल्यांकन करना और अपने कार्यक्रमों के लिए उन्हें नियंत्रित करना चाहिए। कोई राष्ट्र किसी क्षेत्र से बड़ा होता है। वास्तविकता तो यह है कि राष्ट्र विभिन्न क्षेत्रों का योग होता है। राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरणी विश्लेषण में विभिन्न क्षेत्रों में असमानता को देखा जाता है और फिर सभी क्षेत्रों के लिए एक संयुक्त दृष्टिकोण बनाया जाता है। अलग–अलग वृक्षों का कोई विशेष महत्व नहीं होता. विश्लेषण और परीक्षण तो पूरे जंगल का किया जाता है। जब हम राष्ट्रीय पर्यावरण का परीक्षण कर रहे होते है तो विश्लेषण के लिए व्यापक रूप से घटक वही होंगे जिनकी चर्चा ऊपर की गई है। परन्तु स्पष्ट कारणों से यहां पर हमारे दृष्टिकोण में परिवर्तन हो जाएगा तथा यह अधिक व्यापक हो जाएगा। हमारी रुचि स्थानीय स्तर के राजनैतिक परिवर्तनों या आय स्तर और सर्च करने की आदतों में स्थानीय स्तर के विभेदों में नहीं होगी। अब हमारा दृष्टिकोण समस्त राष्ट्र को एक इकाई के रूप में देखने का हो जाएगा।

1.4.3 अंतराष्ट्रीय स्तर

अंर्तराष्ट्रीय स्तर पर व्यावसायिक पर्यावरण उन सभी व्यावसायों को संदर्भित करता है जो एक देश से दूसरे देशों में व्यवसाय करते हैं। कोई व्यवसाय राष्ट्रीय स्तर पर घटने वाली घटनाओं या परिस्थितियों से उतना ही प्रभावित होता है जितना कि शेष विश्व की घटनाओं और परिस्थितियों से होता है। व्यवसायों को अंर्तराष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित पर्यावरणीय नियमों और अनुमतियों का पालन करना चाहिए। विभिन्न अंर्तराष्ट्रीय संगठनों जैसे विश्व वाणिज्य संगठन (वीटीओ), विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) और आईएफएओ जैसी अन्य संगठन व्यवसायों को नियंत्रित करने में मदद करते हैं। वे विभिन्न विषयों पर संयुक्त रूप से निर्णय लेते हैं, जैसे कि पारिस्थितिक बदलाव, जलवायु परिवर्तन और जलसंचय जैसी महत्वपूर्ण मुद्दों पर सूचना प्रौद्योगिकी क्रांति के आने और समस्त का धीरे–धीरे

सिमट कर एक विश्व ग्राम हो जाने के फलस्वरूप कोई छोटी से छोटी भी पटना समस्त विश्व पर अपना प्रभाव छोड़ जाती है। उदाहरणार्थ मुम्बई शेयर बाजार पर देश की कंपनियों के असंतोषजनक कार्यों का उतना ही प्रभाव पड़ता है जितना कि लंदन या न्यूयाक्र में होने वाले उतार–चढ़ावों का समस्त विश्व में होने वाली किसी भी घटना से कोई भी व्यवसाय अछूता नहीं रह सकता। एक संगठन को विदेशी स्थान के लिए व्यवसाय योजना की योजना बनाते समय निम्नलिखित बिन्दुओ को ध्यान रखना चाहिए। आइये इन्हें सूचिबद्ध करने का प्रयास करें;–

1. व्यवसाय की राजनीतिक संरचना एवं प्रक्रियाएं,
2. व्यवसाय के प्रति सरकार का दृष्टिकोण – सुविधा या प्रतिबंधात्मक,
3. प्रोत्साहन और सरकार द्वारा दी जाने वाली विभिन्न सुविधाएं एवं कार्यक्रम,
4. निजी, सार्वजनिक या छोटे पैमाने का क्षेत्र जैसे किसी विशिष्ट क्षेत्र के लिए लाइसेंसिंग आवश्यकताओं और आरक्षणों के लिए कानूनी प्रतिबंध,
5. पूंजीगत सामान, तकनीकी जानकारी और कच्चे माल के आयात पर प्रतिबंध,
6. सेवाओं और उत्पादों के निर्यात पर प्रतिबंध,
7. माल के वितरण और मूल्य निर्धारण पर प्रतिबंध तथा
8. व्यवसाय स्थापित करने में आवश्यक प्रक्रियात्मक औपचारिकताएँ,

1.5 व्यवसाय और पर्यावरण के बीच की स्थिति

व्यवसाय और पर्यावरण दो अलग–अलग तत्व होते हैं, लेकिन दोनों के बीच प्रत्यक्ष एवं गहरा संबंध होता है। व्यवसाय के लिए पर्यावरण एक महत्वपूर्ण संसाधन होता है जो व्यवसाय की सफलता के लिए अत्यंत आवश्यक होता है। पर्यावरण से आने वाली संकट और परिवर्तन व्यवसाय को सीधे प्रभावित करते हैं, जो उन्हें अपनी व्यवसाय गतिविधियों को अनुकूलित करने के लिए बदलने के लिए प्रभावित करता है।

यदि व्यवसाय स्थानांतरण, उत्पादन, उत्पाद का प्रबंधन या विपणन करता है, तो यह पर्यावरण को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए, उत्पाद का निर्माण और उसके भंडारण के लिए उपयोग की जाने वाली ऊर्जा स्रोतों की खपत पर्यावरण पर सीधा प्रभाव डालती है। व्यवसायों को एक स्वस्थ पर्यावरण में

सफलता प्राप्त करने के लिए, उन्हें पर्यावरण द्वारा प्रभावित होने वाली चुनौतियों को समझना आवश्यक होता है।

किसी भी सार्थक संगठन के पास कुछ मिशन, उद्देश्य और लक्ष्य और उन्हें प्राप्त करने की रणनीति होती है। इन सभी अभिन्न और परस्पर संबंधित तत्वों को आकार देने पर व्यावसायिक पर्यावरण का प्रभाव पड़ता है। इसलिए, यह बहुत उपयुक्त है कि रणनीति के निर्माण को कभी– कभी उचित फर्म– पर्यावरण फिट स्थापित करने के रूप में परिभाषित किया जाता है। दरअसल, मिशनध उद्देश्यध लक्ष्य स्वयं बाहरी पर्यावरण और संगठनात्मक कारकों (यानी, आंतरिक पर्यावरण) के आकलन पर आधारित होना चाहिए। एक स्वाट विश्लेषण (संगठन की ताकत और कमजोरियों का विश्लेषण और पर्यावरण में अवसरों और खतरों का विश्लेषण), इसलिए, रणनीतिक प्रबंधन प्रक्रिया के पहले चरणों में से एक है। व्यवसाय की गतिशीलता, काफी हद तक, एक निर्भर कारक है – यह अन्य बातों के साथ– साथ पर्यावरण की गतिशीलता पर निर्भर करती है। इसलिए, पर्यावरण विश्लेषण का महत्व।

1.6 सारांश

'व्यावसायिक पर्यावरण' शब्द बाहरी ताकतों, कारकों और संस्थानों को दर्शाता है जो व्यवसाय के नियंत्रण से परे हैं और वे व्यावसायिक उद्यमों के कामकाज को प्रभावित करते हैं। इनमें ग्राहक, प्रतियोगी, आपूर्तिकर्ता, सरकार और सामाजिक, राजनीतिक, कानूनी और तकनीकी कारक आदि शामिल हैं। व्यावसायिक पर्यावरण बहुआयामी, जटिल और प्रकृति में गतिशील है। व्यावसायिक पर्यावरण में बदलाव अप्रत्याशित हैं। यह एक स्थान से दूसरे स्थान, क्षेत्र से क्षेत्र और देश से देश में भिन्न होता है।

व्यावसायिक पर्यावरण का महत्वः व्यवसाय और उसके पर्यावरण के बीच की बातचीत व्यवसाय के लिए अवसरों और खतरों की पहचान करने में मदद करती है। यह व्यावसायिक फर्मों के लिए विकास के नए मोर्चे खोलता है। पर्यावरण विश्लेषण व्यावसायिक चुनौतियों से निपटने में प्रबंधकों के कार्य को आसान बनाता है। यह फर्मों को प्रतिस्पर्धियों की रणनीतियों का विश्लेषण करने और अपनी ताकत और कमजोरी को ध्यान में रखते हुए तदनुसार अपनी रणनीति तैयार करने में मदद करता है।

व्यावसायिक पर्यावरण के विभिन्न प्रकारो के अन्तर्गत निम्न को समझना अत्यन्त आवश्यक होता है।

- आर्थिक पर्यावरणः **(क)** आर्थिक स्थितिय **(ख)** आर्थिक नीतियां **(ग)** आर्थिक प्रणाली
- गैर–आर्थिक पर्यावरणः **(क)** सामाजिक पर्यावरणय **(ख)** राजनीतिक पर्यावरणय **(ग)** कानूनी पर्यावरणय **(ध)** तकनीकी पर्यावरणय **(च)** जनसांख्यिकीय पर्यावरणय **(छ)** प्राकृतिक पर्यावरण

व्यावसायिक पर्यावरण जटिल, गतिशील और बेकाबू बाहरी कारकों का एक संयोजन या मिश्रण है जिसके भीतर एक व्यवसाय संचालित किया जाना है। व्यावसायिक पर्यावरण जटिल, अनिश्चित, अंतर– संबंधित, गतिशील और अन्योन्याश्रित है।

विशिष्ट पर्यावरण में बाहरी ताकतें शामिल होती हैं जो संगठनों के निर्णयों और कार्यों को सीधे प्रभावित या प्रभावित करती हैं और संगठनों के लक्ष्यों की उपलब्धि के लिए सीधे प्रासंगिक होती हैं। सामान्य पर्यावरण में व्यापक आर्थिक, राजनीतिक कानूनी, सामाजिक– सांस्कृतिक, जनसांख्यिकीय, तकनीकी और वैश्विक स्थितियां शामिल हैं। व्यावसायिक पर्यावरण अवसरों और खतरों की पहचान करने में मदद करता है। व्यावसायिक पर्यावरण के घटक हैंः आंतरिक और बाहरी पर्यावरण। बाहरी पर्यावरण में सूक्ष्म और स्थूल कारक होते हैं जो व्यवसाय को प्रभावित करते हैं।

उपरोक्त विवेचन के उपरान्त पर्यावरण के महत्व को निम्नलिखित बिन्दुओं के मध्यम से स्थापित किया जा सकता है;–

- व्यावसायिक पर्यावरण का अध्ययन एक संगठन को अपनी व्यापक रणनीतियों और दीर्घकालिक नीतियों को विकसित करने में मदद करता है।
- यह एक व्यावसायिक संगठन को अपने प्रतिस्पर्धियों की रणनीतियों का विश्लेषण करने में सक्षम बनाता है और इस तरह प्रभावी काउंटर रणनीति तैयार करता है।
- बदलते परिवेश के बारे में सूचनाओं का विश्लेषण संगठन को अपने दृष्टिकोण में गतिशील बनाए रखता है।
- ऐसा अध्ययन संगठन को सामाजिक– स्थिरता –राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक परिवर्तन में सहायक होता है।

वस्तुतः उपरोक्त अध्ययन के परिणामस्वरूप, एक प्रबन्धक वर्तमान परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाने में सक्षम होते हैं और इस प्रकार पर्यावरण को व्यवसाय के अनुकूल बनाने के लिए सदैव तैयार रखते है।

1.7 उपयोगी शब्दावली

- **आर्थिक पर्यावरणः** आर्थिक पर्यावरण एक व्यवस्थात्मक परिवेश है जिसमें विभिन्न आर्थिक कार्यों की गतिविधियों और संरचनाओं को समझना और विश्लेषण करना शामिल होता है। इसमें विभिन्न तत्व शामिल होते हैं जैसे कि वित्तीय संस्थाओं, विनिमय दरें, अर्थव्यवस्था, बाजार, सरकार की नीतियां और कानूनी ढांचे। आर्थिक पर्यावरण के अध्ययन से हम आर्थिक प्रगति और विकास के लिए नीतियों और उपायों का विश्लेषण कर सकते हैं।

- **निर्यात–आयात नीतिः** एक ऐसी नीति होती है जो एक देश के निर्यात और आयात के क्षेत्र में निर्धारित नीतियों तथा कानूनों का संचालन करती है। यह नीति देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने, स्थानीय उत्पादों के प्रचार और बाजार विकास को बढ़ावा देने, उद्योग विकास को बढ़ावा देने, और आर्थिक विकास को संभव बनाने के लिए बनाई जाती है।

  - **वैश्वीकरणः** दुनिया भर में अर्थव्यवस्थाओं, उद्योगों, बाजारों, संस्कृतियों और नीति– निर्माण का एकीकरण।

  - **आर्थिक चर** : किसी संगठन के कार्यकलापों को प्रभावित करने वाले सामान्य आर्थिक कारक और प्रवृत्तियाँ

  - **आगतें** : किसी संगठन की प्रणाली में प्रवेश करने वाले पर्यावरणी संसाधन

  - **प्रबंध** : किसी संगठन के कार्यों की योजना बनाने, व्यवस्था करने, नेतृत्व करने और उन पर नियंत्रण करने की प्रक्रिया।

  - **मिश्रित अर्थव्यवस्था** : वह अर्थव्यवस्था जिसमें निजी क्षेत्रक और सार्वजनिक क्षेत्रक पाथ–साथ चलते हैं।

  - **नीति** : वह स्थायी विवरण जिसमें निर्णय कार्य करने वालों के लिए सामान्य मार्गदर्शी सिद्धांत दिए हुए होते हैं।

1.8 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न 1. व्यावसायिक पर्यावरण की किन्ही दो विशेषताएँ को समझाइये ?

प्रश्न 2. व्यावसायिक पर्यावरण पर्यावरण के विभिन्न प्रकारों का वर्णन करिये।

प्रश्न 3. एक उदाहरण के माध्यम से समझाइये कि पर्यावरण व्यवसाय के लिए किस प्रकार से प्रोत्साहक का काम करता है।

प्रश्न 4. समष्टि पर्यावरण की चुनौतियों का सामना करने के लिए व्यवसाय के प्रबंध को जिन मार्गदर्शी सिद्धांतों का अनुसरण करना होता है उनकी सूची बनाइए।

प्रश्न 5. व्यवसाय के गैर– आर्थिक पर्यावरण के विभिन्न तत्वों की सूची बनाइए।

प्रश्न 6. जन सांख्यिकीय पर्यावरण व्यावसायिक गतिविधियों को कैसे प्रभावित करता है; विस्तार से समझाइये।

प्रश्न 7. ''व्यावसायिक पर्यावरण का ज्ञान व्यवसायियों को व्यवसाय के लिए अवसरों और चुनौतियों को समझने में मदद करता है।''इस कथन को विस्तार से अपने शब्दो मे समझाइये।

प्रश्न 8. किसी संगठन की व्यावसायिक नीति को प्रभावित करने वाले विभिन्न बाहरी कारकों का विश्लेषण करिये।

प्रश्न 9. व्यावसायिक नीतियों को प्रभावित करने वाले विभिन्न आंतरिक कारकों की व्याख्या कीजिए।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. के. अश्वथप्पा, बिजनेस एनवायरनमेंट फॉर स्ट्रैटेजिक मैनेजमेंट, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुंबई।
2. फ्रांसिस चेरुनिलम, बिजनेस एनवायरनमेंट, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
3. एस.के. मिश्रा और वी. के. पुरी, इंडियन इकोनॉमी, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
4. बी.बी.टंडन और के.के. टंडन, भारतीय अर्थव्यवस्था, टाटा मैकग्रा हिल, नई दिल्ली।

इकाई 2 आर्थिक पर्यावरण एक अवलोकन

इकाई रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था

2.2.1 भारतीय अर्थव्यवस्था के तीन क्षेत्र

2.3 आर्थिक योजना

2.4 1956–90 अवधि में अपनाई गई रणनीतियों के मूल तत्व

2.5 समकालीन आर्थिक सुधार

2.6 सारांश

2.7 उपयोगी शब्दावली

2.8 महत्तपूर्ण प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेगें कि ;–

- भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था की लाभ–हानि को समझ सकेगें
- पूर्ववर्ती पंचवर्षीय योजना का विश्लेषणात्मक अध्ययन कर सकेगें तथा
- नई औद्योगिक नीति और उसके उद्देश्यों की प्रति समझ बना सकेगें।

2.1 प्रस्तावना

इस इकाई के पूर्व की इकाई मे अपने अर्थव्यवस्था की अवधारणा को विस्तार से समझते हुए ; विभिन्न विद्धानों द्धारा दी गई परिभाषाओं और उनमे अंकित तत्वों को सूचिबद्ध करते हुए अध्ययन को पूर्णत; प्रदान की इसके साथ ही व्यापसामिक पर्यावण के क्षेत्र और महत्व को रेखांकित करते हुए इसको प्रभावित करने वाले विभिन्न कारको को समझने का प्रयास किया। प्रस्तुत इकाई अपको भारतीय मिश्रित अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में समझ विकसित करने का `प्रयास करेगी तथा अर्थिक योजना एवं पूर्ववर्ती पंचवर्षीय योजनाओं में अपनाई गई रणनीतियो को विस्तार से प्रस्तुत करेगी।

2. 2 भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था

भारत मे एक मिश्रित अर्थव्यवस्था है; इसलिए सार्वजनिक संस्थाओं के साथ ही निजी संस्थाएं सह–अस्तित्व में है। यह 1948 में और बाद में 1956 मे औद्योगिक नीतियों को अपनाने के परिणामस्वरूप है। हालॉकि ;वे स्वतंत्र रूप से काम नहीं करते है इसके बजाय उन्हें विभिन्न तंत्रों द्वारा नियंत्रित किया जाता है; अर्थात सरकारों द्वारा कार्यन्वित नीतियों को इसके लिये उत्तरदायी माना जाता है।

इसके अलावा साम्रज्यवादी शासन के तहत भारत की अर्थव्यवस्था के ठहराव को देखते हुए ;इसने आर्थिक विकास को बढाने के लिए नीतियों को अपनाया ;जिससे वैज्ञानिक ;औद्योगिक और तकनीकि विकास के लिए नींव रखी गई। उदाहरण के लिए ; भारत की जीडीपी आजादी के समय 2;7 लाख करोड थी जबकि चौहत्तर साल बाद 2021 में भारत की जीडीपी 135;13 लाख करोड रूपये को छू गई। भारत को दुनिया की सबसें बडी अर्थव्यवस्थाओं में से एक के रूप में चिहिनत किया जाता है। इसके अतिरिक्त ;1991 मे भारत की अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के साथ ; इसके विकास और विस्तार में निरन्तर कई गुना वृद्धि होती आ रही है। वर्तमान सरकार की विभिन्न योजनाओं के माध्यम से निरन्तर प्रतिव्यक्ति आय मे बढढोत्तरी होना इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

उपरोक्त विवेचन के उपरान्त आइये इसकी विभिन विशेषताओं को समझने को प्रयास करें;

- एक मिश्रित अर्थव्यवस्था का लक्ष्य अन्य प्रचलित आर्थिक व्यवस्थाओं की कमियों को दूर करना हैं। इसलिए ;ऐसी अर्थव्यवस्था में सरकार उन्हें नियंत्रित करने के लिए आवश्यक उपाय करते हुए मुक्त आर्थिक गतिविधियों को प्रोत्साहित करती है।

- मिश्रित अर्थव्यवस्था की सफलता की सबसे उल्लेखनीय विशेषताओं में से एक इसकी आर्थिक कल्याण की भावना है। इसलिए सरकारों द्वारा शुरू की गई विभिन्न राजकोषीय और मौद्रिक नीतियां निजी संस्थाओं से बडें स्तर पर आर्थिक कल्याण के लिए योगदान करने का आग्रह करती हैं।

- इसके विपरीत ; भारत का सार्वजनिक क्षेंत्र जनता को रोजगार के अवसर प्रदान करता है और क्षेत्रीय असमानताओं से बचाता है। साथ ही इसकी मूल्य नीतियां लाभ के बजाय आर्थिक कल्याण द्वारा निर्देशित होती हैं।

- भारत जैसी मिश्रित अर्थव्यवस्था मे सरकार आर्थिक नियोजन का कार्य करती है और कई उपायों और नीतियों को लागू करती है। नतीजतन सार्वजनिक क्षेत्र से

संबंधित उद्यम विशिष्ट पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कुछ योजनाओं के पालन में काम करते है।

इसी तरह ; निजी संस्थाएं भी कुछ पूर्व–निर्धारित दिशानिर्देशों के अनुसार काम करती है। इसके अलावा सरकार कई कार्यक्रमों के माध्यम से त्वरित और समन्वित विकास सुनिश्चित करती है; जो भारतीय अर्थव्यवस्था के दोनों क्षेत्रों मे विकास को पूरा करने के लिए तैयार किए गए है।

- भारत सरकार के पास मूल्य नियंत्रण और इसके विनियमन का अधिकार है। हालांकि ; यह आमतौर पर प्रचलित मूल्य प्रणाली में हस्तक्षेप नहीं करता है; इस प्रकार उद्योगों को वस्तुओं और सेवाओ की कीमतों को स्वतंत्र रूप से निर्धारित करने की अनुमति देता है।
- जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है; मिश्रित अर्थव्यवस्था की एक विशिष्ट विशेषता निजी और सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों की उपस्थिति है। विस्तृत विकास करने के लिए परमाणु उर्जा और रक्षा उपकरण जैसे भारी उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र के दायरे में आते हैं। निजी क्षेंत्र में कृषि ; छोटे उद्यम ; कुटीर उद्योग और उपभोक्ता सामान शामिल है। इसके अलावा ;भारत सरकार भी इस निजी क्षेत्र के संचालन और विकास में सहायता करती है।

1951 में भारत में पंचवर्षीय योंजना शुरू हुए थी और हम निरन्तर पंचवर्षीय योंजना के साथ अर्थव्यवस्था के विभिन्न आयामों को सशक्त करने के विभिन्न उपायों को समझने का प्रयास कर रहें है। आइये इन योजनाओं के मूल उद्देश्यो के प्रति अपनी समझ विकसित करनें हेतु इन्हें सूचिबद्ध करने का प्रयास करें;–

- आर्थिक विकास ;
- आधुनिकीकरण
- आत्मनिर्भरता ;
- सामाजिक न्याय ;
- गरीबी उन्मूलन ;
- लगभग पूर्ण रोजगार की स्थितियों का निर्माण ;और
- भोजन ; कपडा ;आवास ;शिक्षा जैसी बुनियादी जरूरतों की संतुष्टि के साथ उपलब्धता सुनिश्चत करना।

मिश्रित अर्थव्यवस्था के कई लाभ है। आइये इन्हें क्रमश; विस्तार से समझनें का

प्रयास करें–

(क) आजादी –भारत की मिश्रित अर्थव्यवस्था विभिन्न आर्थिक इकाइयों को निम्नलिखित तरीकों से स्वतंत्रता प्रदान करती है;

- उत्पादन के कारक तथा अपने स्वयं के व्यवसाय चुन सकते है जिस क्रम में सरकार अनुकूल कार्य परिस्थितियों को बनाने का प्रयास करती है।
- निजी उद्यमों द्वारा पहल को प्रोत्साहित किया जाता है।
- उपभोक्ता अपनी आय का निपटान उस तरीके से कर सकते है जैसा वे पसंद करते है; हालांकि वाणिज्यिक ;मौद्रिक और राजकोषीय नीतियों के तहत उन्हें ऐसा कराना होता है।

(ख) कल्याण – भारत की मिश्रित अर्थव्यवस्था में ;सरकार का उद्देश्य अपने नागरिकों के कल्याण के लिए काम करना है। इसके अलावा ;यह आवास ;न्यूनतम मजदूरी और उचित काम करने की स्थिति सहित अन्य के प्रावघानों के माध्यम से श्रमिको के कल्याण को सुनिश्चित करती है।

(ग) संसाधनों का आवंटन –एक मिश्रित आर्थिक प्रणाली संसाधनों के अधिकतम उपयोग की अनुमति देती है। वास्तव में; भारत सरकार संसाधनों के आवंठन और उपयोग के लिए आर्थिक योजना बनाती है। नतीजतन; यह कमी से बच सकता है;चक्रीय उतार–चढाव को खत्म कर सकता है और उत्पादन क्षमता बढा सकता है।

किसी भी अन्य आर्थिक व्यवस्था की तरह एक मिश्रित अर्थव्यवस्था के अपने नकारात्मक पक्ष भी है।आइये इनमे से कुछ का उल्लेंख करते हुए इन्हें क्रमश; समझने का प्रयास करें–

(क) अक्षमता –निजी क्षेत्रों की तुलना में मिश्रित अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र में कुछ क्षेत्रों मे कमी होती हैं। उदाहरण के लिए कभी –कभी यह भेदभाव ; भ्रष्टाचार और प्रसंस्करण में देरी के कारण खराब प्रदर्शन करती है; जिसके कारण लाभो में अधिकतम वृद्धि नही होती है।

(ख) नियंत्रण – इसी तरह ;अत्यधिक प्रतिबंध और नियंत्रण निजी क्षेत्र को खराब प्रदर्शन की ओर ले जाते है। इन बाधाओं के उपर ;मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी उद्यमों को कुछ स्थितियों में राष्ट्रीयकरण के खतरे का सामना करना पड सकता है।

(ग) प्रभावहीनता – यद्यपि निजी क्षेत्र को पर्याप्त विकासात्मक अवसर दिए

जाते हैं, सरकारें अक्सर निजी उद्यमों के संचालन को विनियमित करने के लिए कड़े नियंत्रण का प्रयोग कर सकती हैं, जिसका उन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(ध) आर्थिक शक्ति की एकाग्रता– एक मिश्रित अर्थव्यवस्था का उद्देश्य कुछ लोगों के हाथों में आर्थिक शक्ति की एकाग्रता को समाप्त करना है। हालांकि, व्यवहार में, निजी क्षेत्र के व्यावसायिक कर्मचारी अपने लाभ के लिए सरकारी नीतियों का उपयोग कर सकते हैं और धन जमा कर सकते हैं। इसके अलावा, निजी और सार्वजनिक क्षेत्र एक अर्थव्यवस्था में सह– अस्तित्व में होने के कारण, सरकारें इस आर्थिक एकाग्रता को रोकने के लिए कड़े नियम लागू करने की स्थिति में नहीं हो सकती हैं।

2.2.1 भारतीय अर्थव्यवस्था के तीन क्षेत्र

(क) कृषि क्षेत्र

भारतीय अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण भाग है, जो देश की लगभग आधी जनसख्या को रोजगार प्रदान करता है और भारत की कुल घरेलू उत्पाद ब्रूटो (जीडीपी) का लगभग 16% योगदान देता है। कृषि क्षेत्र भारत में लाखों ग्रामीण घरों के लिए जीवनोपाय का प्रमुख स्रोत है।

भारत खाद्य वस्तु के विश्व के दूसरे सबसे बड़े उत्पादक है, चीन के बाद, और चावल, गेहूं, कपास, गन्ना, फल और सब्जियों के बारे में सबसे बड़े उत्पादकों में से एक है। देश में विभिन्न फसलों की खेती संभव होती है क्योंकि यह विभिन्न कृषि–जलवायु क्षेत्र होते हुए है।

हालांकि, भारत में कृषि क्षेत्र का सामना कई चुनौतियों से होता है, जैसे कम उत्पादकता, पुरानी खेती पद्धतियों, उचित बुनियादी ढांचे, बाजार संबंधितता की कमी आदि। ये कारक किसानों की आय और जीवनोपाय पर असर डालते हैं और इससे कृषि क्षेत्र की विकास और उन्नयन प्रभावित होता है।

इन चुनौतियों का सामना करने के लिए, भारत सरकार ने कई उपाय अपनाए हैं, जैसे प्रौद्योगिकी उन्नयन का अधिकार प्रदान करना, किसानों को सब्सिडी प्रदान करना, ढांचे का निर्माण करना, जैविक खेती को बढ़ावा देना और प्रधान मंत्री फसल बीमा योजना, प्रधान मंत्री कृषि सिंचाई योजना और किसान क्रेडिट कार्ड जैसी योजनाओं को लागू करना है।

अंतिम शब्दों में, कृषि क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था के एक महत्वपूर्ण घटक है, और सरकार इसके विकास और उन्नयन को बढ़ावा देने के लिए निरन्तर पहल

करती रहती है।

(ख) उद्योग क्षेत्र

भारत का उद्योग क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। यह वस्तुओं का निर्माण, तंत्रों और मशीनों का उत्पादन, सेवाओं का उत्पादन और उपलब्ध कराना शामिल होता है। इसमें खनिज, तेल, गैस, स्टील, सुविधा, कपड़े और फार्मेस्यूटिकल जैसे विभिन्न उद्योग शामिल हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था में लगभग 24%: का योगदान इस क्षेत्र का है। भारत दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा इस्पात उत्पादक और चौथा सबसे बड़ा बिजली उत्पादक है। भारत में विनिर्माण क्षेत्र 2021–22 के पहले तिमाही में 9.9% बढ़ा। भारत में औद्योगिक उत्पादन सूचकांक (IIP) जुलाई 2021 में पिछले साल के समान अवधि के मुकाबले 11.5% बढ़ा। भारत में बुनियादी ढांचा क्षेत्र जुलाई 2021 में पिछले साल के समान अवधि के मुकाबले 9.4% बढ़ा। वित्तीय वर्ष 2020–21 में भारत में कुल विदेशी सीधी निवेश नवीनतम आंकड़ों के अनुसार 81.72 अरब डॉलर था। भारत सरकार द्वारा 2014 में शुरू की गई 'मेक इन इंडिया'कार्यक्रम उद्योग क्षेत्र को बढ़ावा देने और उसके योगदान को देश की जीडीपी में बढ़ाने के लिए है। भारत में खनिज उद्योग बहुत विस्तृत है और इसमें धातुओं, तार, बॉक्साइट, कोयला, पत्थर और आभूषण जैसे विभिन्न पदार्थों का उत्पादन शामिल है। भारत में तेल और गैस का उत्पादन और उपलब्ध कराने का उद्योग भी बहुत विस्तृत है। यहां इस क्षेत्र में नियंत्रण और अभिसंधान के उपकरणों, पाइपलाइनों, स्टोरेज टैंकों, रिफाइनरी और गैस फील्डों का निर्माण और विकास शामिल होता है।

(ग) वित्तीय क्षेत्र

तृतीयक क्षेत्र प्राथमिक व द्वितीयक क्षेत्र के उत्पादन गतिविधियों में सहायता करता है। इसे सेवा क्षेत्रक भी कहते हैं। उदाहरणः– बैंकिंग, परिवहन आदि। सेवा क्षेत्र में उत्पादन सहायक गतिविधियों के अतिरिक्त अन्य सेवाएं भी हो सकती है। जैसे– डॉक्टर, वकील आदि की सेवा, कॉल सेंटर, सॉफ्टवेयर विकसित करना आदि। भारत में तृतीयक क्षेत्र सबसे महत्वपूर्ण होने के निम्नलिखित महत्वपूर्ण कारण इस प्रकार से है;–

- यह लोगों को बुनियादी सेवाएं प्रदान करता है। उदाहरणः– अस्पताल, पोस्ट ऑफिस, टेलीग्राफ आदि।
- कृषि और उद्योग के विकास के लिए परिवहन और व्यापार जैसी गतिविधियों महत्वपूर्ण है।

- लोगों के आय स्तर के बढ़ने के साथ लोगों द्वारा अधिक सेवाओं की आवश्यकता या मांग पैदा होती है।
- सूचना और संचार पर आधारित नई सेवाएं आज हमारे जीवन की एक मांग हो गई है।
- यह बड़ी संख्या में लोगों को रोजगार प्रदान करता है।

प्राथमिक, द्वितीयक व तृतीयक क्षेत्रकों के परस्पर एक दूसरे पर निर्भर होने के कारण–

- प्राथमिक क्षेत्र को उत्पादन बढ़ाने व वितरण के लिए नई तकनीकों व परिवहन की आवश्यकता होती है। विनिर्माण उद्योगों के लिए कच्चा माल प्राथमिक क्षेत्र से ही प्राप्त होता है।
- प्राथमिक व द्वितीयक क्षेत्र की सहायता से ही सेवा क्षेत्र में नए नए रोजगार के अवसर प्राप्त होते है। जैसेः– भंडारण, बैंकिंग, यातायात आदि।
- तीनों क्षेत्र परस्पर एक दूसरे पर निर्भर है, किसी एक की भी अनुपस्थिति का अन्य दोनों पर नकारात्मक प्रभाव पडता है।

2.3 आर्थिक योजना

भारत का आर्थिक नियोजन उसके स्वतंत्रता के बाद से शुरू हुआ था। भारत की आर्थिक नीति की शुरुआत पूर्व भारत के राज्यों और उनके व्यापारी वर्गों के द्वारा की जाती थी। इसके बाद भारत ने ब्रिटिश शासन के दौरान अपनी आर्थिक नीति को इंग्लैंड की नीतियों से प्रभावित होने के निरन्तर अवसर प्रदान किये।

1947 में भारत की स्वतन्त्रता के पूर्व ही आर्थिक नियोजन का सैद्धान्तिक प्रयास प्रारम्भ हो चुका था। इस दिशा में प्रथम प्रयास 1934 में सर एम. विश्वेश्वरैया ने अपनी पुस्तक भारत के लिए नियोजित अर्थव्यवस्था लिखकर प्रारम्भ किया जिसे "विश्वेश्वरैया प्लान" कहा जाता है। यह एक 10 वर्षीय योजना रूपरेखा थी जिसमें श्रम को कृषि से हटाकर उद्योगों की ओर अधिक से अधिक केंद्रित करने का प्रस्ताव था और साथ ही 10 वर्ष में राष्ट्रीय आय को दोगुनी करने का भी लक्ष्य रखा गया द्य

भारत की पहली पंचवर्षीय योजना 1951 से 1956 तक लागू की गई थी। इसके बाद से अनेक योजनाएं लागू की गईं, जिनमें सबसे प्रमुख थीं पंचवर्षीय

योजनाएं, जो एक नियोजित विकास योजना थीं। इन योजनाओं के तहत विभिन्न क्षेत्रों में निवेश किए जाते थे जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, ऊर्जा आदि।

(क) आर्थिक नियोजन के उद्देश्य

भारत में आर्थिक नियोजन के मूल उद्देश्य निम्नलिखित थेः

- भारत में नियोजन का यह मुख्य उद्देश्य है। भारत के आर्थिक विकास को भारत के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि से मापा जाता है
- भारत में आर्थिक नियोजन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य रोजगार के स्तर को बढ़ाकर देश के उपलब्ध मानव संसाधनों का बेहतर उपयोग करना है।
- भारत का लक्ष्य प्रमुख वस्तुओं में आत्मनिर्भर होना और इसके माध्यम से निर्यात में वृद्धि करना है। भारतीय अर्थव्यवस्था तीसरे पंचवर्षीय योजना के दौरान विकास के टेक– ऑफ चरण में पहुंच गई थी।
- भारत में आर्थिक नियोजन का उद्देश्य भारत के आर्थिक विकास के अलावा स्थिर बाजार स्थितियों से भी है। इसका मतलब यह है कि महंगाई को कम रखते हुए यह भी सुनिश्चित करना है कि कीमतों में गिरावट न हो। यदि थोक मूल्य सूचकांक बहुत अधिक या बहुत कम हो जाता है, तो अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक दोष पैदा हो जाते हैं और आर्थिक नियोजन का उद्देश्य इससे बचना होता है।
- सभी पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्यों के साथ– साथ नीति आयोग द्वारा सुझाई गई योजनाओं का उद्देश्य समाज के सभी वर्गों के लिए श्रम कल्याण, सामाजिक कल्याण को बढ़ाना है। भारत में सामाजिक सेवाओं का विकास, जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और आपातकालीन सेवाएं भारत में नियोजन का हिस्सा रही हैं।
- भारत में आर्थिक नियोजन का उद्देश्य विकास में क्षेत्रीय असमानताओं को कम करना है। उदाहरण के लिए, पंजाब, हरियाणा, गुजरात, महाराष्ट्र और तमिलनाडु जैसे कुछ राज्य आर्थिक रूप से अपेक्षाकृत अच्छी तरह से विकसित हैं जबकि उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, असम और नागालैंड जैसे राज्य आर्थिक रूप से पिछड़े हैं। कर्नाटक और आंध्र प्रदेश जैसे अन्य शहरों में विश्व स्तर के आर्थिक केंद्रों और अपेक्षाकृत कम विकसित भीतरी इलाकों के साथ असमान विकास है। भारत में योजना का उद्देश्य इन असमानताओं का अध्ययन करना और उन्हें कम करने के लिए रणनीति सुझाना है।

(ख) योजनाओं का संक्षिप्त परिचय

- **प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951–55)** ने द्वितीय विश्व युद्ध और भारत के विभाजन के कारण हुए असंतुलन को ठीक करते हुए संतुलित आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया। सिंचाई और बिजली उत्पादन को जोड़ने वाली परियोजनाओं सहित कृषि को प्राथमिकता प्रदान की गई।

- **दूसरी पंचवर्षीय योजना(1956–60)** में औद्योगीकरण पर जोर दिया गया, विशेष रूप से बुनियादी। सार्वजनिक क्षेत्र में भारी उद्योग, और आर्थिक बुनियादी ढांचे में सुधार किया गया। योजना ने सामाजिक लक्ष्यों पर भी जोर दिया, जैसे आय का समान वितरण और बड़ी संख्या में वंचित लोगों के लिए आर्थिक विकास के लाभों का विस्तार।

- **तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961–65)** का उद्देश्य औद्योगिक आधार का विस्तार करते हुए और पिछली योजना में कृषि की उपेक्षा को सुधारते हुए राष्ट्रीय और प्रति व्यक्ति आय में पर्याप्त वृद्धि करना था। तीसरी योजना में राष्ट्रीय आय को प्रति वर्ष 5:% से अधिक की दर से बढ़ने का आह्वान किया गया, खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता 1960 के दशक के मध्य में प्रत्याशित थी। 1960 के दशक के मध्य में आर्थिक कठिनाइयों ने नियोजन प्रक्रिया को बाधित कर दिया। 1960 के दशक में, भारत को दो युद्धों का सामना करना पड़ा – एक 1962 में चीन के साथ और फिर 1965 में पाकिस्तान के साथ। यह अर्थव्यवस्था के लिए एक बड़ा झटका था क्योंकि रक्षा व्यय में तेजी से वृद्धि हुई और औद्योगिक और कृषि विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा। 1965 के युद्ध के दौरान विदेशी सहायता भी कम कर दी गई थी। यह सब कीमतों में वृद्धि के परिणामस्वरूप हुआ। वित्त वर्ष 1966 और वित्त वर्ष 1968 के बीच तीन वार्षिक योजनाओं ने विकास को निर्देशित किया जबकि योजना नीतियों और रणनीतियों का पुनर्मूल्यांकन किया गया।

- **चौथी पंचवर्षीय योजना (1969–73)** ने सार्वजनिक विकास व्यय के वास्तविक संदर्भ में तीसरी योजना की तुलना में 24:%वृद्धि की मांग की। सार्वजनिक क्षेत्र ने योजनागत व्यय का 60% हिस्सा लिया, और विदेशी सहायता ने योजना वित्तपोषण में 13%का योगदान दिया सिंचाई सहित कृषि को सार्वजनिक परिव्यय का 23% प्राप्त हुआय बाकी ज्यादातर बिजली, उद्योग और परिवहन पर खर्च किया गया था। यद्यपि योजना ने राष्ट्रीय आय में प्रति वर्ष 5.7% की वृद्धि का अनुमान लगाया था,जबकि वास्तविक दर केवल 3,3% थी।

- **पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974–78)**– 1973 के अंत में तैयार की गई थी

जब कच्चे तेल की कीमतें तेजी से बढ़ रही थींय और बढ़ती कीमतों ने तेजी से संशोधनों की एक श्रृंखला को मजबूर कर दिया। योजना को बाद में 1976 के अंत में अनुमोदित किया गया था लेकिन वित्त वर्ष 1977 के अंत में समाप्त कर दिया गया था क्योंकि नई सरकार की अलग प्राथमिकताएं और कार्यक्रम थे। पांचवीं योजना केवल एक वर्ष प्रभावी थी, हालांकि इसने पांच साल की अवधि के दौरान निवेश के लिए कुछ मार्गदर्शन प्रदान किया। वित्त वर्ष 1978 और वित्त वर्ष 1979 में वार्षिक योजनाओं के तहत संचालित अर्थव्यवस्था।

- **छठी पंचवर्षीय योजना (1980–84)** को लचीला बनाने का इरादा था और यह वार्षिक ''रोलिंग'' योजनाओं के सिद्धांत पर आधारित थी। इसने लगभग 1.9 ट्रिलियन (वित्तीय वर्ष 1979 की कीमतों में) के विकास व्यय का आह्वान किया, जिसमें से 90% घरेलू स्रोतों से वित्तपोषित किया जाएगा, जिनमें से 57% सार्वजनिक क्षेत्र से आएगा। सार्वजनिक क्षेत्र का विकास खर्च ऊर्जा (29:%:), कृषि और सिंचाई (24%:), खनन (16%:), परिवहन (16% और सामाजिक सेवाओं (14%) में केंद्रित किया गया है। इस योजना में सालाना 5.1% की वृद्धि का आह्वान किया गया था। सकल घरेलू उत्पाद में, एक लक्ष्य जो 0.3% से अधिक था।इस योजना से केवल 10% गरीब ही गरीबी के स्तर से ऊपर उठ सके थे।

- **सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985–89)** ने उद्योग और कृषि की कीमत पर ऊर्जा और सामाजिक खर्च के लिए संसाधनों के आवंटन पर अधिक जोर देने की कल्पना की।इस योजना के अन्तर्गत वास्तव में, मुख्य वृद्धि परिवहन और संचार में हुई, जिसने इस अवधि के दौरान सार्वजनिक क्षेत्र के व्यय का 17% हिस्सा खर्च किया कुल खर्च का लक्ष्य लगभग 73.9 ट्रिलियन था, जिसमें से 94% को घरेलू संसाधनों से वित्तपोषित किया गया जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र से 48% शामिल था।

- **आठवीं पंचवर्षीय योजना(1992–1997)**–यह योजना अप्रैल 1992 में शुरू की गई थी और इसमें बाजार आधारित नीति पर जोर दिया गया था। मात्रात्मक लक्ष्यों के बजाय सुधार इसका मुख्य उद्देश्य था। कुल खर्च की योजना 87 ट्रिलियन थी जिसका 94% घरेलू संसाधनों से वित्तपोषित किया गया था, जिसमें से 45% सार्वजनिक क्षेत्र से प्राप्त हुआ था। 1992 में जारी सरकारी दस्तावेजों ने संकेत दिया कि सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि सातवीं योजना से आठ्वी योजना के दौरान प्रति वर्ष लगभग 5% से बढ़कर 5.6% प्रति थी। हालांकि, 1994 में अर्थशास्त्रियों ने वार्षिक वृद्धि लगभग 4% रहने की उम्मीद की थी।

- **नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997–2002)**– यह योजना भारत की स्वतंत्रता के

50वें वर्ष के दौरान शुरू की गई थी। राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा अपनाई गई नौवीं पंचवर्षीय योजना में प्राथमिकता दी गई थी पर्याप्त उत्पाद पैदा करने की दृष्टि से कृषि और ग्रामीण विकास के लिए रोजगार और गरीबी उन्मूलनय अर्थव्यवस्था की विकास दर में तेजी आये। आठवीं योजना में यह देखा गया कि भले ही अर्थव्यवस्था ने अच्छा प्रदर्शन किया हो,किन्तु इसका लाभ समाज के कमजोर वर्गों तक नहीं पहुंचा। इसलिए नौवीं योजना ने कृषि और ग्रामीण आय बढ़ाने पर अधिक बल दिया और सीमांत किसान और भूमिहीन मजदूरों की गम्भीर स्थितियों को कम किया।

- **दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002–2007)**: दसवीं योजना का उद्देश्य भारतीय अर्थव्यवस्था को सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था बनाना था दुनिया में, 10% के विकास लक्ष्य के साथ। यह निवेशकों के अनुकूल बाजार सुधार लाना चाहता था और विकास के लिए अनुकूल माहौल बनाना चाहता था। इसने निजी क्षेत्र से सक्रिय भागीदारी की मांग की और वित्तीय क्षेत्र में एफडीआई में वृद्धि की। कॉर्पोरेट पारदर्शिता और बुनियादी ढांचे में सुधार पर जोर दिया गया। इसने 2007 तक गरीबी अनुपात को 5 प्रतिशत तक कम करने और योजना के अंत तक साक्षरता दर को 75 प्रतिशत तक बढ़ाने का प्रयास किया 2007 तक वन और वृक्षों के आच्छादन में 25 प्रतिशत की वृद्धि करना और सभी गांवों को पीने योग्य पेयजल तक पहुंचाने का भी कार्य इस योजन के अन्तर्गत करने का लक्ष्य रखा गया।

- **ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007–12)** : इस योजना में समावेशी विकास की अवधारणा पर विशेष बल दिया गया और राज्य व केंद्र सरकारों के लिए निरीक्षण योग एवं परिमाणात्मक लक्ष्य निर्धारित किये गये थे। इस योजना में क्षेत्रीय आर्थिक विषमता पर भी चिंता व्यक्त की गई और पिछड़े राज्यों, विशेष रूप से, उत्तर–पूर्वी राज्यों को विकास की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास उल्लिखित किया गया। देश के सभी गांव में विद्युतीकरण, रोजगार के 7 करोड़ अवसरों का सृजन, शैक्षिक बेरोजगारी को कम करना, अकुशल श्रमिकों की मजदूरी दर में वृद्धि करना, साक्षरता में बढ़ावा, लिंगानुपात में संतुलन, प्रजनन दर को 2.1 के नीचे लाना इत्यादि इस योजना के अन्य मुख्य लक्ष्य थे।

- **बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–17)**: बारहवीं पंचवर्षीय योजना का मुख्य लक्ष्य संयुक्त विकास पर केंद्रित था। इसके माध्यम से सरकारी खर्च पर देश की कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य और समाज कल्याण के क्षेत्रों में विकास को प्रोत्साहन देने का लक्ष्य रखा गया है ताकि विकसित हो रहे निर्माण क्षेत्र में लोगों को और अधिक रोजगार मिल सकेग। योजना में 10: की संवृद्धि दर तथा कृषि उपज में 4: की

संवृद्धि दर प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना के अन्य प्रमुख लक्ष्य इस प्रकार हैंः– आर्थिक विकास, गरीबी एवं बेरोजगारी निवारण, शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार, स्वास्थ्य के क्षेत्र में बाल मृत्यु दर एवं कुपोषण को कम करना, तथा पर्यावरण के क्षेत्र में टिकाऊ एवं धारणीय विकास को सुनिश्चित करना इत्यादि।

(ग) योजना आयोग / नीति आयोग

नीति आयोग भारत सरकार की आर्थिक नीति–निर्माण की शीर्ष थिंक टैंक संस्था है। भारत सरकार के लिए रणनीतिक एवं दीर्घकालीन नीतियों एवं कार्यक्रमों का प्रकल्प तैयार करते हुए नीति आयोग केन्द्र एवं राज्यों को प्रासंगिक तकनीकी सलाह भी देता है। 1950 में गठित ''योजना आयोग'' इसकी मातृ संस्था थी। लेकिन 1 जनवरी, 2015 को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेत्रित्व वाली सरकार ने 65 वर्ष पुराने योजना आयोग को भंग कर इसके स्थान पर एक उत्तराधिकारी संस्था के रूप में नीति आयोग (N.I.T.I-Aayog National Institution for Transforming India) के स्थापना की घोषणा की। नीति आयोग योजना आयोग की ही तरह भारत सरकार के एक कार्यकालकीय संकल्प (केन्द्रीय मंत्रिमंडल) द्वारा सृजित एक गैर–संवैधानिक (extra&constitutional) निकाय है

नीति आयोग भारत सरकार की एक स्वतंत्र संस्था है जो भारत के आर्थिक विकास और सामाजिक विकास के लिए नीतियों और योजनाओं की तैयारी और अंगीकरण का काम करती है। नीति आयोग के उद्देश्य निम्नलिखित हैंः

- **नई नीतियों और योजनाओं की तैयारीः** नीति आयोग नई नीतियों और योजनाओं की तैयारी करती है जो देश के विकास के लिए महत्वपूर्ण हों। इसके लिए आयोग विभिन्न क्षेत्रों में अनुसंधान करता है और नीतियों के लिए समाधान प्रस्ताव बनाता है।
- **नीतियों की अंगीकरणः** नीति आयोग नीतियों को अंगीकृत करती है जो कि विभिन्न मंत्रालयों द्वारा लागू की जानी होती हैं। इसके अलावा, आयोग नीतियों के लागू होने के बाद उनकी प्रगति का मॉनिटरिंग भी करती है।
- **राष्ट्रीय विकास योजनाओं की तैयारीः** नीति आयोग राष्ट्रीय विकास योजनाओं की तैयारी करती है जो लंबे समय तक चलते हैं और विभिन्न क्षेत्रों में निवेश करने के लिए आवंत करते हैं। इन योजनाओं में आर्थिक विकास, सामाजिक विकास, उच्च शिक्षा, जल संरचना और ऊर्जा समेत अन्य क्षेत्रों के

विकास के लिए निवेश किया जाता है।

- **प्रदर्शन की मॉनिटरिंगः** नीति आयोग ने भारत सरकार के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए निर्धारित क्रियान्वयन के प्रदर्शन को मॉनिटरिंग करने की जिम्मेदारी भी ली है। इसके लिए आयोग विभिन्न डेटा स्रोतों से जुड़े डेटा और तथ्यों को एकत्रित करता है और उन्हें विभिन्न पैरामीटरों के आधार पर मॉनिटर करता है।

- **नीति संबंधी सलाहः** नीति आयोग भारत सरकार को नीति संबंधी सलाह देती है जो देश के विकास के लिए महत्वपूर्ण हों। इसके लिए आयोग विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों से सलाह लेता है और उन्हें नीति निर्माण के लिए सलाह देता है।

इन उद्देश्यों के अलावा, नीति आयोग भारत सरकार की अन्य संस्थाओं के साथ संवाद और सहयोग भी करती है। नीति आयोग देश के विकास में एक महत्वपूर्ण योगदान करता है।

2.4 1956–90 अवधि में अपनाई गई रणनीतियों के मूल तत्व (विकास की नेहरू महलनविस मॉडल)

भारतीय अर्थव्यवस्था की आर्थिक स्थिति को विकसित करने के लिए भारत सरकार ने तत्कालीन प्रधान जवाहर लाल नेहरू द्वारा 1955 में आर्थिक योजना–नेहरू महलनविस मॉडल को लागू किया। 1951 के बाद यह दूसरी पंचवर्षीय योजना है। आर्थिक योजना– नेहरू– महालनोबिस मॉडल पर आधारित अध्ययन के अनुसार, यह स्पष्ट है कि 1955 में जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में भारत सरकार ने अगले पांच वर्षों के आर्थिक विकास के बाद एक सकारात्मक आर्थिक मॉडल बनाने की योजना को लागू किया था। आर्थिक योजना– नेहरू महालनोबिस मॉडल पर आधारित अध्ययन से यह स्पष्ट है कि सरकार ने एक उचित रणनीति का पालन करते हुए देश की आर्थिक स्थिति को बढ़ावा देने की कोशिश की, जिससे देश में आर्थिक विकास की संभावना बढ़ जाती थी। भारतीय इतिहास के आर्थिक विकास और आर्थिक आंदोलन के अध्ययन के अनुसार प्रशांत चंद्र महालनोबिस के नाम पर प्रकाश डालना अत्यन्त आवश्यक है। महालनोबिस मॉडल के अनुसार, यह स्पष्ट हो सका कि भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार घरेलू वस्तुओं के क्षेत्रों को अपनाने की कोशिश करता है जो देश की आर्थिक स्थिति की क्षमता को बढ़ाता है। इस माडल की निम्नलिखित विशेषताएं थी।

- इस मॉडल ने भारी उद्योग के तेजी से विकास पर जोर दिया, जिसका उद्देश्य

अर्थव्यवस्था का औद्योगिक आधार तैयार करना और साथ ही पूंजी– वस्तु क्षेत्र में इसे और अधिक आत्मनिर्भर बनाना था।

- इसने रोजगार के लिए छोटे उद्योगों की भूमिका को कम करके नहीं आंका क्योंकि भारी उद्योग मूल रूप से पूंजी प्रधान होते थे।
- इसने कृषि की भूमिका को कम नहीं आंका क्योंकि कृषि क्षेत्र में प्रगति और विकास के बिना औद्योगिक प्रगति हासिल नहीं की जा सकती थी।
- सार्वजनिक क्षेत्र के महत्व को बढ़ाकर भारतीय अर्थव्यवस्था के तीव्र विकास को प्राप्त करना।
- आर्थिक स्वावलंबन के लिए बुनियादी भारी उद्योगों पर अधिक जोर प्रदान करना।
- कारखाने और घरेलू दोनों क्षेत्रों द्वारा उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि करना
- पूंजीगत वस्तुओं में आत्मनिर्भर और पूंजीगत वस्तुओं उत्पादक वस्तुओं का कोई आयात नही किया जाये।
- भारत में भारी उद्योग में भारी इंजीनियरिंग उद्योग, मशीन उपकरण उद्योग, भारी विद्युत उद्योग, औद्योगिक मशीनरी और ऑटो– उद्योग शामिल हैं।
- मशीन निर्माण उद्योग बुनियादी उद्योगों जैसे इस्पात, अलौह धातु, उर्वरक, रिफाइनरी, पेट्रोकेमिकल्स, शिपिंग, कागज, सीमेंट, चीनी आदि के लिए उपकरणों की आवश्यकताओं को पूरा करता था।

आइये उन कारणो को सूचिबद्ध करने का प्रयास करे जिनके फलस्वरूप इस मॉडल को स्वीकार किया गया ;–

- अंग्रेजों की सोची– समझी औपनिवेशिक नीति के कारण भारी उद्योग विकसित नहीं हुए और कृषि क्षेत्र पर प्राथमिक निर्भरता रही।
- बड़े भारी उद्योग का विकास जो बड़ी श्रम शक्ति को अवशोषित करेगा और आजीविका के लिए कृषि पर अत्यधिक निर्भरता को कम करेगा।
- कृषि क्षेत्र की तुलना में औद्योगिक क्षेत्र में श्रम उत्पादकता अधिक है। जो उच्च प्रति पूंजी और राष्ट्रीय आय को सक्षम करेगा।
- अन्य क्षेत्रों के विकास के लिए तीव्र औद्योगीकरण आवश्यक था।

स्वातंर्त्योत्तर युग से भारतीय आर्थिक विकास पर आधारित अध्ययनों के अनुसार भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए आवश्यक नीतियों की व्याख्या

करना आवश्यक है। कई आर्थिक सुधार विधेयकों और मॉडलों के बाद, महालनोबिस मॉडल सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक मॉडलों में से एक है जिसने देश के आर्थिक विकास के परिप्रेक्ष्य को बदलने में सहायता प्रदाप की; प्रशांत चंद्र महालनोबिस भारतीय धरती पर प्रसिद्ध प्रोफेसरों में से एक हैं जिन्होंने इस मॉडल का सुझाव दिया था जो देश के आर्थिक विकास के लिए दूसरी पंचवर्षीय योजना थी और 1955 के वर्ष में लागू की गई थी। महालनोबिस मॉडल की मूलभूत विशेषताओं के अनुसार, यह देश के विभिन्न क्षेत्रों में अर्थव्यवस्था के विकास की दिशा में एक रचनात्मक दृष्टिकोण का अनुसरण करता है। मॉडल की नीति के अनुसार, यह स्पष्ट है कि महालनोबिस मॉडल की प्राथमिकता देश के विभिन्न क्षेत्रों में निवेश करना और आंतरिक आर्थिक स्थिरता की स्थिरता में सुधार करना था।

संपूर्ण महालनोबिस मॉडल के विश्लेषण के अनुसार, यह स्पष्ट है कि यह मॉडल औद्योगिक मॉडल के माप के साथ– साथ एक दीर्घकालिक मॉडल के निर्माण के बाद विकसित हुए हैं; जो देश की वित्तीय संरचना में उचित और सतत विकास को बनाए रखने में मदद करता है।

अध्ययन के इस क्रम मे ही आइये कुछ पंचवर्षीय योजनाओं मे प्राप्त की गई महत्वपूर्ण उपलब्धियों पर प्रकाश डाले;–

(क) दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956–1961)

इस योजना के अन्तर्गत प्रमुख रूप से निम्नलिखित को सम्मिलित किया जाता है;–

- भिलाई, दुर्गापुर, राउरकेला और जमशेदपुर में हाइड्रोइलेक्ट्रिक पावर प्लांट और पांच स्टील मिलें स्थापित की गईं।
- कोयले का उत्पादन बढ़ा।
- रेलवे लाइनें उत्तर पूर्व में जोड़ी गईं।
- परमाणु ऊर्जा आयोग का गठन 1957 में होमी जे. भाभा के पहले अध्यक्ष के रूप में किया गया था।
- टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च का जन्म हुआ।
- जीडीपी में 3.6% की वृद्धि दर हासिल की
- राष्ट्रीय आय में 18% की वृद्धि

(ख) तीसरी पंचवर्षाय योजना (1961–1966)

इस योजना के अन्तर्गत प्रमुख रूप से यह जानने योग्य है कि 1962 और 65 के युद्धों और 1965 में सूखे के कारण यह योजना विफल रही। और वास्तव में हासिल की गई वृद्धि 2.8% थी।इस योजना के अर्न्तगत निम्न महत्वपूर्ण तथ्य रहे;–

- 1965–66 की अवधि के दौरान, हरित क्रांति ने ध्यान आकर्षित किया।
- उर्वरक संयंत्र भी बनाए गए और बांधों का निर्माण जारी रहा।
- पंजाब ने बहुतायत में गेहूं का उत्पादन शुरू कर दिया।
- प्रथमिक विद्यालय, राज्य माध्यमिक शिक्षा बोर्ड और राज्य बिजली बोर्ड का गठन किया गया।
- पंचायत और जिला परिषद संगठनों का गठन किया।

(ग) योजना अवकाश (1967–1969)

इस योजना अवकाश के अर्न्तगत –;

- 1965 में गंभीर सूखे और भारत– पाक युद्ध के कारण तीसरी योजना विफल रही।
- तीसरी योजना की विफलता के कारण चौथी पंचवर्षीय योजना को स्थगित करना पड़ा। इसलिए एफवाईपी के बजाय तीन वार्षिक योजनाएं शुरू की गईं।
- इन योजनाओं के दौरान उच्च उपज देने वाली किस्मों के बीजों के व्यापक वितरण, उर्वरकों के व्यापक उपयोग पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया गया।

(घ) पंचवर्षीय योजना (1969–1974)

इस योजना के अर्न्तगत ;

- इंदिरा गांधी सरकार ने 14 प्रमुख भारतीय बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया और भारत में हरित क्रांति योजना ने कृषि को उन्नत किया।
- इसके अलावा, पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) में स्थिति गंभीर होती जा रही थी क्योंकि 1971 के भारत– पाक युद्ध और बांग्लादेश मुक्ति युद्ध ने औद्योगिक विकास के लिए निर्धारित धन ले लिया था।
- लक्षित विकास दर 5.6% थी, लेकिन वास्तविक विकास दर 3.3% ही रही।

(च) रोलिंग योजना (1978–1980)

इस योजना के अर्न्तगत;

1978 में नव निर्वाचित मोरारजी देसाई सरकार ने पांचवीं पंचवर्षीय योजना को खारिज कर दिया और एक नई छठी पंचवर्षीय योजना (1978–1980) पेश की। 1980 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस सरकार द्वारा इस योजना को फिर से खारिज कर दिया गया और एक नई छठी योजना बनाई गई। यह घोर असफलताओं का दौर रहा जहां सम्पूर्ण विकास का लक्ष्य हासिल नहीं किया जा सका।

(छ) छठी पंचवर्षीय योजना (1980–1985)

इस योजना के अर्न्तगत ;–

- छठी पंचवर्षीय योजना 1978 में प्रस्तुत की गई थी। हालाँकि, जनवरी 1980 में सरकार बदलने के साथ योजना अप्रैल 1980 में लागू की गई थी।
- छठी योजना ने आर्थिक उदारीकरण की शुरुआत को भी चिन्हित किया।
- भारत में पहली बार परिवार नियोजन लागू किया गया था।
- लक्षित विकास दर 4.4% थी और वास्तविक विकास दर 5.0% थी
- 1982 में ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं और बच्चों का विकास की योजना प्रारम्भ की गई थी।
- 12 जुलाई 1982 को नाबार्ड की स्थापना की गई थी।
- ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (आरएलईजीपी)–1983 में प्रारम्भ की गई
- फसल बीमा योजना की शुरुआत 1985 में की गई थी।

(ज) सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985–1989)

इस योजना के अर्न्तगत ;

- उत्पादन कार्यक्रम (एसएफपीपी)–1988 को प्रारम्भ किया गया।
- जवाहर रोजगार योजना– 1989 का प्रारम्भ किया गया तथा
- यह योजना बहुत सफल रही क्योंकि अर्थव्यवस्था ने लक्षित 5% के मुकाबले 6% की विकास दर प्राप्त की थी।

आलोचना

- मॉडल की सबसे आम आलोचनाओं में से एक यह है कि महालनोबिस बचत बाधाओं पर शायद ही कोई ध्यान देता है।

- हालांकि विकासशील देशों में यह प्रवृत्ति नहीं है, क्योंकि बचत का पहला चरण आमतौर पर कृषि क्षेत्र से आता है।
- वह पूंजी के एक्र महत्वपूर्ण संभावित स्रोत कराधान का भी उल्लेख नहीं करता है।
- एक अधिक गंभीर आलोचना उन मान्यताओं की सीमा है जिसके तहत यह मॉडल धारण करता है।

2.5 समकालीन आर्थिक सुधार

1991 में भारत ने अपनी आर्थिक नीतियों में एक भौगोलिक बदलाव देखा, जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था के इतिहास में एक महत्वपूर्ण वर्ष बन गया। 1991 में भारत ने एक भयंकर आर्थिक संकट का सामना किया था, जिसके साथ हालात धीरे–धीरे बुरा होता गया। इसका परिणाम था कि महंगाई अपने शीर्ष पर पहुंच गई और दैनिक उपयोग की वस्तुओं की कीमतें बहुत महंगी हो गईं, जो लोगों को परेशान कर रही थीं। इस नीति ने अधिकतर मामलों में व्यापार में लाइसेंस को समाप्त कर दिया, अधिकतम उद्योगों में निजी भागीदारी की अनुमति दी गई, कई सार्वजनिक क्षेत्रीय उद्योगीक उद्यमों में निवेशों का बिक्री निर्धारित कि गयी और अर्थव्यवस्था को बड़े पैमाने पर खोल दिया गया। विदेशी निवेशों को भारत में निवेश करने के लिए विदेशी निवेश संवर्धन बोर्ड को स्थापित किया गया। हम तीन शीर्षकों, अर्थात (अ) उदारीकरण, (बी) निजीकरण और (सी) वैश्वीकरण के तहत विकासों पर चर्चा करेंगे।

(क) उदारीकरण –

उदारीकरण का तात्पर्य व्यावसायिक उद्यमों के सुचारू संचालन पर अनावश्यक नियंत्रण और प्रतिबंधों को समाप्त करने की प्रक्रिया से है। इसमें शामिल हैः

(1) अधिकांश उद्योगों में औद्योगिक लाइसेंसिंग आवश्यकता को समाप्त करनाय

(2) व्यावसायिक गतिविधियों के पैमाने को तय करने की स्वतंत्रताय

(3) वस्तुओं और सेवाओं की कीमतें तय करने में स्वतंत्रताय

(4) आयात और निर्यात की प्रक्रिया को सरल बनानाय

(5) कर दरों में कमीय और

(6) भारत में विदेशी पूंजी और प्रौद्योगिकी को आकर्षित करने के लिए सरलीकृत नीतियां।

लाइसेन्सी राज भारत के आर्थिक विकास के लिए एक बाधा था। इन बेड़ियों को तोड़ना भारत की अर्थव्यवस्था के उदारीकरण का प्रमुख हिस्सा था। इन उपायो से निम्नलिखित क्षेत्रों में कई परिवर्तन किए गए;–

- प्रौद्योगिकी का आयात।
- आयात पर मात्रात्मक प्रतिबंध लगाकर विदेशी प्रतिस्पर्धा से घरेलू उद्योगों का संरक्षण।
- सार्वजनिक निवेश की वहनीय दर के साथ पूंजीगत वस्तुओं का आयात।
- शराब, ड्रग्स, सिगरेट, हानिकारक रसायन, औद्योगिक विस्फोटक, एयरोस्पेस, इलेक्ट्रॉनिक्स और फार्मास्यूटिकल्स जैसे कुछ उद्योगों को छोड़कर औद्योगिक लाइसेंसिंग प्रणाली को समाप्त कर दिया गया।
- भारत ने भारतीय वित्तीय क्षेत्र में म्यूचुअल फंड, मर्चेंट बैंकर्स, पेंशन फंड आदि जैसे एफआईआई (विदेशी संस्थागत निवेशकों) द्वारा निवेश की अनुमति दी।

भारत में अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के कुछ लाभकारी प्रभाव निम्नलिखित रूप में रहें;–

- शेयर बाजार के मूल्यों में वृद्धि।
- भारत अब आईटी उत्पादों और सेवाओं के प्रमुख निर्यातकों में से एक है।
- निवेशकों के लिए राजनीतिक जोखिम कम हो सका।

इस उदारीकरण प्रक्रिया के माध्यम से, भारतीय अर्थव्यवस्था खुल गई है और दुनिया के साथ बड़े पैमाने पर संचार करना शुरू कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप भारत में विदेशी व्यापार संगठनों का प्रवेश आसान हो गया है। इसके परिणामस्वरूप आगे कड़ी प्रतिस्पर्धा और दक्षता आई है। अंततः उदारीकरण ने हमें उच्च विकास दर, प्रतिस्पर्धी दरों पर वस्तुओं की आसान उपलब्धता, एक स्वस्थ और फलता– फूलता शेयर बाजार, उच्च विदेशी मुद्रा भंडार, कम मुद्रास्फीति दर, मजबूत रुपया, अच्छे औद्योगिक संबंध आदि हासिल करने में मदद की है।

(ख) निजीकरण –

यह अवधारणा अधिकांश गतिविधियों में निजी क्षेत्रों को शामिल करके सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका को कम करने को संदर्भित करता है। 1991 में घोषित नीतिगत सुधारों के कारण, सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार वस्तुतः रुक गया है और निजी क्षेत्र ने उदारीकरण के बाद की अवधि में तेजी से विकास दर्ज किया है। निजीकरण का अर्थ निजी खिलाड़ियों को उन क्षेत्रों में मौका देना है जिन पर

पहले सरकार का एकाधिकार था। इसमें निम्नलिखित तीन माध्यमों से सरकारी कंपनियों को निजी कंपनियों में बदलना शामिल था। इस अवधारणा के अर्न्तगत प्रमुख रूप से निम्नलिखित को सम्मिलित किया जा सकता है;–

- सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों की संख्या को 17 से घटाकर 08 करना (बाद में आरक्षित क्षे0 घटाकर 3 कर दिया गया) और इसमें चयनात्मक प्रतियोगिता की शुरूआत प्रारम्भ हुई।
- संसाधनों को बढ़ाने और व्यापार में स्वामित्व में आम जनता और श्रमिकों की व्यापक भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए चयनित सार्वजनिक क्षेत्र के औद्योगिक उद्यमों के शेयरों का विनिवेशय प्रारम्भ किया गया।
- एक समझौता ज्ञापन प्रणाली के माध्यम से प्रदर्शन में सुधार किया गया जिसके द्वारा प्रबंधन के अधिक स्वायत्तता दी जा सकी है तथा निर्दिष्ट परिणामों के लिए जवाबदेह ठहराये जाने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो सकी।
- सरकार कंपनी के प्रबंधन और स्वामित्व से हट गई।
- सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों को निजी क्षेत्र की कंपनियों को बेच दिया गया।
- विनिवेश, यानी जनता को सरकारी कंपनियों की इक्विटी का एक हिस्सा बेचना प्रारम्भ हुआ।
- सरकार ने कुछ प्रतिष्ठानों को प्रबंधकीय निर्णयों की स्वायत्तता भी प्रदान की।

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में निजी कंपनियों की दक्षता में सुधार करने के लिए। कुछ अत्यधिक सम्मानित उद्योगों को निम्न का दर्जा दिया गयाः

- **महारत्न** – भारतीय तेल निगम लिमिटेड और स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड कुछ ऐसे उद्योग हैं जिन्हें यह दर्जा दिया गया है।
- **नवरत्न** – इसमें हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड, नेशनल एल्युमीनियम कंपनी (नाल्को) और महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड शामिल हैं।
- **मिनिरत्न** – यह दर्जा दिए गए कुछ उद्योगों में बीएसएनएल (भारत संचार निगम लिमिटेड), आईआरसीटीसी (भारतीय रेलवे खानपान और पर्यटन निगम) लिमिटेड और भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण हैं।

भारत में, इन कदमों के परिणामस्वरूप, उदारीकरण के बाद के चरण में भारत में निजी क्षेत्र के व्यवसाय का व्यापक विस्तार हुआ है। आप उनके विस्तार

का अंदाजा इस बात से लगा सकते हैं कि शीर्ष 500 निजी क्षेत्र की कंपनियों में नियोजित कुल पूंजी रु. 1992–93 में 1,39,806 करोड़ रु. 1994–95 में 2,34,751 करोड़ (केवल दो वर्षों में 68% का विस्तार) रही।

(ग) वैश्वीकरण –

वैश्वीकरण का अर्थ किसी देश की अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था के साथ ''एकीकृत'' करना है। इसका तात्पर्य राष्ट्रीय सीमाओं के पार वस्तुओं और सेवाओं, पूंजी, प्रौद्योगिकी और श्रम के मुक्त प्रवाह से है। वैश्वीकरण के इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए, सरकार ने विभिन्न उपायों को अपनाया है जैसे कि सीमा शुल्क, निर्यात और आयात पर मात्रात्मक प्रतिबंध या कोटा को हटाना, विदेशी निवेश की सुविधा और विदेशी प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहन। इन उपायों से विकास की उच्च दर, रोजगार क्षमता में वृद्धि और क्षेत्रीय विषमताओं में कमी आने की उम्मीद है। इसके अंतर्गत चार पैरामीटर होते हैं:

- व्यापार अवरोधों को कम करना जिससे वस्तुओं और सेवाओं को राष्ट्रीय सीमाओं के आर–पार मुक्त रूप से ले जाया ले आया जा सकेय
- ऐसे पर्यावरण का निर्माण करना जिसके अंतर्गत राष्ट्र राज्यों में पूंजी का मुख्य रूप से प्रवाह हो सकेय
- ऐसे पर्यावरण का निर्माण करना जिसमें प्रौद्योगिकी का मुक्त रूप से प्रवाह हो सके और
- ऐसे पर्यावरण का निर्माण करना जिसमें विभिन्न देशों के बीच श्रम का मुक्त रूप से आदान–प्रदान हो सके।

2.6 सारांश

भारत आर्थिक विकास और उन्नयन के मामले में बहुत आगे बढ़ा है। देश एक मिश्रित अर्थव्यवस्था प्रणाली के साथ शुरू हुआ, जो निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों को संतुलित करने में मदद करती है। आर्थिक नियोजन 1956 में प्रारंभ किया गया था ताकि संचार्य विकास लाया जा सके, और विकास रणनीति के लक्ष्य नेहरू–महालनोबिस मॉडल पर आधारित थे। हालांकि, ये नीतियां समय के साथ कदम से कदम मेल नहीं खा सकती थीं, और दशकों से अर्थव्यवस्था मंदी देखी गई।

अर्थव्यवस्था को फिर से सक्रिय करने के लिए, भारत ने 1991 में एक नई आर्थिक नीति अपनाई जो उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण पर फोकस

करती थी। इन सुधारों से विदेशी निवेश में तेजी से वृद्धि हुई और देश को वैश्विक अर्थव्यवस्था से जोड़ने में मदद मिली। तब से भारत की आर्थिक वृद्धि निरंतर उच्च रही है, जिससे यह दुनिया की सबसे तेजी से विकास कर रही अर्थव्यवस्थाओं में से एक बन गया है। हालांकि, आर्थिक विकास के लाभ सभी वर्गों तक नहीं पहुंच पा रहे हैं, और भारत अभी भी गरीबी, बेरोजगारी और असमानता जैसी चुनौतियों का सामना कर रहा है। इसलिए, समावेशी विकास और स्थायी विकास पर ध्यान केंद्रित करने वाली नीतियों को अपनाना महत्वपूर्ण है ताकि आर्थिक विकास के लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुंचे। भारत की आर्थिक विकास कहानी अद्भुत रही है, जिसमें इस दशक में उसकी जीडीपी औसत वार्षिक दर से 7: से अधिक बढ़ी है। देश जानकारी प्रौद्योगिकी, फार्मास्युटिकल और कई अन्य उद्योगों में एक वैश्विक नेता बन गया है। सरकार ने उद्यमिता, नवाचार और स्टार्ट–अप को बढ़ावा देने के लिए कई उपाय भी अपनाए हैं, जिससे देश में कई यूनिकॉर्न उभरे हैं।

हालांकि, भारत को अपने विकास यात्रा को बरकरार रखने के लिए कुछ चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। जिनमे सबसे बड़ी चुनौती में से एक नौकरियों को बढ़ावा देना है। देश में बेरोजगारी दर निरंतर उच्च रही है और कोविड–19 महामारी ने स्थिति को और खराब कर दिया है। सरकार को उद्यमों को बढ़ावा देना और अधिक रोजगार के अवसर पैदा करने के लिए एक सक्षम वातावरण बनाने पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है।

एक और चुनौती जिससे भारत का सामना करना होगा, वह है आय के असमानता को बढ़ाना। आर्थिक विकास के लाभ बराबर तरीके से बांटे नहीं गए हैं, और गरीब–अमीर का अंतर अब हाल ही में बढ़ता दिख रहा है। सरकार को समावेशी विकास पर ध्यान केंद्रित करने वाली नीतियों को अपनाने और समाज के विभिन्न वर्गों के बीच आय के अंतर को कम करने पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है। समस्त समाज को आर्थिक विकास के लाभ पहुंचने के लिए सरकार को उद्यमिता, नवाचार और स्टार्टअपों को बढ़ावा देने के लिए अनुमति प्रदान करने के लिए अपने प्रयासों को जारी रखने की आवश्यकता है।

समापन में, भारत की आर्थिक यात्रा ऊपर–नीचे भरी पड़ी है। 1947 में स्वतंत्रता के बाद से देश बहुत आगे बढ़ा है और इसकी आर्थिक विकास कहानी बेहद अद्भुत है। सरकार को व्यवसायों को फलने–फूलने के लिए एक अनुमति प्रदान करने, अधिक रोजगार के अवसर पैदा करने और आय असमानता को कम करने जैसे नीतियों पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है ताकि आर्थिक विकास के फायदे समाज के सभी वर्गों तक पहुंच सकें।

2.7 उपयोगी शब्दावली

- **आर्थिक आधारिक संरचना** : इससे आशय उन आधारिक संरचनाओं के निर्माण से होता है जो सिंचाई, ऊर्जा, परिवहन और संचार के रूप में होती हैं।
- **औपनिवेशिक नीति** –किसी शक्तिशाली एवं विकसित राष्ट्र द्वारा किसी निर्बल एवं अविकसित देश पर उसके संसाधनों को अपने हित में दोहन करने के लिये राजनीतिक नियत्रंण स्थापित करना है।
- **स्वायत्तता**; उस शक्ति को कहते हैं जिसमें किसी को अपना स्वयं पर फैसला लेने का अधिकार मिलता है।
- **आर्थिक विकास**–: उस प्रक्रिया से है जिसके परिणामस्वरूप देश के समस्त उत्पादन साधनों का कुशलतापूर्वक दोहन होता है। साथ ही साथ राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में निरंतर एवं दीर्घकालिक वृद्धि होती है तथा जीवन स्तर एवं मानव विकास सूचकांक में सुधार की स्थिति उत्पन्न होती है।
- **विश्वव्यापीकरण** –इससे आशय उस प्रक्रिया से होता है जिसके द्वारा किसी देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ जोड़ा जाता है।
- **योजना का अवकाश काल** –: इस शब्द से आशय उस अवधि से है जिसमें इस देश में पंचवर्षीय योजनाओं को बनाने का काम रोक दिया गया और वार्षिक योजना प्रणाली का आश्रय लिया गया। यह अवधि 1966–67 और 1968–69 वर्षों की थी।
- **निजीकरण** इससे आशय है सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों के स्वामित्व का हस्तांतरण निजी क्षेत्र (जो कंपनी, श्रमिकों की सहकारी सीमित या व्यक्ति के रूप में हो सकता है) को करने से होता है। यदि 100% स्वामित्व का हस्तांतरण किया जाता है तब वह विराष्ट्रीय करण की स्थिति होगी। स्वामित्व का हस्तांतरण आंशिक रूप में भी हो सकता है। ऐसी स्थिति में सार्वजनिक क्षेत्रक का उद्यम संयुक्त उद्यम का रूप ले लेता है।

2.8 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न 1. भारतीय अर्थव्यवस्था में कितने प्रकार के आर्थिक सुधार उत्पन्न होते हैं?

प्रश्न 2. उदारीकरण की प्रक्रिया के तहत भारत सरकार ने कौन से कदम उठाए हैं?

प्रश्न 3. भारतीय अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण के क्या प्रभाव हैं?

प्रश्न 4. भारत की मिश्रित अर्थव्यवस्था में नियोजन की क्या भूमिका है?

प्रश्न 5. भारत में आर्थिक सुधारों के उद्देश्य क्या हैं?

प्रश्न 6. नए आर्थिक सुधारों के स्तंभ क्या हैं?

प्रश्न 7. भारत में आर्थिक सुधारों की विफलताएँ क्या हैं?

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. के. अश्वथप्पा, बिजनेस एनवायरनमेंट फॉर स्ट्रैटेजिक मैनेजमेंट, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुंबई।
2. फ्रांसिस चेरुनिलम, बिजनेस एनवायरनमेंट, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
3. एस.के. मिश्रा और वी. के. पुरी, इंडियन इकोनॉमी, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
4. बी.बी.टंडन और के.के. टंडन, भारतीय अर्थव्यवस्था, टाटा मैकग्रा हिल, नई दिल्ली।

इकाई 3 सामाजिक और सांस्कृतिक पर्यावरण

इकाई रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 सामाजिक संस्थाओं का विकास

3.3 जनांकिकीय परिवर्तन

3.3.1 परिवर्तन का मात्रात्मक पक्ष

3.3.2 परिवर्तन का गुणात्मक पक्ष

3.4 सांस्कृतिक कारक

3.5 प्रौद्योगिकी और सामाजिक परिवर्तन

3.6 बदलती हुई मूल्य व्यवस्था

3.7 व्यवसाय का सामाजिक दायित्व

3.7.1 सामाजिक दायित्व के विपरीत मत

3.7.2 व्यवसाय के सामाजिक दायित्व के पक्ष में तर्क

3.7.3 सामाजिक दायित्वों के आयाम

3.8 पारिस्थितिकी संबंधी मुद्दे

3.9 सारांश

3.10 उपयोगी शब्दावली

3.11 महत्वपूर्ण प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- विभागीय लेनदेन लेखा के विभिन्न रूप और उद्देश्य का वर्णन कर सकेगें।
- विभागीय लेखा की महत्वपूर्णता और इससे होने वाले लाभों की व्याख्या कर सकेंगें।
- विभागीय लेनदेन के रिकॉर्ड करने की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए और विभागीय व्यापार और लाभ–हानि खाता बना सकेगें।
- ताक्रिक आधार पर विभिन्न विभागों के बीच सर्वनिष्ठ व्ययों को विभाजित

कर सकेगें तथा

- लागत मूल्य और अंतरण मूल्य के आधार पर अंतर–विभागीय हस्तांतरण के लेखांकन की व्याख्या कर सकेगें;
- गैर विक्रय अप्रयुक्त माल से संबंधित अप्राप्त लाभ की राशि का लेखांकन करते हुए व्याख्या कर सकेगे।

3.1 प्रस्तावना

पिछले खंड में, हमने व्यावसायिक पर्यावरण के अर्थ, महत्व, और कारको के संबंध में ज्ञान प्राप्त किया था। इसके बाद आपने भारत के आर्थिक पर्यावरण की एक संक्षिप्त जानकारी प्राप्त की; वद्रमान इकाई में, आपको व्यवसाय के सामाजिक और सांस्कृतिक पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं की जांच करने का मौका मिलेगा, विशेष रूप से भारत के संदर्भ में।

व्यापार वातावरण के अर्थ, महत्व और कारको को समझने के बाद इस इकाई में, हम व्यावसायिक पर्यावरण के सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं को भारतीय समीक्षा के साथ समझेंगे। विशेष रूप से, हम भारतीय समाज में विकसित हो रहे सामाजिक संस्थानों, जनसांख्यिकीय परिवर्तनों के गणितांशिक और गुणात्मक पहलुओं, सामाजिक वातावरण में सांस्कृतिक कारक, समाज पर परिवर्तनीय प्रौद्योगिकी का प्रभाव, भारतीय सामाजिक संरचना में मूल्य प्रणाली के परिवर्तन, व्यावसायिक सामाजिक जिम्मेदारी ग्रहण के सम्बंध में दृष्टिकोण और आधुनिक समय में ध्यान देने योग्य पारिस्थितिकीय मुद्दे पर गंभीर ध्यान आकर्षित करेंगे।

भारतीय व्यावसायिक परिवेश में सामाजिक संस्थानों का विकास होने में विभिन्न कारकों ने अहम योगदान दिया है। स्वतंत्रता के बाद से भारतीय समाज में समाजवादी अवसरवाद का उदय हुआ है, जिसके तहत विभिन्न सामाजिक समूह और जातियां आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास के अधिकारों की मांग कर रही हैं। उच्च और निम्न जाति के बीच विकास के असमानता को दूर करने के लिए सरकारी योजनाएं, आर्थिक समावेशन और समानता के लक्ष्य पर जोर दिया जा रहा है।

भारतीय समाज में जनसंख्या के गणितांत्रिक और गुणात्मक पहलुओं में भी सुधार हुआ है। जनसंख्या की बढ़ती हुई दर को नियंत्रित करने के लिए नैतिक आंदोलन, जनसंख्या नियंत्रण योजनाएं और शिक्षा के प्रचार–प्रसार को प्रोत्साहित किया जा रहा है। इसके अलावा, जनसंख्या के बदलते विकास के कारण समाज में वृद्धि दिखा है, जिससे नए उत्पादों, सेवाओं और विनिमय माध्यमों के लिए नए

अवसर उत्पन्न हुए हैं।

भारतीय समाज के व्यावसायिक परिवेश में सांस्कृतिक कारकों का महत्वपूर्ण योगदान है। भारतीय समाज भिन्न धर्म, भाषा, संस्कृति और रीति–रिवाजों का आद्यात्मिक और आध्यात्मिक संगम है। व्यवसायिक परिवेश में, भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण प्रभाव होता है जो व्यवसायियों को स्थानीय मानसिकता, सम्प्रदायिक अनुकूलता, और संस्कृति–संबंधी मुद्दों के साथ समझने में मदद करता है।

आधुनिक समय में व्यावसायिक परिवेश को सर्वव्यापी रूप से तकनीकी संदर्भ में बदल रहा है। तकनीकी उन्नति ने समाज को व्यावसायिक और सांस्कृतिक रूप से बदल दिया है। इंटरनेट, डिजिटलीकरण, विदेशी निवेश, ई–कॉमर्स, और वैश्विक संचार ने व्यापारिक गतिविधियों को व्यापक स्तर पर प्रभावित किया है। इससे व्यावसायिक संगठनों को उत्पादन, प्रबंधन, और विपणन में सुधार करने का अवसर मिलता है, लेकिन यह भी नए सामाजिक और आर्थिक चुनौतियों का सामना करने को बनाता है।

भारतीय समाज में मूल्य प्रणाली में भी विकास हुआ है। आधुनिककरण, विदेशी संस्कृति के प्रभाव, शिक्षा और विचारधारा में बदलाव इसके मुख्य कारक है। परंपरागत मूल्यों के साथ–साथ आधुनिक मूल्यों के भी सम्मिलन से भारतीय समाज में विचारों में बदलाव दिखाई देता है। व्यावसायिक परिवेश में इस परिवर्तन का मुख्य प्रभाव होता है जिससे व्यावसायिक निर्णय लेने में और समाज के साथ व्यवहार करने में समझदारी बढ़ती है।

आधुनिक समय में व्यावसायिक परिवेश को कई पारिस्थितिकीय मुद्दे प्रभावित कर रहे हैं। वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, ऊर्जा संसाधनों की कमी, और परिवार योजना सहित अन्य कई मुद्दे व्यावसायिक परिवेश में प्रभाव डाल रहे हैं। इन मुद्दों के सामने निपटने के लिए व्यावसायिक सेक्टर, सरकार, समाज, और व्यक्तियों को संयुक्त रूप से काम करना होगा।

भारतीय व्यावसायिक परिवेश में सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं का महत्वपूर्ण योगदान है, जिसमें समाजवादी अवसरवाद का उदय, जनसांख्यिकीय परिवर्तनों के गणितांत्रिक और गुणात्मक पहलुओं, सांस्कृतिक कारकों का प्रभाव, परिवर्तनशील प्रौद्योगिकी का प्रभाव, मूल्य प्रणाली में परिवर्तन, व्यावसायिक सामाजिक जिम्मेदारी पर दृष्टिकोन और आधुनिक परिस्थितियों में ध्यान देने योग्य पारिस्थितिकीय मुद्दे शामिल हैं। व्यावसायिक परिवेश के इन विभिन्न पहलुओं को समझते हुए, समाज और व्यवसाय के बीच समझदारी, समंजस्य, और सहयोग से व्यावसायिक संप्रेषण और समृद्धि संभव है।

3.2 सामाजिक संस्थाओं का विकास

सामाजिक संस्थाएं मानवीय समाज के महत्वपूर्ण आधार हैं जो समाजी और सांस्कृतिक व्यवस्था को संचालित करने और समन्वित रखने का कार्य करती हैं। ये संस्थाएं सामाजिक नियम, मान्यताएं, अभिज्ञान, और संगठन के माध्यम से काम करती हैं। वे समाजी और व्यक्तिगत स्तर पर संरचित होती हैं और समाज के विभिन्न क्षेत्रों में आपसी संबंध और न्याय को संरक्षित रखती हैं।

व्यावसायिक पर्यावरण में, सामाजिक संस्थाएं व्यापार, उद्योग, वित्त, शिक्षा, स्वास्थ्य, धर्म, न्याय, परिवार, और संगठन के क्षेत्र में कार्य करती हैं। ये संस्थाएं नियमों, नीतियों, और अभिज्ञान के माध्यम से संगठित होती हैं और सामाजिक समरसता, संघटन और विकास को सुनिश्चित करने का कार्य करती हैं।

व्यावसायिक पर्यावरण के विकास में, सामाजिक संस्थाओं का एक महत्वपूर्ण योगदान होता है। ये संस्थाएं व्यापार नीतियों को संचालित करती हैं, उद्योगों को विकसित करती हैं, संगठनों को स्थापित करती हैं, और उच्चतम मानकों की स्थापना करती हैं। वे व्यापारिक प्रतिष्ठानों के लिए नियम और मानकों को प्रबंधित करती हैं ताकि सामाजिक और आर्थिक संतुलन सुनिश्चित हो सके। पहले के एकात्मक समाज से बहुवादी समाज का विकास हुआ है।

- **एकात्मक समाज**

एकात्मक समाज विचारधारा का मतलब है जहां समाज को एक समूह के रूप में देखा जाता है जिसमें सभी लोग एक ही आदर्श, मानवीयता और समानता के भाव के साथ एकत्र होते हैं। इस तरह का समाज सामान्यतः समरस और संतुलित होता है और लोग एक दूसरे के साथ सहयोग और सम्मेलन के माध्यम से जीने का प्रयास करते हैं।

एकात्मक समाज में सभी सदस्यों को एक ही मूल्य और समानता के साथ देखा जाता है। इसमें कोई विभाजन या असामान्यता की प्रवृत्ति नहीं होती है। लोग आपस में भाईचारे की भावना को बनाए रखने का प्रयास करते हैं और समान अवसरों का उपयोग करके समृद्धि की ओर प्रगति करने की कोशिश करते हैं।

इस समाज के मूल तत्वों में सहयोग, समरसता, सामाजिक न्याय, और असमानता संबंधी विचार शामिल होते हैं। सभी सदस्यों के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास और सुरक्षा को उचित रूप से प्रदान करने का प्रयास किया जाता है।

- **बहुवादी समाज**

बहुवादी समाज एक विचारधारा है जिसमें समाज को विभिन्न जातियों, धर्मों,

भाषाओं, संस्कृतियों और विचारधाराओं के समूहों की एकता और सहयोग के माध्यम से परिभाषित किया जाता है। इस समाज में विभिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक विविधताओं को स्वीकार किया जाता है और उनकी समानता, सम्मान और अवकाश को प्रोत्साहित किया जाता है।

बहुवादी समाज में लोगों की आपसी समझदारी और समरसता पर बल दिया जाता है। विभिन्न समूहों के लोगों के बीच आपसी सहयोग और संवाद के माध्यम से जीवन जीने का प्रयास किया जाता है। सामाजिक न्याय, अधिकारों की सुरक्षा और सभी के लिए समान अवसरों की गारंटी प्रदान करने की भी महत्वपूर्णता होती है।

इस समाज में धार्मिक और सांस्कृतिक संप्रदायों के बीच समझदारी और समरसता को बढ़ावा दिया जाता है। धर्म, भाषा, संस्कृति, और साहित्य के माध्यम से लोगों के आपसी तालमेल को संवारा जाता है और विभिन्न समूहों के अंतर्गत समानता और भागीदारी को प्रोत्साहित किया जाता है।

- **सामाजिक व्यवस्था और व्यवसाय के बीच सहभागिता**

सामाजिक संस्थाओं और व्यावसायिक संगठनों के बीच संवाद महत्वपूर्ण और बहुपक्षीय होता है। परिवार, शिक्षा, धर्म, सरकार और मीडिया जैसी सामाजिक संस्थाएं समाजी मूल्यों, मानदंडों और आचारों को निर्मित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। साथ ही, व्यावसायिक संगठन सामाजिक और सांस्कृतिक पर्यावरण के अंदर कार्य करते हैं और इसके प्रभाव के अधीन रहते हैं।

सामाजिक संस्थाएं व्यावसायिक संगठनों को कार्य करने के लिए एक ढांचा और नियम प्रदान करती हैं। उदाहरण के लिए, सरकार द्वारा स्थापित कानूनी प्रणाली व्यावसायिक गतिविधियों के लिए नियम और विनियम प्रदान करती है। शिक्षा संस्थान उद्योगों में आवश्यक ज्ञान और कौशल को उपलब्ध कराने और आकार्यक्षमता को आकार देने में भूमिका निभाते हैं। परिवार और सांस्कृतिक संस्थाएं उपभोक्ता व्यवहार और पसंदों को प्रभावित करती हैं।

दूसरी ओर, व्यावसायिक संगठनों का सामाजिक संस्थाओं पर भी प्रभाव होता है। वे आर्थिक विकास में योगदान देते हैं, रोजगार के अवसर पैदा करते हैं और समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने वाले वस्त्र और सेवाएं प्रदान करते हैं। व्यावसायिक संगठन सामाजिक संस्थाओं का समर्थन कर सकते हैं, जैसे दानशीलता, पर्यावरणीय संवर्धन और नैतिक अभिवृद्धि के माध्यम से। वे विज्ञापन और विपणनअभियानों के माध्यम से सामाजिक मानदंड और मान्यताओं को प्रभावित कर सकते हैं।

इसके अलावा, सामाजिक संस्थाएं और व्यावसायिक संगठन अक्सर सामाजिक मुद्दों को संघटित करने और सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सहयोग करते हैं। उदाहरण के लिए, व्यावसायिक संगठन शिक्षा संस्थानों के साथ सहयोग कर सकते हैं ताकि प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रदान किए जा सकें या सामुदायिक विकास अभियान को समर्थन कर सकें।

3.3 जनांकिकीय परिवर्तन

भारत में जनसांख्यिकीय परिवर्तन और बदलाव समय के साथ देश की जनसंख्या विशेषताओं, संरचना और प्रवृत्तियों में बदलाव और परिवर्तन का उल्लेख करते हैं। भारत ने महत्वपूर्ण जनसांख्यिकीय परिवर्तन और बदलाव का अनुभव किया है, जिसके गहरे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रभाव सामर्थ्यपूर्ण रहे हैं। जनांकिकीय परिवर्तन के संख्यात्मक पक्षों को संदर्भित करते हैं। ये परिवर्तन मापनीय होते हैं और इन्हें आंकड़ों के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। जनांकिकीय परिवर्तन के कुछ महत्वपूर्ण मात्रात्मक पक्ष निम्नलिखित हैं: जनांकिकीय परिवर्तन के मात्रात्मक और गुणात्मक पक्षों को समझने के लिए हम निम्नलिखित पक्षों को खोजेंगे:

भारत में जनसांख्यिकीय परिवर्तन और बदलाव के कुछ प्रमुख पहलुओं में शामिल हैं:

3.3.1 परिवर्तन का मात्रात्मक पक्ष

इस पक्ष के अन्तर्गत निम्नलिखित अवधारणाओं को समझने का प्रयास करेगें:–

(क.) <u>जनसंख्या वृद्धि:</u> भारत दुनिया का दूसरा सबसे अधिक आबादी वाला देश है, और इसकी जनसंख्या लगातार बढ़ रही है। हालाँकि, हाल के दशकों में जनसंख्या वृद्धि की दर में गिरावट आई है, जैसे कि बेहतर स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा में वृद्धि और परिवार नियोजन के बारे में जागरूकता। जनसांख्यिकीय संक्रमण के सिद्धांत से पता चलता है कि जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास के समग्र स्तरों से जुड़ी हुई है और प्रत्येक समाज विकास से संबंधित जनसंख्या वृद्धि के एक विशिष्ट पैटर्न का पालन करता है।

जनसंख्या वृद्धि के तीन बुनियादी चरण हैं:

- **चरण I**: आदिम चरण – एक ऐसे समाज में कम जनसंख्या वृद्धि जो अविकसित और तकनीकी रूप से पिछड़ा हुआ है। अफ्रीका जैसे समाजों में जन्म दर अधिक है क्योंकि लोग छोटे परिवारों के फायदों से अनजान हैं, वे शिक्षित नहीं हैं। मृत्यु दर भी अधिक है क्योंकि स्वास्थ्य और चिकित्सा सुविधाएं

उपलब्ध नहीं हैं, इसलिए जनसंख्या कम है। इन दे"ाो को अविकसित दे"ा के नाम से भी जानते है।

- **चरण II**: जन्म दर और मृत्यु दर बहुत अधिक है, शुद्ध विकास दर कम रहती है। जन्म दर अधिक है। क्योंकि इस समाज में लोग एक पितृसत्तात्मक समाज में रहते हैं जिसमें पुरुष तय करते हैं कि कितने बच्चे पैदा होने चाहिए और पुरुष बच्चे को प्राथमिकता दी जाती है। लोग अनपढ़ और अज्ञानी हैं। मृत्यु दर भी अधिक है क्योंकि स्वास्थ्य और चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं।इन दे"ाो को विकास"ाील दे"ाो के नाम से भी जानते है।

- **चरण III**: जन्म दर कम है क्योंकि लोग शिक्षित और जागरूक हैं और गर्भ निरोधकों का उपयोग करते हैं, जन्म नियंत्रण लोकप्रिय है। स्वास्थ्य और चिकित्सा सुविधाओं की उपलब्धता के कारण मृत्यु दर भी कम है, इसलिए जनसंख्या कम है। इन दे"ाो को विकसित दे"ाो के नाम से भी जानते है।

- **संक्रमणकालीन चरण**: पिछड़ेपन और कुशल लोगों के बीच का चरण,: इस चरण में जनसंख्या की वृद्धि दर बहुत अधिक होती है जबकि मृत्यु दर बेहतर चिकित्सा सुविधाओं, पोषण और बेहतर चिकित्सा और तकनीकी प्रगति के कारण कम हो जाती है इसलिए यह संक्रमण काल जनसंख्या विस्फोट से जुड़ा हुआ है।

(ख.) <u>आयु संरचना</u>: जनसंख्या के विभिन्न आयु समूहों में व्यक्तियों का प्रतिशत आयु समयावधि दर्शाती है। आयु समयावधि में परिवर्तन सामाजिक सेवाओं, स्वास्थ्य सेवाओं, और आर्थिक उत्पादकता के लिए महत्वपूर्ण होता है। भारत में अपेक्षाकृत युवा आबादी है, जिसमें 35 वर्ष से कम आयु की आबादी का एक महत्वपूर्ण अनुपात है। यह युवा बल जनसांख्यिकीय लाभांश का दोहन करने और युवाओं के लिए पर्याप्त शिक्षा, रोजगार और स्वास्थ्य सेवा सुनिश्चित करने के मामले में अवसर और चुनौतियां दोनों प्रस्तुत करता है। एक भारतीय की औसत आयु अधिकांश अन्य देशों की तुलना में कम है। अधिकांश भारतीय 15 से 64 वर्ष के आयु वर्ग के बीच हैं। जनसंख्या की आयु संरचना कुल जनसंख्या के सापेक्ष विभिन्न आयु समूहों में व्यक्तियों के अनुपात को संदर्भित करती है। 15 वर्ष से कम आयु की जनसंख्या 1971 में 42: से घटकर 2011 में 31: हो गई है। इस अवधि के दौरान 15 से 64 आयु वर्ग का अनुपात 53: से बढ़कर 63.7: हो गया। किसी देश में आयु संरचना खराब चिकित्सा सुविधाओं के विकास के साथ बदलती है,

बीमारी की व्यापकता जीवन प्रत्याशा को कम करती है। जनसंख्या की आयु संरचना को निम्नलिखित आयु समूहों में रखा जा सकता है:

- 0–14 वर्ष बच्चे,
- 15–59 साल कामकाजी आबादी,
- 60. साल बूढ़े लोग,

भारतीय जनसंख्या का आयु सरंचना के वर्गीकरण :1961–2026

Table. Age Structure of the Indian Population 1961-2026

Year	Age groups (Percentage round up)			Total
	0-14 years	15-59 years	60 + years	
1961	41	53	6	100
1971	42	53	5	100
1981	40	54	6	100
1991	38	56	7	100
2001	34	59	7	100
2011	29	63	8	100
2026	23	64	12	100

(ग) <u>लिंग गतिशीलता</u>: भारत के जनसांख्यिकी परिवर्तनों में लिंग गतिशीलता ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। लिंग आधारित भेदभाव, कन्या भ्रूण हत्या और जनसंख्या में लिंग असंतुलन जैसे महत्वपूर्ण मुद्दे चिंता का विषय रहा हैं। इन चुनौतियों के समाधान के लिए लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के प्रयास किए जा रहे हैं।

(घ) <u>प्रजनन क्षमता और परिवार नियोजन</u>: भारत ने प्रजनन दर को कम करने और परिवार नियोजन उपायों को बढ़ावा देने में प्रगति हासिल की है। सरकार ने गर्भनिरोधक के बारे में जागरूकता बढ़ाने, मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य देखभाल में सुधार करने और महिलाओं को उनके प्रजनन स्वास्थ्य के बारे में सूचित निर्णय लेने के लिए और सशक्त बनाने के लिए विभिन्न पहलों को लागू किया है।

(ङ.) <u>प्रवासन</u>: भारत के भीतर आंतरिक प्रवास जनसांख्यिकीय परिवर्तनों की एक प्रमुख विशेषता रही है। लोग बेहतर आर्थिक अवसरों की तलाश में ग्रामीण

से शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप शहरी केंद्रों का विकास होता है और विविध सांस्कृतिक परिदृश्य का निर्माण होता है।

ये जनसांख्यिकीय परिवर्तन और बदलाव भारत के लिए अवसरों और चुनौतियों दोनों को प्रस्तुत करते हैं। जबकि वे एक युवा और गतिशील कार्यालय के संदर्भ में एक जनसांख्यिकीय लाभांश की पेशकश करते हैं, उन्हें आबादी के सभी वर्गों के लिए समावेशी और सतत विकास सुनिश्चित करने के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और बुनियादी ढांचे में पर्याप्त निवेश की भी आवश्यकता होती है।

3.3.2 परिवर्तन का गुणात्मक पक्ष

प्राय : गुणात्मक पक्ष, जनांकिकीय परिवर्तन के विभिन्न विशेषतात्मक पक्षों को संदर्भित करते हैं। ये परिवर्तन आसानी से मापनीय नहीं होते हैं और समाजिक गतिविधियों की गहरी समझ को शामिल करते हैं। कुछ महत्वपूर्ण गुणात्मक पक्ष निम्नलिखित हैं:

(क) <u>शहरीकरण:</u> शहरीकरण जनसंख्या के गांव से शहरों में होने वाले बदलाव को दर्शाता है। यह परिवर्तन समुदायों के जीवनशैली, आर्थिक गतिविधियों, और सामाजिक संरचना में परिवर्तन लाता है। भारत में तेजी से शहरीकरण हो रहा है, जिसमें ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों में लोगों का महत्वपूर्ण बदलाव हो रहा है। इस बदलाव के कारण शहरों का विकास हुआ है, बुनियादी ढांचे और सेवाओं की मांग में वृद्धि हुई है, जीवन शैली और उपभोग के तरीकों में बदलाव आया है।

(ख) <u>प्रवास:</u> प्रवास जनसंख्या के व्यक्तियों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर यात्रा करना है, चाहे वह देशीय प्रवास (आंतरिक प्रवास) हो या विदेशी प्रवास (अंतरराष्ट्रीय प्रवास) हो। प्रवास संस्कृतिक विविधता और आर्थिक गतिविधियों पर प्रभाव डाल सकता है।

(ग) <u>शिक्षा और कौशल स्तर:</u> जनसंख्या के शिक्षागत साधनों और कौशल स्तर में परिवर्तन का आर्थिक विकास, रोजगार ग्रोथ, और सामाजिक उच्चाय तक महत्वपूर्ण प्रभाव हो सकता है।

(घ) <u>परिवार संरचना:</u> जनांकिकीय परिवर्तन परिवार संरचना और घराने के संरचना को प्रभावित कर सकता है। परिवार के आकार, विवाह पैटर्न, और जन्मदर परिवर्तित होने से समाजिक मानदंड और मूल्यों पर असर पड़ सकता है।

(ङ) <u>जाति और संस्कृति सामुदायिक विविधता:</u> प्रवास और जनांकिकीय परिवर्तन के कारण समाज में जातियों और संस्कृतियों में बढ़ती हुई विविधता हो

सकती है। विविधता को संभालने के लिए समाजिक एकता और समावेशी विकास का महत्व होता है।

जनांकिकीय परिवर्तन के इन दोनों महत्वपूर्ण पक्षों को समझना नीति निर्माताओं, व्यवसायों, और सामाजिक संस्थानों के लिए आवश्यक है, ताकि वे सुविधाएं और अवसरों को समझें और जनसंख्या के परिवर्तित गतिविधियों के सामने आने वाली चुनौतियों और अवसरों का सामान्यीकृत निर्णय लें।

3.4 सांस्कृतिक कारक

सांस्कृतिक कारक और व्यापारिक पर्यावरण दो अलग–अलग लेकिन प्रभावशाली पहलू हैं। व्यापारिक पर्यावरण कारोबारी गतिविधियों, व्यापारिक मानदंडों, आर्थिक नीतियों, और बाजारी प्रक्रियाओं का विश्लेषण करता है, जबकि सांस्कृतिक कारक संगठनों और समाज के मूल्यों, आदर्शों, और संस्कृति के प्रभाव को दर्शाते हैं। हालांकि, इन दोनों के बीच गहरा संबंध होता है। व्यापार एक सांस्कृतिक गतिविधि होती है और व्यापारिक पर्यावरण व्यवसायों को सांस्कृतिक कारकों के साथ एकांतरित करता है। यह आर्थिक प्रणाली न केवल उत्पादन और सेवा प्रदान करती है, बल्कि व्यापारिक नीतियों के माध्यम से सांस्कृतिक विनियमन भी करती है।

'संस्कृति' शब्द में मूल्य, मानदंड, कलाकृतियां और लोगों के स्वीकृत व्यवहार पैटर्न शामिल हैं जो एक समाज ने समय के साथ विकसित किया हो सकता है। संस्कृति को मनुष्यों के व्यवहार की समग्रता के रूप में भी परिभाषित किया गया है। किसी भी समाज में अपने बड़ों से सीखें और युवा पीढ़ी को दें। इस अर्थ में संस्कृति को किसी विशेष समाज की सीखी हुई प्रतिक्रियाओं के रूप में माना जा सकता है।

हमारे देश में जो सांस्कृतिक परिवर्तन हुआ है और अभी भी जारी है, वह विज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्रगति, बड़े पैमाने पर उद्योगों की वृद्धि, और भारत की सीमाओं के भीतर और पार परिवहन और संचार की प्रणालियों में सुधार के कारण हुआ है। औद्योगिक विकास ने विभिन्न प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं की मांग पैदा की है, लोगों के स्वाद और वरीयताओं को बदल दिया है, जिसने बदले में उनकी आदतों और रीति–रिवाजों को प्रभावित किया है। धर्म और मूल्य संस्कृति के महत्वपूर्ण घटक हैं जो समाज के भीतर लोगों के व्यवहार और विश्वासों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं। आइए देखें कि सांस्कृतिक परिवर्तन से ये पहलू कैसे प्रभावित होते हैं:

(क) धर्म: धर्म एक समाज के सांस्कृतिक ताने–बाने को आकार देने में

एक केंद्रीय भूमिका निभाता है। इसमें मान्यताओं, अनुष्ठानों और प्रथाओं को शामिल किया गया है जो अक्सर पीढ़ियों के माध्यम से पारित होते हैं। सांस्कृतिक परिवर्तन, जैसे विज्ञान और प्रौद्योगिकी में प्रगति, कभी–कभी धार्मिक मान्यताओं और प्रथाओं में बदलाव का कारण बन सकती है। उदाहरण के लिए, आधुनिकीकरण से धार्मिक व्याख्याओं में बदलाव या नए धार्मिक आंदोलनों का उदय हो सकता है।

(ख) मूल्यः मूल्य मूल विश्वास और सिद्धांत हैं जो एक समाज के भीतर व्यक्तिगत और सामूहिक व्यवहार का मार्गदर्शन करते हैं। सांस्कृतिक परिवर्तन सामाजिक मूल्यों में बदलाव ला सकते हैं। उदाहरण के लिए, जैसे–जैसे समाज अधिक औद्योगिक और शहरीकृत हो जाते हैं, पारंपरिक सामूहिक मूल्यों से अधिक व्यक्तिवादी मूल्यों में बदलाव हो सकता है। इसके अतिरिक्त, शिक्षा, मीडिया और वैश्विक प्रभावों में परिवर्तन उन मूल्यों को भी प्रभावित कर सकते हैं जो व्यक्ति रखते हैं।

(ग) मानदंड और स्वीकृत व्यवहारः मानदंड अलिखित नियम और अपेक्षाएं हैं जो समाज के भीतर व्यवहार को नियंत्रित करती हैं। सांस्कृतिक परिवर्तन इन मानदंडों को चुनौती दे सकते हैं और संशोधित कर सकते हैं, जिससे स्वीकृत व्यवहार पैटर्न में बदलाव हो सकता है। उदाहरण के लिए, प्रौद्योगिकी और संचार में परिवर्तन संचार शिष्टाचार या सामाजिक बातचीत के बारे में सामाजिक मानदंडों को प्रभावित कर सकते हैं।

(घ) कलाकृतियांः कलाकृतियां संस्कृति के मूर्त तत्व हैं, जैसे उपकरण, कपड़े, वास्तुकला और कला। सांस्कृतिक परिवर्तन, विशेष रूप से औद्योगिक विकास और वैश्वीकरण के कारण, कलाकृतियों के निर्माण और उपयोग को प्रभावित कर सकते हैं। पारंपरिक कला रूप विकसित हो सकते हैं, और अभिव्यक्ति के नए रूप उभर सकते हैं क्योंकि समाज नई प्रौद्योगिकियों और अनुभवों को अपनाते हैं।

(च) व्यापारिक नीतियां और आदर्शः व्यापारिक नीतियां और मानदंड सांस्कृतिक कारकों के अनुरूप हो सकते हैं। व्यापारिक पर्यावरण में संगठनों की नीतियां स्वाभाविक रूप से सांस्कृतिक मानदंडों को प्रभावित करती हैं और संगठनों को समाज में स्थानांतरित कर सकती हैं।

(छ) व्यापार संबंधी अवसरः सांस्कृतिक कारकों जैसे भाषा, धर्म, और सामाजिक मानदंड व्यापार संबंधी अवसरों को प्रभावित कर सकते हैं। व्यापारिक संबंधों में सांस्कृतिक विविधता का सम्मान करना आवश्यक होता है और सांस्कृतिक कारकों की समझ व्यापारियों के बीच विश्वास और सहयोग को बढ़ा सकती है।

(ज) उत्पादों और विपणनः सांस्कृतिक कारकों के आधार पर उत्पादों और सेवाओं का विकास और प्रचार किया जा सकता है। व्यापारिक पर्यावरण में संगठित कम्पनियां स्थानीय और अंतरराष्ट्रीय बाजारों में सांस्कृतिक प्राथमिकताओं के अनुरूप उत्पादों और विपणन कर सकती हैं।

इस प्रकार, व्यापारिक पर्यावरण में सांस्कृतिक कारकों का महत्वपूर्ण योगदान होता है, जो उत्पादों और सेवाओं की विकसिति, व्यापारिक नीतियों, और व्यापारिक संबंधों को सांस्कृतिक मानदंडों के साथ एकांतरित करते हैं।

3.5 प्रौद्योगिकी और सामाजिक परिवर्तन

प्रौद्योगिकी और सामाजिक परिवर्तन एक–दूसरे के साथ गहरा संबंध रखते हैं। प्रौद्योगिकी ने सामाजिक परिवर्तनों को गति दी है और सामाजिक परिवर्तन ने प्रौद्योगिकी के विकास को प्रभावित किया है। यह संबंध आधुनिक समाज में अद्यतन और प्रगति का महत्वपूर्ण हिस्सा है।

प्रौद्योगिकी द्वारा संचार, सूचना प्राप्ति, और आपसी संवाद की सुविधा में वृद्धि हुई है। इंटरनेट, मोबाइल फोन, सोशल मीडिया, ईमेल, आदि के आविष्कार ने संचार को अद्यतित कर दिया है और मानवों को दूसरे लोगों तक जोड़ने की क्षमता प्रदान की है। इससे लोग अपने जीवन में संचार का नया तरीका अपनाने और अपने विचारों, विचारधाराओं, और विचारों को व्यक्त करने का नया माध्यम प्राप्त करते हैं। यह सामाजिक परिवर्तन को बढ़ावा देता है क्योंकि यह लोगों को विभिन्न सामाजिक समूहों से जोड़ता है और विचारों को साझा करने की सुविधा प्रदान करता है।

प्रौद्योगिकी और सामाजिक परिवर्तन एक–दूसरे के साथ गहरा जुड़ाव हैं। प्रौद्योगिकी ने सामाजिक संगठन में, संचार के ढंग में और व्यक्तिगत जीवन के प्रति हमारे तार के तरीकों में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं। यहां कुछ क्षेत्रों में इस परिवर्तन के बारे में जानकारी हैः–

प्रौद्योगिकी ने संचार के माध्यमों में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया है। इंटरनेट, मोबाइल फोन, सोशल मीडिया आदि की मदद से मानव संचार की गति में तेजी से वृद्धि हुई है। यह लोगों को विश्वव्यापी रूप से जोड़ता है, विचारों और विचारों के प्रदर्शन को स्वतंत्रता से संभव करता है और साझा करने के लिए नए माध्यम प्रदान करता है।

प्रौद्योगिकी ने सामाजिक संगठन को भी प्रभावित किया है– सामाजिक

मीडिया और नेटवर्किंग प्लेटफॉर्मों के माध्यम से लोग आपस में जुड़ सकते हैं, ज्ञान और अनुभव साझा कर सकते हैं और सामुदायिक गतिविधियों में भाग ले सकते हैं। यह लोगों को आपसी संपर्क बनाए रखने और उन्हें समाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संगठन में सक्रिय रहने की सुविधा प्रदान करता है।

प्रौद्योगिकी ने शिक्षा के क्षेत्र में भी बड़े परिवर्तन लाए हैं– ई–लर्निंग, वीडियो कॉल, वेबिनार, ऑनलाइन कक्षाएं आदि के माध्यम से लोग अपनी शिक्षा के लिए दूरस्थ संसाधनों का उपयोग कर सकते हैं। इससे शिक्षा का सामान्यरूप से पहुंच बढ़ी है और लोग ज्ञान को अधिक सुविधाजनक और उपयोगी ढंग से प्राप्त कर सकते हैं। प्रौद्योगिकी ने रोजगार के क्षेत्र में भी परिवर्तन किया है– नई और विपणन और आपूर्ति श्रृंखला मॉडल के माध्यम से नए रोजगार के अवसर खुले हैं। साथ ही, डिजिटल युग में कौशल के माध्यम से अधिक अवसर मिलते हैं और उद्यमिता बढ़ती है।

इस प्रकार, प्रौद्योगिकी और सामाजिक परिवर्तन मिलकर विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाते हैं, जो आधुनिक समाज को स्थायी रूप से प्रभावित करते हैं। प्रौद्योगिकी और सामाजिक परिवर्तन व्यापारी वातावरण को भी प्रभावित करते हैं। इसके द्वारा उन्नत प्रौद्योगिकी ने व्यापार में कई परिवर्तन प्रेरित किए हैं और व्यापार में नए अवसर पैदा किए हैं।

प्रौद्योगिकी ने विपणन और प्रमोशन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आजकल ऑनलाइन मार्केटिंग उपकरणों का उपयोग करके व्यापारी अपने उत्पाद और सेवाओं की प्रचार और प्रचार कर सकते हैं। सोशल मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के माध्यम से उन्नत लक्ष्य एकाधिकारीकरण, व्यापारिक ज्ञान साझा करने और उपभोक्ताओं के साथ संवाद स्थापित करने का एक अच्छा माध्यम प्रदान करते हैं।

प्रौद्योगिकी ने नए व्यापार मॉडलों को भी संभव बनाया है। ई–कॉमर्स कंपनियां, ऑन–डिमांड सेवा प्रदाताओं, डिजिटल प्लेटफॉर्म और स्टार्टअप्स नई और आधुनिक व्यापार के माध्यम बने हैं। इन व्यापार मॉडलों में दिजिटल प्रौद्योगिकी उपयोग किया जाता है जो उच्च कार्यक्षमता, नए ग्राहक बाजारों और सर्वसाधारण रूप से व्यापार की गति में वृद्धि करता है।

वित्तीय सेक्टर में भी प्रौद्योगिकी द्वारा क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। डिजिटल वित्तीय सेवाएं, वित्तीय टेक्नोलॉजी और वित्तीय प्लेटफॉर्में नए वित्तीय उत्पादों और सेवाओं की पेशकश करती हैं, जो व्यापारियों को वित्तीय प्रबंधन में सुविधाजनक और अद्यतित करते हैं।

इन सभी प्रभावों से यह स्पष्ट होता है कि प्रौद्योगिकी और सामाजिक परिवर्तन व्यापारी वातावरण में एक साथ गहरा प्रभाव डालते हैं और व्यापार को आधुनिकीकृत, उद्यमी और ग्लोबल स्तर पर संचालित करने की क्षमता प्रदान करते हैं।

3.6 बदलती हुई मूल्य व्यवस्था

एक मूल्य प्रणाली विश्वासों, सिद्धांतों और आदर्शों के एक समूह को संदर्भित करती है जो किसी व्यक्ति या समाज को यह निर्धारित करने में मार्गदर्शन करती है कि सही या गलत, वांछनीय या अवांछनीय क्या है। यह कुछ मूल्यों के कथित महत्व या योग्यता के आधार पर निर्णय लेने और कार्यों का मूल्यांकन करने के लिए एक ढांचे के रूप में कार्य करता है.। यह मूल्य प्रणाली एक ढांचा के रूप में कार्य करती है, जिसमें कुछ निर्धारित मूल्यों की महत्वपूर्णता या योग्यता के आधार पर निर्णय लेने और कार्यों का मूल्यांकन करने के लिए इस्तेमाल की जाती है।

(क) <u>व्यक्तिगत मूल्यः</u> व्यक्तिगत मूल्य व्यक्ति द्वारा रखी जाने वाली धारणाओं और सिद्धांतों हैं जो उनके विचार, व्यवहार और चुनावों को आकार देती हैं। ये मूल्य व्यक्तिगत होते हैं और व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक भिन्न हो सकते हैं। कुछ उदाहरण व्यक्तिगत मूल्यों में शामिल हैंःआइये इन्हें क्रमशः समझने का प्रयास करेः–

1. **ईमानदारीः** सत्य, नैतिकता और मजबूत मूल्यों का आदर्श रखने की धारणा।
2. **जिम्मेदारीः** कर्तव्य और अपने कार्यों और अभिबावकताओं के प्रति जिम्मेदारी की भावना।
3. **स्वतंत्रताः** व्यक्तिगत स्वतंत्रता, स्वाधीनता और चुनने की स्वतंत्रता की महत्वपूर्णता।
4. **सफलताः** लक्ष्य निर्धारित करने, सफलता के लिए प्रयास करने और अपनी क्षमताओं को प्रकट करने का जोर।
5. **दयाः** सहानुभूति, दया और दूसरों के कल्याण की परवाह करने का महत्व।

(ख) <u>सामाजिक मूल्यः</u> सामाजिक मूल्य समाज या समुदाय में व्यापक रूप से स्वीकार की जाने वाली विचारधाराओं और मान्यताओं हैं। ये मूल्य सामाजिक समूह में साझा पहचान, नियम और व्यवहार के मानकों को परिभाषित करते हैं। कुछ सामाजिक मूल्यों के उदाहरण हैंः आइये इन्हें क्रमशः समझने का प्रयास करेः–

1. **समानताः** समान व्यवहार, समान अधिकार और समान अवसरों के विश्वास की महत्वपूर्णता।

2. **न्यायः** निष्पक्षता, न्याय और कानून का पालन करने का महत्व।

3. **सम्मानः** दिग्निता के साथ दूसरों के साथ व्यवहार करने, विविधता का सम्मान करने और अलग–अलग दृष्टिकोणों की मूल्य देने का महत्व।

4. **सहयोगः** साझा लक्ष्यों की प्राप्ति में सहयोग, सहकारिता और संघटनशीलता की महत्वपूर्णता।

5. **पर्यावरणीय स्थायित्वः** वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक पर्यावरण की संरक्षण और सुरक्षा की महत्वता का स्वीकार।

यह ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि व्यक्तिगत मूल्य और सामाजिक मूल्य एक–दूसरे से जुड़े होते हैं। व्यक्तिगत मूल्य सामाजिक मूल्यों के निर्माण में योगदान करते हैं, और सामाजिक मूल्यों से व्यक्तिगत मूल्य प्रभावित होते हैं, सामाजिकीकरण और सांस्कृतिक नियमों के माध्यम से। एक संगठित समाज साझी सामाजिक मूल्यों पर आधारित होता है जो व्यक्तिगत मूल्यों के साथ मेल खाती है, जो एकसाथीता, सहयोग और सामूहिक कल्याण की भावना को प्रोत्साहित करती है।

बदलती हुई मूल्य व्यवस्था एक प्रमुख परिवर्तन है जो सामाजिक, आर्थिक और प्रौद्योगिकीकी परिवर्तनों के परिणामस्वरूप होता है। यहां कुछ मुख्य कारक वर्णन किए गए हैं जो मूल्य व्यवस्था में परिवर्तन को संभव रूप से समझाते हैं:

- **<u>वस्तुओं और सेवाओं की मूल्यांकनः</u>** प्रौद्योगिकी के विकास ने उत्पादों और सेवाओं की मूल्यांकन प्रक्रिया में परिवर्तन लाया है। विशेष रूप से ई–कॉमर्स और ऑन–डिमांड सेवाएं आर्थिक मूल्य को प्रभावित करने के नए ढंग प्रदान करती हैं। विशेषज्ञता के आधार पर मूल्य निर्धारण, उत्पाद की गुणवत्ता, पेशेवरता और आपूर्ति–मांग संबंधी तत्वों के साथ उपभोक्ताओं के प्राथमिकताओं को ध्यान में रखते हुए होता है।

- **<u>डिजिटल मूल्य संरचनाः</u>** डिजिटल युग में, आधारित मूल्य संरचनाएं व्यापार और उपभोक्ताओं के बीच नए मूल्य के प्रकार प्रदान करती हैं। डिजिटल मूल्य संरचनाएं उत्पादों और सेवाओं को अद्यतित, व्यक्तिगतृत और उपभोक्ता समीक्षा के आधार पर मूल्यांकित करती हैं। उदाहरण के लिए, उपभोक्ताओं के समीक्षा, रेटिंग और साझा प्रदान करने वाली वेबसाइटों और एप्लिकेशन के माध्यम से उत्पादों की मूल्यांकन की जा सकती है।

- **<u>सामाजिक और आर्थिक मूल्यः</u>** सामाजिक परिवर्तन और बदलती हुई मूल्य व्यवस्था के साथ, मूल्य का परिघटन समाजिक मान्यताओं, नैतिकता और पर्यावरणीय सत्यापन को ध्यान में रखता है। उदाहरण के लिए, सामाजिक

मान्यताओं के आधार पर न्यायसंगत मूल्य निर्धारित किया जा सकता है जैसे कि उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादों या न्यायसंगत वेतन और अधिकारिक सुरक्षा के साथ नौकरियां।

- **साझा मूल्यांकनः** सामाजिक मीडिया और उपयोगकर्ता प्रतिक्रिया के माध्यम से, उपभोक्ताओं के पास अब मूल्यांकन का बड़ा गणित होता है। उपयोगकर्ताओं की समीक्षा, प्रतिक्रिया, संदेश और साझा गढ़ने वाले नेटवक्र उपयोगकर्ता द्वारा मूल्य के रूप में गणित किए जाते हैं। इससे उत्पादों और सेवाओं की मूल्यांकन में सामाजिक प्रभाव और उपभोक्ता प्रतिक्रिया का महत्वपूर्ण स्थान होता है।

(ग) व्यावसायिक मूल्यः व्यावसायिक मूल्य उन सिद्धांतों और विश्वासों को संदर्भित करते हैं जो किसी संगठन के व्यवहार, निर्णय और कार्यों का मार्गदर्शन करते हैं। ये मूल्य व्यवसाय द्वारा बनाए गए सामाजिक और नैतिक मानकों को दर्शाते हैं। हितधारकों, कर्मचारियों, ग्राहकों और व्यापक समाज के साथ इसकी बातचीत को प्रभावित करते हैं। व्यावसायिक मूल्य निर्णय लेने के लिए एक रूपरेखा प्रदान करते हैं, संगठनात्मक संस्कृति को आकार देते हैं, और कंपनी की समग्र प्रतिष्ठा और सफलता में योगदान करते हैं। आइये कुछ सामान्य व्यावसायिक मूल्यो को समझने का प्रयास करेः–

1. **सभी व्यावसायिक सादों में ईमानदारी,** पारदर्शिता और नैतिक आचरण को बनाए रखना। ग्राहक को व्यावसायिक निर्णयों के केंद्र में रखना और उनकी आवश्यकताओं और संतुष्टि को प्राथमिकता देना।मूल्य प्रदान करने और ग्राहकों की अपेक्षाओं को पूरा करने या उससे अधिक करने के लिए उत्पादों, सेवाओं और प्रक्रियाओं में उत्कृष्टता के लिए प्रयास करना।

2. **रचनात्मकता को प्रोत्साहित करना,** नए विचारों को गले लगाना, और लगातार सुधार और प्रगति की तलाश करना। सामान्य लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कर्मचारियों और टीमों के बीच सहयोग, सहयोग और आपसी सम्मान को बढ़ावा देना। कार्यों, परिणामों और प्रतिबद्धताओं के लिए जिम्मेदारी लेना, और हितधारकों के प्रति जवाबदेह होना।

3. **नैतिक प्रथाओं,** पर्यावरणीय स्थिरता और सामुदायिक भागीदारी के लिए प्रतिबद्धता का प्रदर्शन करना। व्यक्तिगत मतभेदों का मूल्यांकन और सम्मान करना, एक विविध कार्यबल को बढ़ावा देना और समावेशिता को बढ़ावा देना।

4. **कारोबारी माहौल में बदलाव** के लिए लचीला और उत्तरदायी होना और निरंतर सीखने और सुधार को गले लगाना। हितधारकों और समाज पर दीर्घकालिक प्रभाव पर विचार करते हुए टिकाऊ विकास और लाभप्रदता को प्राथमिकता देना।

5. **<u>अव्यावसायिक मूल्य निर्णय लेने,</u>** कर्मचारी व्यवहार और कॉर्पोरेट जिम्मेदारी के लिए एक मार्गदर्शक ढांचा प्रदान करते हैं। जब प्रभावी ढंग से संवाद और अभ्यास किया जाता है, तो वे विश्वास बनाने, कर्मचारी जुड़ाव को बढ़ावा देने, ग्राहकों को आकर्षित करने और बाजार में सकारात्मक प्रतिष्ठा बनाए रखने में योगदान करते हैं.

3.7 व्यवसाय का सामाजिक दायित्व

के.आर. एंड्रयूज, सामाजिक जिम्मेदारी को समाज के कल्याण के लिए बुद्धिमान और वस्तुनिष्ठ चिंता के रूप में प्रतिस्थापित करते है; जो व्यक्तिगत और कॉर्पोरेट व्यवहार को अंततः विनाशकारी गतिविधियों से रोकता है। एचआर बोवेन के अनुसार, एक व्यवसायी का दायित्व है कि वह उन नीतियों का पालन करे, उन निर्णयों को करे या कार्यवाही की उन पंक्तियों का पालन करे जो हमारे समाज के उद्देश्यों और मूल्यों के संदर्भ में वांछनीय हैं। इसलिए, व्यवसाय को समाज की आकांक्षाओं को पहचानना और समझना चाहिए और उसकी उपलब्धि में योगदान देने का संकल्प लेना चाहिए। कीथ डेविस के अनुसार सामाजिक उत्तरदायित्व वहीं से शुरू होता है जहां कानून समाप्त होता है। एक फर्म सामाजिक रूप से जिम्मेदार नहीं हो रही है यदि यह केवल कानून की न्यूनतम आवश्यकताओं का अनुपालन करती है, क्योंकि यह वही है जो कोई अच्छा नागरिक करेगा। सामाजिक जिम्मेदारी एक कदम आगे जाती है। यह कानून की आवश्यकताओं से परे एक सामाजिक दायित्व की एक फर्म की स्वीकृति है।

व्यवसाय में सामाजिक उत्तरदायित्व, जिसे कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (सीएसआर) के रूप में भी जाना जाता है, नैतिक रूप से और सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और पर्यावरणीय मुद्दों के प्रति संवेदनशीलता के साथ व्यवहार करने और व्यापार करने वाले लोगों और संगठनों से संबंधित है। सामाजिक जिम्मेदारी के लिए प्रयास करने से व्यक्तियों, संगठनों और सरकारों को विकास, व्यवसाय और समाज पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। स्मार्ट व्यावसायिक निर्णय केवल अल्पकालिक डॉलर और सेंट की गिनती का विषय नहीं हैं। बुद्धिमान निर्णयकर्ता लोगों, समुदाय और ग्राहकों पर आज के विकल्पों के भविष्य के प्रभाव और उनकी राय पर विचार करते हैं।

जबकि व्यावसायिक परिणाम, निवेश, मुक्त उद्यम, और अन्य पारंपरिक आर्थिक ताकतें उद्योग को चलाना जारी रखती हैं, संगठनों की प्रतिष्ठा और दुनिया भर में प्रभावी रूप से प्रतिस्पर्धा करने की उनकी क्षमता निर्णय लेने और प्रदर्शन में सुधार में सामाजिक जिम्मेदारी के प्रयासों को एकीकृत करने पर निर्भर करती है।

3.7.1 सामाजिक दायित्व के विपरीत मत

जबकि व्यवसायों के लिए सामाजिक जिम्मेदारी की अवधारणा की व्यापक रूप से वकालत और अभ्यास किया जाता है, इसके खिलाफ कई तर्क भी हैं। इनमें से कुछ तर्कों में शामिल हैं:

1. **अधिकतमकरण लाभ;** व्यवसायों का प्राथमिक उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना और अपने शेयरधारकों के लिए मूल्य बनाना है। आलोचकों का तर्क है कि सामाजिक जिम्मेदारी की पहल संसाधनों और ध्यान को मुख्य व्यावसायिक गतिविधियों से दूर कर सकती है, अंततः लाभप्रदता और शेयरधारक रिटर्न को प्रभावित कर सकती है।

2. **सीमित विशेषज्ञता:** व्यवसायों को जटिल सामाजिक मुद्दों को प्रभावी ढंग से संबोधित करने के लिए विशेषज्ञता और संसाधनों की कमी हो सकती है। सामाजिक समस्याओं को अक्सर विशेष ज्ञान की आवश्यकता होती है, जो व्यवसायों के पास नहीं हो सकता है। सामाजिक चुनौतियों को हल करने के लिए व्यवसायों पर भरोसा करना सबसे कुशल या प्रभावी दृष्टिकोण नहीं हो सकता है।

3. **संभावित अक्षमता:** आलोचकों का तर्क है कि व्यवसाय सामाजिक मुद्दों को संबोधित करने के लिए संसाधनों को कुशलतापूर्वक आवंटित करने के लिए सुसज्जित नहीं हो सकते हैं। सरकारी और गैर–लाभकारी संगठन सामाजिक समस्याओं को संभालने के लिए बेहतर अनुकूल हो सकते हैं, क्योंकि वे विशेष रूप से इस उद्देश्य के लिए डिजाइन किए गए हैं।

4. **भूमिका भ्रम:** कुछ लोग तर्क देते हैं कि व्यवसायों की एक विशिष्ट आर्थिक भूमिका है, और सामाजिक जिम्मेदारियों को लेने से व्यवसाय और सरकारी कार्यों के बीच की रेखाएं धुंधली हो जाती हैं। इससे समाज में व्यवसायों की भूमिका और जिम्मेदारियों के बारे में भ्रम पैदा हो सकता है।

5. **हितधारक संघर्ष:** सामाजिक जिम्मेदारी पहल सभी हितधारकों के हितों के साथ संरेखित नहीं हो सकती है। उदाहरण के लिए, पर्यावरण के अनुकूल प्रथाओं को लागू करने से उच्च लागत हो सकती है, जिसे उच्च कीमतों के रूप में उपभोक्ताओं को पारित किया जा सकता है। यह व्यवसायों और उनके ग्राहकों के बीच तनाव पैदा कर सकता है।

6. **प्रतिस्पर्धी नुकसान:** आलोचकों का सुझाव है कि सामाजिक जिम्मेदारी को प्राथमिकता देने वाले व्यवसायों को उन लोगों की तुलना में प्रतिस्पर्धी नुकसान का सामना करना पड़ सकता है जो पूरी तरह से लाभ अधिकतमकरण पर ध्यान केंद्रित करते हैं। सामाजिक जिम्मेदारी पहल से जुड़ी उच्च लागत बाजार में

प्रतिस्पर्धा करने की कंपनी की क्षमता को प्रभावित कर सकती है।

7. **संभावित ग्रीनवाशिंगः** कुछ लोग तर्क देते हैं कि व्यवसाय सामाजिक कारणों के लिए वास्तविक प्रतिबद्धता के बजाय मुख्य रूप से सकारात्मक सार्वजनिक संबंधों के लिए सामाजिक जिम्मेदारी पहल में संलग्न हो सकते हैं। ग्रीनवाशिंग के रूप में जाना जाने वाला यह अभ्यास, वास्तविक सामाजिक मुद्दों पर निष्कपट प्रयासों और न्यूनतम प्रभाव का कारण बन सकता है।

8. **आम सहमति की कमीः** सामाजिक जिम्मेदारी का गठन करने पर कोई सार्वभौमिक समझौता नहीं है, जिससे व्यवसायों के लिए यह निर्धारित करना चुनौतीपूर्ण हो जाता है कि किन पहलों को प्राथमिकता दी जाए। विभिन्न हितधारकों के परस्पर विरोधी विचार हो सकते हैं कि सामाजिक मुद्दे सबसे अधिक दबाव वाले हैं और उन्हें कैसे संबोधित किया जाना चाहिए।

3.7.2 व्यवसाय के सामाजिक दायित्व के पक्ष में तर्क

यदि व्यवसाय को सामाजिक व्यवस्था के एक अभिन्न अंग के रूप में मान्यता दी जाती है, और व्यापक मूल्य प्रश्न को एक संकीर्ण आर्थिक ढांचे के बजाय सामाजिक संदर्भ में माना जाता है, तो व्यवसाय की सामाजिक जिम्मेदारी कई आधारों पर उचित है। आइये निम्नलिखित को अध्ययन की उपयोगिता की दृष्टि से समझने का प्रयास करें:–

(क) पर्यावरण प्रबंधनः व्यवसायों का अपने संचालन, संसाधन खपत और अपशिष्ट उत्पादन के माध्यम से पर्यावरण पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। सामाजिक जिम्मेदारी को गले लगाने में टिकाऊ प्रथाओं को अपनाना, कार्बन पदचिह्नों को कम करना, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करना और प्रदूषण को कम करना शामिल है। पर्यावरण की रक्षा के लिए सक्रिय कदम उठाकर, व्यवसाय समाज और भविष्य की पीढ़ियों की भलाई में योगदान कर सकते हैं।

(ख) नतिक श्रम प्रथाएंः सामाजिक जिम्मेदारी में कर्मचारियों को नैतिक रूप से व्यवहार करना और उचित मजदूरी, सुरक्षित काम करने की स्थिति और विकास और विकास के अवसर प्रदान करना भी शामिल है। व्यवसाय जो अपने श्रमिकों के कल्याण को प्राथमिकता देते हैं, सामाजिक न्याय और मानवाधिकारों के प्रति प्रतिबद्धता प्रदर्शित करते हैं, जो अधिक न्यायसंगत और न्यायपूर्ण समाज को बढ़ावा देते हैं।

(ग)सामुदायिक जुड़ावः व्यवसाय उन समुदायों का एक अभिन्न अंग हैं जिनमें वे काम करते हैं। सामाजिक जिम्मेदारी स्थानीय समुदायों के साथ सक्रिय जुड़ाव, सामाजिक पहल का समर्थन करने और सामुदायिक जरूरतों को संबोधित

करने का आह्वान करती है। सामुदायिक विकास में निवेश करके, व्यवसाय जीवन की समग्र गुणवत्ता को बढ़ा सकते हैं और अपने हितधारकों के साथ सकारात्मक संबंधों को बढ़ावा दे सकते हैं।

(घ) परोपकार और कॉर्पोरेट दानः परोपकार और कॉर्पोरेट दान में संलग्न होना सामाजिक जिम्मेदारी का एक और पहलू है। धर्मार्थ कारणों, शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और गरीबी उन्मूलन का समर्थन करने के लिए संसाधनों को आवंटित करके, व्यवसाय सामाजिक कल्याण में योगदान कर सकते हैं और सामाजिक चुनौतियों का सामना कर सकते हैं।

(च) उपभोक्ता स्वास्थ्य और सुरक्षाः जिम्मेदार व्यवसाय अपने उत्पादों और सेवाओं की गुणवत्ता और सुरक्षा सुनिश्चित करके उपभोक्ता स्वास्थ्य और सुरक्षा को प्राथमिकता देते हैं। नैतिक विपणन प्रथाएं, पारदर्शी सूचना साझाकरण, और ग्राहकों की प्रतिक्रिया के लिए त्वरित प्रतिक्रियाएं विश्वास बनाने और उपभोक्ताओं की भलाई की रक्षा करने में आवश्यक हैं।

(छ) विविधता और समावेश का समर्थन करनाः विविधता को गले लगाना और कार्यस्थल के भीतर और व्यावसायिक प्रथाओं में समावेशिता को बढ़ावा देना सामाजिक जिम्मेदारी का एक महत्वपूर्ण पहलू है। एक विविध और समावेशी वातावरण बनाने वाले व्यवसाय सभी व्यक्तियों के लिए समानता, सम्मान और समान अवसरों के लिए प्रतिबद्धता प्रदर्शित करते हैं, चाहे उनकी पृष्ठभूमि या पहचान कुछ भी हो।

(ज) जिम्मेदार आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधनः व्यवसायों की यह सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी है कि उनकी आपूर्ति श्रृंखला नैतिक मानकों को बनाए रखती है, जिसमें उचित श्रम प्रथाएं, कच्चे माल की जिम्मेदार सोर्सिंग और मानवाधिकार सिद्धांतों का पालन शामिल है। आपूर्तिकर्ताओं को जवाबदेह बनाकर, व्यवसाय व्यापक वैश्विक संदर्भ में सामाजिक मुद्दों को संबोधित करने में योगदान कर सकते हैं।

सामाजिक कारणों की वकालत करनाः सामाजिक रूप से जिम्मेदार व्यवसाय अपने प्रभाव और संसाधनों का उपयोग सामाजिक कारणों और नीतिगत परिवर्तनों की वकालत करने के लिए कर सकते हैं जो पूरे समाज को लाभान्वित करते हैं। जागरूकता बढ़ाने और सामाजिक पहल का समर्थन करके, व्यवसाय जनता की राय को आकार देने और सकारात्मक सामाजिक परिवर्तन को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

अंत में, व्यवसायों की सामाजिक जिम्मेदारी का मामला सामाजिक प्रणाली के

अभिन्न सदस्यों के रूप में उनकी भूमिका को पहचानने में निहित है। एक सामाजिक संदर्भ में व्यापक मूल्य प्रश्नों पर विचार करके, व्यवसाय पर्यावरणीय नेतृत्व, नैतिक श्रम प्रथाओं, सामुदायिक जुड़ाव, परोपकार, उपभोक्ता स्वास्थ्य, विविधता और समावेश, जिम्मेदार आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन और सामाजिक कारणों के लिए वकालत के लिए अपनी प्रतिबद्धता को सही ठहरा सकते हैं। सामाजिक जिम्मेदारी को गले लगाकर, व्यवसाय समाज पर सकारात्मक प्रभाव डाल सकते हैं और सभी के लिए अधिक टिकाऊ, न्यायसंगत और समृद्ध भविष्य में योगदान कर सकते हैं।

3.7.3 सामाजिक दायित्वों के आयाम

सामाजिक दायित्वो के विभिन्न आयामो के निम्नलिखित को रेखांकित कर सूचिबद्ध अध्ययन किया जा सकता है। आइये इन्हें समझने का प्रयास करें:–

(क) <u>शेयरधारकों के प्रति उत्तरदायित्व</u>

- उनके निवेश पर वापसी
- प्रासंगिक जानकारी प्रदान करना
- अपनी संपत्ति में वृद्धि करना
- सुझावों का अनुरोध करें तथा
- कंपनी की सार्वजनिक छवि में सुधार।

(ख) <u>कर्मचारियों के प्रति उत्तरदायित्व</u>

- उचित वेतन और कल्याणकारी सुविधायें;
- अच्छी और सुरक्षित काम करने की स्थिति;
- शिक्षा प्रशिक्षण और पदोन्नति के अवसर;
- निर्णय लेने में श्रमिकों की भागीदारी
- पदोन्नति का उचित एवं उचित अवसर
- कौशल की उचित पहचान, प्रशंसा और प्रोत्साहन;तथा
- कुशल शिकायत प्रबंधन प्रणाली की स्थापना।

(ग) <u>ग्राहकों के प्रति उत्तरदायित्व</u>

- विज्ञापन के माध्यम से सत्य एवं निष्पक्ष सूचनाये प्रदान करना
- वस्तु एवं सेवाओं की नियमन आपूर्ति।

- उचित मूल्य प्राप्त करना;
- कालाबाजारी से बचाव;
- ग्राहकों की जरूरतों और चाहतों को समझना तथा
- बिक्री के बाद आवश्यक सेवाएं प्रदान करना।

(घ) <u>लेनदार / आपूर्तिकर्ता के प्रति उत्तरदायित्व</u>

- विभिन्न व्यवसाय के बीच एक स्वस्थ और सहकारी आंतरिक व्यावसायिक संबंध बनाए रखना।
- प्रबंधन– लेनदारों और आपूर्तिकर्ताओं को सटीक और प्रासंगिक जानकारी प्रदान करना चाहिए ;
- सामग्री की कीमत का भुगतान, पर ब्याज उधार, अन्य शुल्क शीघ्र होना चाहिए यह सुनिश्चित करने के लिए कि उत्पाद पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

(च) <u>सरकार के प्रति उत्तरदायित्व</u>

- देश के कानूनों का पालन करना;
- ईमानदारी से करों का भुगतान करना;
- भ्रष्टाचार से बचने के लिए आवश्यक उपाय;
- निष्पक्ष व्यापार को प्रोत्साहित करना तथा
- एकाधिकार से बचने के लिए विशेष नियम व प्रावधान।

(छ) <u>समाज / पर्यावरण के प्रति उत्तरदायित्व</u>

- समाज के कमजोर और पिछड़े वर्गों की मदद;
- खेल और पंथ को बढ़ावा देना;
- प्राकृतिक संसाधनों और वन्य जीवन का संरक्षण;
- पर्यावरण की रक्षा के लिए रोजगार उत्पन्न करने के विभिन्न अवसर
- सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों का सरंक्षण और बढ़ावा तथा
- शिक्षा, चिकित्सा विज्ञान, प्रौद्योगिकी पर विकासात्मक अनुसंधान के क्षेत्र में सहायता प्रदान करना।

3.8 पारिस्थितिकी संबंधी मुद्दे

भारत में पर्यावरण की बिगड़ती गुणवत्ता बढ़ती चिंता का विषय बन गई है, क्योंकि यह पारिस्थितिक संतुलन और सतत आर्थिक विकास के लिए एक महत्वपूर्ण खतरा है। कई कारक बढ़ती पर्यावरणीय चुनौतियों में योगदान करते हैंः। ये कारक निम्नलिखित हो सकते है; आइये इन्हें बिन्दुवार समझने का प्रयास करेंः–

(क) औद्योगिक विकास का पैटर्नः भारत के तेजी से औद्योगिकीकरण ने आर्थिक विकास लाया है, लेकिन इसके परिणामस्वरूप पर्यावरणीय गिरावट भी हुई है। कई उद्योग हवा और पानी में हानिकारक प्रदूषकों का निर्वहन करते हैं, जिससे प्रदूषण और पारिस्थितिक असंतुलन होता है।

(ख) रसायन और पेटोकेमिकल उद्योगः रासायनिक और पेट्रोकेमिकल उद्योगों के विकास ने पर्यावरण में विषाक्त, ज्वलनशील और विस्फोटक रसायनों को पेश किया है। इन रसायनों के अनुचित हैंडलिंग और निपटान से मानव स्वास्थ्य और पारिस्थितिकी तंत्र दोनों के लिए गंभीर परिणाम हो सकते हैं।

(ग) औद्योगिक अपशिष्टः एक प्रमुख चिंता नदियों और जल निकायों में अनुपचारित औद्योगिक अपशिष्टों की रिहाई है। इन बहिस्त्रावों में खतरनाक पदार्थ और प्रदूषक होते हैं जो जल स्रोतों को दूषित करते हैं, जलीय जीवन को प्रभावित करते हैं और समुदायों के लिए पानी की कमी का कारण बनते हैं।

(घ) वायुमंडलीय प्रदूषणः वायु प्रदूषण भारत में एक महत्वपूर्ण पारिस्थितिक मुद्दा है, विशेष रूप से उच्च औद्योगिक और वाहन गतिविधियों वाले शहरी क्षेत्रों में। कारखानों, वाहनों और बिजली संयंत्रों से उत्सर्जन हानिकारक प्रदूषक जैसे कण पदार्थ, सल्फर डाइऑक्साइड और नाइट्रोजन ऑक्साइड छोड़ते हैं, जो मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकते हैं और जलवायु परिवर्तन में योगदान कर सकते हैं।

इन पारिस्थितिक मुद्दों को संबोधित करने के लिए एक बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता हैः

1. **पर्यावरणीय नियमों को मजबूत करनाः** सरकार को औद्योगिक उत्सर्जन, अपशिष्ट निपटान और बहिस्त्राव उपचार को नियंत्रित करने के लिए कड़े नियमों को लागू करना चाहिए। प्रभावी निगरानी और अनुपालन तंत्र को लागू करने से पर्यावरण प्रदूषण को कम करने में मदद मिल सकती है।
2. **टिकाऊ औद्योगिक प्रथाओं को बढ़ावा देनाः** उद्योगों को स्वच्छ उत्पादन तकनीकों, कुशल संसाधन उपयोग और अपशिष्ट रीसाइक्लिंग को अपनाने के

लिए प्रोत्साहित करना उनके पर्यावरणीय पदचिह्न को काफी कम कर सकता है।

3. **हरित प्रौद्योगिकियों में निवेशः** नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों और स्वच्छ प्रौद्योगिकियों को अपनाने पर जोर देने से वायुमंडलीय प्रदूषण को कम किया जा सकता है और जीवाश्म ईंधन पर निर्भरता को कम किया जा सकता है।

4. **अपशिष्ट प्रबंधन को बढ़ानाः** रीसाइक्लिंग और उचित निपटान सहित प्रभावी अपशिष्ट प्रबंधन प्रथाओं को लागू करना, पर्यावरण पर औद्योगिक कचरे के प्रभाव को कम कर सकता है।

5. **जागरूकता और शिक्षा बढ़ानाः** पर्यावरण संरक्षण और टिकाऊ प्रथाओं के महत्व के बारे में जनता को शिक्षित करना पारिस्थितिक संरक्षण प्रयासों में जिम्मेदारी और नागरिक भागीदारी की भावना को बढ़ावा दे सकता है।

6. **सार्वजनिक–निजी भागीदारी को प्रोत्साहित करनाः** सरकार, व्यवसायों और नागरिक समाज के बीच सहयोग पर्यावरण के अनुकूल पहल और परियोजनाओं के विकास की सुविधा प्रदान कर सकता है जो पारिस्थितिक मुद्दों को प्रभावी ढंग से संबोधित करते हैं।

वस्तुतः अपर्यावरण संरक्षण और पारिस्थितिक संतुलन के महत्व को स्वीकार करके, भारत भविष्य की पीढ़ियों के लिए अपने प्राकृतिक संसाधनों और जैव विविधता की रक्षा करते हुए सतत आर्थिक विकास की दिशा में काम कर सकता है। देश के लिए एक स्वच्छ, हरित और अधिक टिकाऊ भविष्य बनाने के लिए सभी हितधारकों का एक ठोस प्रयास महत्वपूर्ण है।

3.9 सारांश

भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण में युगों से महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं, जिससे इसके अद्वैतवादी अतीत से एक बहुलवादी समाज का उदय हुआ है। इस विकसित समाज में, कई समूहों को अपने सदस्यों के विविध आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और व्यावसायिक हितों की सेवा के लिए संगठित किया जाता है। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप, व्यावसायिक उद्यमों की प्रकृति और रूप भी विकसित हुए हैं, जो अन्य संस्थानों पर अपना प्रभाव डालते हैं। भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण के विकास को ऐतिहासिक, आर्थिक और तकनीकी कारकों के गतिशील परस्पर क्रिया द्वारा आकार दिया गया है। देश की समृद्ध विरासत और विविध सांस्कृतिक टेपेस्ट्री ने वैश्विक मंच पर अपनी विशिष्ट पहचान में योगदान दिया है। जैसा कि भारत आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण को गले लगाता है, इसे अपनी सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने

और बदलती दुनिया के अनुकूल होने के बीच एक नाजुक संतुलन बनाना चाहिए।

भारत में सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण का एक महत्वपूर्ण पहलू विभिन्न धार्मिक और जातीय समुदायों का सह–अस्तित्व है। जबकि धर्म ने एक एकीकृत शक्ति के रूप में कार्य किया है, यह कभी–कभी तनाव और संघर्ष का स्रोत भी रहा है। धार्मिक रूढ़िवाद और सांप्रदायिक दृष्टिकोण ने कभी–कभी सामाजिक प्रगति में बाधा डाली है और विभिन्न मान्यताओं और विचारों की स्वीकृति में बाधा डाली है। एक सामंजस्यपूर्ण और समावेशी समाज के निर्माण के लिए अंतरधार्मिक संवाद को प्रोत्साहित करना, धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ावा देना और आपसी समझ को बढ़ावा देना आवश्यक है।

शिक्षा किसी भी समाज के सामाजिक और सांस्कृतिक ताने–बाने को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा तक बढ़ती पहुंच ने एक सकारात्मक परिवर्तन लाया है, व्यक्तियों को पारंपरिक मानदंडों को चुनौती देने और प्रगतिशील विचारों को गले लगाने के लिए सशक्त बनाया है। शिक्षा न केवल व्यक्तियों को कौशल से लैस करती है, बल्कि महत्वपूर्ण सोच और खुले दिमाग को भी बढ़ावा देती है, जो अधिक सहिष्णु और अभिनव समाज की नींव रखती है।

भारतीय समाज में गहन परिवर्तनों में से एक वंशानुगत कौशल और जाति संबद्धता के आधार पर पारंपरिक व्यवसायों का परिवर्तन रहा है। शैक्षिक अवसरों और बेहतर परिवहन और संचार ने लोगों के बीच अधिक गतिशीलता को बढ़ावा दिया है, संयुक्त परिवारों की संस्था को तोड़ दिया है। शहरीकरण और व्यावसायिक पैटर्न में बदलाव ने जीवन शैली और उपभोग मानदंडों को बदल दिया है। हालांकि, इन परिवर्तनों के बीच, भारत को उच्च जनसंख्या वृद्धि दर और जनसंख्या घनत्व से संबंधित चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, जिससे भूमि संसाधनों पर बोझ पड़ रहा है।

भारत की जनसांख्यिकीय प्रोफाइल मृत्यु दर में गिरावट का संकेत देती है, लेकिन जन्म दर अपेक्षाकृत अधिक बनी हुई है, जिससे एक महत्वपूर्ण जनसंख्या वृद्धि दर होती है। देश जनसांख्यिकीय संक्रमण के दूसरे चरण में प्रतीत होता है, जिसमें तीसरे चरण में संक्रमण की संभावना है क्योंकि 1970 के दशक से जन्म दर नीचे की ओर बढ़ रही है। उच्च जनसंख्या घनत्व भूमि संसाधनों पर काफी दबाव डालता है और चीन के बाद भारत को विश्व स्तर पर दूसरे सबसे अधिक आबादी वाले देश के रूप में स्थान देता है।

सांस्कृतिक परिवर्तनों ने लोगों के उपभोग पैटर्न, वरीयताओं, आदतों और

रीति–रिवाजों को काफी प्रभावित किया है। धर्म, संस्कृति के एक मुख्य तत्व के रूप में, लोगों के बीच भावनात्मक बंधन प्रदान करता है, लेकिन धार्मिक रूढ़िवाद ने सांप्रदायिक दृष्टिकोण, हठधर्मिता और अन्य विचारों के प्रति असहिष्णुता को भी जन्म दिया है।

विकसित सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण विभिन्न हितधारकों के लिए अवसर और चुनौतियां दोनों प्रस्तुत करता है। व्यवसायों ने उपभोक्ताओं की बदलती जरूरतों और वरीयताओं को अनुकूलित किया है, जो समाज के विकास में योगदान देते हैं। हालांकि, वे अन्य संस्थानों और समाज पर समग्र रूप से सकारात्मक प्रभाव डालने की जिम्मेदारी का भी सामना करते हैं। अंत में, भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण ने समय के साथ गहरा बदलाव अनुभव किया है, जिससे एक बहुलवादी समाज का उदय हुआ है।

3.10 उपयोगी शब्दावली

- **संस्कृतिः** मूल्य, मानदंड कलाकृतियों और लोगों के स्वीकृत व्यवहारय व्यवहार की समग्रता जिसमें सीखी हुई प्रतिक्रियाएं शामिल हैं।
- **जनसांख्यिकीय संक्रमण** आर्थिक विकास के चरण के साथ जनसंख्या की वृद्धि दर बदलती है।
- **सामाजिक उत्तरदायित्वः** व्यवसाय कुशलतापूर्वक, आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में अपने संसाधनों का उपयोग करते हुए, यह सामाजिक रूप से जिम्मेदार तरीके से कार्य कर रहा था।
- **आर्थिक मूल्यः** भौतिक लाभ की वांछनीयता और कार्यवाही की व्यावहारिकता।
- **राजनीतिक मूल्यः** सत्ता के अधिग्रहण की वांछनीयता।
- **बहुलवादी समाजः** समाज जिसमें सामाजिक व्यवस्था में कई हित समूह हैं।
- **धार्मिक मूल्यः** नैतिकता और धर्मी आचरण की वांछनीयता। लिंग–अनुपातः पुरुषों की तुलना में महिलाओं का अनुपात।
- **सामाजिक जिम्मेदारीः** सामाजिक जरूरतों को पूरा करने का दायित्व।
- **सामाजिक मूल्यः** लोगों के प्यार और समानता की वांछनीयता।
- **उपयोगितावादी मूल्यः** अधिकतम संख्या के लिए अधिकतम अच्छाई की वांछनीयता।

- **मूल्य प्रणालीः** उनके सापेक्ष महत्व के आधार पर प्राथमिकता–रेटिंग के साथ मूल्यों का सेट।

3.11 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न 1. जनांकिकीय परिवर्तन के विभिन्न पक्षों पर विस्तार से प्रकाश डालिये ?

प्रश्न 2. संस्कृति मूल्यों, विश्वासों, आदर्शों, परंपराओं, शैलियों आदि को समाहित करती है। इसकी व्याख्या अपने शब्दो मे करे।

प्रश्न 3. जनसंख्या में परिवर्तन, प्रवास, सामाजिक और आर्थिक असमानता कुछ ऐसे कारक हैं जो सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करते हैं ? विस्तार से समझाइये।

प्रश्न 4. जनांकिकीय संक्रमण के सिद्धान्त की रूपरेखा बनाइए। भारतीय संदर्भ में इसकी क्या प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिये।

प्रश्न 5. मूल्य प्रणाली में परिवर्तन की प्रकृति और कारणों का वर्णन करें और किस हद तक उन्होंने प्रगतिशील विचारों में योगदान दिया है। विस्तार से समझाइये।

प्रश्न 6. भारत में कारोबारी माहौल के लिए पारिस्थितिक मुद्दे किस प्रकार प्रासंगिक हैं; उदाहरण सहित समझाइये।

प्रश्न 7. व्यवसाय के सामाजिक दायित्वो को विस्तार से अपने शब्दो मे वर्णन करे।

प्रश्न 8. सामाजिक परिवर्तन पर प्रौधोगिक के विभिन्न प्रभावो का मूल्यांकन करें।

कुछ उपयोगी पुस्तकं

- फ्रांसिस चेरुनिलम, बिजनेस एनवायरनमेंट, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, मुंबई, जॉर्ज स्टीनर, व्यापार और समाज, मैकमिलन, न्यूयॉर्क।
- इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, पाठ्यक्रम सामग्री–एमएस –3: आर्थिक और सामाजिक पर्यावरण।
- टंडन, बी.बी. और टंडन, के.के., भारतीय अर्थव्यवस्था, टाटा मैकग्रा हिल, नई दिल्ली।

B.Com-203

व्यावसायिक पर्यावरण

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

खंण्ड –2

व्यवसाय और सरकार

इकाई 4 भारतीय अर्थव्यवस्था का ढांचा

इकाई 5 व्यवसाय में सरकार की भूमिका

इकाई 6 समष्टि आर्थिक नीतियां

इकाई 7 उपभोक्ता संरक्षण

विशेषज्ञ समिति

डॉ. ओमजी गुप्ता, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

डॉ देवश रंजन त्रिपाठी, सहायक आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

प्रो. आर.सी. मिश्रा, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन एवं वाणिज्य विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

प्रो. लवकुश मिश्रा, निदेशक, इंस्टीट्यूट ऑफ टूरिज्म एण्ड होटल मैनेजमेंट, श्री भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा।

प्रो. सोमेश शुक्ला विभागाध्यक्ष, वाणिज्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

प्रो. राधेश्याम सिंह आचार्य, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

लेखक

सुश्री सौम्या तिवारी सहायक-आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ. प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

सम्पादक

प्रो. एस.बी. गुप्ता अर्थशास्त्र विभाग, एम.एम.पी.जी. कॉलेज, कालाकांकर, (रज्जू भैय्या) राज्य विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

संयोजकः

देवेश रंजन त्रिपाठी सह–आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ. प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

ISBN: 978-93-83328-81-09

(c) उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट–पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय उत्तरदायी नहीं है।

खण्ड 2 व्यवसाय और सरकार

व्यापार और सरकार के बीच एक जटिल संबंध है। इस संबंध को समझने के लिए हमें सिद्धांतों और प्रथाओं दोनों पर विचार करने की आवश्यकता है। व्यावसायिक गतिविधियों में सरकारी हस्तक्षेप को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों में पूंजीवाद, समाजवाद और मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं के प्रतिमानों के तहत महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं।

पारंपरिक पूंजीवादी समाजों में, यह माना जाता था कि सरकार का व्यावसायिक गतिविधियों में न्यूनतम हस्तक्षेप होना चाहिए और उन्हें मुख्य रूप से निजी व्यक्तियों पर छोड़ देना चाहिए। इसके विपरीत, समाजवादी आर्थिक प्रणालियों में, सरकार से व्यावसायिक संचालन के सभी पहलुओं के प्रबंधन में सीधे रूप से शामिल होने की अपेक्षा की जाती है। आजकल, मिश्रित अर्थव्यवस्थाएं प्रचलित हैं, जहां व्यावसायिक गतिविधियों में सरकारी हस्तक्षेप की सीमा और तरीके भिन्न होते हैं।

इस खंड में चार इकाइयाँ शामिल हैं:

इकाई 4 भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना से संबंधित है। यह आर्थिक विकास में रुझानों का विश्लेषण करता है और भारत की वास्तविक आय की जांच करता है। फिर यह स्वामित्व और संगठन के संदर्भ में भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करता है।

इकाई 5 व्यवसाय में सरकार की भूमिका पर केंद्रित है। यह व्यावसायिक गतिविधियों में सरकार की नियामक, उद्यमशील और योजना भूमिकाओं पर चर्चा करती है। यह नई आर्थिक नीतियों के तहत सरकार की भूमिका की पुनर्परिभाषा में भी तल्लीन करता है।

इकाई 6 वृहद आर्थिक नीतियों पर केंद्रित है। यह सरकारी राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों के महत्व और उद्देश्यों के बारे में बताती है, जो व्यवसायों और आर्थिक वातावरण को प्रभावित करती हैं। यह भारतीय रिजर्व बैंक की भूमिका और कार्यों को भी तलाशता है।

इकाई 7 उपभोक्ता संरक्षण से संबंधित है। यह उपभोक्ता आंदोलनों के विकास की खोज करती है और विभिन्न उपभोक्ता संरक्षण कानूनों की व्याख्या प्रदान करती है। यह उपभोक्ताओं के अधिकारों और जिम्मेदारियों पर भी विस्तार से बताता है, विशेष रूप से 1986 के उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम और 1969 के एकाधिकार और प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथा अधिनियम पर ध्यान देता है।

इकाई 4 भारतीय अर्थव्यवस्था का ढाँचा

इकाई रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2. राष्ट्रीय आय की प्रवृत्तियाँ

4.2.1 वास्तविक राष्ट्रीय आय का अर्थ

4.2.2 वास्तविक राष्ट्रीय आय की प्रवृत्तियाँ

4.3 आर्थिक संवृद्धि

4.3.1 आर्थिक संवृद्धि का अर्थ

4.3.2 आर्थिक संवृद्धि की दर की प्रवृत्ति

4.4 आर्थिक विकास

4.4.1 आर्थिक विकास का अर्थ

4.4.2 विकास के उद्देश्य

4.4.3 प्रति व्यक्ति वास्तविक आय की प्रवृत्ति

4.4.4 गरीबी की प्रवृत्ति

4.4.5 आय में असमानताओं की प्रवृत्ति

4.4.6 विकास के अन्य सूचक

4.5 श्रमशक्ति में वृद्धि

4.5.1 महिला श्रम भागीदारी दर

4.5.2 व्यावसायिक ढांचा कृषि बनाम गैर–कृषि

4.6 आर्थिक प्रणाली स्वामित्व एवं संगठन का ढांचा

4.6.1 भारत एक मिश्रित अर्थव्यवस्था

4.6.2 सार्वजनिक क्षेत्र

4.6.3 निजी क्षेत्र

4.6.4 संयुक्त क्षेत्र

4.6.5 सहकारी क्षेत्र

4.7 सारांश

4.8 उपयोगी शब्दावली

4.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेगे कि;–

- अर्थव्यवस्था के मूल तत्वों से सम्बन्धित जैसे वित्तीय प्रणाली, औद्योगिकी, वाणिज्यिकी, सामाजिक, और राजनीतिक नीतियों का विवेचन कर सकेगे;
- भारतीय अर्थव्यवस्था में गतिशीलता, नवीनीकरण, और सुधार की प्रक्रिया को जान सकेगे;
- भारतीय अर्थव्यवस्था के मूल सिद्धांतों, प्रणालियों, नीतियों, और आवश्यकताओं को समझें समझ सकेगें तथा
- व्यावसायिक सरंचना के अन्तर्गत कृषि बनाम गैर कृषि अवधारणा को विश्लेषित कर सकेगे।

4.1 प्रस्तावना

अर्थव्यवस्था शब्द संबंधित होता है उत्पादन की इकाईयो और उन लोगों के आर्थिक गतिविधियों से जो जिन्हें इन इकाईयो मे रोजगार मिला होता है। भारतीय अर्थव्यवस्था में खेती, कारखाने; दुकानें, कार्यालय, सरकारी विभाग, स्कूल, कॉलेज, सेवा केंद्र, परोपकारी संस्थान और उसी तरह हर व्यक्ति और संस्था जो वस्तु और सेवाओं का उत्पादन करते हैं। सभी को एकीकृतकर समाहित किया जाता है यह इस बात से संबंधित नहीं है कि उत्पादन इकाई बड़ी हो या छोटी हो, निजी स्वामित्व या सरकारी स्वामित्व वाली हो, सामान का उत्पादन करे या सेवा का यह इससे संबंधित भी नहीं है कि इस प्रकार के उत्पादन का उद्देश्य बिक्री के लिए हो, खुद के उपभोग के लिए हो या मुफ्त वितरण के लिए हो।

एक उत्पादन इकाई कुछ नहीं है बस चार संसाधनों के तत्वों का संघ है, जो भूमि, श्रम, पूँजी और उद्यमिता प्रदान करते हैं और जो मिलकर एक सामान्य माने जाने वाली उत्पादकता को प्रदान करते हैं। इन संसाधनों को व्यापारिक भाषा में ''वैल्यू एडेड'' कहा जाता है। ये उत्पादक तत्व मूल्य वृद्धि मद में; वेतन, किराया, ब्याज और लाभ के रूप में अपना योगदान करते हैं। भारत के निवासियों को यह भुगतान का योग कुल राष्ट्रीय आय के रूप मे परिभाषित किया जाता हैं।

राष्ट्रीय आय व्यापक रूप से एक अर्थव्यवस्था की संरचना के बारे में काफी कुछ बताती है जो व्यापारिक पर्यावरण के लिए महत्वपूर्ण होती है। इसकी मात्रा देश की संपत्तिशाली या गरीबी की मात्रा को दर्शाती है। इसकी परिवर्तन दर सदैव आर्थिक विकास की दर को मापती है; इसका विस्तार देश में विभिन्न आर्थिक और सामाजिक समूहों के बीच आय के न्यायिक वितरण को दर्शाता है। इसका संयोजन

लोगों की मांग संरचना या प्राथमिकताओं को दर्शाता है।

कितनी राष्ट्रीय आय कमाई जाती है और यह कैसे बांटी जाती है इसका ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आप जानते हैं कि राष्ट्रीय आय संसाधनों के मालिकों, अर्थात चार उत्पादन कारकों के संगठनों का संग्रहित प्रयास है। प्राकृतिक रूप से इन संसाधनों की गुणवत्ता राष्ट्रीय आय के महत्वपूर्ण निर्धारक होती है। व्यापार में इस्तेमाल होने वाली प्रौद्योगिकी, बुनियादी ढांचा, उत्पादकता आदि भी महत्वपूर्ण होते हैं।

संसाधनों में मजदूर शक्ति आर्थिक विकास की संरचना के सबसे मौलिक पहलू है। वास्तव में यह सभी आर्थिक गतिविधियों की शुरुआत और समाप्ति है। जीने और आराम से जीने की प्राकृतिक इच्छा मनुष्य को काम करने के लिए धकेलती है, ताकि वह अपने और अपके उपर निर्भर सदस्यो को सहारा दे सके। इसलिए कार्यबल में काम करने की योग्यता, शिक्षा, वृत्ति, कौशल आदि के आधार पर काम करने वाली जनशक्ति की संरचना देश के व्यापारिक पर्यावरण का महत्वपूर्ण निर्धारक है।

इस प्रकार एक देश के आर्थिक और व्यावसायिक वातावरण का निर्धारण करने वाले ढांचा सम्बंधी बहुत से पहलू हैं। लेकिन इस इकाई में हम केवल राष्ट्रीय आय, आर्थिक संवृद्धि, आर्थिक विकास, श्रम शक्ति, व्यावसायिक ढांचा, उत्पादन कार्यों के स्वामित्व और संगठन के ढांचे के बारे में ही चर्चा करेंगे।

4.2 राष्ट्रीय आय की प्रवृत्तियाँ

राष्ट्रीय आय की प्रवृत्तियों के बारे में विस्तृत जानकारी देने से पहले, हम इसे परिभाषित कर सकते हैं। राष्ट्रीय आय एक देश में स्थायी रूप से उत्पन्न होने वाली संपूर्ण आय होती है। इसके अन्तर्गत देश के सभी नागरिकों द्वारा उत्पन्न की गई आय, जैसे कि वेतन, व्यापार या निवेश से प्राप्त आय, निर्माण उत्पादों और सेवाओं का उत्पादन, सरकारी राजस्व और आर्थिक सहायता आदि को सम्मलित किया जाता है।

राष्ट्रीय आय की प्रवृत्तियों की चर्चा करते हुए, निम्नलिखित चार मुख्य प्रवृत्तियों के बारे में चर्चा की जा सकती है आइये इन्हें समझने का प्रयास करें–

- **समान वित्तीय वितरणः** यह एक ऐसी प्रवृत्ति है जिसमें राष्ट्रीय आय को तब्दील किया जाता है ताकि इसे समान ढंग से सभी नागरिकों के बीच वितरित किया जा सके। इस प्रकार के आयोजन में सरकार अपने राजस्व को साझा करती है, जिससे कमजोर वर्ग को अधिक सहायता प्रदान की जा सके।

- **विकास पर ध्यान केंद्रित करनाः** इस प्रवृत्ति में, सरकार विकास के लिए विभिन्न क्षेत्रों में निवेश करती है, जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य, संचार, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, रसायन उद्योग, कृषि और क्षेत्रीय विकास। इस प्रकार के निवेशों से देश के विकास में वृद्धि होती है और उच्च राष्ट्रीय आय भी प्राप्त होती है।

- **संयुक्त वित्तीय उपक्रमः** इस प्रवृत्ति में, कई देशों के बीच संयुक्त वित्तीय उपक्रम आयोजित किए जाते हैं। इन उपक्रमों में एक देश दूसरे देश को आर्थिक सहायता प्रदान करता है, जो विकास और आर्थिक विकास के लिए उपयोगी होती है। इस प्रकार के आयोजनों में दोनों देशों को आर्थिक लाभ प्राप्त होते हैं।

- **स्वावलंबनः** इस प्रवृत्ति में, देश अपनी स्वावलंबनता को बढ़ाने के लिए अपनी आय को व्यवस्थित ढंग से प्रबंधित करता है। इसके लिए, देश अपनी आय के स्रोतों को विस्तारित करता है और विभिन्न क्षेत्रों में निवेश करता है जिससे उसे अपनी स्वावलंबनता में मदद मिल सके।

4.2.1 वास्तविक राष्ट्रीय आय का अर्थ

वास्तविक राष्ट्रीय आय का अर्थ एक देश के संपूर्ण आय का मूल्यांकन करने के लिए उपयोग किया जाने वाला मापदंड होता है। इसमें एक देश के सभी आय स्रोतों से जुड़े जैसे कि स्वदेशी उत्पाद, सेवाएं, विदेश से आयात की वस्तुएं और सेवाएं, आदि को मिलाकर एक संख्या के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यह एक महत्वपूर्ण आर्थिक मापदंड होता है जो एक देश की आर्थिक स्थिति के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्रदान करता है। वास्तविक राष्ट्रीय आय भी एक देश की आर्थिक विकास और सुधार के मापदंड के रूप में उपयोगी होता है। वास्तविक राष्ट्रीय आय आर्थिक विकास का सम्बन्ध वास्तविक राष्ट्रीय आय की वृद्धि से है। ध्यान रहे, वास्तविक राष्ट्रीय आय की वृद्धि से अभिप्राय किसी राष्ट्र द्वारा एक निश्चित काल में उत्पादित समस्त वस्तुओं एवं सेवाओं के विशुद्ध मूल्य में होने वाली वृद्धि से लगाया जाता है, न कि मौद्रिक आय की वृद्धि से। चूंकि आर्थिक विकास को मापने के लिये राष्ट्रीय आय को ही आधार माना जाता है इसलिये किसी देश का आर्थिक विकास तभी माना जाएगा जब उस देश में 'वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन निरन्तर बढ़ता रहे। कुल राष्ट्रीय उत्पादन में से मूल्य ह्रास अथवा मूल्य स्तर में हुए परिवर्तनों को समायोजित करने पर विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन प्राप्त हो जाता है।

4.2.2 वास्तविक राष्ट्रीय आय की प्रवृत्तियां

वास्तविक राष्ट्रीय आय की प्रवृत्तियाँ विभिन्न कारणों से निर्भर करती हैं। कुछ

महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों का वर्णन निम्नलिखित करते हुए; आइये इन्हे समझने का प्रयास करें;–

- **आर्थिक विकासः** वास्तविक राष्ट्रीय आय में स्थायी वृद्धि की योजनाएं, नई उद्योगों की विकास योजनाएं, आर्थिक सुधार की नीतियों और अन्य संबंधित कदम लेने से प्रभावित होती है।

- **बदलती जनसंख्याः** जनसंख्या के विस्तार और वृद्धि से राष्ट्रीय आय पर असर पड़ता है। जनसंख्या बढ़ते हुए बढ़ती आवश्यकताओं के कारण और जनसंख्या के कुछ वर्गों की कम आय से उत्पन्न होने वाली आर्थिक समस्याओं से इस प्रकार की प्रवृत्ति होती है।

- **विदेशी निवेशः** विदेशी निवेश द्वारा उपलब्ध संसाधनों का उपयोग कर अत्यधिक उत्पादन और नई उद्योगों की विकास योजनाओं को बढ़ावा मिलता है, जो वास्तविक राष्ट्रीय आय को बढ़ाने में मदद करता है।

- **वित्तीय नीतियांः** वित्तीय नीतियां जैसे बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थाओं को निर्देशित करती हैं, जो राज्य के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उच्च ब्याज दरें और कर्ज के परिणामस्वरूप वित्तीय दण्डाधिकारी वित्तीय नीतियों के माध्यम से राज्य के आर्थिक विकास को धीमा कर सकते हैं।

- **संबंधों का प्रबंधनः** अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और राजनीति से जुड़े मामलों को ध्यान में रखते हुए वास्तविक राष्ट्रीय आय पर प्रभाव पड़ता है। अधिक विकसित देशों के साथ संबंधों को बढ़ावा देने और उनसे विभिन्न वस्तुओं की आयात करने के माध्यम से आय बढ़ाई जा सकती है।

इन प्रवृत्तियों के साथ–साथ, कुछ अन्य कारक भी वास्तविक राष्ट्रीय आय पर प्रभाव डालते हैं, जैसे कि संवैधानिक ढांचे, न्याय प्रणाली, राजनीतिक ढांचे, स्वास्थ्य और शिक्षा। इन सभी प्रवृत्तियों और कारकों का संयोग वास्तविक राष्ट्रीय आय की प्रगति तय करता है।

4.3 आर्थिक संवृद्धि

आर्थिक संवृद्धि एक समृद्ध और विकसित आर्थिक समाज की अवस्था होती है जहां समग्र आर्थिक विकास होता है। यह उन सभी प्रक्रियाओं का समूह है जो आर्थिक विकास को संभव बनाते हैं, जिसमें आवश्यक अनुसंधान, विनियोग, निवेश, और नीतिगत विकास शामिल होते हैं।

आर्थिक संवृद्धि आमतौर पर तीन मुख्य तत्वों से प्रभावित होती हैः अर्थव्यवस्था, बाजारी गतिविधियां, और निवेश। सभी तीनों तत्वों के विकास से एक स्थिर, संतुलित और सक्रिय आर्थिक परिसंचार से आर्थिक संवृद्धि होती है।

आर्थिक संवृद्धि का महत्व उसकी सहायता से समाज के सभी वर्गों के लिए समृद्धि, रोजगार वृद्धि, व्यवसायों और उद्यमियों के लिए नए अवसरों की उत्पत्ति और आर्थिक विकास के लिए एक स्थिर वातावरण के साथ राष्ट्र के आर्थिक विकास में बहुत महत्वपूर्ण होता है।

4.3.1 आर्थिक संवृद्धि का अर्थ

आर्थिक संवृद्धि का अर्थ होता है किसी देश या क्षेत्र के आर्थिक स्थिति में सुधार होना। इससे मुख्य तौर पर अधिकतम आर्थिक उत्पादन और वित्तीय समृद्धि होती है जो एक देश या क्षेत्र के सामाजिक और आर्थिक विकास को बढ़ावा देती है।

PLANWISE GDP GROWTH

Period	Five Year Plan	Rate (%)
1951-56	First	3.6
1956-61	Second	4.2
1961-66	Third	2.8
1969-74	Fourth	3.3
1974-79	Fifth	4.7
1980-85	Sixth	5.7
1985-90	Seventh	5.8
1992-97	Eight	6.5
1997-02	Ninth	5.5
2002-07	Tenth	7.8
2007-12	Eleventh	7.9
2012-17*	Twelfth	8.0

Note: From 1966 to 1969, there was no five-year but annual plans. From 1979 to 1980 and 1990 to 1992, there were no five-year Plans. 1951 to 1956 means April 1951 to March 31, 1956. This applies to all periods in the chart.
* Projection by the Planning Commission
Source: Planning Commission

आर्थिक संवृद्धि का महत्व विभिन्न होता है जैसे कि इससे लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार होता है, रोजगार के अवसर बढ़ते हैं, उत्पादन बढ़ता है, नए उद्यम आरंभ होते हैं, अर्थव्यवस्था मजबूत होती है और देश की सामरिक विकास में मदद मिलती है।

इसलिए, आर्थिक संवृद्धि का स्थायी रूप से सुधार देश या क्षेत्र के स्थायी विकास के लिए अत्यंत आवश्यक होता है।

4.3.2 आर्थिक संवृद्धि की दर की प्रवृत्ति

आर्थिक संवृद्धि की दर की प्रवृत्ति देश की आर्थिक संवृद्धि की गति को दर्शाती है। यह वर्षांत मात्रा में अंकों के रूप में उपलब्ध होती है और आर्थिक संवृद्धि के मानकों को समझने में मदद करती है।

आर्थिक संवृद्धि की दर की प्रवृत्ति देश की कुल उत्पादकता या घरेलू कुल उत्पाद से गणना की जाती है और उसमें से अतिरिक्त आर्थिक गतिविधियों को छोड़कर की जाती है। यह आमतौर पर वर्षांत मात्रा में व्यक्त की जाती है और प्रति व्यक्ति आर्थिक गतिविधियों का आकलन करने के लिए उपयुक्त होती है।

अधिक आर्थिक संवृद्धि की दर की प्रवृत्ति एक देश में अधिक निवेश और उत्पादकता के लिए अधिक संभवता देती है। इसके अलावा, इससे बढ़ते हुए निवेश देश के अन्य क्षेत्रों में नई उत्पादकता के रूप में पैदा होते हैं जो फिर से आर्थिक संवृद्धि की दर को बढ़ाते हैं। इस तालिका में भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के

दौरान वार्षिक चक्रवृद्धि संवृद्धि दरें (1951–1996) दी गई हैं। इसमें भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विकास और आर्थिक सुधार की गति को दर्शाया गया है।

तालिका 4.1 भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान वार्षिक चक्रवृद्धि संवृद्धि दरें (1951–1996)

Five Year Plans	Years	Target Growth	Actual Growth
First Five year Plan	1951- 1956	2.1%	3.6%
Second Five year Plan	1956-1961	4.5%	4.3%
Third Five year Plan	1961-1966	5.6%	2.8%
Plan Holidays – Annual Plans	1966-1969	–	–
Fourth Five year Plan	1969-1974	5.7%	3.3%
Fifth Five year Plan	1974-1979	4.4%	4.8%
Sixth Five year Plan	1980-1985	5.2	5.7
Seventh Five year Plan	1985-1990	5.0	6.0
Annual Plans	1989-1991	–	–
Eighth Five year Plan	1992-1997	5.6	6.8
Ninth Five year Plan	1997-2002	6.5	5.4
Tenth Five year Plan	2002 –2007	8.0	7.6
Eleventh Five year Plan	2007-2012	9.0	8.0
Twelfth Five year Plan	2012-2017	8.0	–

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि भारत के पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान विकास और आर्थिक सुधार की गति में तेजी आई। पहली योजना में संवृद्धि दर बहुत कम थी, जबकि आठवीं और नौवीं योजनाओं में संवृद्धि दर काफी उच्च थी। इस तालिका से स्पष्ट होता है कि पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान भारत में आर्थिक विकास हुआ और देश के अर्थव्यवस्था ने तेजी से विकास किया।

4.4 आर्थिक विकास

आर्थिक विकास एक देश की आर्थिक स्थिति में सुधार को दर्शाता है। इसका मतलब है कि एक देश अधिक उत्पादन, ज्यादा निवेश, अधिक आय और अधिक समाजसेवा क्षेत्रों में विकास करता है। आर्थिक विकास एक संघर्षपूर्ण प्रक्रिया होता है जो समाज को अधिक उन्नत और समृद्ध बनाने के लिए समाज,

सरकार और निजी क्षेत्र के सहयोग से होता है। आर्थिक विकास से आशय उस प्रक्रिया से है जिसके परिणामस्वरूप देश के समस्त उत्पादन साधनों का कुशलतापूर्वक दोहन होता है। साथ ही साथ राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में निरंतर एवं दीर्घकालिक वृद्धि होती है तथा जीवन स्तर एवं मानव विकास सूचकांक में सुधार की स्थिति उत्पन्न होती है। आर्थिक विकास में गैर–आर्थिक चर को भी शामिल किया जाता है, जैसे– शिक्षा एवं साक्षरता दर पोषण स्तर, स्वास्थ्य सेवाएँ, जीवन प्रत्याशा तथा लैंगिक विकास आदि।

आर्थिक विकास के लिए कुछ मुख्य उद्देश्य हैं जैसे कि निवेश को बढ़ाना, उत्पादकता को बढ़ाना, आय को बढ़ाना, निर्माण क्षेत्र को बढ़ाना, नई रोजगार के अवसर पैदा करना और सामाजिक विकास को बढ़ाना। आर्थिक विकास के लिए सरकार और निजी क्षेत्र दोनों के सहयोग की आवश्यकता होती है। सरकार को नीतियों और कानूनों के माध्यम से निवेश के लिए उत्तेजना देनी होती है तथा निजी क्षेत्र को उत्पादकता और रोजगार के अवसर पैदा करने के लिए उचित संरचनाओं और नीतियों के लिए प्रेरित करना होता है।

आर्थिक विकास के लिए उद्यमियों को विभिन्न प्रकार के सहायतार्थ निधियों, सब्सिडी, ब्याज छूट, टैक्स छूट और अन्य छूटों की उपलब्धता प्रदान की जाती है। इसके साथ ही, उद्यमियों को उत्पादकता बढ़ाने और नए बाजार खोजने के लिए अनुसंधान और विकास के लिए प्रेरित किया जाता है।

4.4.1 आर्थिक विकास का अर्थ

आर्थिक विकास एक देश की समृद्धि और उन्नति में आय का अधिकरण लेने का अर्थ होता है। इसलिए, आर्थिक विकास की प्रक्रिया में समग्र विकास के लक्ष्य के साथ–साथ, समाज की संपूर्ण उन्नति तथा देश की समृद्धि में बढ़ती सामाजिक समानता को भी ध्यान में रखना आवश्यक होता है। आइये विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं के माध्यम से इसे और सुस्पस्ट करने का प्रयास करें;–

(क) मायर एवं वाल्डविन के अनुसारः आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें दीर्घकाल में किसी अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।

(ख) प्रो० लुईस के शब्दों में : "आर्थिक विकास का अर्थ, प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि सेलगाया जाता है।"

(ग) प्रो० यंगसन के विचारानुसारः "आर्थिक प्रगति से आशय किसी समाज से सम्बन्धित आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने की शक्ति में वृद्धि करना है।"

(घ) प्रो० विलियमसन के अनुसारः "आर्थिक विकास अथवा वृद्धि से उस प्रक्रिया का बोध होता है जिसके द्वारा किसी देश अथवा प्रदेश के निवासी उपलब्ध साधनों का उपयोग, प्रति व्यक्ति वस्तुओं के उत्पादन में निरन्तर वृद्धि के लिए करते है।"

(ङ) प्रो० डी० ब्राइट सिंह की दृष्टि में: "आर्थिक वृद्धि से अभिप्राय, एक देश के समाज में होने वाले **उस** परिवर्तन से लगाया जाता है जो अल्प विकसित स्तर से उच्च आर्थिक उपलब्धियों की ओर अग्रसर होता है।"

4.4.2 विकास के उद्देश्य

लम्बे समय तक प्रति व्यक्ति वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि लाना विकास का प्रमुख उद्देश्य रहा है। इस उद्देश्य में 'प्रति व्यक्ति आय पर बल है न कि कुल राष्ट्रीय आय पर इसके अन्तर्गत निम्न प्रयास किये जा रहे है;–

- भोजन, आश्रय और सुरक्षा जैसी मूलभूत जीवन निर्वाही वस्तुओं के लिए उपलब्धता में वृद्धि और वितरण का सुव्यवस्थित प्रयास;
- उच्च आय के अलावा, बेहतर शिक्षा पर ध्यान देने और सांस्कृतिक और मानवतावादी मूल्यों पर अधिक ध्यान देने सहित आय के स्तर को बढ़ाने के निरन्तर प्रयास तथा
- व्यक्ति और राष्ट्रों के लिए राष्ट्रीय और सामाजिक पसंद की सीमा का विस्तार करना।

इस प्रकार उपरोक्त तीन उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए जीवन की गुणवत्ता को विकास का एक महत्वपूर्ण सूचकांक माना जाता है। इस प्रकार कुछ उपाय मौद्रिक हैं और कुछ गैर– मौद्रिक हैं। आइये इन्हे सूचिबद्ध करते हुए समझने का प्रयास करें;–

1. बेरोजगारी को कम करना, आर्थिक स्थिरता प्राप्त करना और सभी नागरिकों के जीवन स्तर में वृद्धि करना।
2. अत्यधिक कुशल, लचीले कार्यालय का निर्माण करना।
3. मौजूदा स्थानीय व्यवसायों को बनाए रखने और विस्तार करने पर ध्यान केंद्रित करना।
4. स्थानीय उद्यमशीलता को बढ़ावा देकर क्षेत्र के भीतर छोटी फर्मों की संख्या में वृद्धि करना।
5. उन व्यवसायों और उद्योगों की सहायता करना जो निर्यात या आयात विकल्प

का उत्पादन करते हैं और जो उच्च गुणवत्ता वाली नौकरियां प्रदान करते हैं।

6. क्षेत्र में लंबे समय से बेरोजगार और अल्प– नियोजित लोगों की आर्थिक जरूरतों की पहचान करना और उन जरूरतों को पूरा करने के लिए शिक्षा और पुनर्प्रशिक्षण सहित प्रोग्रामिंग को प्रोत्साहित करना।
7. स्थल के रूप में क्षेत्र की स्थिति को बनाए रखना और मजबूत करना।
8. ऐतिहासिक संपत्तियों के संरक्षण को बढ़ावा देना और प्रोत्साहित करना।
9. आवास और परिवहन, संचार और उपयोगिता प्रणालियों को स्थापित करना और बनाए रखना जो गुणवत्ता विकास का समर्थन और पोषण करते हैं।
10. प्रौद्योगिकी के बुनियादी ढांचे और प्रणालियों को मजबूत करना, बनाए रखना और लगातार उन्नत करना, और वर्तमान और प्रत्याशित जरूरतों के लिए पर्याप्त पहुंच और क्षमता प्रदान करना।

4.4.3 प्रति व्यक्ति वास्तविक आय की प्रवृत्ति

प्रति व्यक्ति वास्तविक आय की प्रवृत्ति उस धनराशि को दर्शाती है जो एक व्यक्ति द्वारा एक निश्चित अवधि के दौरान कमाई गई है। इसमें आय के सभी स्रोत शामिल होते हैं, जिसमें वेतन, व्यवसाय या निवेश से मिली आय, समाज सेवा या सरकारी दायित्व से मिली आय, सम्पत्ति विक्रय से मिली लाभ आदि शामिल होते हैं। इस प्रवृत्ति का पता लगाने के लिए आय के सभी स्रोतों का एक विस्तृत मूल्यांकन किया जाता है। प्रति व्यक्ति वास्तविक आय या उत्पादन में वृद्धि के रूप में आर्थिक विकास की परिभाषा देने में अर्थशास्त्री एकमत हैं। बुकैनन तथा एलिस के अनुसार '' विकास का अर्थ पूंजी निवेश के उपयोग द्वारा अल्पविकसित क्षेत्रों की वास्तविक आय सम्भाव्यताओं का विकास करने के लिए ऐसे परिवर्तन लाना और ऐसे उत्पादक स्रोतों का बढ़ाना है, जो प्रति व्यक्ति वास्तविक आय बढ़ाने की संभावना प्रकट करते है।'' इन परिभाषाओं का उद्देश्य इस बात पर बल देना है कि आर्थिक विकास के लिए वास्तविक आय में वृद्धि की दर जनसंख्या में वृद्धि की दर से अधिक होनी चाहिए। परन्तु फिर भी कठिनाईयों रह जाती हैं।

4.4.4 गरीबी की प्रवृत्ति

गरीबी एक सामाजिक समस्या है जो लोगों को विभिन्न प्रवृतियों में उत्पन्न करती है। ज्यादातर गरीब लोग स्वाभाविक रूप से बहुत कठिनाईयों से गुजरना पड़ता है जो उन्हें आर्थिक रूप से पीड़ित करते हैं। इसलिए, गरीबी वाले लोगों की प्रवृत्ति उनके आस–पास की परिस्थितियों के अनुसार बदलती है।

कुछ लोग अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए कड़ी मेहनत और परिश्रम

करते हैं। वे अपने बच्चों की शिक्षा और स्वास्थ्य की देखभाल में लगे रहते हैं और अपने जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए संघर्ष करते हैं। दूसरी ओर, कुछ लोगों को इस दुनिया में जीवन जीने के लिए अपनी मानसिक और शारीरिक शक्ति की कमी होती है। इन लोगों को दुख, पीड़ा और तंगदस्ती का सामना करना पड़ता है।

गरीबी की प्रवृत्ति को समझना बहुत मुश्किल है, क्योंकि इसमें कई कारण हो सकते हैं। आर्थिक असमंजस के अलावा, गरीबी भी सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक कारणों से भी उत्पन्न हो सकती है। उदाहरण के लिए, जाति, धर्म, जन्मस्थान और लिंग आदि के आधार पर गरीबी के कुछ लोगों के पास विभिन्न संघर्षों का सामना करना पड़ता है।

(क) गरीबी रेखा

गरीबी रेखा एक ऐसी न्यूनतम आय की सीमा होती है जो एक व्यक्ति या एक परिवार के लिए उस समय की अधिकतम आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आवश्यक होती है। इस सीमा के नीचे रहने वाले लोगों को गरीब कहा जाता है।

गरीबी रेखा अलग–अलग देशों या क्षेत्रों में भिन्न होती है और इसे उपलब्ध सामाजिक या आर्थिक आधारों पर निर्धारित किया जाता है। भारत में गरीबी रेखा को विभिन्न प्रमाण पत्रों और सरकारी निर्धारित मापदंडों के आधार पर निर्धारित किया जाता है।

4.4.5 आय में असमानताओं की प्रवृत्ति

देशों के बीच असमानता वैश्विक आय असमानता का तीसरा हिस्सा है। पिछले दशकों में देशों के बीच आय असमानता कम हुई है क्योंकि पहले कम आय वाले और जनसंख्या वाले देश जैसे चीन और भारत ने अधिक आय वाले देशों से तेजी से विकास किया है।

आर्थिक नीति और सुधार पर बहस भारत में 1980 के दशक में शुरू हुई और आज भी जारी है। 1991 में नई आर्थिक नीति के विस्तृत परिचय से पहले, भारत में उद्योगीकरण और बाजार शक्तियों पर अत्यधिक निर्भरता से आमतौर पर इस बात का विस्तार हुआ था कि भारत में क्षेत्रीय, ग्रामीण–शहरी और लंबवत असमानताएं बढ़ेंगी। लगभग पंद्रह साल बाद, यह मुद्दा अभी भी बहस के अंदर है, जहाँ विभिन्न अध्ययन अनिश्चित निर्णय देने में असमर्थ हैं। आर्थशास्त्रियों को अभी भी यह बात में मतभेद है कि सुधार काल में भारत में आय और खपत असमानता बढ़ी थी या नहीं।

4.4.6 विकास के अन्य सूचक

भारत में आर्थिक विकास के मापन हेतु विभिन्न सूचकांको की रचना की गई हैं। आइये क्रमशः इन्हें सूचिबद्ध कर समझनें का प्रयास करें;–

- **जीडीपी (ग्रॉस डोमेस्टिक प्रोडक्ट):** यह देश के आर्थिक विकास का मुख्य सूचक है। जीडीपी देश के समूहों और क्षेत्रों के उत्पादन का मूल्यांकन करता है।
- **जीवन दर** : यह सूचक एक देश की जनसंख्या की उम्र औसत को मापता है। जीवन दर भी एक देश के विकास को मापने के लिए महत्वपूर्ण सूचक है।
- **साक्षरता दर :** यह सूचक एक देश के जनसंख्या के उस हिस्से को मापता है जो पढ़ने और लिखने में सक्षम हैं। साक्षरता दर भी देश के विकास को मापने के लिए महत्वपूर्ण सूचक है।
- **बाल मृत्यु दर** : यह सूचक बच्चों की मौत की दर को मापता है। बाल मृत्यु दर भी एक देश के विकास के मापदंड में शामिल है।
- **स्वास्थ्य देखभाल:** वित्त वर्ष 2023 में स्वास्थ्य क्षेत्र पर सरकार का बजट खर्च GDP का 2.1% था, जो वित्त वर्ष 2021 में 1.6% था। 4 जनवरी, 2023 तक आयुष्मान भारत योजना से लगभग 22 करोड़ लोग लाभान्वित हुए हैं और देश भर में 1.54 लाख से अधिक स्वास्थ्य एवं कल्याण केंद्र स्थापित किये गए हैं।
- **वाणिज्यिक उत्पादन:** इस सूचकांक के माध्यम से देश में वाणिज्यिक उत्पादन की गति का मूल्यांकन किया जाता है।
- **उद्यमिता:** उद्यमिता सूचकांक देश में नए उद्यमों के विकास को मापता है।
- **कृषि और खाद्य प्रबंधन में भारत का आर्थिक प्रदर्शन:** भारत के कृषि क्षेत्र में पिछले छह वर्षों में 4.6% की औसत वार्षिक वृद्धि दर देखी गई है। इसने कृषि को देश के समग्र प्रगति, विकास और खाद्य सुरक्षा में महत्त्वपूर्ण योगदान देने में सक्षम बनाया है। हाल के वर्षों में भारत कृषि उत्पादों के सकल निर्यातक के रूप में उभरा है और वर्ष 2021–22 में निर्यात 50.2 बिलियन अमेरिकी डॉलर के रिकॉर्ड स्तर पर पहुँचा है। वर्ष 2020–21 में कृषि में निजी निवेश बढ़कर 9.3% हो गया। कृषि क्षेत्र के लिये संस्थागत ऋण वर्ष2021–22 में बढ़कर 18.6 लाख करोड़ रुपए हो गया।भारत में खाद्यान्न उत्पादन में निरंतर वृद्धि देखी गई और यह वर्ष 2021–22 में 315.7 मिलियन टन रहा।
- **रोजगार दर:** यह सूचकांक बताता है कि देश में कितने लोग रोजगार योग्य हैं और कितने लोगों को रोजगार की आवश्यकता है।

- **अंर्तराष्ट्रीय व्यापारः** इस सूचकांक से देश के अंर्तराष्ट्रीय व्यापार की गति का मूल्यांकन किया जाता है।
- **अर्थव्यवस्था की रफ्तारः** इस सूचकांक के माध्यम से देश की अर्थव्यवस्था की रफ्तार का मूल्यांकन किया जाता है।

4.5 श्रमशक्ति में वृद्धि

श्रम शक्ति किसी व्यक्ति की कार्य करने की क्षमता के बारे में है। कार्ल माक्र्स ने इसके बारे में बात की जब उन्होंने आलोचना की कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था कैसे काम करती है। माक्र्स ने कार्य करने की क्षमता, श्रम शक्ति और काम करने की शारीरिक क्रिया, श्रम के बीच अंतर किया। उन्होंने कहा कि श्रम शक्ति वास्तव में काम करने से अलग है। यह कुछ ऐसा है जो हर समाज में लोगों के पास होता है, लेकिन जिस तरह से चीजों को बनाने के लिए इसका इस्तेमाल किया जाता है वह समय के साथ बहुत बदल गया है। पूंजीवाद में, माक्र्स ने कहा कि श्रमिकों को पैसा बनाने की प्रक्रिया के हिस्से के रूप में देखा जाता है, और मालिकों का उनके काम करने के तरीके पर अधिक नियंत्रण होता है।

भारत में श्रम बल भागीदारी दर (LFPR) भारत में उस कामकाजी आयु वर्ग (15–59 वर्ष) के लोगों का प्रतिशत है जो या तो रोजगारी में हैं या सक्रिय रूप से रोजगार की तलाश में हैं। विश्व बैंक के नवीनतम उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार, भारत में 2020 में यह 49.8 प्रतिशत था।

भारत में यह कुछ वर्षों से निरंतर गिरता आ रहा है, जो चिंता का विषय है। इस रुझान के कई कारण हैं, जिनमें नौकरी के अवसरों की कमी, पर्याप्त शिक्षा और प्रशिक्षण की अभावता और संस्कृतिक वरीयता शामिल हैं, जिसमें महिलाओं को घर के बाहर काम करने के बजाय घर में रहने की प्राथमिकता होती है।

इसे ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है कि LFPR श्रम बाजार का पूर्ण चित्र प्रदान नहीं करता है। यह उन लोगों को शामिल नहीं करता है जो सक्रिय रूप से रोजगार की तलाश नहीं कर रहे हैं, जैसे निराशाजनक श्रमिक जो नौकरी ढूंढना छोड़ दिया है और अनौपचारिक क्षेत्र में रोजगार हासिल कर रहे होते हैं। इसलिए, भारत में श्रम बाजार की स्थिति का मूल्यांकन करते समय अन्य श्रम बाजार के सूचकांक जैसे बेरोजगारी दर और रोजगार की गुणवत्ता भी ध्यान में रखना चाहिए।

CMIE के अनुसार, श्रम बल में 15 वर्ष या उससे अधिक उम्र के लोग शामिल हैं तथा जो निम्नलिखित दो श्रेणियों में से किसी एक से संबंधित हैं:

- रोजगारयुक्त कार्यरत।
- बेरोजगार तथा कार्य करने के इच्छुक तथा जो सक्रिय रूप से नौकरी की तलाश में हैं।

- इन दो श्रेणियों में लोग ''नौकरी की मांग'' करते हैं। यह मांग LFPR को संदर्भित करती है।
- इस प्रकार LFPR अनिवार्य रूप से कामकाजी उम्र (15 वर्ष या अधिक) की आबादी का प्रतिशत है जो नौकरी की मांग करता है।
- यह किसी भी अर्थव्यवस्था में नौकरियों हेतु ''मांग'' का प्रतिनिधित्व करता है।
- इसमें रोजगार पाने वाले और जो बेरोजगार हैं, दोनों शामिल होते हैं।
- बेरोजगारी दर (UER), जिसका नियमित रूप से उल्लेख समाचारों में किया जाता है, श्रम बल के अनुपात के रूप में बेरोजगारों (श्रेणी 2) की संख्या को दर्शाता है।
- भारत में श्रम शक्ति भागीदारी दर न सिर्फ बाकी दुनिया के मुकाबले कम है बल्कि इसमें गिरावट भी जारी है।
- भारत में यह पिछले 10 वर्षों में घट रहा है और 2016 में 47% से घटकर दिसंबर 2021 तक केवल 40% रह गया है।

श्रम शक्ति के दो पहलुओं में होने वाले परिवर्तनों से हमें यह पता चल सकता है कि देश में आर्थिक विकास हो रहा है या नहीं प्रथम क्या स्त्रियों की रोजगार में भागीदारी बढ़ रही है? दूसरे, क्या गैर कृषि कार्यों में श्रम शक्ति का अनुपात बढ़ रहा है? आइए देखें कि भारत में श्रम शक्ति के इन दो पहलुओं में क्या परिवर्तन आ रहे है?

4.5.1 महिला श्रम भागीदारी दर

भारत में महिला श्रम भागीदारी दर भी भारत के श्रम बाजार की महत्वपूर्ण संख्याओं में से एक है। यह वह भाग है जो महिलाओं का होता है जो काम करती हैं या तलाशती हैं।

विश्व बैंक के अनुसार, भारत में महिला श्रम भागीदारी दर 2019 में 22.3% थी। इससे पहले, 2018 में यह 23.5% थी। आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण के आंकड़ों से पता चलता है कि हाल के वर्षों में कुछ सुधार दर्ज करने के बाद, भारत की कुख्यात कम महिला श्रम बल भागीदारी दर (एलएफपीआर) स्थिर हो गई है। 2021–22 में 29.4% महिलाएं (15–59 आयु वर्ग की) भारत की श्रम शक्ति का हिस्सा थीं, जबकि पिछले वर्ष यह 29.8% थी।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की श्रम भागीदारी दर में विशेष रूप से अंतर होता है। उदाहरण के लिए, कुछ राज्यों में यह दर कम होती है जैसे कि उत्तर प्रदेश (10.4%), बिहार (11.9%), जम्मू और कश्मीर (13.8%) और राजस्थान (14.8%)। वहीं कुछ राज्यों में यह दर अधिक होती है जैसे कि सिक्किम (70. 7%), मिजोरम (62.9%), नागालैंड (59.7%) और मेघालय (55.6:%)।

महिलाओं के लिए रोजगार के अवसरों में अंतर होने के कारण इसमें गिरावट देखी जा सकती है। इसके अलावा, वैधानिक और सामाजिक परंपराओं ने भी महिलाओं के श्रम भागीदारी दर में असंतुलन का कारण बनाया है।

- भारत के श्रम शक्ति भागीदारी दर के कम होने का मुख्य कारण महिला श्रम शक्ति भागीदारी दर का बेहद निम्न स्तर पर होना है।
- विश्व बैंक से प्राप्त डेटा के अनुसार भारत की महिला श्रम शक्ति भागीदारी दर लगभग 25% है, जबकि यह वैश्विक औसत श्रम शक्ति भागीदारी 47% के आस–पास है।
- महिलाओं की श्रम शक्ति भागीदारी दर कम होने के प्रमुख कारण अनिवार्य रूप से काम करने की परिस्थितियों से संबंधित हैं, जैसे– कानून और व्यवस्था, कुशल सार्वजनिक परिवहन, महिलाओं के खिलाफ हिंसा, सामाजिक मानदंड आदि महिलाओं के लिये अनुकूल नहीं हैं।
- इसके अलावा भारत में बहुत सी महिलाएँ विशेष रूप से अपने घर के कार्यों में शामिल रहती हैं (जैसे अपने परिवार की देखभाल करना आदि)।

4.5.2 व्यावसायिक ढांचा कृषि बनाम गैर–कृषि

भारतीय अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण भाग है, जो देश की लगभग आधी जनसख्या को रोजगार प्रदान करता है और भारत की कुल घरेलू उत्पाद ब्रूटो (जीडीपी) का लगभग 16% योगदान देता है। कृषि क्षेत्र भारत में लाखों ग्रामीण घरों के लिए जीवनोपाय का प्रमुख स्रोत है।

गैर–कृषि व्यवसाय का अर्थ है व्यवसाय जो किसी भी प्रकार की कृषि गतिविधि या कृषि के लिए कच्चे माल के उत्पादन से संबंधित नहीं है। बैंकर, व्यवसायी, वकील, शिक्षक और सेवादार जैसे किसी भी अन्य व्यवसाय को गैर–कृ षि व्यवसाय माना जा सकता है। प्रथम, कृषि क्षेत्र में उत्पादिता इतनी कम है कि अभी भी बढ़ती जनसंख्या की भोजन और गैर–भोजन मांगों को पूरा करने के लिए कृषि क्षेत्र में श्रमिकों के एक बहुत बड़े अनुपात की आवश्यकता है। दूसरे, गैर–कृ षि क्षेत्रों में रोजगार के अवसर सीमित होने के कारण श्रम शक्ति कृषि क्षेत्र से बाहर नहीं आ पाती। कुल मिलाकर देश में रोजगार की स्थिति ठीक नहीं है।

रोजगार के अवसर आवश्यक दर से नहीं बढ़ रहे हैं। बेरोजगारी बढ़ रही है जो कि आर्थिक विकास का एक अच्छा चिन्ह नहीं है।

4.6 आर्थिक प्रणाली स्वामित्व एवं संगठन का ढांचा

आर्थिक प्रणाली एक ऐसा माध्यम है जिससे समाज या सरकार एक स्थानीय क्षेत्र या देश में उपलब्ध संसाधनों, सेवाओं और वस्तुओं का आवंटन और वितरण व्यवस्थित करते हैं। आर्थिक प्रणाली भूमि, पूंजी, श्रम और भौतिक संसाधनों सहित उत्पादन के कारकों को नियंत्रित करती है। एक आर्थिक प्रणाली एक दिए गए समुदाय के आर्थिक संरचना को आवर्तित करने वाले कई संस्थाओं, एजेंसियों, इकाइयों, निर्णय लेने की प्रक्रियाएं और खपत के पैटर्न को शामिल करती है। आर्थिक प्रणाली का स्वामित्व एवं संगठन का ढांचा देश– देश में भिन्न हो सकता है। इसके अलावा एक देश में भी अलग–अलग क्षेत्रों और उद्योगों में अलग–अलग ढांचे होते हैं।

विभिन्न उद्योगों में स्वामित्व और संगठन के अलग–अलग ढांचे होते हैं। एक उदाहरण के रूप में, निजी क्षेत्र के अंतर्गत वित्तीय सेवाएं, टेलीकॉम, होटल उद्योग और बैंकिंग उद्योग शामिल होते हैं। ये उद्योगों के स्वामित्व और संगठन ढांचे अलग–अलग होते हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र में संगठन का ढांचा समान होता है और इसमें अधिकतर संगठन सरकार द्वारा संचालित किए जाते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के उदाहरण में स्थानीय शासन, संचार, रेलवे, बिजली उत्पादन, वित्तीय संस्थाएं और सरकारी विभाग शामिल होते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के संगठनों का स्वामित्व सरकार या सार्वजनिक निगमों के होता है और इनके लिए निर्देशन सरकार द्वारा दिए जाते हैं।

4.6.1 भारत एक मिश्रित अर्थव्यवस्था

भारत में एक मिश्रित अर्थव्यवस्था है, इसलिए, सार्वजनिक और साथ ही निजी संस्थाएं सह– अस्तित्व में हैं। यह 1948 में और बाद में 1956 में औद्योगिक नीतियों को अपनाने के परिणामस्वरूप है। हालाँकि, वे स्वतंत्र रूप से काम नहीं करते हैंय इसके बजाय, उन्हें विभिन्न तंत्रों द्वारा नियंत्रित किया जाता है, अर्थात सरकारों द्वारा कार्यान्वित नीतियां।

इसके अलावा, साम्राज्यवादी शासन के तहत भारत की अर्थव्यवस्था के ठहराव को देखते हुए, इसने आर्थिक विकास को बढ़ाने के लिए नई नीतियों को अपनाया, जिससे वैज्ञानिक, औद्योगिक और तकनीकी विकास के लिए नींव रखी गई। उदाहरण के लिए, भारत की जीडीपी आजादी के समय 2.7 लाख करोड़।

चौहत्तर साल बाद, 2021 में भारत की जीडीपी रुपये को छू गई 135.13 लाख करोड़, भारत को दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में से एक के रूप में चिह्नित करता है।

इसके अतिरिक्त, 1991 में भारत की अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के साथ, इसके विकास और विस्तार में कई गुना वृद्धि हुई। भारत की मिश्रित अर्थव्यवस्था का विशेषता सार्वजनिक, निजी, संयुक्त और सहकारी क्षेत्रों के सहयोग में होने के रूप में देखी जा सकती है।

4.6.2 सार्वजनिक क्षेत्र

सार्वजनिक क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। यह सरकार द्वारा संचालित किए जाने वाले उद्योग, उपक्रम और क्षेत्र हैं जो नागरिकों के लाभ के लिए उपलब्ध कराए जाते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र की आवश्यकताः सार्वजनिक क्षेत्र पर नीति का मार्गदर्शन औधोगिक नीति निर्णय 1956 और 1991 ने किया था जो अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र को रणनीतिक भूमिका दी। भारत की स्वतंत्रता के समय 1947 में, देश के सामने विभिन्न समस्याएं थीं जिन्हें एक योजनाबद्ध और व्यवस्थित तरीके से हल करने की जरूरत थी। भारत मूल रूप से एक कृषि आधारित अर्थव्यवस्था थी जिसमें कम निवेश और बचत के स्तर थे और बुनियादी ढांचा, विनिर्माण और बाजार की कमजोर तत्वों के कारण अवसाद के समान था। आइये सार्वजनिक क्षेत्र के निम्नलिखित उद्देश्यो को क्रमबद्ध कर समझने का प्रयास करें;–

1. देश के त्वरित आर्थिक विकास और औद्योगिकरण में मदद करना और आर्थिक विकास के लिए आवश्यक बुनियादी ढांचे को बनाना।
2. निवेश पर लाभ कमाने और उससे विकास के लिए संसाधन उत्पन्न करना।
3. आय और संपत्ति के पुनर्वितरण को बढ़ावा देना।
4. रोजगार के अवसरों को बढ़ावा देना।
5. संतुलित क्षेत्रीय विकास को बढ़ावा देना।
6. छोटे पैमाने और उपकेंद्रित उद्योगों के विकास में मदद करना।
7. आयात प्रतिस्थापन को बढ़ावा देना, देश के लिए विदेशी मुद्रा की बचत और कमाई करना।

भारत में विभिन्न उद्योगों और क्षेत्रों में सार्वजनिक क्षेत्र मौजूद हैं, सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों में लगातार बड़े निवेशों के लिए प्रमुख विचारों में से एक यह है कि इससे अर्थव्यवस्था के कोर क्षेत्रों के विकास को तेजी से बढ़ावा मिलता

है। इसके अलावा, रेलवे, दूरसंचार, परमाणु ऊर्जा, रक्षा आदि जैसे रणनीतिक तथा महत्वपूर्ण क्षेत्रों के उपकरण की आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायता मिलती है। इससे सरकार को निश्चित क्षेत्रों में निजी एकाधिकारिता वालों और बहुराष्ट्रीयों के प्रभाव को बाधित करने की क्षमता मिलती है और महत्वपूर्ण क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता की एक महत्वपूर्ण दशा हासिल करने में मदद मिलती है। दूसरी श्रेणी के सार्वजनिक उद्यम उपभोक्ता–अनुकूल उद्योगों जैसे दवाइयों, होटलों, खाद्य उद्योगों आदि से संबंधित होते हैं। जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:

1. **रेलवे:** भारत में रेलवे सार्वजनिक क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। भारतीय रेलवे देश के सबसे बड़े सार्वजनिक क्षेत्र के रूप मे विश्वास के साथ चल रहा है। यह देश में संचालित जनमानस के लिए एक सबसे आवश्यक परिवहन साधन है।

2. **उड़ान** सेवा: उड़ान सेवा एक और सार्वजनिक क्षेत्र है जो देश के आंतरिक और अंतरराष्ट्रीय उड़ान संचार को संचालित करता है।

3. **बिजली:** बिजली उत्पादन और वितरण भी सार्वजनिक क्षेत्र में शामिल है। भारत में विभिन्न सरकारी उपक्रमों द्वारा विद्युत उत्पादन, वितरण और विद्युत संचार देश के विभिन्न हिस्सों में किया ज रहा है। साथ ही, इस क्षेत्र में निजी कंपनियों द्वारा भी बिजली उत्पादन, वितरण और विद्युत संचार कर रहे हैं।

4. **पोस्ट और टेलीग्राफ:** भारत में पोस्ट और टेलीग्राफ भी सार्वजनिक क्षेत्र में शामिल हैं। भारत में इस सेवा के लिए डाक विभाग जिम्मेदार है।

5. **बैंकिंग और वित्त:** सार्वजनिक क्षेत्र में बैंकिंग और वित्तीय सेवाएं भी शामिल हैं। रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया और अन्य सरकारी बैंक देश में वित्तीय सेवाएं प्रदान करते हैं। निजी बैंकों द्वारा भी वित्तीय सेवाएं प्रदान की जाती हैं।

6. **शिक्षा:** सार्वजनिक क्षेत्र में शिक्षा भी एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। सरकारी स्कूल और कॉलेज देश में शिक्षा प्रदान करते हैं। साथ ही, निजी संस्थाएं भी शिक्षा क्षेत्र में शामिल हैं।

7. **स्वास्थ्य:** सार्वजनिक क्षेत्र में स्वास्थ्य सेवाएं भी शामिल हैं। सरकार द्वारा संचालित अस्पताल और स्वास्थ्य केंद्र देश में बड़ी संख्या में मौजूद हैं।

4.6.3 निजी क्षेत्र

निजी क्षेत्र उन उद्योगों और उपक्रमों को शामिल करता है जो निजी संपत्ति के आधार पर संचालित होते हैं और सरकार उनके निजीकरण या निजत्व के बाद

केवल निगरानी की जाती है। एक मिश्रित अर्थव्यवस्था में, निजी क्षेत्र भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। औद्योगिक नीति निर्णय 1956 ने बहुत साफ ढंग से बताया था कि निजी क्षेत्र को विकास और विस्तार के लिए भी अवसर मिलेगा। राज्य की नीति निर्धारित करने का मकसद था कि निजी क्षेत्र में उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित किया जाए जो लगातार पांच वर्षीय योजनाओं में तैयार किए गए हों। परिवहन, ऊर्जा और अन्य सेवाओं के विकास को सुनिश्चित करके। और उचित बजट आवंटन करके। सरकार ने फैसला किया कि निजी और सार्वजनिक स्वामित्व वाली इकाइयों के लिए वह आगे भी निष्पक्ष समर्थन जारी रखेगी जो दोनों के लिए न्याय संगत और अन्याय विरोधी होगा।

निजी क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग है जो स्वयं संचालित उद्योगों और व्यापारों का नेटवक्र होता है। यह क्षेत्र अर्थव्यवस्था में उत्पादकता और नौकरियों के लिए अहम भूमिका निभाता है। निजी क्षेत्र वाणिज्यिक एवं उद्योगिक क्षेत्रों में विभाजित होता है। निजी क्षेत्र दो भागों में विभाजित होता हैः वाणिज्यिक एवं उद्योगिक।

4.6.4 संयुक्त क्षेत्र

संयुक्त क्षेत्र शब्द निजी क्षेत्र और सरकार (सार्वजनिक उद्यमों) द्वारा संयुक्त रूप से स्वामित्व और प्रबंधित किया जाने वाले उद्योगों को संदर्भित करता है। संयुक्त क्षेत्र के मुख्य उद्देश्य हैंः

1) आर्थिक शक्ति की घनत्व को कम करना।

2) उद्योग के सामाजिक नियंत्रण,

3) आर्थिक विकास की त्वरितता,

4) मिश्रित अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देना,

5) उद्यमिता का विस्तृत आधार।

4.6.5 सहकारी क्षेत्र

भारत में सहकारी क्षेत्र को कई क्षेत्रों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका सौंपी गई है। पहले पांच वर्षीय योजना में इसने कृषि, ग्रामीण और लघु उद्योगों, खुदरा वितरण, आवास जैसे क्षेत्रों को अपने अंतर्गत लिया। सहकारी क्षेत्र के मुख्य उद्देश्यों में निम्नलिखित शामिल हैंः

1. आर्थिक शक्ति के समावेश को रोकना
2. उत्पादक संसाधनों के स्वामित्व के विस्तार का व्यापक वितरण

3. विकास कार्यक्रमों में लोगों की सक्रिय भागीदारी

4. त्वरित आर्थिक विकास

3. बेरोजगारी और गरीबी का समाप्तिकरण।

राज्य और सहकारिता के बीच संबंध बनने के कारणों में निम्नलिखित हैं:

1. सहकारी समितियों को कानूनी मान्यता देने और आंगीभूत पदाधिकारियों की हित में उनका उचित प्रबंधन और नियंत्रण प्रदान करने की आवश्यकता।

2. लोगों (समिति) के अधिकारों को सुरक्षित रखने की आवश्यकता।

3. किसी भी दुरुपयोग को सहकारिताओं से रोकने की आवश्यकता।

4. संबंधित आधार को मजबूत करने की जरूरत है क्योंकि कोई सरकार के अलावा नए विचारों और तकनीकों के प्रसार के लिए प्रोत्साहन नहीं देगा। यह राष्ट्रीय विकास के लिए सबसे अच्छा माध्यम था। यह नए विचारों और तकनीकों के प्रसार के लिए नेतृत्व और स्थानीय कार्यकर्ताओं की कमी के समस्या को हल करता है।

4.7 सारांश

भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था की अवधारणा विकसित की गई थी ताकि निजी और सार्वजनिक क्षेत्र दोनों आर्थिक विकास की प्रक्रिया में योगदान कर सकें। औद्योगिक नीति संकल्प 1956 ने इसे स्पष्ट रूप दिया जहाँ प्रत्येक क्षेत्र की कार्यवाही की विस्तार से बताई गई थी। नीति के दो उपकरण थे, इंडस्ट्रीज (डेवलपमेंट एंड रेगुलेशन) एक्ट 1951 और कंपनियों एक्ट 1956। इन दोनों एक्टों ने सरकार को लाइसेंसिंग प्रक्रिया के माध्यम से भारत में मुख्य उद्योगों के स्थान, उत्पादन और विस्तार को नियंत्रित करने की शक्ति प्रदान की। 1977 और 1980 के औद्योगिक नीति संकल्पों ने भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था के संचालन के क्रम को और भी सुधारा। भारत में निजी क्षेत्र राष्ट्रीय आय का लगभग 80 प्रतिशत योगदान करता है जबकि सार्वजनिक क्षेत्र शेष 20 प्रतिशत योगदान करता है। व्यवस्थित निजी क्षेत्र आधुनिकीकृत है, पूंजी–आधारित है और आधुनिक वित्तीय सेव पब्लिक एवं प्राइवेट सेक्टर के सम्मिश्र अर्थव्यवस्था की विकसिति से संबंधित सर्वाधिक महत्वपूर्ण चुनौतियों में से एक है एवं इसे संभव रखना भी बड़ी चुनौती है। इस अवस्था में दोनों सेक्टरों के बीच निजीकरण के प्रश्न उठ रहे हैं। पब्लिक सेक्टर की लाभांश की कमी तथा उसकी अक्समता विदेशी उत्पादों के सामने उसे नाकारात्मक बना रही है। उद्यमिता तथा जोखिम उठाने की रुचि न रखने के

कारण पब्लिक सेक्टर की स्थिति इस समय अच्छी नहीं है। इससे प्राइवेट सेक्टर का उत्साह वृद्धि करता हुआ संभवतः देश की आर्थिक विकास यात्रा में अग्रसर होता जा रहा है।

4.8 उपयोगी शब्दावली

- **आर्थिक विकास**– आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा दीर्घकाल में एक अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है। इन परिवर्तनों के साथ जब हम अर्थव्यवस्था में गुणात्मक परिवर्तनों व मानवीय सरोकारों जैसे कारकों को भी सम्मिलित कर लेते हैं तो इसे हम 'आर्थिक विकास' कहते हैं।
  - **राष्ट्रीय आय**– किसी देश का श्रम व पूंजी उसके प्राकृतिक साधनों पर क्रियाशील होकर प्रतिवर्ष जिन भौतिक वस्तुओं एवं सेवाओं का शुद्ध वास्तविक उत्पादन करते हैं उनका मौद्रिक मूल्य राष्ट्रीय आय कहलाता है।
  - **वास्तविक आय**– मौद्रिक आय की क्रय शक्ति को वास्तविक आय कहते हैं।
  - **प्रति व्यक्ति आय**– किसी देश की राष्ट्रीय आय को वहाँ की जनसंख्या से विभाजित करके प्रति व्यक्ति आय ज्ञात की जाती है।
  - **आर्थिक संवृद्धि**– समग्र चरों, जैसे–राष्ट्रीय आय सकल घरेलू उत्पाद, प्रति व्यक्ति आय में परिवर्तन, जिन्हें मापा जा सकता है. ऐसे परिवर्तनों को 'आर्थिक संवृद्धि' कहते हैं।

4.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न 1. मौद्रिक राष्ट्रीय आय और वास्तविक राष्ट्रीय आय में क्या अंतर है? इन दोनों में से कौन सा आर्थिक संवृद्धि का सूचक है और क्यों?

प्रश्न 2. आर्थिक संवृद्धि क्या है? 1951 के बाद के भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक संवृद्धि के दर में परिवर्तन समझाइए।

प्रश्न 3. आर्थिक विकास की परिभाषा दीजिए। आर्थिक संवृद्धि से यह किस मायने में अलग है? आर्थिक विकास का प्रमुख उद्देश्य व अन्य उप–उद्देश्य बताइए।

प्रश्न 4. भारत में 1951 के बाद से प्रति व्यक्ति वास्तविक आय और गरीबी में प्रवृत्तियाँ समझाइए।

प्रश्न 5. भारत के आर्थिक विकास के बारे में आय की असमानताओं में प्रवृति व अन्य सूचकों के आधार पर आप क्या संभव निष्कर्ष निकाल सकते हैं?

प्रश्न 6. श्रम शक्ति के वे पहलू समझाइए जिनके आधार पर आप भारत के आर्थिक विकास के बारे में निष्कर्ष निकाल सकते हैं?

प्रश्न 7. स्वामित्व और संगठन के संदर्भ में भारत की आर्थिक प्रणाली

समझाइए।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. के. अश्वथप्पा, बिजनेस एनवायरनमेंट फॉर स्ट्रैटेजिक मैनेजमेंट, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुंबई।
2. फ्रांसिस चेरुनिलम, बिजनेस एनवायरनमेंट, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
3. एस.के. मिश्रा और वी. के. पुरी, इंडियन इकोनॉमी, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
5. बी.बी.टंडन और के.के. टंडन, भारतीय अर्थव्यवस्था, टाटा मैकग्रा हिल, नई दिल्ली।

इकाई 5 व्यवसाय में सरकार की भूमिका

इकाई रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 सरकार की चौगुनी भूमिका

5.3. नियामक भूमिका

5.4 उद्यमकर्ता संबंधी भूमिका

5.5 संवर्धनात्मक भूमिका

5.6 योजना संबंधी भूमिका

5.7 नियामक ढांचा

5.8 सरकार की पुनः परिभाषित भूमिका

5.9 सारांश

5.10 उपयोगी शब्दावली

5.11 महत्वपूर्ण प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त इस योग्य हो सकेंगें कि –

- व्यापार के क्षेत्र में सरकार की भूमिका कों जान सकेगें :
- व्यापार जगत में सरकार की उद्यमी भूमिका को विश्लेषित का सकेगें
- नियामक ढांचा प्रदान करने के लिए आवश्यक नियमन का विवरण तैयार कर सकेगेः तथा
- निजीकरण, उदारीकरण और वैश्वीकरण को समझते हुए सरकार की परिवर्तित भूमिका को रेखांकित कर सकेगे।

5.1 प्रस्तावना

किसी भी व्यवसाय की आर्थिक विकास और समृद्धि के लिए राष्ट्रीय नीति महत्वपूर्ण होती है। बडे, छोटे तथा माध्यम माप के समस्त उद्योग, कुटीर उद्योग आदि भी अर्थव्यवस्था के लिए उतने ही महत्वपूर्ण होते हैं। सरकार की भूमिका किसी भी व्यवसाय में राजनीतिक और आर्थिक प्रणाली के आधार पर भिन्न होती

है। एक पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में, सरकार की भूमिका सामान्यतः नियमों को बनाने और बाजार में सुविधाओं और सार्वजनिक वस्तुओं को प्रदान करने तक सीमित रहती है। हालांकि, समाजवादी प्रकार की अर्थव्यवस्था में, सरकार सीधे व्यवसायों के स्वामित्व में हो सकती है और उन्हें संचालित कर सकती है। मिश्रित आर्थिक प्रणाली में, सरकार नियामक और आर्थिक भूमिका निभाती है, जिसमें मजदूरी और पर्यावरण मानकों को सेट करना, व्यापारों को वित्तीय सहायता प्रदान करना, और उपभोक्ताओं को धोखाधड़ी और एकाधिकार से सुरक्षा प्रदान करना शामिल होता है। इस इकाई में हम राज्य की भागीदारी और व्यापार में हस्तक्षेप की प्रकृति और आयामों पर प्रकाश डालते हैं, ताकि अर्थव्यवस्था के विकास और विकास को स्थानिक और समग्र स्तरों पर न रोका जाए और सकारात्मक दिशा में जारी रहे।

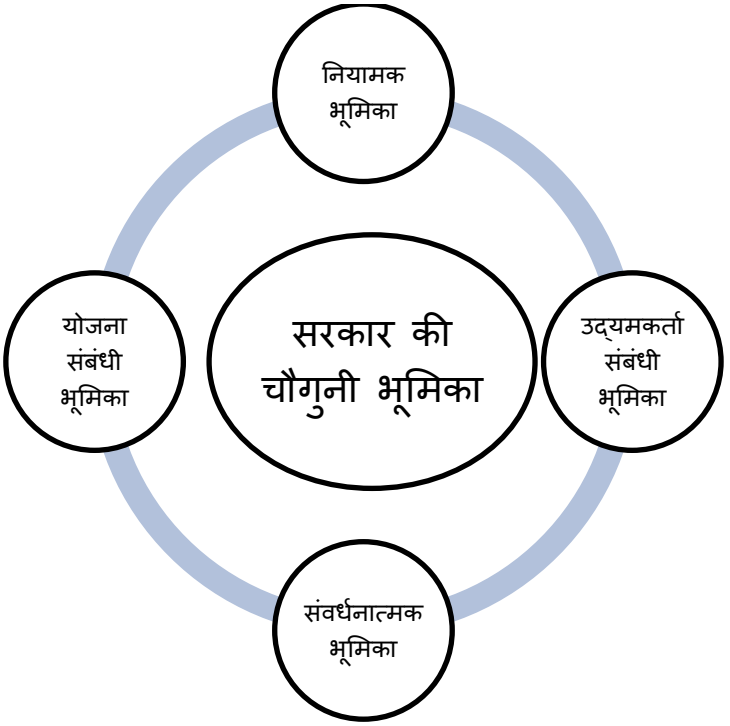
5.2 सरकार की चौगुनी भूमिका

वैश्विक इतिहास में, सरकार की भूमिका व्यवस्था की रखरखाव, सामाजिक सुरक्षा की रक्षा, बाहरी खतरों और हमलों से संसाधनों की संरक्षण, सार्वजनिक उपयोगिताओं पर नियंत्रण बनाए रखना और देश की रक्षा सुनिश्चित करना था। सरकार ने सुनिश्चित किया कि व्यवसाय के लिए वातावरण उपयुक्त हो। इसमें मूल ढांचा प्रदान करना और राजनीतिक स्थिरता शामिल थी।

हालांकि, 1917 के रूसी क्रांति, 1929 की महान आर्थिक मंदी, दूसरे विश्व युद्ध के बाद, योजित आर्थिक विकास की आवश्यकता महसूस की गई। इसका मतलब यह था कि व्यवसाय की सामाजिक जिम्मेदारी है और सरकार को यह सुनिश्चित करना है कि व्यवसाय इन सामाजिक जिम्मेदारियों का पालन करते हैं। इसलिए आर्थिक विकास और विकास के उद्देश्य के साथ सरकार का व्यवसाय और आर्थिक विनियामक का रोल बदल गया।

वर्षों से, सरकार की भूमिका व्यवसाय के नियामक बनने से बदल गई है। व्यवसाय में सरकार की भूमिका चार आयामों में बांटी गई है:

- नियामक भूमिका
- उद्यमकर्ता संबंधी भूमिका
- संवर्धनात्मक भूमिका
- योजनात्मक भूमिका



इसके इतर राज्य वित्तीय सहायता के रूप में सीधी मदद प्रदान करता है, जैसे अनुदान, टैक्स हॉलिडेज, अनुसंधान और विकास, परामर्श और सलाह, संरक्षण, औद्योगिक प्रशिक्षण और वित्तीय सहायता के अन्य रूप। इनकी आवश्यकता बाहरी कारकों, तकनीकी समस्याओं, वित्तीय संकट, अंर्तराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा आदि के कारण होती है।

आपने व्यवसाय में सरकार की भूमिका के विकास और उस भूमिका के विभिन्न आयामों का विवरण दिया है। आइये उपरोक्त चार आयामों पर थोड़ा और विस्तार से प्रकाश डालने का प्रयास करे।

5.3. नियामक भूमिका

यह व्यवसायों के काम करने के नियम और विधियों को बनाने और प्रवर्तित करने के माध्यमों में से एक है, जिसका उद्देश्य उपभोक्ताओं, श्रमिकों और पर्यावरण की संरक्षा, साथ ही उचित प्रतिस्पर्धा और एकाधिकार कों रोकना होता है। विनियामक, इसमें उपभोक्ताओं, श्रमिकों और पर्यावरण की रक्षा के साथ–साथ निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा सुनिश्चित करने और एकाधिकार को रोकने के उद्देश्य से व्यवसायों को संचालित करने वाले कानूनों और विनियमों को बनाना और लागू करना शामिल है। नियामक निकायों के उदाहरणों में प्रतिभूति और विनिमय आयोग, पर्यावरण संरक्षण एजेंसी और संघीय व्यापार आयोग शामिल हैं। सरकार के नियामक भूमिका के उद्देश्यः निम्नवत् हैः–

- छोटे पैमाने के उद्योगों को विकसित करना और उद्यमिता को प्रोत्साहित करना
- समाज के कमजोर वर्गों के हितों को बढ़ावा देना तथा
- एकाधिकार गतिविधियों पर रोक लगाना।

इस प्रकार, नियामक व्यवस्था का उद्देश्य व्यापार गतिविधियों और प्रक्रियाओं को सामाजिक न्याय के साथ अनुरूप बनाना होता है। इस प्रकार की भूमिकाओं के अन्तर्गत निम्नलिखित गतिविधियो को सूचिबद्ध किया जा सकता हैः—

- नियामक भूमिकाएँ बाजार की विफलता के लिए सरकार की प्रतिक्रिया के तहत विवरणः
- पेटेंट और सब्सिडी प्रदान करना, जो व्यावसायिक फर्मों को प्रत्यक्ष लाभ प्रदान करते हैं।
- परिचालन नियंत्रण करना या विशिष्ट कर लगाना। ये उपाय फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं की प्रकृति और इन वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में उपयोग की जाने वाली उत्पादन प्रक्रियाओं दोनों को बाधित करते हैं।
- पर्याप्त उत्पादन सुनिश्चित करने और एकाधिकार लाभ को प्रतिबंधित करने के लिए एकाधिकार पर प्रत्यक्ष विनियमन करना।
- अर्थव्यवस्था में व्यावहारिक प्रतिस्पर्धा के स्तर को बनाए रखने के लिए अविश्वास अधिनियम का प्रावधान करें।
- नजी क्षेत्र को नियंत्रित और विनियमित करने के लिए सरकार के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष उपायो को प्रभावी रूप से क्रियाम्वित करना। उदाहरण के लिए, प्रतिबंधात्मक नीतियां, प्रोत्साहन नीतियां, संचालन नियंत्रण, अप्रत्यक्ष कर लगाना आदि। सरकार की नियामक भूमिका की अवधारणा मुख्य रूप से दो कारकों द्वारा निर्देशित होती है।

  क. आर्थिकः इसके अन्तर्गत बाजार की विफलता से संबंधित करकों को सम्मिलित किया जा सकता है।

  ख. राजनीतिक एवं सामाजिक मुद्दों से सरोकार – इसके अन्तर्गत उपभोक्ता अधिकार, समान वितरण, आदि को सम्मिलित किया जाता है।

  - इसके अलावा, निजी क्षेत्रों को नियंत्रित करने के लिए सरकार के

पास दो उपकरण हैंः यथा मौद्रिक और बजटीय नीति।

- सुधारात्मक और आगमनात्मक नियंत्रण (जुर्माने, दंड, आदि के माध्यम से सुधार की संभावना, और विशिष्ट कार्यों के लिए पुरस्कार – विशिष्ट से सामान्य के माध्यम से प्रकाश डालना)।
- प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष नियंत्रण (मूल्य सीमा और कर, कर्तव्यों, आदि को लागू करना)।
- प्रतिस्पर्धा का प्रभाव (एकाधिकार, आदि को हतोत्साहित करने के लिए अविश्वास नीति)।
- प्रचार और विनियमन नियंत्रण (कर सब्सिडी, शून्य ब्याज ऋण, आर एंड डी बनाम प्रतिबंधात्मक नियम और कानून कानूनों के माध्यम से लागू होते हैं, आदि)

5.4 उद्यमकर्ता संबंधी भूमिका

इस प्रकार की भूमिका में व्यवसाय शुरू करने या अधिग्रहण करने या निजी लोगों में निवेश करके सरकार सीधे व्यावसायिक गतिविधियों में भाग लेती है। यह आमतौर पर सरकार के स्वामित्व वाले उद्यमों या राज्य के स्वामित्व वाले उद्यमों (SOE) के रूप में देखा जाता है, जो ऊर्जा, दूरसंचार और परिवहन जैसे कई उद्योगों में काम करते हैं। इन उद्यमों का लक्ष्य अक्सर जनता को आवश्यक सेवाएं प्रदान करना, सरकार के लिए राजस्व उत्पन्न करना और आर्थिक विकास को बढ़ावा देना होता है। सरकार उद्यमिता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। केंद्रीय और राज्य सरकारों ने उद्यमशीलता को बढ़ावा देने के लिए कई संस्थानों की स्थापना की है। आइये इन्हें संक्षिप्त में समझनें का प्रयास करेंः–

1. **प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (पीएमकेवीवाई)**ः कौशल मंत्रालय की एक प्रमुख पहल विकास और उद्यमिता (एमएसडीई), यह एक कौशल प्रमाणन पहल है जिसका उद्देश्य युवाओं को प्रशिक्षित करना है, आजीविका सृजन और रोजगार क्षमता के अवसरों को बढ़ाने के लिए उद्योग–संबंधित कौशल के साथ व्यक्ति पूर्व सीखने के अनुभव या कौशल का भी मूल्यांकन किया जाता है और पूर्व शिक्षण की मान्यता के रूप में प्रमाणित किया जाता है। प्रशिक्षण और मूल्यांकन शुल्क इस कार्यक्रम के तहत पूरी तरह से सरकार द्वारा वहन किया जाता है।
2. **राष्ट्रीय कौशल विकास मिशनः** जुलाई 2015 में लॉन्च किया गया, इस

मिशन का उद्देश्य सभी में तालमेल बनाना है कुशल उद्योगों और पहलों में क्षेत्र और राज्य। एक 'कुशल भारत' बनाने की दृष्टि से इसे डिजाइन किया गया है गुणवत्ता या गति से समझौता किए बिना बड़े पैमाने पर कौशल प्रदान करने के लिए सभी क्षेत्रों में निर्णय लेने में तेजी लाना। प्रारंभिक चरण में भारत भर में मिशन के कौशल प्रयासों का मार्गदर्शन करने के लिए प्रस्तावित सात उप–मिशन हैंः (i) संस्थागत प्रशिक्षण (ii) बुनियादी ढांचा (iii) अभिसरण (iv) प्रशिक्षक (v) विदेशी रोजगार (vi) सतत आजीविका (vii) सार्वजनिक बुनियादी ढांचे का लाभ उठाना।

3. **इक्विटी सशक्तिकरण और विकास के लिए विज्ञान सीडः** इसका उद्देश्य अवसर ऐसे विशेष ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक आर्थिक लाभ के लिए क्रिया–उन्मुख, स्थान विशिष्ट परियोजनाओं को शुरू करने के लिए वैज्ञानिकों और क्षेत्र स्तर के कार्यकर्ताओं को प्रेरित किया जाता है। इसके अर्न्तगत राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं और अन्य को जोड़ने का प्रयास किया गया हैः विशेषज्ञों, गुणवत्ता से इनपुट तक पहुंच को सक्षम करने के लिए जमीनी स्तर पर नवाचारों के साथ विशेषज्ञ एस एंड टी संस्थान आधारभूत संरचना। के विकास में समानता पर जोर देता है, ताकि तकनीकी का लाभ एक विशाल वर्ग को मिले आबादी का हिस्सा, विशेष रूप से वंचित न रहने पाये।

4. **लघु उद्योग विकास संगठनः** यह संस्था देश में लघु उद्योगों के विकास के लिए नीतियां बनाती है। यह ग्रामीण उद्यमिता को बढ़ावा देने के लिए सभी प्रकार की सहायता प्रदान करती है।

5. **प्रबंधन विकास संस्थानः** यह संस्थान प्रबंधकीय प्रभावशीलता में सुधार के लिए प्रबंधन विकास कार्यक्रम आयोजित करता है इसके उधोगो व्यापार संगठनो आदि को सम्मिलित किया जाता है।

6. **भारत का उद्यमिता विकास संस्थानः** इस संस्थान ने बारह राज्य स्तरीय अनन्य उद्यमिता विकास संस्थानों की स्थापना में मदद की है और यह केन्द्र सरकार के अर्न्तगत क्रियाशील है।

7. **अखिल भारतीय लघु उद्योग बोर्डः**यह बोड लघु उद्योग क्षेत्र से संबंधित सभी मुद्दों पर सरकार को सलाह देता है। यह निर्धारित करता है कि लघु उद्योगों के विकास के लिए कार्यक्रम और नीतियां किस प्रकार से और प्रभावी बनायी जा सके।

8. **राष्ट्रीय उद्यमिता और लघु व्यवसाय विकास संस्थानः** यह संस्थान

उद्यमशीलता में शामिल विभिन्न एजेंसियों की गतिविधियों का पर्यवेक्षण करता है तथा विभिन्न विकास कार्यक्रमो की योजना बनाते हुए उनका क्रियान्यवक सुनिश्चत करवाता है।

9. **राष्ट्रीय लघु उद्योग विस्तार प्रशिक्षण संस्थानः** इस संस्थान का उद्देश्य लधु इकाईयों के प्रशिक्षण के लिए पाठ्यक्रम का निर्देशन और समन्वय करना होता है तथा यह छोटे उद्यमियों और प्रबंधकों के लिए सेमिनार भी आयोजित करता है।

10. **राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम लिमिटेडः** यह निगम विपणन के माध्यम से लधु उद्योगों के उत्पादों के लिए एक विशाल बाजार का नेटवक्र प्रदान करता है। यह लधु इकाइयों को अपने उत्पादों को विदेशों में निर्यात करने में भी मदद करता है।

11. **एमएसएमई नीतिः** औद्योगिक और एमएसएमई नीति संकल्पों का प्राथमिक लक्ष्य औद्योगिक को आगे बढ़ाना है। विकास और इसके अलावा छोटी औद्योगिक इकाइयों के लिए राज्य की मदद का उदाहरण तय करना वित्तीय लक्ष्यों को पूरा करना होता है। व्यवसायों की उन्नति को एक राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास मे एक आवश्यक धटक के रूप में देखा गया है।

1951 से एक नियोजित अर्थव्यवस्था की और परिणामी औद्योगिक नीति अपनाई गई; भारत सरकार द्वारा, सरकार और आयोजकों दोनों की एक विशिष्ट स्थिति का निर्धारण किया गया है; मूल रूप से भारतीय अर्थव्यवस्था में सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमो को सम्मिलित किया जाता है। सरकार ने औद्योगिक नीति के माध्यम से लघु उद्योगो के विकास सहित समस्त उद्योगो के प्रति नीतिगत घोषणा समय समय पर की जाती रही है।

5.5 संवधनात्मक भूमिका

इस भूमिका के अर्न्तगत सरकार व्यवसाय के विकास रोजगार सृजन, निर्यात को बढ़ावा देने और प्रतिस्पर्धात्मकता बढ़ाने के उद्देश्य से कर प्रोत्साहन और अनुदान जैसे उपायों के माध्यम से व्यापार वृद्धि और विकास को सक्रिय रूप से बढ़ावा देने का प्रयास करती है। प्रोत्साहन उपायों के उदाहरणों में निवेश पर कर क्रेडिट, निर्यात प्रोत्साहन कार्यक्रम और लघु व्यवसाय ऋण गारंटी भी सम्मिलित की जा रही है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखत प्रमुख विन्दुओं को सम्मिलित कर अध्ययन किया जा सकता है।

1. **आर्थिक विकासः** वस्तुओं और सेवाओं की मांग पैदा करना ताकि चक्रीय

प्रभाव अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने में मदद करे।

2. **बाहरी अर्थव्यवस्थाएं:** बाहरी कारकों (प्रोत्साहन गतिविधियों) या उत्पादकता में वृद्धि के कारण उत्पादन की लागत को कम करना। बाहरी कारक किसी विशेष कंपनी के नियंत्रण से बाहर हैं, और सकारात्मक बाह्यताओं को शामिल करते हैं जो फर्म की लागत को कम करते हैं।

3. **बाहरी विषमताएं:** यदि किसी कंपनी के नियंत्रण से बाहर के बाहरी कारक इसकी कुल लागत में वृद्धि करते हैं, तो इसे उत्पादन के कारकों को बढ़ाने वाले बाजार मूल्यों से जोड़ा जा सकता है।

इस भूमिका में, सरकार व्यावसायिक कामकाज में हस्तक्षेप या नियमन नहीं करती है आइये इस प्रकार की भूमिका के तहत की जाने वाली कुछ गतिविधियों को सूचिबद्ध करते हुए समझनें का प्रयास करें:–

- सार्वजनिक उपयोगिताओं का रखरखाव करना,
- निजी और विदेशी निवेश को बढ़ावा देना,
- विदेशी व्यापार को बढ़ावा देने के लिए व्यापार प्रोत्साहन प्रदान करना,
- विकास आवश्यकताओं के साथ मुद्रा आपूर्ति का मिलान और नियंत्रण करना,
- विभिन्न संसाधनों के प्रभावी उपयोग को सक्षम करने के लिए प्रयास करना,
- विभिन्न क्षेत्रों के बीच विकासात्मक दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करना,
- विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों के इष्टतम उपयोग को प्रोत्साहित कर समान आय वितरण सुनिश्चित करना तथा
- आर्थिक संसाधनों को उत्पादक और कुशल बनाना।

संक्षेप में, सरकार की प्रचारात्मक भूमिका में अर्थव्यवस्था के व्यापार और प्राथमिकता वाले क्षेत्रों के विस्तार के लिए राजकोषीय, बजटीय और मौद्रिक प्रोत्साहन शामिल हैं।

5.6 योजना संबंधी भूमिका

इस प्रकार की भूमिका मे विशिष्ट सामाजिक और आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के उद्देश्य से सरकार आर्थिक विकास और विकास के लिए दीर्घकालिक योजनाओं और रणनीतियों को बनाना और कार्यान्वित करना शामिल है। इन

योजनाओं में बुनियादी ढांचे के विकास, शिक्षा प्रशिक्षण, और अनुसंधान तथा विकास जैसे कई क्षेत्रों को शामिल किया जा सकता है। नियोजन में जीडीपी विकास, मुद्रास्फीति दर और रोजगार के स्तर जैसे प्रमुख आर्थिक संकेतकों के लिए लक्ष्य निर्धारित करना भी शामिल हो सकता है।

कुल मिलाकर, व्यवसाय में सरकार की भूमिका जटिल और बहुआयामी है, विभिन्न सरकारें अपनी राजनीतिक विचारधाराओं, आर्थिक स्थितियों और सामाजिक प्राथमिकताओं के आधार पर अलग–अलग दृष्टिकोण अपनाती हैं। जबकि कुछ तर्क देते हैं कि व्यापार में सरकार का हस्तक्षेप आर्थिक विकास और नवाचार के लिए हानिकारक हो सकता है, अन्य इसे यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक मानते हैं कि व्यवसाय सार्वजनिक हित में काम करते हैं और व्यापक सामाजिक लक्ष्यों में योगदान करते हैं।

5.7 नियामक ढांचा

निर्माण और कार्यान्वयन विकास के दो पहलू हैं जिसमे विनियामक ढांचा पुल प्रदान करता है अर्थात दूसरे शब्दों में योजनाओं की प्रभावशीलता न केवल इसे तैयार करने के तरीके पर निर्भर करती है, बल्कि इसे लागू करने के तरीके पर भी अधिक निर्भर करती है। इसे लागू करने के लिए विधायी समर्थन की आवश्यकता है। यह विधायी समर्थन आर्थिक और राजनीतिक– कानूनी वातावरण के बीच बातचीत को सक्षम बनाता है। धारा 5.3 के तहत विभिन्न नियामक उपायों पर चर्चा की गई है। सरकार की भूमिका को अधिक उत्पादक और सार्थक बनाने के लिए सरकार द्वारा बनाए गए विभिन्न कानूनों को अध्ययन की दृष्टि से सूचिबद्ध किया गया है। आइये इन्हें समझने का प्रयास करेः–

1. **एकाधिकार और प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथा अधिनियम, 1969**ः इसे औद्योगिक सुधार के तहत भारत में लागू किया गया था जिसका उदेश्य आर्थिक शक्ति के केंद्रीकरण को रोकना तथा एकाधिकार पर नियंत्रण रखना था। इस के अलावा अन्य उद्देश्य प्रतिबंधात्मक और अनुचित व्यापार की रोकथाम करना था। उस समय चौथी पंचवर्षीय योजना लागू थी। इस अधिनियम के तीन उद्देश्य हैंः (1) व्यापार और उद्योग के कुछ हाथों में आर्थिक शक्ति की एकाग्रता को नियंत्रित और विनियमित करना, (2) एकाधिकार और एकाधिकार व्यापार प्रथाओं को नियंत्रित करना, (3) प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथाओं पर तब तक रोक लगाना जब तक कि उन्हें सार्वजनिक हित में उचित न ठहराया जा सके।

2. **कंपनी अधिनियम, 1956:** कंपनी अधिनियम, 1956 भारतीय कंपनीओं के नियमन और प्रशासनिक मामलों को व्यवस्थित करने के लिए एक कानून है। यह भारतीय कंपनीओं के गठन, संचालन, विनियमन, लिखित प्रपत्रों, निदेशकों, शेयरधारकों, और संबंधित मामलों को व्यवस्थित करने के नियमों को स्थापित करता है। भाभा समिति की सिफारिशों के आधार पर कंपनी अधिनियम के पाँच उद्देश्य हैं: जो कि निम्नवत् है:–

(क) कंपनी की स्थापना और व्यवस्थापन: अधिनियम का पहला उद्देश्य कंपनी की स्थापना, पंजीकरण और उसके व्यवस्थापन को सुनिश्चित करना है। इसके अंतर्गत विभिन्न अवधारणाएं, नियमों और प्रक्रियाओं को स्थापित किया जाता है जो कंपनी की व्यवस्था और प्रशासनिक कार्यों को निर्देशित करते हैं।

(ख) कंपनी के संघ, आपूर्ति श्रृंखला, और विनियमन: यह उद्देश्य कंपनी के संघ, मुख्यालय, शाखा कार्यालय, और संबंधित विनियमन को संघटित करने के लिए है। कंपनी के संघ की स्थापना, उसकी स्थानांतरण, और आपूर्ति श्रृंखला के निर्धारण के लिए नियम और प्रक्रियाएं व्यवस्थित की जाती हैं।

(ग) शेयरधारकों के अधिकार और जिम्मेदारियाँ: इस उद्देश्य के तहत कंपनी अधिनियम शेयरधारकों के अधिकार, जिम्मेदारियाँ, प्रतिबंधों, और उनकी संरक्षा के लिए नियम और विनियमन स्थापित करता है।

(घ) निदेशक मंडल और निदेशकों के कर्तव्य: इस उद्देश्य के अंतर्गत कंपनी अधिनियम निदेशक मंडल की प्रणाली, निदेशकों के कार्यकाल, पदों के विनियमन, और उनकी जिम्मेदारियों को संघटित करता है।

(च) लिखित प्रपत्रों की व्यवस्था: इस उद्देश्य के तहत कंपनी अधिनियम लिखित प्रपत्रों, अधिसूचनाओं, अधिसूचना पुस्तिकाओं, और अन्य दस्तावेजों की व्यवस्था को संघटित करता है, जो कंपनी द्वारा जनता और न्यायिक प्रक्रियाओं को जानकारी देने के लिए उपयोग होते हैं।

उपरोक्त पाँचो उद्देश्य कंपनी अधिनियम, 1956 के तहत कंपनियों के गठन, प्रबंधन, विनियमन, और संबंधित मामलों को निर्धारित करते हैं।

3. **मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1947:** भारतीय मुद्रा के प्रबंधन और विनियमन के लिए एक कानून है। यह अधिनियम भारतीय मुद्रा की जाति, विनियमन, चलन, और विनियमित व्यापार से संबंधित नियमों को स्थापित करता है। इसके तहत, मुद्रा के जारी, प्रबंधन, बदलाव, और विनियमन के लिए सरकारी अधिकार और प्रक्रियाएं निर्धारित की गई हैं। यह अधिनियम भारतीय मुद्रा के संचालन और प्रबंधन को संघटित और सुरक्षित रखने का माध्यम है।

4. **पूंजी निर्गम नियंत्रण अधिनियम, 1956 और प्रतिभूति अनुबंध विनियमन अधिनियमः** पूंजी निर्गम नियंत्रण अधिनियम, 1956 भारतीय पूंजी बाजारों के नियमन और निर्गमन के लिए एक कानून है। यह अधिनियम पूंजी बाजारों, वित्तीय संस्थाओं, और निवेशकों के लिए विनियमन प्रणाली स्थापित करता है। इसके तहत, पूंजी निर्गम, साझा करना, निवेश, वित्तीय संस्थाओं के गठन और कार्यक्रम, और निवेशकों के सुरक्षा से संबंधित नियमों को संघटित किया जाता है। प्रतिभूति अनुबंध विनियमन अधिनियम एक विनियमन प्रणाली प्रदान करता है जो भारतीय प्रतिभूतियों के खरीद, विक्रय, और व्यापार को व्यवस्थित करता है। यह अधिनियम प्रतिभूतियों के खरीदारों, विक्रेताओं, और अनुबंध पक्षों के अधिकार और प्रतिबंधों को निर्धारित करता है और विनियमन प्रक्रियाएं स्थापित करता है जो प्रतिभूति व्यापार को संघटित और न्यायिक बनाए रखती है।

5. **रुग्ण कपड़ा उपक्रम (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम, 1974:** इस अधिनियम का उद्देश्य राष्ट्रीय कपड़ा उद्योग के विकास और संरक्षण को सुनिश्चित करना है। यह अधिनियम कपड़ा उद्योग में आपूर्ति एवं निर्यात, उत्पादकता, गुणवत्ता नियंत्रण, करण, और संबंधित कार्यों को विनियमित करता है। इसके अंतर्गत राष्ट्रीयकृत रुग्ण कपड़ा उद्योग को बढ़ावा देने, नई तकनीकों का उपयोग करने और कपड़ों की गुणवत्ता और प्रतिस्पर्धा में सुधार करने का लक्ष्य है।

6. **बीमार उद्योग कंपनियों कानून, 1985:** इस अधिनियम के तहत एक औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य बीमार बताने वाली कंपनियों के प्रबंधन और वास्तविक हालात की जांच करना है।

7. **उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986:** इस अधिनियम का प्राथमिक उद्देश्य उपभोक्ताओं के हित की सुरक्षा करना है, जिसे उपभोक्ता परिषदों और अन्य संबंधित प्राधिकरणों की स्थापना के माध्यम से किया जाता है, उपभोक्ताओं की विवादों के निपटान के लिए।

8. **उद्योग (विकास और नियंत्रण) अधिनियम, 1951:** यह अधिनियम उद्योग के विकास, नियंत्रण और नियमन के लिए एक नियामक ढांचा प्रदान करता है जिसका उद्देश्य देश के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक दर्शन के साथ समरूप बनाना है। इस अधिनियम के तहत सरकार को देश के उपलब्ध संसाधनों का प्रभावी उपयोग करने, लघु और कॉटेज उद्योगों का विकास करने, और देश के क्षेत्रीय विकास को संतुलित ढंग से लाने के लिए उपाय अधिकार है।

5.8 सरकार की पुनः परिभाषित भूमिका

राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों के अनुसार, सरकार को अर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए भारी जिम्मेदारी उठानी होती है। इसके लिए संगठन को उपयुक्त अधिकार देने की आवश्यकता होती है। सरकार ने अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करने के लिए व्यापक अधिकार संभाल लिए हैं। वे नियामक, प्रचारक, उद्यमी और योजनात्मक चार भूमिकाओं को सक्रियतापूर्वक निभा रही हैं। हालांकि, कुछ सवाल उठे हैं कि क्या इन भूमिकाओं ने इच्छित आर्थिक विकास को सांख्यिकीय और गुणात्मक रूप से कितना लाभ पहुंचाया है। कम्युनिस्ट देशों में हो रहे विप्लवी बदलावों ने यह साबित किया है कि राज्यीय शासन तंत्र आर्थिक संकट को खत्म करने में विफल रहा है। विभिन्न देशों के अनुभवों ने चार महत्वपूर्ण तथ्यों को खोला है।

1) आदेश अर्थव्यवस्था कंपनियों को सक्रियतापूर्वक कार्य करने में असमर्थ बना दिया है।

2) बाजार अर्थव्यवस्था ने लोगों की आवश्यकताओं के लिए उत्पादन करने और उन्हें न्यायसंगत रूप से वितरित करने के लिए केंद्रीय योजना प्रणाली से बेहतर उपकरण साबित हुई है।

3) विदेशी प्रौद्योगिकी और निवेश के निर्माण और विकास के लिए महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

4) बाजार–निर्देशित प्रणाली की परिवर्तन को पुराने प्रणाली के सकारात्मक सामाजिक पहलुओं के साथ संगत माना जाता है।

भारत में स्वयंशासित रूप से सरकार की भूमिका काफी अस्तव्यस्त रही है। यहां काफी आर्थिक प्रगति हुई है, लेकिन ये बदलाव केवल संख्यात्मक दृष्टिकोण में हुए हैं। इसके बावजूद, संख्यात्मक दृष्टिकोण में भी विकास दर संतोषजनक नहीं रही है जब तुलना की जाती है दक्षिण पूर्वी देशों के साथ हो रहे विकास से, जैसे कोरिया, मलेशिया, जापान और सिंगापुर।

इसलिए, राज्य की भूमिका की अपर्याप्तता और अप्रभावी परिणामों की ओर बढ़ती जागरूकता के साथ–साथ, सरकार की भूमिका को पुनः परिभाषित करने की आवश्यकता महसूस की गई, और इसके साथ ही 1980 के आरंभ के आसपास उदारीकरण के उपाय प्रस्तावित किए गए। 1991 में नई औद्योगिक नीति ने निजीकरण, उदारीकरण और वैश्वीकरण के माध्यम से महत्वपूर्ण परिवर्तनों की घोषणा की। इन परिवर्तनों के उद्देश्य थेः

1) आर्थिक विकास की गति को तेज करना,

2) पूंजी का बेहतर उपयोग करना,

3) स्केल की आर्थिक गति को प्राप्त करना,

4) पिछड़े क्षेत्रों का विकास करना और विकास के मामले में क्षेत्रीय असमानता को हटाना,

5) निर्यात बढ़ाना और आयात के स्थानांतरण को बढ़ाना,

6) गुणवत्ता और प्रभावशीलता में प्रतिस्पर्धा बढ़ाना द्वारा महंगाई में कमी, अपव्यय की समस्या को हल करना, और

7) वैश्विक व्यापार में सम्मानित स्थान प्राप्त करना।

1991 की नई औद्योगिक नीति की विशेषताएं हैं:– परमिट मुक्ति, आर्थिक शक्ति के समाचारों के संबंध में एमआरटीपी नियमों को हटाना, विदेशी निवेश और प्रौद्योगिकीकी भागीदारी का उदारीकरण, सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका की पुनर्निर्धारणा।

नई नीति ने उद्यमों का निजीकरण का प्रावधान किया है। इसके अलावा, निवासीकरण के तहत नस्लें नियोजित करने का फैसला किया गया है और सार्वजनिक क्षेत्र की व्याप्तियों को उद्यम, कर्मचारियों और जनता को भंडारण द्वारा निजीकरण करके बदलने का विचार रखा गया है। सार्वजनिक निवेश का मौजूदा पोर्टफोलियो भी कुछ शर्तों के आधार पर संशोधित हो रहा है। अध्ययन में उपयोगिता के दृष्टिगत इनके निम्नलिखत को सम्मिलित किया जा सकता है–

i) कम प्रौद्योगिकी और निवेश शुल्क,

ii) आवश्यक अनुमोदन और नियमों की सरलता,

iii) विदेशी निवेश और प्रौद्योगिकी में अनुबंध का नियमितीकरण,

iv) बैंकिंग और वित्तीय सेवाओं के लिए विदेशी निवेश की सीमा,

v) प्राथमिकी के आधार पर सरकारी निवेश,

vi) उच्च और विमुद्रीकरणीय क्षेत्रों में विदेशी प्रवेश की सीमा, और

vii) उद्यमों को समर्पित संसाधनों के लिए आर्थिक सहायता।

यद्यपि ये परिवर्तन आर्थिक विकास को बढ़ाने में मदद कर सकते हैं, लेकिन अभी तक संख्यात्मक दृष्टिकोण में होने के कारण, इसका गुणात्मक परिणामों पर सीधा प्रभाव अभी तक दिखाई नहीं देता है। इसलिए, सरकार को आर्थिक विकास को संख्यात्मक और गुणात्मक दोनों दृष्टिकोणों से संगठित करने के लिए और अपर्याप्त और अप्रभावी परिणामों को दूर करने के लिए और भूमिका

को पुनः परिभाषित करने की जरूरत है।

5.9 सारांश

भारतीय अर्थव्यवस्था में सरकार की भूमिका एक महत्वपूर्ण विषय है। सरकार एक राष्ट्र में कारोबार की कार्यप्रणाली को आकार देने में और एक उद्योग की कार्यप्रणाली को संपूर्णतः प्रभावित करने में एक अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पूरे आर्थिक प्रणाली, व्यापार प्रणाली और सभी व्यापार संबंधित पहलुओं को सरकार के तरीके से प्रभावित किया जाता है। सरकार से उम्मीद की जाती है कि वह उद्योगों की कार्यप्रणाली को परिवर्तित करने और उसके अनुरूप समायोजित करने के लिए समय–समय पर कठोर निर्णय लेगी। सरकार द्वारा निभाई गई चार महत्वपूर्ण भूमिकाएं हैंः नियामक, उद्यमकर्ता, संवर्धनात्मक, और योजना संबंधी। यहां इन भूमिकाओं के बारे में संक्षेप में बताया गया हैः

- **नियामक भूमिकाः** सरकार की पहली भूमिका है नियामक भूमिका। सरकार नियामक व्यवस्था के माध्यम से अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करती है। यहां आवश्यक नियमों, विनियमों और नियमों का पालन करके व्यापारों और उद्योगों की गतिविधियों को नियंत्रित करने का कार्य होता है।

- **उद्यमकर्ता संबंधी भूमिकाः** सरकार की दूसरी भूमिका है उद्यमकर्ता संबंधी भूमिका। सरकार उद्यमियों को समर्थन, प्रोत्साहन और सुरक्षा प्रदान करके व्यवसाय के क्षेत्र में कार्य करने को प्रोत्साहित करती है। इसका उद्देश्य व्यापारिक क्षेत्र में स्वावलंबन, नवाचार, नए उद्योगों की स्थापना, और रोजगार को बढ़ावा देना है।

- **संवर्धनात्मक भूमिकाः** सरकार की तीसरी भूमिका है संवर्धनात्मक भूमिका। इस भूमिका के तहत सरकार विभिन्न योजनाओं, नीतियों और कार्यक्रमों के माध्यम से आर्थिक संवर्धन को बढ़ावा देती है। इसका उद्देश्य आर्थिक विकास, समृद्धि, और सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करना है।

- **योजना संबंधी भूमिकाः** सरकार की चौथी भूमिका है योजना संबंधी भूमिका। सरकार योजनाओं के माध्यम से संघर्ष करती है, योजनाएं तैयार करती है, और इन्हें कार्यान्वित करती है। इसका उद्देश्य समग्र विकास, आर्थिक नीति का निर्माण और केंद्रीयकृत योजनाओं के माध्यम से आर्थिक सुधार करना है।

ये चार भूमिकाएं भारतीय सरकार को अपने अर्थव्यवस्था के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। सरकार द्वारा पुनः परिभाषित भूमिका के माध्यम से अधिक व्यापारिक स्वतंत्रता, उद्योगों की प्रगति, और आर्थिक समृद्धि को प्रोत्साहित किया जा सकता है। सरकार को अपनी भूमिका और कर्तव्यों को पुनः परिभाषित

करने के लिए सौंपी गई है। इसका उद्देश्य सरकार को अपने निर्देशक नीतियों, उद्देश्यों, और विचारधारा को सुनिश्चित करना होता है। यह भूमिका सरकार को यह निर्देशित करने में मदद करती है कि वह किस क्षेत्र में ध्यान केंद्रित करना चाहती है, किन मुद्दों पर केंद्रित होना चाहती है और अपने कर्तव्यों को पूरा करने के लिए कौन–कौन से नियम और उपाय अपनाने की आवश्यकता होती है।

5.10 महत्वपूर्ण शब्दावली

- **व्यवसायः** लाभ कमाने की दृष्टि से किया गया कोई भी कार्य। पूंजीवादः एक आर्थिक प्रणाली जहां उत्पादन और वितरण के साधन निजी क्षेत्र के हाथों में हैं।
- **सहकारी क्षेत्रः** इसमें उत्पादन के स्वामित्व का व्यापक फैलाव और विकासात्मक कार्यक्रमों में लोगों की सक्रिय भागीदारी शामिल है।
- **मुद्रास्फीति दरः** एक देश की मुद्रा को दूसरी मुद्रा में मापने का एक मापदंड है। यह दर निर्धारित करती है कि एक देश की मुद्रा की मूल्यांकनात्मक मान्यता कितनी होगी दूसरी देश की मुद्रा के साथ सम्बन्धित में। मुद्रास्फीति दर बदलती रहती है और इसे आमतौर पर देशों के मध्य विदेशी मुद्रा बाजारों में निर्धारित किया जाता है।
- **उद्यमिताः** वह राज्य जिसमें जोखिम वहन व्यावसायिक गतिविधि से जुड़ा है।
- **राजकोषीय उपायः** राजस्व और धन से संबंधित उपाय और गतिविधियाँ।
- लाइसेंसिंग प्रणालीः वह प्रणाली जिसमें किसी भी उद्योग को स्थापित करने या स्थापित करने के लिए सरकार की मंजूरी आवश्यक होती है।
- **बाजार तंत्रः** मांग, आपूर्ति और कीमतों के बीच परस्पर क्रिया और प्रतिक्रिया। कीमतों में बदलाव के लिए निर्णय लेने वाली इकाइयाँ।
- **मिश्रित अर्थव्यवस्थाः** एक आर्थिक प्रणाली जहां निजी और सार्वजनिक क्षेत्र सह– अस्तित्व में होते है।
- **रुग्ण उद्योगः** एक ऐसे उद्योग या उद्यम को दर्शाता है जो अर्थिक बीमारी या आर्थिक संकट का सामना कर रहा है। इस शब्द का उपयोग आमतौर पर उद्योगों के लिए किया जाता है जो व्यापारिक विकास, उत्पादकता या आर्थिक लाभमार्जी में कमी या कमजोरी का सामना कर रहे हैं।

5.11 आवश्यक प्रश्न

प्रश्न 1. सरकार की प्रचारात्मक भूमिका से आप क्या समझते हैं, समझाइये।

प्रश्न 2 सरकार की नियामक भूमिका की प्रकृति और निहितार्थ की व्याख्या अपने शब्दों मे करें।

प्रश्न 3 व्यापार जगत में सरकार की भूमिका के उद्यमशीलता चरित्र की व्याख्या करें।

प्रश्न 4 व्यवसाय में सरकार की नियामक भूमिका की संरचना में कौन– सी समस्याएँ आती हैं? उन पर कैसे काबू पाया जा सकता है!!

प्रश्न 5 भारत के औद्योगिक क्षेत्र में सरकार द्वारा विकास में नियोजक भूमिका के क्रियान्वयन की व्याख्या करें।

प्रश्न 6 1991 में नई औद्योगिक नीति की घोषणा के बाद व्यवसाय के संदर्भ में सरकार की भूमिका की प्रकृति और आयामों का परीक्षण करें।

प्रश्न 7 :मेंक इन इण्डिया नीति के अनुसार सार्वजनिक क्षेत्र के लिए प्राथमिकता वाले क्षेत्रों का उल्लेख करें।

प्रश्न 8 व्यवसाय संचालन को बढ़ावा देने में सरकार के विभिन्न कार्यों का वर्णन करें।

प्रश्न 9 सरकार की उद्यमशीलता भूमिका के नए आयामों का उल्लेख करें।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- नीति भसीन . 2018, भारत में व्यापार करने में आसानी अतीत , वर्तमान और भविष्य।
- के. अश्वथप्पा, बिजनेस एनवायरनमेंट फॉर स्ट्रैटेजिक मैनेजमेंट, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुंबई।
- ऐनी ओ क्रुगर 2011, आर्थिक नीति सुधार और भारतीय अर्थव्यवस्था।
- एस.के. मिश्रा और वी. के. पुरी, इंडियन इकोनॉमी, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- बी.बी.टंडन और के.के. टंडन, भारतीय अर्थव्यवस्था, टाटा मैकग्रा हिल, नई दिल्ली।
- परमतम प्रकाश आर्य, बी बी टंडन ऽ 2003, भारत में आर्थिक सुधारः पहली से दूसरी पीढ़ी और उससे आगे.....

इकाई 6 व्यापक आर्थिक नोतियाँ

इकाई रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 व्यापक आर्थिक नीति का अर्थ

6.3 राजकोषीय नीति का अर्थ

6.4 भारत में राजकोषीय नीति के उपकरण.

6.4.1 मुद्रा जुटाने की विधियां

6.4.2 मुद्रा व्यय करने की विधियों

6.5 भारत की बजटीय रूपरेखा

6.5.1 बजट का संक्षिप्त प्रारूप

6.5.2 घाटे के मापन

6.5.3 सकल राजकोषीय घाटे के वित्तीयन के साधन

6.6 राजकोषीय नीति के उद्देश्य

6.7 मौद्रिक नीति का अर्थ

6.7.1 केन्द्रीय बैंक

6.7.2 मुद्रा आपूर्ति

6.7.3 मौद्रिक नीति के उद्देश्य

6.8 भारत में मौद्रिक नीति के उपकरण

6.8.1 मात्रात्मक उपकरण

6.8.2 गुणात्मक उपकरण

6.9 भारतीय रिजर्व बैंक की भूमिक

6.10 सारांश

6.11 उपयोगी शब्दावली

6.12 महत्वपूर्ण प्रश्न

6.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप इस योग्य हो सकेगें कि–

- आर्थिक नीति की अवधारणा को समझ सकेगें;
- राजकोषीय नीति का अर्थ और उद्देश्यो को सूचिबद्ध कर सकेगें
- राजकोषीय नीति के साधनो पर प्रकाश डाल सकेगें
- मौद्रिक नीति की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेगें
- केन्द्रीय बैंक का अर्थ एवं कार्य समझ सकेगें
- भारत में मुद्रा आपूर्ति की अवधारणा को विश्लेषित कर सकेगें तथा
- मौद्रिक नीति के मात्रात्मक और गुणात्मक उपकरणों के बीच अंतर कर सकेगें

6.1 प्रस्तावना

अर्थशास्त्र में मैक्रो शब्द का अर्थ है 'किसी राष्ट्र से संबंधित' जिस क्रम में वृहत आर्थिक नीति का अर्थ होता है किसी देश की आर्थिक पहलुओं के बारे में एक नीति। यह नीति देश की केंद्र सरकार द्वारा बनाई जाती है और इसका पालन विभिन्न सरकारी विभागों या विशेष संस्थानों द्वारा किया जाना अनिवार्य होता है।

इस नीति का उद्देश्य होता है देश के कृषि, उद्योग, सेवाओं, रोजगार, धन आपूर्ति, ऋण, कर, सरकारी खर्च आदि के क्षेत्र में विशिष्ट नीतियों का पालन कराना। ये नीतियां कुछ मामलों में विशेष आर्थिक क्षेत्रों को प्रभावित भी करती हैं दूसरे शब्दो में ये अन्य मामलों में पूरी आर्थिक प्रणाली को प्रभावित करती हैं।

सामान्य भाषा में समझाने के लिए, आप इसे देश की आर्थिक योजना के रूप में नामकरण प्रदान कर सकते हैं। इस योजना के अनुसार सरकार कृषि क्षेत्र के विकास, धन आपूर्ति की व्यवस्था, रोजगार के अवसर, शिक्षा के सुधार आदि पर ध्यान देती है। इसके माध्यम से सरकार इन क्षेत्रों में सुधार करने के लिए नीतियां बनाती है और इनके पालन को सुनिश्चित करने के लिए निर्देशानुक्रम तैयार करती है।

6.2 व्यापक आर्थिक नीति का अर्थ

लेकिन व्यापक आर्थिक नीति लक्ष्य, कुटीर आर्थिक नीति से काफी अलग हैं क्योंकि अर्थव्यवस्था की समग्र प्रतिक्रिया अलग– अलग इकाइयों के साथ मेल नहीं खाना चाहिए। जैसा व्यापक आर्थिक नीति देखता है कुल मिलाकर, इसके उद्देश्य स्वरूप में सामूहिक ही होता है। आइये इसके कुछ महत्वपूर्ण उद्देश्यो को सूचिबद्ध करते हुए क्रमवार समझने का प्रयास करें–

1. **पूर्ण रोजगारः** पूर्ण रोजगार और मूल्य स्थिरता प्राप्त करने के लक्ष्यों के संदर्भ में किसी भी सरकार के प्रदर्शन का आकलन किया जाता है। इन

दोनों को अर्थव्यवस्था के स्वास्थ्य के प्रमुख संकेतक कहा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, आधुनिक सरकारें बेरोजगारी और मुद्रास्फीति दोनों दरों को कम करने का लक्ष्य रखती हैं। बेरोजगारी मुख्य रूप से श्रम शक्ति और अन्य उत्पादक की अनैच्छिक आलस्य को संदर्भित करती है।अब पूर्ण रोजगार की प्राप्ति को व्यापक आर्थिक लक्ष्य नहीं माना जाता है।

2. **मूल्य स्थिरताः** भारतीय अर्थव्यवस्था मे मूल्य स्थिरता पर जोर दिया गया है। मूल्य स्थिरता से हमारा तात्पर्य अपरिवर्तित कीमत से नहीं होना चाहिए समय के साथ प्रत्येक स्तर पर परिवर्तन हो सकते है। यह जरूरी नहीं है कि कीमतों में बढ़ोतरी स्वागत योग्य नहीं है, खासकर अगर यह भीतर एक उचित और अनुपातिक सीमा के हो दूसरे शब्दों में, कीमतों में बड़े पैमाने पर उतार–चढ़ाव हमेशा स्वागत योग्य नहीं होते हैं।

3. **आर्थिक विकासः** बाजार अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास कभी स्थिर नहीं होता है। ये अर्थव्यवस्थाएं उनके प्रदर्शन में गिरावट और उतार–चढ़ाव का अनुभव करती हैं। अर्थशास्त्री आर्थिक प्रदर्शन में ऐसे उतार–चढ़ाव को व्यापार चक्र कहते हैं अल्पावधि में ऐसे उतार–चढ़ाव अवसाद या समृद्धि प्रदर्शित कर सकते हैं। अर्थव्यवस्था के प्रदर्शन को मापने के लिए महत्वपूर्ण बेंचमाक्र में से एक की दर है समय की अवधि में उत्पादन में वृद्धि। आर्थिक विकास के तीन प्रमुख 'स्रोत हैं, आइये इन्हें समझे–(i) श्रम बल की वृद्धि, (ii) पूंजी निर्माण, और (iii) तकनीकी प्रगति।

4. **भुगतान संतुलन और विनिमय दर स्थिरताः** व्यापक आर्थिक नीति दृ ष्टिकोण से, मुद्रा विनियम के सन्दर्भ में कोई दिखा सकता है कि एक अंतरराष्ट्रीय लेनदेन अलग है घरेलू लेनदेन से। समय के साथ, सभी देशों का उद्देश्य देश में और बाहर वस्तु सेवाओं और संपत्तियों के संतुलित प्रवाह का ही होता है। जब भी ऐसा होता है, कुल अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक भंडार को स्थिर माना जाता है। यदि किसी देश का निर्यात आयात से अधिक हो जाता है, तो वह भुगतान संतुलन अधिशेष का अनुभव करता है या भंडार का संचय, जैसे सोना और विदेशी मुद्रा। जब देश भंडार खो देता है, यह भुगतान संतुलन घाटे का अनुभव करता है (या आयात निर्यात से अधिक)। हालांकि, की कमी भंडार एक अर्थव्यवस्था के अस्वास्थ्यकर प्रदर्शन को दर्शाता है और इस प्रकार विभिन्न समस्याएं पैदा करता है। यही कारण है कि हर देश का लक्ष्य पर्याप्त मात्रा में विदेशी मुद्रा भंडार का निर्माण और संचमन करना होता है।

5. **सामाजिक उद्देश्यः** व्यापक आर्थिक नीति का उपयोग सामाजिक कल्याण को प्राप्त करने के लिए भी किया जाता है। इस का मतलब है कि आय वितरण को अधिक निष्पक्ष और न्यायसंगत बनाने की आवश्यकता होती है। पूंजीवादी बाजार आधारित समाज में कुछ लोगों को दूसरों से अधिक मिलता है। सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए, नीति निर्माता व्यापक आर्थिक नीति उपकरणो का क्रियान्यवयन सुनिश्चित करते है। चूंकि हमारे व्यापक आर्थिक लक्ष्य आमतौर पर "पूर्ण रोजगार","मूल्य स्थिरता","आर्थिक विकास, भुगतान संतुलन और विनिमय दर स्थिरता, और सामाजिक उद्देश्य" तक ही सीमित नहीं हैं। हम दो प्रकार के नीति उपकरणों पर विचार करना चाहते हैं। भारतीय ''उद्योग के दिग्गज'' मौद्रिक नीति और राजकोषीय नीति को इसके अन्तर्गत रखते है। संपूर्ण अर्थव्यवस्था में ये दोनों कुल मांग को बदलने के लिए नीतियों को नियोजित करते है जिसमे – कुल उत्पादन (जीएनपी/जीडीपी),कीमतें, मजदूरी और ब्याज दरें आदि इसमें बदलाव लाया जा सके।

6. **मौद्रिक नीति** अर्थव्यवस्था में कुल मांग को स्थिर करने का प्रयास करती है इसके अन्तर्गत किसी अर्थव्यवस्था में पैसे की उपलब्धता या कीमत, यानी ब्याज की दर को प्रायः सम्मिलित किया जाता है। मौद्रिक नीति को केंद्रीय बैंक के नियंत्रण में नियोजित एवं क्रियान्वित करने वाली नीति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है व्यापक आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए एक साधन के रूप में धन का तथा दूसरी ओर, राजकोषीय नीति का उद्देश्य सरकार के कर–व्यय–ऋण कार्यक्रम में परिवर्तन करके कुल मांग को प्रभावित करना है।

6.3 राजकोषीय नीति का अर्थ

राजकोषीय नीति का उद्देश्य देश में और समय– समय पर भिन्न होता है, देश और समय विशेष की अर्थव्यवस्था की प्रकृति पर निर्भर करता है। राजकोषीय नीति सरकार की खर्च, कराधान और उधार के संबंध में नीति को संदर्भित करती है। राजकोषीय नीति का अर्थ होता है एक सरकार द्वारा बनाई जाने वाली एक ऐसी नीति जो देश के राजकोष के प्रबंधन से संबंधित होती है। यह नीति संबंधित देश की आर्थिक विकास योजनाओं, कर नीतियों, राजकोषीय नियोजन और वित्तीय स्थिरता जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों पर आधारित होती है। राजकोषीय नीति राज्य के आर्थिक विकास और देश के अर्थव्यवस्था के लिए अहम होती है और इसे संभालने के लिए केंद्र और राज्य सरकार एक साथ काम करते हैं।

राजकोषीय नीति का उपयोग सरकारी खर्च कर नीतियों और आर्थिक स्थितियों को प्रभावित करने के लिए किया जाता है। राजकोषीय नीति बड़े हिसाब से ब्रिटिश अर्थशास्त्री जॉन मेनार्ड केन्स के विचारों से आधारित है।

इसी क्रम में प्रसिद्ध अर्थशास्ती केन्स ने यह दावा किया था कि सरकारें बाजारों को अकेले ठीक करने के बजाय व्यवस्था के उत्पादन को स्थिर कर सकती हैं और वाणिज्यिक चक्र को संतुलित रख सकती हैं। एक विस्तारक राजकोषीय नीति अर्थसंचय की मांग को बढ़ाने और आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने के लिए कर दरों को कम करती है या खर्च को बढ़ाती है। एक संक्षिप्त राजकोषीय नीति में महंगाई को रोकने या कम करने के लिए कर दरों को बढ़ाती है या खर्चों को कम करती है। आइये अध्ययन को पूर्णतः प्रदान करने के लिये राजकोषीय घाटे के कुछ सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं को क्रमशः समझनें का प्रयास करें–

(क) **<u>सकारात्मक पहलू</u>** : इसके अन्तर्गत निम्न को सूचिबद्ध किया जा सकता है–

(i) **सरकारी खर्च में वृद्धिः** राजकोषीय घाटा जिससे सरकार सार्वजनिक सेवाओं, बुनियादी ढांचे और अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर खर्च बढ़ाने के लिए सरकार को शक्ति प्रदान करता है; जिससे सरकार आर्थिक विकास को प्रोत्साहित कर सकती है।

(ii) **वित्त सार्वजनिक निवेशः** सरकार राजकोषीय घाटे के माध्यम से बुनियादी ढांचा परियोजनाओं जैसे दीर्घकालिक निवेशों को वित्तपोषित कर सकती है।

(iii) **रोजगार सृजनः** सरकारी खर्च में वृद्धि से रोजगार सृजन हो सकता है, जो बेरोजगारी को कम करने और रोजगार में वृद्धि करने में मदद कर सकता है जिससे जीवन स्तर में वृद्धि होती है।

(ख) **<u>नकारात्मक पहलू</u>**: इसके अन्तर्गत निम्न को सूचिबद्ध किया जा सकता है।

(i) **बढ़ा हुआ कर्ज का बोझः** एक लगातार उच्च राजकोषीय घाटा सरकारी कर्ज में वृद्धि, की ओर जाता है; जो आने वाली पीढ़ियों पर कर्ज चुकाने का दबाव डालती है और अर्थव्यवस्था सदैव दवाब में रहती है।

(ii) **मुद्रास्फीति का दबावः** बड़े राजकोषीय घाटे से धन की आपूर्ति में वृद्धि और उच्च मुद्रास्फीति हो सकती है, जिससे आम जनता की क्रय

शक्ति शनैः क्षीण होती जाती है।

(iii) **निजी निवेश से बाहर निकलनाः** सरकार को राजकोषीय घाटे को वित्तपोषित करने के लिए भारी उधार लेना पड़ सकता है, जिससे ब्याज दरों में वृद्धि हो सकती है, और निजी क्षेत्र के लिए ऋण प्राप्त करना मुश्किल हो सकता है। इस प्रकार निजी निवेश को कम करना धीरे–धीरे न्यूनतम कर लेना ही उचित प्रतीत होती है।

(iv) **भुगतान संतुलन की समस्याः** यदि कोई देश बड़े राजकोषीय घाटे से गुजर रहा है, तो उसे विदेशी स्रोतों से उधार लेना पड़ सकता है, जिससे विदेशी मुद्रा भंडार में कमी आ सकती है और भुगतान संतुलन पर दबाव पड़ सकता है।

6.4 भारत में राजकोषीय नीति के उपकरण

भारतीय अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत राजकोषीय नीति के निम्नलिखित उपकरण उपलब्ध है। आइये क्रमशः इन्हें सूचिबद्ध करते हुए समझने का प्रयास करें।

- **कर एवं कराधान** – कर ही राष्ट्र की आय का मुख्य स्रोत हैं। कर एवं कराधान नीति के द्वारा एक प्रकार से सरकार राष्ट्र की आय को निर्धारित करती है। करों को निर्धारित करके सामाजिक न्याय एवं संतुलित विकास जैसे उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है।

- **सार्वजनिक व्यय** – सरकार सार्वजनिक व्यय की घोषणा करके, आने वाले साल के लिए अपने खर्चों का एक विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत करती है। इससे यह पता चलता है कि सरकार किस क्षेत्र में कितना व्यय करने वाली है।

- **सार्वजनिक ऋण** – सरकार सदा ही मुनाफे में नहीं रहती हैं(जब कुल व्यय, कुल आय से अधिक होता है)। ऐसी स्थिति में घाटे का वित्तपोषण करने के लिए सार्वजनिक ऋण लिया जाता है। सरकारें सार्वजनिक ऋण दो प्रकार से प्राप्त करती हैं पहला आंतरिक जोकि राष्ट्र के लोगों से ही बॉण्ड के माध्यम से लिया जाता है एवं बाहरी ऋण जोकि अन्य देशों ध अंर्तराष्ट्रीय संस्थाओं से लिया जाता है।

- **निवेश एवं विनिवेश नीति** – नए रोजगार सृजन एवं अपनी आय को बढ़ाने के लिए सरकार राजकोषीय नीति में आने वाले वर्ष के लिए निवेश एवं विनिवेश को बता कर ये स्पष्ट करती है कि इस क्षेत्र में कितना निवेश एवं किस क्षेत्र से विनिवेश किया जाए।

- **बजट**– भारत में बजट सरकार की मुख्य राजकोषीय नीति है। सालाना बजट वित्त मंत्रालय द्वारा पेश किया जाता है जो सरकार के आर्थिक योजनाओं और नीतियों को प्रदर्शित करता है। एक बजट किसी विशिष्ट भविष्य काल के लिए ऑपरेशन की एक विस्तृत योजना होती है। भारत के वित्त मंत्री द्वारा बजट प्रस्तुत किया जाता है। बजट को वर्ष के वार्षिक वित्तीय विवरण के रूप में भी जाना जाता है। रक्षा, आंतरिक सुरक्षा और अन्य आवश्यक खर्चों के लिए आवश्यक आवश्यताएं पूरी तरह से प्रदान की गई हैं।

6.4.1 मुद्रा जुटाने की विधियां :– अध्ययन में उपयागिता की दृष्टि से मुद्रा जुटाने में निम्नलिखित विधियों को सम्मिलित किया जा सकता है आइये इन्हें सूचीबद्ध कर समझने का प्रयास करें–

(क) **कर राजस्वः** कर भारत के सरकारी राजस्व का एक मुख्य स्रोत है। कर भारत के नागरिकों के लिए सीधे लाभ की उम्मीद के बिना सरकार को दिए जाने वाले अनिवार्य भुगतान हैं। यह भारत में जुटाए गए कुल राजस्व का लगभग 80% योगदान देता है। कर राजस्व निम्नलिखित स्रोतों से आता हैः

(ख) **कस्टमः** यह देश की सीमा पर स्थित कस्टम बिन्दु पर जमा किया जाता है। इसमें निर्यात कर और आयात कर शामिल हैं। यह भारत के कुल कर राजस्व का लगभग 35% योगदान देता है।

(ग) **सामान और सेवाओं के उत्पादन पर करः** इसमें व्यायाम कर, बिक्री कर, वैट, ठेकेदार कर, सड़क कर, एयरफ्लाइट कर आदि शामिल हैं। संपत्ति, लाभ और आय पर करः इस स्रोत में आयकर, वाहन कर और ब्याज पर कर शामिल हैं।

(घ) **भूमि रजिस्ट्री और रजिस्ट्रेशनः** इसमें भूमि कर और भूमि और घर के पंजीकरण शुल्क शामिल हैं।

(च) **राजस्व रसीदः** इसमें कर्राजस्व और अन्य राजस्व शामिल होते हैंः

- **कर राजस्वः** केंद्र सरकारद्वारा लगाए गएकर औरअन्य शुल्क होते हैं।
- **अन्य राजस्वः** सरकार के द्वारा की गई निवेश पर ब्याज और डिविडेंड, शुल्क और सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली अन्य सेवाओं के लिए रसीद होती है।

(छ) **पूंजीगत प्राप्तियां:** इसमें सार्वजनिक क्षेत्र से ऋण लिया जाता है जिसे मार्केट ऋण कहा जाता है, रिजर्व बैंक और अन्य पक्षों से सरकार द्वारा उधार लिए गए ऋण, विदेशी निकायों और सरकारों से प्राप्त ऋण और संघ सरकार द्वारा राज्यों और संघ राज्य के सरकारों और अन्य पक्षों को दिए गए ऋण के आधार पर होती है।

6.4.2 मुद्रा व्यय करने की विधियों:–

इसकी प्रमुख विधियां निम्नवत् है:–

(क) **गैर–योजनाबद्ध व्यय:** केंद्र सरकार का गैर–योजनाबद्ध व्यय राजस्व व्यय और पूंजीगत व्यय में बंटता है। राजस्व व्यय में ब्याज भुगतान, रक्षा राजस्व व्यय, प्रमुख सब्सिडी (निर्यात, खाद्य एवं उर्वरक), ब्याज और अन्य सब्सिडी, किसानों को कर्ज माफी, डाक घाटा, पुलिस, पेंशन और अन्य सामान्य सेवाएं, सामाजिक सेवा, आर्थिक सेवा (कृषि, उद्योग, ऊर्जा, परिवहन, संचार, विज्ञान और प्रौद्योगिकी इत्यादि) और राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों, और विदेशी सरकारों को दिए गए अनुदान शामिल होते हैं। पूंजीगत गैर–योजनाबद्ध व्यय में रक्षा पूंजीगत व्यय, सार्वजनिक उद्यमों को ऋण, राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों को ऋण और विदेशी सरकारों को ऋण जैसी आइटम शामिल होती है।

(ख) **योजनाबद्ध व्यय:** योजनाबद्ध व्यय कृषि, ग्रामीण विकास, सिंचाई और बाढ़ नियंत्रण और ऊर्जा, खनिज, परिवहन, संचार, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, पर्यावरण, सामाजिक सेवाएं और अन्य उद्योग शामिल हैं। योजना व्यय में राज्यों और संघ राज्यों की योजनाओं के लिए केंद्रीय सहायता भी शामिल है, जिसे निम्नलिखित तालिका से अप को समझाने का प्रयास किया गया है।

Budget Estimates for 2020-2021	
Non-Plan Expenditure	Rs. 24,46,940 crore
a. Interest Payments	Rs. 7,06,292 crore
b. Defence Services:	Rs. 3,23,053 crore
c. Central Police Forces:	Rs. 1,12,369 crre

d. Subsidies	Rs. 2,27,794 crore
e. Pension:	Rs. 1,43,489 crore
f. Other Non-Plan Expenditure	Rs. 9,33,943 crore
Plan Expenditure	Rs. 5,95,290 crore
a. Central Plan	Rs. 4,39,947 crore
b. Central Assistance to States and UTs	Rs. 1,55,342 crore

(ग) राजस्व व्ययः इसमें सरकारी विभागों और विभिन्न सेवाओं के सामान्य चलन के लिए खर्च, सरकार द्वारा उठाए गए कर्ज के ब्याज, अनुदान आदि शामिल होते हैं। ऐसे व्यय जो संपत्ति के निर्माण में न हो, राजस्व व्यय के रूप में उपयोग किया जाता है।

(ध) पूंजी भुगतानः ये भुगतान संपत्ति के अधिग्रहण पर पूंजी व्यय से मिलते हैं जैसे भूमि, इमारतें, मशीनरी, उपकरण, बुनियादी ढांचे पर अधिग्रहण, सहभागिता में निवेश आदि और ऋण और संघ सरकार द्वारा राज्य और संघ राज्य सरकार कंपनियों, निगमों और अन्य पक्षों को दिए गए ऋण और अग्रिम के रूप में दिए गए ऋण और सहायता से मिलते हैं।

6.5 भारत का बजटीय रूपरेखा

भारत का बजट दो भागों में विभाजित होता है – राज्य बजट और केंद्र सरकार बजट। अध्ययन के महत्व की यहां हम केंद्र सरकार के बजट के बारे में चर्चा करेंगे।

केंद्र सरकार के बजट में राजकोषीय विवरण दिया जाता है जो उपलब्ध राशि के वित्तीय वर्ष के दौरान खर्च किये जाने वाले विभिन्न विषयों पर ध्यान देता है। यह खर्च कुल खर्च में से राज्य के साथ संयुक्त खर्चों को भी शामिल करता है। केंद्र सरकार के बजट में खर्च दो वर्गों में विभाजित किया जाता है यथा– योजनाबद्ध खर्च और गैर योजनाबद्ध खर्च।

राज्य बजट उन वित्तीय नियोजनों को दर्शाता है जो राज्य सरकार द्वारा निर्धारित किए गए होते हैं। राज्य बजट राज्य सरकार द्वारा निर्धारित विभिन्न योजनाओं, परियोजनाओं और कार्यक्रमों के लिए निधियों को नियत करता है। राज्य

बजट में राज्य सरकार के आम खजाने से जुड़े विभिन्न मुद्दों पर विस्तार से बताया जाता है, जिसमें उनके विभिन्न सेवा वित्तीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिए व्यय करने की योजना शामिल होती है। राज्य बजट में वित्तीय वर्ष के लिए राज्य की आय और खर्च की अनुमानित सूचना शामिल होती है। राज्य बजट भी केंद्र सरकार के बजट से विभिन्न होते हैं।

6.5.1 बजट का संक्षिप्त प्रारूप

बजट अंतिम रूप देने के बाद, उसे मुद्रित कर दस्तावेज बनाया जाता है, जिसमें व्यय और राजस्व के विस्तृत प्रमुखों द्वारा राजस्व और व्यय के अनुमानों को बहुत विस्तार से रखा जाता है। इसमें सरकार द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में खर्च की जाने वाली राशि के साथ–साथ आय की भी जानकारी होती है। बजट प्रस्तुत करने से पहले, सरकार विभिन्न स्तरों पर राजस्व बढ़ाने के नए प्रस्तावों को गुप्त रखती है, ताकि ये प्रस्ताव बजट घोषणा से पहले खुलासा नहीं किया जाता है। इस तरह सरकार बजट की घोषणा के समय अपने राजस्व का विस्तृत अनुमान लगा सकती है और उसे अपनी आर्थिक योजनाओं के अनुसार बदल सकती है। आइये इसे निम्नलिखित तालिका से समझने का प्रयास करें।

	वास्तविक 2018 -19	बजटीय 2019 -20	संशोधित 2019 -20	बजटीय 2020 -21	परिवर्तन का % (संअ 2019-20 से बअ 2020-21)
राजस्व व्यय	20,07,399	24,47,780	23,49,645	26,30,145	11.9%
पूंजीगत व्यय	3,07,714	3,38,569	3,48,907	4,12,085	18.1%
कुल व्यय	**23,15,113**	**27,86,349**	**26,98,552**	**30,42,230**	**12.7%**
राजस्व प्राप्तियां	15,52,916	19,62,761	18,50,101	20,20,926	9.2%
पूंजीगत प्राप्तियां	1,12,779	1,19,828	81,605	2,24,967	175.7%
इनमें से:					
लोन्स की रिकवरी	18,052	14,828	16,605	14,967	-9.9%
अन्य प्राप्तियां (विनिवेश सहित)	94,727	1,05,000	65,000	2,10,000	223.1%
कुल प्राप्तियां (उधारियों के बिना)	**16,65,695**	**20,82,589**	**19,31,706**	**22,45,893**	**16.3%**
राजस्व घाटा	4,54,483	4,85,019	4,99,544	6,09,219	22.0%
जीडीपी का %	**2.4**	**2.3**	**2.4**	**2.7**	
राजकोषीय घाटा	6,49,418	7,03,760	7,66,846	7,96,337	3.8%
जीडीपी का %	**3.4**	**3.3**	**3.8**	**3.5**	
प्राथमिक घाटा	66,770	43,289	1,41,741	88,134	-37.8%
जीडीपी का %	**0.4**	**0.2**	**0.7**	**0.4**	

6.5.2 घाटे के माप

जब सरकार राजस्व प्राप्ति से अधिक व्यय करती है, तो इस स्थिति को बजटीय घाटा कहते हैं। इस घाटे की पूर्ति के लिए कई उपाय किए जाते हैं, जिनका अर्थव्यवस्था पर अलग–अलग प्रभाव पड़ता है। आइये इसके धटको को क्रमशः समझने का प्रयास करें:–

राजस्व घाटा: राजस्व घाटा सरकार की राजस्व प्राप्तियों के ऊपर राजस्व व्यय के अधिशेष को बताता है।यह राजस्व प्राप्तियों पर सरकार के राजस्व व्यय की अधिकता को संदर्भित करता है। राजस्व घाटे में केवल उन्हीं लेन–देनों को शामिल किया जाता है, जिनसे सरकार के वर्तमान आय और व्यय पर प्रभाव पड़ता है। जब सरकार को राजस्व घाटा प्राप्त होता है, तो इससे संकेत मिलता है कि सरकार अधिक खर्च कर रही है और अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों की बचतों का उपयोग अपने उपभोग संबंधी व्यय के कुछ हिस्सो को पूरा करने के लिए कर रही है।

इस स्थिति में, सरकार को न केवल अपने निवेश के लिए अपितु अपने उपभोग संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भी ऋण ग्रहण करना पड़ेगा। इससे ऋणों और व्याज दायित्वों का निर्माण होगा और सरकार को अंततोगत्वा अपने व्यय में भी कटौती करने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। चूँकि राजस्व व्यय का एक बड़ा भाग व्यय के लिए प्रतिबद्ध होता है, इसीलिए इसमें कटौती नहीं की जाएगी। बहुधा सरकार उत्पादक पूँजीगत व्यय अथवा कल्याण संबंधी व्यय में कटौती करती है। इसके परिणामस्वरूप विकास की गति धीमी होती है और कल्याण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

राजकोषीय घाटा, सरकार के कुल व्यय और उसके कुल राजस्व (उधार को छोड़कर) के बीच का अंतर है। यह उस सीमा का संकेतक है जिस तक सरकार को अपने कार्यों को वित्तपोषित करने के लिए उधार लेना चाहिए और इसे देश की सकल घरेलू आय के प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है ।

एक उच्च राजकोषीय घाटे से मुद्रास्फीति, मुद्रा का अवमूल्यन और हो सकता है जिससे कर्ज के बोझ में वृद्धि हो सकती है। जबकि कम राजकोषीय घाटे को राजकोषीय अनुशासन के सकारात्मक संकेत के रूप में देखा जाता है जिससे एक स्वस्थ अर्थव्यवस्था की स्थापना होती है।

राजस्व घाटे को समझाने का सूत्र निम्नवत् है:–

राजस्व घाटा = राजस्व व्यय – राजस्व प्राप्तियां

(क) प्राथमिक घाटा: प्राथमिक घाटा राजकोषीय घाटा माइनस ब्याज

भुगतान के बराबर होता है। यह पिछले वर्षों के दौरान लिए गए ऋणों पर ब्याज भुगतान पर किए गए व्यय को ध्यान में नहीं रखते हुए, सरकार की व्यय आवश्यकताओं और इसकी प्राप्तियों के बीच के अंतर को इंगित करता है। इसके लिये निम्नवत् सूत्र की रचना की गई है।

प्राथमिक घाटा = राजकोषीय घाटा – ब्याज भुगतान

(ख) प्रभावी राजस्व घाटाः यह पूंजीगत संपत्ति के निर्माण के लिए राजस्व घाटे और अनुदान के बीच का अंतर है। सार्वजनिक व्यय पर रंगराजन समिति द्वारा प्रभावी राजस्व घाटे की अवधारणा का सुझाव दिया गया है।

6.5.3 सकत राजकोषीय घाटे के वित्तीयन के साधन

सरकार को राजकोषीय घाटे को वित्तपोषित करने के लिए विभिन्न विकल्पों की तलाश करनी होगी। भारत में राजकोषीय घाटे से अभिप्राय 'उधार और अन्य देयताओं' से है। यह घाटे की सबसे व्यावहारिक धारणा है जिससे केन्द्रीय सरकार के सामने घाटा पूरा करने की समस्या की तीव्रता का पता चलता है। घाटा पूरा करने (वित्तियन) के प्रमुख स्त्रोत, महत्व के अनुसार निम्नवत् है; आइये इन्हें क्रमशः समझने का प्रयास करें:–

- **उधारः** राजकोषीय घाटे को आंतरिक स्रोतों (सार्वजनिक, वाणिज्यिक बैंकों आदि) या बाहरी स्रोतों (विदेशी सरकारों, अंर्तराष्ट्रीय संगठनों आदि) से उधार लेकर पूरा किया जा सकता है।

- **घाटे का वित्तपोषण (नई मुद्रा की छपाई):** राजकोषीय घाटे को पूरा करने के लिए सरकार अपनी प्रतिभूतियों के विरुद्ध आरबीआई से उधार ले सकती है। इसके लिए आरबीआई नई करेंसी जारी करता है। इस प्रक्रिया को घाटे के वित्तपोषण के रूप में जाना जाता है। उधार को एक बेहतर स्रोत माना जाता है क्योंकि वे पैसे की आपूर्ति में वृद्धि नहीं करते हैं जिसे मुद्रास्फीति का मुख्य कारण माना जाता है। दूसरी ओर, अधिक मुद्रा आपूर्ति के कारण घाटे की वित्त व्यवस्था अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति की प्रवृत्ति को जन्म दे सकती है।

- **लघु बचतें, लोक भविष्य निधि, सेवा निवृत्त हाने वाले कर्मचारियों के लिए जमा योजनाः** इससे संबंधित है भारत सरकार की वह अभ्यास जिसमें उसने सरकारी संरचनाओं को जनता के खातों में जमा धन वित्तीय संपत्तियों के रूप में जारी किया है, जो जैसे जन सुविधा योजना (पीपीएफ), नेशनल सेविंग्स सर्टिफिकेट (एनएससी), किसान विकास पत्र (केवीपी) आदि छोटी बचत योजनाओं के तहत

जमा किए गए होते हैं। ये छोटी बचत योजनाएं राष्ट्रीय छोटी बचत निधि (एनएसएफ) द्वारा प्रबंधित की जाती हैं। इन योजनाओं के तहत इकट्ठा किए गए फंड एनएसएफ द्वारा सरकारी सुरक्षितता में निवेश किए जाते हैं, जो जनता के लिए एक सुरक्षित और सुरक्षित निवेश विकल्प प्रदान करते हैं जबकि उन्हें राजकोषीय घाटे को वित्तपोषित करने के लिए फंड के रूप में भी मदद मिलती है।

- **बाजार ऋणः** ऋण सरकारी प्रतिभूतियाँ बेचकर प्राप्त किये जाते हैं। सरकार राजकोषीय घाटे को वित्तपोषित करने के लिए विदेशी सरकारों, अंर्तराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं या निजी उधारदाताओं से कर्ज ले सकती है। इसे बाहरी कर्ज कहा जाता है।

- **स्वर्ण बांड** : इन बांडों के माध्यम से आम जनता के पास पड़े सोने का संग्रहण किया जाता है। यह सरकारी रिजर्व में वृद्धि लाता है।

- **विदेशी सहायताः** इसमें विदेशों से लिए गये ऋण आते हैं।

- **राज्य भविष्य निधियों (राज्य प्रोविडेंट फंड)ः** सरकार राज्य प्रोविडेंट फंड से भी कर्ज ले सकती हैं, जो राज्य सरकारों के कर्मचारियों को रिटायरमेंट लाभ प्रदान करने के लिए बनाए गए निवेश फंड होते हैं।

- **कैश बैलेंस घटानाः** सरकार अपनी नकद रजिस्टर को उपयोग करके अपनी राजकोषीय घाटे को वित्तपोषित करने के लिए उपयोग कर सकती है। इसे कैश बैलेंस घटाना कहा जाता है।

6.6 राजकोषीय नीति के उद्देश्य

राजकोषीय नीति के मुख्य उद्देश्य अर्थव्यवस्था की स्थिरता, मूल्य स्थिरता और संप्रभुता को सुनिश्चित करना है। इसके अलावा यह समाज में समानता बढ़ाने और न्यायपूर्ण अवसरों को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक अनुप्रयोग भी करती है। इसके द्वारा देश की आर्थिक विकास को संभव बनाया जाता है और उच्च अवसरों की रचना की जाती है। इसके अन्तर्गत निम्न को सम्मिलित कर अध्ययन किया जा सकता हैः–

- **<u>संसाधनों की गतिशीलता :</u>** सरकार अपनी नीतियों के द्वारा तीनो क्षेत्रों– प्राथमिक, द्वितीय एवं तृतीय क्षेत्र के बीच संतुलन बनाते हुए, अपने सभी संसाधनों में गतिशीलता लाने का प्रयास करती है।

- **<u>मूल्य स्थिरता :</u>** अर्थव्यवस्था में मूल्य स्थिरता बनाये रखना मौद्रिक नीति के अंतर्गत आता है, परन्तु मूल्य स्थिरता को बनाये रखना राजकोषीय नीति का भी उद्देश्य है, जिससे की अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फिति (पदसिंजपवद) को कम रखा

जा सके।

- **सामाजिक न्याय :** राजकोषीय नीति के द्वारा सरकार 'कर नीति' को लागू करती है, जिसके अनुसार उच्च वर्ग से अधिक कर तथा गरीब एवं निम्न वर्ग के लोगों से कम अथवा कोई कर नहीं लिया जाता है ताकि समाज में सामाजिक न्याय सुनिश्चित हो सके।

- **पूर्ण रोजगार सृजन :** अपने सभी नागरिकों को रोजगार उपलब्ध कराना एवं राष्ट्र की बेरोजगारी दर को कम से कम रखना सरकार का प्रमुख उद्देश्य होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सरकार अपनी राजकोषीय नीति बनाते समय केवल मुनाफे को ही नहीं बल्कि रोजगार सृजन को भी ध्यान में रखती है। उदाहरणः मनरेगा योजना। (Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act, 2005 - MGNREGA)

- **आय और धन की असमानताओं में कटौती :** राजकोषीय नीति का उद्देश्य समाज के विभिन्न वर्गों के बीच आय असमानताओं को कम कर बराबरी या सामाजिक न्याय प्राप्त करना है। प्रत्यक्ष करों जैसे आयकर की दर गरीब लोगों की तुलना में अमीर लोगों के लिए अधिक होती है। सेमी लक्जरी और लक्जरी वस्तुएं जिनका उपयोग ज्यादातर उच्च मध्यम वर्ग और मध्यम वर्ग द्वारा किया जाता है, पर अप्रत्यक्ष करों में भी इसी तरह की प्रक्रिया अपनाई जाती है। समाज में गरीब लोगों की स्थिति में सुधार करने के लिए गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में कर राजस्व का एक महत्वपूर्ण अनुपात के रूप में सरकारी निवेश किया है।

- **राष्ट्रीय आय में बढ़ोत्तरी :** यह राजकोषीय नीति की ताकत है कि इसमें अर्थव्यवस्था में वांछित परिणाम लाने की शाक्ति होती है। जब सरकार देश की आय में वृद्धि करना चाहती है तो तब सरकार देश में प्रत्यक्ष • और अप्रत्यक्ष करों की दरों में वृद्धि कर देती है। इसी तरह कुछ अन्य उपाय भी है, जैसे – कर दरों में कमी ताकि अधिक से अधिक लोग वास्तविक कर जमा करने के लिए प्रेरित हो सकें।

- **भुगतान संतुलन एवं संतुलित विकास :** इस नीति के द्वारा सरकार अपने राष्ट्र के आयात एवं निर्यात में भुगतान संतुलन को बनाये रखती है, जिससे कि राष्ट्र का संतुलित विकास संभव हो सके।

6.7 मौद्रिक नीति का अर्थ

मौद्रिक नीति वह उपकरण है जिसका उपयोग अर्थव्यवस्था में धन और उधार के आयाम को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है। अन्य शब्दों में,

यह सरकार की नीति होती है जो केंद्रीय बैंक, अर्थात भारत के मामले में आरबीआई द्वारा कार्यान्वित की जाती है, के माध्यम से निर्धारित आर्थिक उद्देश्य जैसे मूल्य स्थिरता, विनिमय स्थिरता, पूर्ण रोजगार और आर्थिक विकास को प्राप्त करने के लिए किया जाता है।

मौद्रिक नीति का अर्थ होता है उधार के नियंत्रण पर नियंत्रण। क्रेडिट को प्रभावित करने के लिए केंद्रीय बैंक के उपकरणों को क्रेडिट नियंत्रण के उपकरण कहा जाता है। इनमें बैंक दर नीति, खुले बाजार ऑपरेशन, रिजर्व अनुपात में परिवर्तन और उपभोक्ता क्रेडिट नियंत्रण, नैतिक प्रेरणा आदि जैसे मात्रात्मक उपकरण शामिल हैं।

6.7.1 केन्द्रीय बैंक क्या है?

भारत में केंद्रीय बैंक एक स्वतंत्र राष्ट्रीय प्राधिकरण है जो मौद्रिक नीति का संचालन करता है, बैंकों को नियंत्रित करता है, और आर्थिक अनुसंधान सहित वित्तीय सेवाएं प्रदान करता है। इसका लक्ष्य देश की मुद्रा को स्थिर करना, बेरोजगारी को कम रखना और मुद्रास्फीति को रोकना है।केंद्रीय बैंक स्वतंत्र प्राधिकरण हैं,जिसके पास मौद्रिक नीति से संबंधित कई कर्तव्य हैं द्य केंद्रीय बैंकों का उद्देश्य किसी देश की मुद्रा और अर्थव्यवस्था को स्थिर रखना है।

भारत में केंद्रीय बैंक अपने सदस्य बैंकों से मिलकर एक बोर्ड द्वारा शासित होते हैं। देश का मुख्य निर्वाचित अधिकारी निदेशकों की नियुक्ति करता है। राष्ट्रीय विधायी निकाय उन्हें मंजूरी देता है। यह केंद्रीय बैंक को देश के दीर्घकालिक नीतिगत लक्ष्यों के साथ जोड़े रखता है। साथ हीयह अपने दैनिक कार्यों में राजनीतिक प्रभाव से मुक्त है। भारत में केंद्रीय बैंक की जिम्मेदारी राष्ट्रीय स्तर पर भुगतान प्रणालियों के विकास को सुनिश्चित करना और आगे बढ़ाना है। भारत में, यह जिम्मेदारी भारतीय रिजर्व बैंक के पास निहित है। आइये भारतीय अर्थव्यवस्था के क्रेन्द्र बिन्दु अपने क्रेन्द्रीय बैंक अर्थात भारतीय रिर्जव बैंक के प्रमुख कार्यो को सूचिबद्ध करते हुए समझने का प्रयास करें:–

- **मुद्रा नीति का प्रबंधनः** केंद्रीय बैंक मुद्रा नीति को निर्धारित करता है और मुद्रा आपूर्ति को नियंत्रित करता है। इसके लिए यह बैंक ब्याज दरों, नकद रहस्यता नीति और बैंकों के रिजर्व नियंत्रण को भी निर्धारित करता है।
- **वित्तीय स्थिरताः** केंद्रीय बैंक से संबंधित बैंक उचित वित्तीय गतिविधियों का पालन करने के लिए प्रतिबद्ध होते हैं। इसके लिए केंद्रीय बैंक बैंकों के साथ बैंकिंग नियम और नियमों को निर्धारित करता है और उन्हें निगरानी और अनुशासन करता है।

- **बैंकिंग सेवाएं:** केंद्रीय बैंक वित्तीय नीति के अलावा बैंकिंग सेवाओं भी प्रदान करता है, जैसे कि अन्य बैंकों के लिए ऋण उपलब्धता, संरचनात्मक वित्तीय समाधान और वित्तीय निवेश सलाह।

- **वित्तीय संरचना:** केंद्रीय बैंक ने भारतीय वित्तीय बाजार के विकास और वित्तीय संरचना के विकास में अहम भूमिका निभाई है। इसके लिए यह बैंक भारतीय वित्तीय बाजार को संरचित करता है, बैंकों के लिए आवश्यक ऋण उपलब्धता को सुनिश्चित करता है, विभिन्न वित्तीय संस्थाओं को नियंत्रित करता है और वित्तीय निवेश सलाह प्रदान करता है।

- **नियंत्रण:** केंद्रीय बैंक भारत में वित्तीय संस्थाओं के लिए नियंत्रणकर्ता के रूप में काम करता है। इसके लिए यह बैंक संस्थाओं की वित्तीय स्थिति और उनकी संरचना का निरीक्षण करता है और नियमों के अनुसार उन्हें नियंत्रित करता है।

- **वित्तीय संस्थाओं का विकास:** केंद्रीय बैंक भारत में विभिन्न वित्तीय संस्थाओं के विकास और प्रबंधन के लिए अहम भूमिका निभाता है। इसके लिए यह बैंक वित्तीय संस्थाओं की वित्तीय स्थिति और संरचना के अनुसार नीति निर्धारित करता है और उनकी वित्तीय संरचना में सुधार करता है।

6.7.2 भारत मुद्रा आपूर्ति की अवधारणा

वैश्विक रूप से धन के दो मूल मापदंड होते हैं: संक्षिप्त और विस्तृत। पहले में आमतौर पर जनता के साथ मुद्रा और बैंकों के साथ मांग जमा शामिल होती है। दूसरा बैंकों के साथ समय जमा शामिल करता है। भारत में मुद्रा आपूर्ति दो तरह से परिभाषित की जा सकती है:; आइये इसे समझने का प्रयास करें:–

(क) संक्षिप्त मुद्रा आपूर्ति: इसमें मुद्रा का संचार कुछ स्थायी स्रोतों जैसे रिजर्व बैंक के रिजर्व, सरकारी संपत्तियों के खाते और बैंकों की स्थायी जमा शामिल होती है।

(ख) विस्तृत मुद्रा आपूर्ति: इसमें संक्षिप्त मुद्रा आपूर्ति के साथ समय जमा जैसे सामान्य बचत खाते, कुछ आश्रित कंपनियों के खाते और विदेशी मुद्रा शामिल होती है।

इन दोनों आपूर्तियों का योग वर्तमान मुद्रा आपूर्ति देता है। हम जानते है कि मुद्रा आपूर्ति के मापदंड भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा नियंत्रित किए जाते हैं। 1998 तक, भारत में धन के चार घटकों की गणना भारतीय मुद्रा नीति में की गई थी, जो अब पुराने धन के माप के रूप में जाने जाते हैं।ये मुद्रास्फीति के पैसे के

मापदंड के रूप में जाने जाते हैं।

समुच्चयध उपाय इस प्रकार हैं:

$\mathbf{M_1}$ = जनता के पास करेंसी, यानी सिक्के और करेंसी नोट. मांग जमा छ बैंकों के पास. अन्य जमा भारतीय रिजर्व बैंक के पास।

$\mathbf{M_2}$ = M_1. डाक घर की बचत।

$\mathbf{M_3}$ = M_2 बैंकों के साथ जनता की सावधि जमाय इसे व्यापक धन के रूप में भी जाना जाता है।

$\mathbf{M_4}$ = M_3. बचत और पोस्ट ऑफिस के साथ सावधि जमा।

पैसे की आपूर्ति की चार अवधारणाओं में से, आरबीआई केवल दो अवधारणाओं पर जोर देता है, सामान्य धन या संकीर्ण मुद्रा (M_1) और व्यापक अर्थों में मुद्रा आपूर्ति (M_3), जिसमें लोगों के M_1 सावधि जमा शामिल हैं। किनारा। M_3 को व्यापक धन या लोगों के कुल मौद्रिक संसाधन के रूप में भी जाना जाता है।

6.7.3 मौद्रिक नीति के उद्देश्य

मौद्रिक नीति का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य मूल्य स्थिरता के साथ विकास करना है। भारत जैसे गरीब देश में विकास की ललक इतनी अधिक है कि बचत की आपूर्ति निवेश की मांग के साथ तालमेल बिठाने में विफल रहती है। वांछित बचत और निवेश के बीच की खाई को तब धन और ऋण के विस्तार से पाट दिया जाता है। अध्ययन को पूर्णतः प्रदान करने के लिये मौद्रिक नीति के निम्नलिखित उद्देश्यो को समझना अति महत्वपूर्ण है:–

1. **मूल्य स्थिरता:** व्यवसाय के नियमित कार्य के लिए एक निश्चित मात्रा में ऋण की आवश्यकता होती है। जब उत्पादक उत्पादन में लगे होते हैं, तो उन्हें कच्चे माल, मजदूरी, परिवहन और विपणन पर खर्च करना पड़ता है जो उत्पाद की बिक्री के बाद ही वसूल किया जाएगा। इस बीच, उन्हें इन गतिविधियों को जारी रखने के लिए धन की आवश्यकता होती है। आम तौर पर उनके पास खुद की इतनी नकदी नहीं होती और उन्हें बैंक से कर्ज लेना पड़ता है।

2. **विदेशी निवेशकों को आकर्षित करना:** मौद्रिक नीति का एक और उद्देश्य विदेशी निवेशकों को देश में निवेश के लिए आकर्षित करना होता है। यह उद्देश्य विदेशी संचारों के माध्यम से धन के प्रवाह को विस्तारित करता है। अन्य उद्देश्यों में एक उद्देश्य विदेशी मुद्रा के बढ़ते उपयोग का

संभवन समेत करना होता है। इससे निर्यात के साथ–साथ आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विदेशी मुद्रा का उपयोग किया जा सकता है।

3. **आर्थिक विकास को सुनिश्चित करना:** मौद्रिक नीति का एक और महत्वपूर्ण उद्देश्य आर्थिक विकास को सुनिश्चित करना होता है।

4. **पूर्ण रोजगार:** पूर्ण रोजगार को मौद्रिक नीति के प्रमुख उद्देश्यों में स्थान दिया गया है। यह न केवल इसलिए महत्वपूर्ण लक्ष्य है क्योंकि बेरोजगारी संभावित उत्पादन की बर्बादी की ओर ले जाती है, बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठा और आत्म– सम्मान की हानि के कारण भी है।

5. **नियंत्रित विस्तार:** व्यापार चक्र को नियंत्रित करें, निर्यात और स्थानापन्न आयात को बढ़ावा दें, प्राथमिकता वाले क्षेत्र के लिए अधिक ऋण सुनिश्चित करके बचत और विस्तार को बढ़ावा दें।

6. **बैंकिंग को विनियमित और विस्तारित करने के लिए:** कृषि ऋण को बढ़ावा देने के लिए शाखाओं की स्थापना के लिए विभिन्न बैंकों को निर्देश दें।

7. **मौद्रिक नीति के अन्य उद्देश्य:** भारत में मौद्रिक नीति का एक प्रमुख उद्देश्य पिछड़े और प्राथमिकता वाले क्षेत्रों– कृषि और लघु उद्योग को पर्याप्त मात्रा में ऋण सुनिश्चित करना है और जमाखोरी और सट्टेबाजी जैसे अनुत्पादक उद्देश्यों से ऋण के विचलन को रोकना भी है। एक अन्य प्रमुख उद्देश्य विदेशी मुद्राओं के संबंध में रुपये के विनिमय मूल्य को बनाए रखना है।

6.8 भारत में मौद्रिक नीति के उपकरण

भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक नीति के उपकरणों को दो मुख्य श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है–

- मात्रात्मक उपकरण
- गुणात्मक उपकरण

मात्रात्मक उपकरण साख की कुल मात्रा को प्रभावित करते हैं अर्थात् ये साख की कुल मात्रा को बढ़ाते अथवा घटाते हैं जबकि गुणात्मक उपकरण साख की दिशा की प्रभावित करते हैं। यदि अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी दबाव हैं तो साख को संकुचित किया जाता है और यदि अर्थव्यवस्था में आर्थिक मंदीध्अपस्फीतिकारी दबाव है तो साख का विस्तार किया जाता है मात्रात्मक उपायों द्वारा साख को

अनुत्पादक उद्देश्यों से कम करके उत्पादक उद्देश्यों के लिए बढाया जाता है।

6.8.1 मात्रात्मक उपकरण

मात्रात्मक उपकरण साख की कुल मात्रा को प्रभावित करते हैं अर्थात् ये साख की कुल मात्रा को बढ़ाते अथवा घटाते हैं जबकि गुणात्मक उपकरण साख की दिशा की प्रभावित करते हैं। यदि अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी दबाव हैं तो साख को संकुचित किया जाता है और यदि अर्थव्यवस्था में आर्थिक मंदीध्अपस्फीतिकारी दबाव है तो साख का विस्तार किया जाता हैं मात्रात्मक उपायों द्वारा साख को अनुत्पादक उद्देश्यों से कम करके उत्पादक उद्देश्यों के लिए बढाया जाता है। आइये इससे सम्बन्धित प्रमुख उपकरणों को समझने का प्रयास करें:–

(क) बैंक दर – जिस दर पर देश का केंद्रीय बैंक वाणिज्य बैंकों को ऋण देता है या वाणिज्य बैंकों की प्रथम श्रेणी के विनिमय बिलों व सरकारी प्रतिभूतियों पर कटौती काटता है, उसे बैंक दर या कटौती कहा जाता है।बँक दर से अभिप्राय उस ब्याज दर से हैं जिस पर केन्द्रीय बैंक वाणिज्यिक बैंकों को अल्पकालीन ऋण देता है। यदि अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी दबाव है तो बैंक दर को बढ़ा दिया जाता है, क्योंकि बैंक दर बढ़ने पर वाणिज्यिक बैंक भी ऋणों की ब्याज दर बढ़ा देते हैं और बाजार में साख की माँग कम हो जाती है। दूसरी ओर आर्थिक मंदी के समय भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा बैंक दर कम कर दी जाती है इससे ब्याज दर कम हो जाती हैं और साख की माँग बढ़ जाती है। बैंक दर को बट्टा दर भी कहते हैं। यह वह दर है जिस पर केंद्रीय बैंक छूट देता है, या अधिक सटीक रूप से पुनः छूट देता है, पात्र बिल।

वस्तुतः व्यापक अर्थ में यह उस न्यूनतम दर को संदर्भित करता है जिस पर केंद्रीय बैंक अंतिम उपाय के ऋणदाता के रूप में अपने कार्य के निर्वहन में वाणिज्यिक बैंकों को वित्तीय आवास प्रदान करता है। बैंक दर पुनर्वित्त और पुनर्वितरण सुविधाओं की मूल लागत है। आरबीआई अधिनियम, 1934 की धारा 49 इसे उस मानक दर के रूप में परिभाषित करती है जिस पर बैंक एक्सचेंज या अन्य पात्र वाणिज्यिक पत्र के बिलों को खरीदने या फिर से भुनाने के लिए तैयार होता है। बैंक दर की तकनीक और पुनर्वित्त के विवेकाधीन नियंत्रण का उपयोग पुनर्वित्त की लागत और उपलब्धता को विनियमित करने और बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थानों के उधार देने योग्य संसाधनों की मात्रा को बदलने के लिए किया जाता है।

इस प्रकार यदि मौद्रिक नीति प्रभावी है, तो बैंक दर में परिवर्तन प्रमुख उधार दर को प्रभावित करता है। बैंक दर में किसी भी वृद्धि का मतलब है कि अब

आरबीआई बैंकों से अग्रिमों के खिलाफ उच्च ब्याज दर वसूल करेगा, इसलिए इसका परिणाम वाणिज्यिक बैंकों द्वारा ली जाने वाली ब्याज दर में वृद्धि के रूप में होता है। इसका परिणाम निम्न स्तर के निवेश और निम्न स्तर की मुद्रास्फीति के रूप में होता है। मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने के लिए, 1991 में बैंक दर को 10: से बढ़ाकर 12: कर दिया गया था।

(ख) रेपो दर – वह ब्याज दर जिस पर केन्द्रीय बैंक व्यावसायिक बैंकों को अल्पकाल के लिए ऋण प्रदान करता है, रेपो दर कहलाता है। रेपो दर वह दर है जिस पर वाणिज्यिक बैंक अपनी वित्तीय प्रतिभूतियों को केंद्रीय बैंक को बेचकर छोटी अवधि के लिए केंद्रीय बैंक से पैसे उधार लेते हैं। इन प्रतिभूतियों को ऋण के लिए सुरक्षा के रूप में गिरवी रखा जाता है। इसे पुनर्खरीद दर कहा जाता है क्योंकि इसमें वाणिज्यिक बैंक बिक्री प्रतिभूतियां शामिल हैं बाद में उन्हें पुनर्खरीद करने के समझौते के साथ आरबीआई को पैसे उधार लेने के लिए तारीख और एक पूर्व निर्धारित मूल्य पर।

अतिरिक्त मांग की स्थिति में मुद्रास्फीति के लिए अग्रणी – केंद्रीय बैंक रेपो दर बढ़ाता है जो वाणिज्यिक बैंकों को केंद्रीय बैंक से उधार लेने में हतोत्साहित करता है क्योंकि इससे वाणिज्यिक बैंक की उधार लेने की लागत में वृद्धि होगी।यह वाणिज्यिक बैंकों को अपनी उधार दरों को बढ़ाने के लिए मजबूर करता है, जो उधारकर्ताओं को ऋण लेने से हतोत्साहित करता है, जो निवेश को हतोत्साहित करता है। फिर से उच्च ब्याज दर परिवारों को उपभोग पर व्यय को सीमित करके अपनी बचत बढ़ाने के लिए प्रेरित करती है।इस प्रकार, निवेश और खपत पर खर्च कम हो जाता है, जो अतिरिक्त मांग को नियंत्रित करेगा।

कमी की स्थिति में अपस्फीति के लिए अग्रणी मांग – केंद्रीय बैंक रेपो दर घटाता है जो वाणिज्यिक बैंकों को केंद्रीय बैंक से उधार लेने के लिए प्रोत्साहित करता है, क्योंकि इससे वाणिज्यिक बैंक की उधार लेने की लागत कम हो जाएगी। रेपो दर में कमी वाणिज्यिक बैंकों को अपनी उधार दरों को कम करने के लिए मजबूर करती है, जो उधारकर्ताओं को ऋण लेने के लिए प्रोत्साहित करती है, जो निवेश को प्रोत्साहित करता है। फिर से ब्याज की कम दर परिवारों को उपभोग पर खर्च बढ़ाकर अपनी बचत कम करने के लिए प्रेरित करती है।इस प्रकार, निवेश और उपभोग पर व्यय में वृद्धि होती है, जो कमी की माँग को नियंत्रित करेगा।

(ग) रिवर्स रेपो दर– वह दर जिस पर भारतीय रिजर्व बैंक वाणिज्यिक बैंक से पैसा उधार लेता है।

अत्यधिक मांग की स्थिति में मुद्रास्फीति की ओर अग्रसर होने की स्थिति में, रिवर्स रेपो दर में वृद्धि की जाती है, यह वाणिज्यिक बैंक को निष्क्रिय नकदी पर उच्च रिटर्न अर्जित करने के लिए केंद्रीय बैंक के साथ अपने धन को पाक्र करने के लिए प्रोत्साहित करती है। यह वाणिज्यिक बैंकों की ऋण देने की क्षमता को कम करता है, जो अतिरिक्त मांग को नियंत्रित करता है।

कमी की मांग की स्थिति में अपस्फीति की स्थिति में, रिवर्स रेपो दर कम हो जाती हैय यह वाणिज्यिक बैंक को अपनी निधियों को केंद्रीय बैंक के पास रखने के लिए हतोत्साहित करता है। यह वाणिज्यिक बैंकों की ऋण देने की क्षमता को बढ़ाता है, जो कमी की मांग को नियंत्रित करता है।

(घ) नकद आरक्षित अनुपात – सीआरआर उस नकदी को संदर्भित करता है जिसे बैंकों को अपनी मांग और समय देनदारियों के एक निश्चित प्रतिशत के रूप में आरबीआई के पास रखना होता है। प्रत्येक व्यापारिक बैंक को अपने पास कुल जमा राशियों का एक न्यूनतम अनुपात केन्द्रीय बैंक के पास कानूनन जमा करना होता है। इसे नकद आरक्षित अनुपात कहते हैं। सीआरआर में वृद्धि वाणिज्यिक बैंक के पास नकदी को कम कर देती है जिसके परिणामस्वरूप बाजार में मुद्रा की कम आपूर्ति, उच्च ब्याज दर और कम मुद्रास्फीति होती है।

(च) वैधानिक तरलता अनुपात –एस एल आर से अभिप्राय वाणिज्यिक बैंकों की तरल परिसंपतियों से है जो उन्हें अपनी कुल जमाओं के न्यूनतम प्रतिशत के रूप मैं अपने पास रखने की आवश्यकता होती है। बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 24 के तहत, वाणिज्यिक बैंकों को नकदी, सोना और अभारग्रस्त अनुमोदित प्रतिभूतियों के रूप में उनकी कुल मांग और सावधि जमा के कम से कम 25ः के बराबर तरल संपत्ति बनाए रखनी होती है। देनदारियों। इसे वैधानिक तरलता आरक्षित आवश्यकताओं के रूप में जाना जाता है। एसएलआर के तीन प्रमुख उद्देश्य होते हैं–

- बैंक क्रेडिट के विस्तार को प्रतिबंधित करने के लिए
- सरकारी प्रतिभूतियों में बैंकों के निवेश को बढ़ाने के लिए
- बैंकों की सॉल्वेंसी सुनिश्चित करने के लिए

(छ) खुले बाजार की क्रियाए– देश के रिजर्व बँक द्वारा वाणिज्यिक बैंकों के साथ नकद आरक्षित की मात्रा को प्रभावित करने के लिए खुले बाजार में सरकारी प्रतिभूतियों की बिक्री और खरीद शामिल है और इस प्रकार वे औद्योगिक और वाणिज्यिक क्षेत्रों में किए जा सकने वाले ऋण और अग्रिमों की मात्रा को प्रभावित करते हैं। खुले बाजार के संचालन के लिए वातावरण काफी अनुकूल है

क्योंकि देश में सरकारी प्रतिभूति बाजार काफी विकसित है। वर्तमान में, भारतीय रिजर्व बैंक सरकारी प्रतिभूतियों, ट्रेजरी बिलों और अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों में खरीद और बिक्री संचालन करने के लिए अधिकृत है।

आरबीआई को अल्पकालिक वाणिज्यिक बिलों को खरीदने और बेचने का भी अधिकार है। जब रिजर्व बैंक (केंद्रीय बैंक) बाजार में प्रतिभूतियों को बेचना प्रारंभ करता हैं तो वाणिज्य बैंकों के नकदी कोषों में कमी आ जाती है, इसके परिणामस्वरूप साख की उपलब्धता को कम कर देती है। प्रतिभूतियों की बिक्री के माध्यम से आरबीआई बैंकिंग क्षेत्र के जमा संसाधनों का एक हिस्सा वापस ले लेता है, जिससे बैंकों के पास ऋण देने के लिए उपलब्ध संसाधन कम हो जाते हैं। इससे पैसे की आपूर्ति कम हो जाती है, जिससे मुद्रास्फीति कम हो जाती है। विपरीत तब होता है जब आरबीआई प्रतिभूतियां खरीदता है। विक्रेता बैंकों के पास प्रतिभूतियों का स्टॉक कम हो जाता है और उनके पास नकदी का विस्तार होता है। यह बैंकों की साख सृजन क्षमता को बढ़ाता है, ब्याज दरों को कम करता है और निवेश के स्तर को बढ़ाता है। कुछ मौद्रिक अर्थशास्त्रियों और बैंकरों का दावा है कि बैंक दर नीति और खुले बाजार के संचालन मौद्रिक प्रबंधन के क्षेत्र में पूरक उपाय हैं।

6.8.2 गुणात्मक उपकरण

ये साख निर्माण के ये उपकरण हैं जो साख की मात्रा को प्रभावित नहीं करते बल्कि साख के प्रवाह को किसी विशेष क्षेत्र की ओर निर्दिष्ट करते हैं। ये मुख्यतः तीन प्रकार के हैं होते हैं। आइये इन्हें क्रमशः सूचिबद्ध कर समझने का प्रयास करें:–

- **सीमांत आवश्यकता**– ऋणों की सीमान्त आवश्यकता से तात्पर्य बैंक द्वारा दिए गए ऋण तथा गिरवी रखी गई वस्तु के वर्तमान मूल्य से हैं। सामान्यतः कोई व्यक्ति जितने मूल्य की वस्तु जमानत के तौर पर बैंक के पास रखता है, बैंक उससे कम का ऋण देता है। इस अन्तर को रखने का उद्देश्य यह होता है कि वस्तु के मूल्य में कमी होने पर बैंक को नुकसान न हो आदि। करोड़ की प्रतिभूतियों पर बैंक 80 लाख ऋण देता है तो सीमांत आवश्यकता 20: है और यदि वह 60 लाख का ऋण देता है तो सीमांत आवश्यकता 40: हैं। सीमान्त आवश्यकता बढ़ने पर उधारकर्ता की ऋण लेने की क्षमता कम हो जाती है तथा इसके विपरीत रिजर्व बॅंक जिस क्षेत्र में ऋण की उपलब्धता बढ़ाना चाहता है उस क्षेत्र के ऋणों के लिए सीमान्त आवश्यकता कम कर देगा जैसे 1 करोड़ की प्रतिभूतियों पर शिक्षा ऋण 90 लाख तक का भी

दिया जा सकता है। इस प्रकार यह साख के प्रवाह की एक विशेष दिशा प्रदान करता है।

- **प्रत्यक्ष कार्यवाही**– यदि सदस्य बैंक इसके निर्देशों का पालन नहीं करते हैं तो केंद्रीय बैंक सदस्य बैंकों के खिलाफ सीधी कार्यवाही शुरू कर सकता है। प्रत्यक्ष कार्यवाही में देश की बैंकिंग प्रणाली के सदस्य के रूप में एक वाणिज्यिक बैंक की मान्यता समाप्त करना शामिल है।

- **साख की राशनिंग**– साख की राशनिंग से तात्पर्य विभिन्न वाणिज्यिक क्रियाओं के लिए साख की मात्रा का कोटा निर्धारण करना है। ऋण देते समय वाणिज्यिक बैंक किसी विशेष क्षेत्र को कोटे की सीमा से अधिक ऋण नहीं दे सकते।

- **नैतिक प्रभाव**– नैतिक अनुनय का तात्पर्य केंद्रीय बैंकों द्वारा वाणिज्यिक बैंकों को केंद्रीय बैंक की सामान्य मौद्रिक नीति के साथ सहयोग करने के लिए अनुनय, अनुरोध, अनौपचारिक सुझाव, सलाह और अपील करना है। कभी–कभी केन्द्रीय बैंक सदस्य बैंकों पर नैतिक प्रभाव डालकर उन्हें साख नियंत्रण के लिए अपनी नई नीति के अनुसार काम करने के लिए सहमत कर लेते हैं। केन्द्रीय बैंक का लगभग सभी वाणिज्यिक बैंकों पर नैतिक प्रभाव है।

  i. अत्यधिक मांग की स्थिति में मुद्रास्फीति की ओर अग्रसर होने की स्थिति में, यह ऋण संकुचन की अपील करता है।

  ii. अपस्फीति की ओर ले जाने वाली मांग में कमी की स्थिति में, यह ऋण विस्तार की अपील करता है।

6.9 भारतीय रिजर्व बैंक की भूमिका

1921 में, भारत सरकार ने इंपीरियल बैंक को भारत के केन्द्रीय बैंक के रूप में स्थापित किया। लेकिन यह बैंक बहुत सफल नहीं रहा। केन्द्रीय बैंकिंग एनक्वायरी कमेटी की सिफारिश पर, 1 अप्रैल, 1935 को, भारतीय रिजर्व बैंक की कार्य शुरू हुई। त्ठप् के सभी शेयर कैपिटल का आधा स्वामित्व प्रारंभ में निजी सहभागियों के पास था। यह 1949 में राष्ट्रीयकृत किया गया था। इसका मुख्यालय मुंबई में है और इसकी शाखाएं नई दिल्ली, कोलकाता, चेन्नई, बैंगलोर, कानपुर, अहमदाबाद, हैदराबाद, पटना और नागपुर में हैं।

रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया भारत का केन्द्रीय बैंक है। यह भारत सरकार के अधीन होता है और भारत की मुद्रा नीति को निर्धारित करता है। रिजर्व बैंक बैंकिंग, मुद्रा और आर्थिक नीति के क्षेत्र में अर्थव्यवस्था का नेतृत्व करता है। इसका

मुख्य उद्देश्य भारतीय अर्थव्यवस्था मे स्थिरता, सुधार और विकास को सुनिश्चित करना होता है। रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया ने भारतीय बैंकों के लिए नियम और निर्देश तैयार किए हैं और उनके वित्तीय गतिविधियों को नियंत्रित करता है। इसके अलावा, यह भारत की मुद्रा संरचना और नियंत्रण के लिए पूर्णतः जिम्मेदार होता है। इसके प्रमुख उत्तरदायित्व निम्नवत् हैः–

1. **मुद्रा जारी करनाः** संस्था का मुख्य कार्य भारत में मुद्रा नोट और सिक्कों का जारी करना है। यह सुनिश्चित करता है कि देश में मुद्रा की पर्याप्त आपूर्ति होती है जो सार्वजनिक और अर्थव्यवस्था की मांग को पूरा करती है।

2. **सरकार के बैंकरः** आरबीआई भारत की केंद्रीय और राज्य सरकारों के बैंकर के रूप में काम करता है। यह उनके बैंकिंग लेनदेन का प्रबंधन करता है, उनके खातों को बनाए रखता है और अस्थायी नकदी विपणि में किसी भी अस्थायी नकदी के असंतुलन को पूरा करने के लिए छोटी अवधि ऋण सुविधाएँ प्रदान करता है।

3. **बैंकर का बैंकः** रिजर्व बैंक के पास वाणिज्यिक बैंकिंग प्रणाली को नियंत्रित करने के विस्तृत अधिकार होते हैं। सभी अनुसूचित बैंकों को उनकी मांग और समयीक दायित्व के लिए रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित न्यूनतम नकदी रिजर्व बनाए रखने की अधिकारिक अवधारणा होती है। इसके साथ ही, इससे रिजर्व बैंक बैंक की जमा उत्पादक योग्यता को निर्धारित करता है। रिजर्व बैंक सेङ्यूल कमर्शियल बैंकों और राज्य सहकारी बैंकों को मंजूर किए गए प्रत्याहार्थित बिलों के बिना छूट देने, लोन और स्वीकृत सुरक्षात्मक प्रतिभूतियों के खिलाफ आग्रह देने जैसी वित्तीय सहायता प्रदान करता है। रिजर्व बैंक की यह उम्मीद होती है कि वह बैंकों की किसी भी संकट में मदद करेगा। रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया न केवल एक बैंकर का बैंक है, बल्कि यह एक अंतिम रक्षक के रूप में भी काम करता है।

4. **बैंकिंग प्रणाली का नियामकः** आरबीआई भारत की बैंकिंग प्रणाली का मुख्य नियामक है। यह नए बैंकों को लाइसेंस जारी करता है, बैंकों के काम करने के दिशानिर्देश तैयार करता है, बैंकों की निरीक्षण और समीक्षा करता है, और बैंकिंग प्रणाली की स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए जरूरी कार्यवाही लेता है।

5. **क्रेडिट कंट्रोलरः** आरबीआई क्रेडिट कंट्रोलर के रूप में काम करता है। इस प्रकार, यह क्रेडिट की मात्रा और उसकी उपलब्धता की दर को नियंत्रित करता है। यह सामान्य और चयनित नियंत्रणों का उपयोग करके

ऐसा करता है।

6. **वित्तीय बाजारों का नियामकः** भारत में रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया वित्तीय बाजारों का भी नियामक है, जिसमें मनी मार्केट, सरकारी प्रतिभूति बाजार और विदेशी मुद्रा बाजार शामिल हैं। इसे इन बाजारों की कार्यप्रणाली के लिए नियम और विनियम बनाने का काम होता है, उनके संचालन की निगरानी करता है और आवश्यकता अनुसार हस्तक्षेप करता है ताकि स्थिरता बनाए रखी जा सके।

7. **विकासात्मक भूमिकाः** रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया भारतीय अर्थव्यवस्था में विकासात्मक भूमिका भी निभाता है। इसे खेती, लघु उद्योग और निर्यात जैसे प्राथमिक क्षेत्रों का समर्थन करने के लिए विभिन्न क्रेडिट सुविधाएं प्रदान की जाती है। यह बैंक सभी वर्गों को बैंकिंग सेवाओं के पहुंच योग्य होने की सुनिश्चित करके वित्तीय समावेशन को बढ़ावा देता है।

8. **मौद्रिक नीति के कार्यकारीः** भारत की मौद्रिक नीति के कार्यकारी के लिए आरबीआई जिम्मेदार है। यह नकद रिजर्व अनुपात, वाधानिक नकदता अनुपात और रेपो दर जैसे विभिन्न उपकरणों का उपयोग करके अर्थव्यवस्था में नकदी की आपूर्ति को प्रबंधित करता है और मुद्रास्फीति को नियंत्रित करता है।

9. **अंतिम आश्रय का करदाताः** आरबीआई भारत में बैंकिंग प्रणाली के लिए अंतिम आश्रय का करदाता के रूप में कार्य करता है। वित्तीय संकट के समय, यह बैंकों को आपातकालीन नकदी सहायता प्रदान करता है ताकि उनकी निवासीता और स्थिरता सुनिश्चित हो सके।

10. **विदेशी मुद्रा प्रबंधनः** आरबीआई देश के विदेशी मुद्रा भंडार का प्रबंधन करता है और भारत में विदेशी मुद्रा बाजार को नियामकता करता है। यह विदेशी मुद्रा से संबंधित नीतियों का तैयारी और बैंकों और अन्य बाजार सहभागियों के लिए दिशानिर्देश जारी करता है।

वस्तुतः, भारतीय अर्थव्यवस्था और वित्तीय प्रणाली के संतुलन और विकास को बनाए रखने में भारतीय रिजर्व बैंक एक महत्वपूर्ण अभिभावक की भूमिका निभाता है।

6.10 सारांश

मौद्रिक नीति आरबीआई द्वारा विनियमित देश में मुद्रा की आपूर्ति के बारे में होती है। हालांकि आरबीआई यह राजकोषीय नीति और के मैक्रो उद्देश्यों के

आलोक में करता है सरकार, यह इस अर्थ में है कि राजकोषीय नीति और मौद्रिक नीति पूरक हैं।

राजकोषीय नीति देश के मुख वित्त अधिकारी अर्थात राज्य के वित्त मंत्री द्वारा तैयार की गई देश की योजित बैलेंस शीट है। सार्वजनिक वित्त देश के विकास के लिए संसाधन उत्पन्न करने और उन संसाधनों के आवंटन का अध्ययन है। रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया की यह उम्मीद होती है कि वह बैंकों की किसी भी संकट में मदद करेगा। रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया न केवल एक बैंकर का बैंक है, बल्कि यह एक अंतिम रक्षक के रूप में भी काम करता है।

बाहरी आघातों के विरुद्ध भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा मुद्रा पूर्ति का स्थिरीकरण बाह्य आघातों के विरुद्ध भारतीय रिजर्व बैंक स्थिरीकरण के द्वारा मुद्रा की पूर्ति को स्थिर करता है।स्थिरीकरण का अर्थ है भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा विदेशी विनिमय अंतः प्रवाह में वृद्धि के विरुद्ध मुद्रा की पूर्ति को स्थायी रखने के लिए किये गए हस्तक्षेप से हैं। स्थिरीकरण के अन्तर्गत भारतीय रिजर्व बैंक विदेशी विनिमय की मात्रा के बराबर की मात्रा में सरकारी प्रतिभूतियों की बिक्री खुले बाजार में करता है। स्थिरीकरण के अन्तर्गत भारतीय रिजर्व बैंक विदेशी विनिमय की मात्रा के बराबर की मात्रा में सरकारी प्रतिभूतियों की बिक्री खुले बाजार में करता है। जिससे अर्थव्यवस्था में कुल मुद्रा अप्रभावित रहती है।

व्यापक आर्थिक नीतियां एक देश की आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने, राजकोषीय नीतियों के माध्यम से राज्य के राजकोष का प्रबंधन करने, मौद्रिक नीतियों के जरिए मुद्रा के प्रबंधन और भारतीय रिजर्व बैंक के माध्यम से आर्थिक सुरक्षा को सुनिश्चित करने के उद्देश्यों को साधना करती हैं।

व्यापक आर्थिक नीति का अर्थ है एक देश की संपूर्ण आर्थिक गतिविधियों को समझने और विकसित करने का एक व्यापक तथा विश्वसनीय योजना तैयार करना। राजकोषीय नीति एक राष्ट्र के राजकोष को प्रबंधित करने और संचयन और व्यय को नियंत्रित करने का एक योजना या प्रक्रिया है। भारत में राजकोषीय नीति के उपकरण मुद्रा जुटाने और मुद्रा व्यय करने की विधियां शामिल हैं। भारत का बजटीय रूपरेखा राजकोष के आय और व्यय को विवरणात्मक रूप से दर्शाता है। भारत में मौद्रिक नीति मौद्रिक नीति के उपकरणों को समझने और विकसित करने के उद्देश्य से एक योजना या प्रक्रिया है। केन्द्रीय बैंक भारत का मौद्रिक नियंत्रक है जो मुद्रा की आपूर्ति को संभालता है। भारत में मौद्रिक नीति के उपकरणों में मात्रात्मक उपकरण और गुणात्मक उपकरण शामिल हैं। ये उपकरण भारतीय मौद्रिक नीति के उद्देश्य को साधना करने के लिए उपयोग किए जाते हैं। भारतीय रिजर्व बैंक की भूमिका भारत की मौद्रिक नीति को संचालित करने में

बहुत महत्वपूर्ण है।

इस तरह, व्यापक आर्थिक नीतियां, राजकोषीय नीतियां, मौद्रिक नीतियां, और भारतीय रिजर्व बैंक की भूमिका समझने से देश की आर्थिक संघर्षों को समाधान करने में सहायक होती हैं और उच्चतम स्तर पर आर्थिक सुरक्षा और विकास को सुनिश्चित करती हैं।

6.11 उपयोगी शब्दावली

- **नकद आरक्षित अनुपातः** सीआरआर उस नकदी को संदर्भित करता है जिसे बैंकों को आरबीआई के पास बनाए रखना होता है उनकी मांग और समय देनदारियों का निश्चित प्रतिशत।
- **नकद आरक्षित अनुपात :** सीआरआर उस नकदी को संदर्भित करता है जिसे बैंकों को आरबीआई के पास एक के रूप में बनाए रखना होता है उनकी मांग और समय देनदारियों का निश्चित प्रतिशत।
- **खुले बाजार की क्रियाएँः** खुले बाजार की क्रियाएँ, सरकारी प्रतिभूतियां में बिक्री और खरीद, आरबीआई द्वारा शामिल है।
- **चयनात्मक साख नियंत्रणः** चयनात्मक और गुणात्मक साख नियंत्रण साख के नियमों को संदर्भित करता है विशिष्ट उद्देश्यों या आर्थिक गतिविधि की शाखाओं के लिए।

6.12 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न 1. सरकार के योजनागत और गैर– योजनागत व्यय के बीच अंतर स्पष्ट करें

प्रश्न 2 केंद्र सरकार में प्रयुक्त सकल राजकोषीय घाटे की अवधारणा को परिभाषित करें।

प्रश्न 3 राजकोषीय नीति को परिभाषित करें।

प्रश्न 4 राजकोषीय नीति के उद्देश्यों की व्याख्या करें।

प्रश्न 5 केंद्रीय बैंक क्या है? इसके कार्य बताइये।

प्रश्न 6 ई–मुद्रा आपूर्ति क्या है? मुद्रा आपूर्ति की विभिन्न माप बताइए।

प्रश्न 7 मौद्रिक नीति के मात्रात्मक उपकरणों की व्याख्या करें।

प्रश्न 8 मौद्रिक नीति के मात्रात्मक और गुणात्मक उपकरणों के बीच अंतर स्पष्ट

करते हुए गुणात्मक उपकरणों को समझाइये।

प्रश्न 9 भारतीय रिजर्व बैंक की भूमिका स्पष्ट करें।

कुछ उपयोगी पुस्तके

- वासुदेवन, ए (1999): 'मौद्रिक नीति निर्माण में कुछ व्यावहारिक मुद्दे' भारतीय रिजर्व बैंक बुलेटिन, जुलाई, पृष्ठ 121–28।
- तारापोर, एस.एस. (1996) : 'मौद्रिक नीति का संचालनः भारतीय अनुभव', भारतीय रिजर्व बैंक बुलेटिन, जनवरी, पृष्ठ 77–80।
- रंगराजन, सी. (1982) : 'केन्द्रीय बैंक में नीति निर्माण की प्रक्रिया', भारतीय बैंक बुलेटिन, अगस्त, पृष्ठ 523–27.
- रेड्डी, वाई.वी. (1999) : 'भारत में मौद्रिक नीतिः उद्देश्य, साधन, परिचालन प्रक्रिया, डिलेमा', इन्वेस्टमेंट इंडिया प्राइवेट लिमिटेड द्वारा आयोजित चार प्रतिभूति उद्योग शिखर सम्मेलन में संबोधन। 26 मई को मुंबई में।
- मिश्किन, एफएस (1995): 'मौद्रिक संचरण तंत्र पर संगोष्ठी', जर्नल ऑफ इकोनॉमिक पर्सपेक्टिव, वॉल्यूम 9, नंबर 4, पीपी.3–10।
- टैनर, जेई (1979): 'क्या मौद्रिक नीति चर के प्रभावों में अंतराल हैं?, जर्नल ऑफ मॉनेटरी इकोनॉमिक्स, नॉर्थ हॉलैंड पब्लिशिंग कंपनी, पीपी. 105–21।
- राजवाड़े, ए.वी. (1999) : 'मौद्रिक नीति पर परिप्रेक्ष्य', इकोनॉमिक पॉलिटिकल वीकली, नंबर 27। भारतीय रिजर्व बैंक, मुद्रा और वित्त पर रिपोर्ट, अलग–अलग मुद्दे।

इकाई 7 उपभोक्ता संरक्षण

इकाई रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 उपभोक्ता आंदोलन का विकास तथा उपभोक्ता संरक्षण कानून

7.3 उपभोक्ता के अधिकार और दायित्व

7.3.1 उपभोक्ता के अधिकार

7.3.2 कुछ अन्य अधिकार

7.3.3 उपभोक्ताओं के कर्तव्य और दायित्व

7.4. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986

7.4.1 प्रस्तावना

7.4.2 उपभोक्ता सरंक्षण अधिनियम, 1986 के प्रमुख विशेषताएं।

7.4.3 इस अधिनियम में दिए गए कुछ शब्दों की परिभाषाएं

7.4.4 अनुचित एवं अवरोधक व्यापारिक व्यवहारों की स्थिति में उपभोक्ताओं को कोई राहत नहीं

7.4.5 व्यक्ति जो इस अधिनियम के अंतर्गत शिकायत

7.5 एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार (MRTP) अधिनियम, 1969

7.5.1 एकाधिकारी व्यापारिक व्यवहार

7.5.2 अनरोधक व्यापारिक व्यवहार

7.5.3 अनुचित व्यापारिक व्यवहार

7.6 सारांश

7.7 उपयोगी शब्दावली

7.8 महत्वपूर्ण प्रश्न

7.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेगें कि:–

- उपभोक्ता संरक्षण कानूनों के सम्बन्ध मे ज्ञानार्जन कर सकेंगे ,
- उपभोक्ता अधिकार और जिम्मेदारियों का विस्तृत अध्ययन कर सकेंगे ,

- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की मूल विशेषताओं जान सकेंगे तथा
- एकाधिकार और प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार (एमआरटीपी) अधिनियम, 1969 को समझ सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

उपभोक्ता संरक्षण आधुनिक समाजों का एक महत्वपूर्ण पहलू है, यह सुनिश्चित करना कि उपभोक्ताओं के अधिकारों हितों और कल्याण को बाजार में सुरक्षित रखा जाता है। इसमें कानूनों, विनियमों और प्रथाओं का एक सेट शामिल है जो उपभोक्ताओं को भ्रामक व्यावसायिक प्रथाओं, घटिया वस्तुओं और कम सेवाओं से बचाने के लिए डिजाइन किया गया है। उपभोक्ता संरक्षण का मूल आधार व्यक्तियों को सशक्त बनाना और वाणिज्यिक लेनदेन में संलग्न होने के दौरान उनके आत्मविश्वास को बढ़ाना है।

पूरे इतिहास में उपभोक्ता संरक्षण की आवश्यकता स्पष्ट रही है, उपभोक्ताओं को बेईमान व्यवसायों द्वारा शोषण और अनुचित उपचार का सामना करना पड़ता है। जैसे–जैसे बाजारों का विस्तार हुआ और अर्थव्यवस्थाएं विकसित हुईं, उत्पादकों और उपभोक्ताओं के बीच शक्ति का असंतुलन स्पष्ट हो गया। इन चुनौतियों का समाधान करने की तात्कालिकता को स्वीकार करते हुए, उपभोक्ता आंदोलन उपभोक्ता अधिकारों और निष्पक्ष प्रथाओं की वकालत करने वाली एक सामूहिक शक्ति के रूप में उभरा।

उपभोक्ता संरक्षण में न केवल यह सुनिश्चित करना शामिल है कि उपभोक्ताओं को सटीक जानकारी और सुरक्षित उत्पादों तक पहुंच हो, बल्कि व्यवसायों के बीच निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देना भी शामिल है। प्रतिस्पर्धी बाजार वातावरण को बढ़ावा देकर, उपभोक्ता संरक्षण उपभोक्ताओं के लिए नवाचार, गुणवत्ता सुधार और सामर्थ्य को प्रोत्साहित करता है।

भारत सहित कई देशों में, उपभोक्ता शिकायतों को दूर करने और व्यवसायों की ओर से जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए एक व्यापक कानूनी ढांचा प्रदान करने के लिए उपभोक्ता संरक्षण कानून लागू किए गए हैं। ये कानून उपभोक्ताओं को कुछ अधिकार प्रदान करते हैं, जैसे कि सुरक्षा का अधिकार, सूचना का अधिकार, चुनने का अधिकार और निवारण की मांग करने का अधिकार। वे उपभोक्ताओं पर सूचित निर्णय लेने और उत्पादों या सेवाओं का जिम्मेदारी से उपयोग करने के लिए जिम्मेदारियां भी डालते हैं।

डिजिटल युग और ई–कॉमर्स के आगमन ने तेजी से परस्पर जुड़ी दुनिया में उपभोक्ता संरक्षण के महत्व पर प्रकाश डाला है। ऑनलाइन लेनदेन प्रचलित होने के साथ, डेटा गोपनीयता, साइबर सुरक्षा और धोखाधड़ी प्रथाओं जैसी नई चुनौतियों को उपभोक्ताओं को संभावित जोखिमों से बचाने के लिए अभिनव समाधान की आवश्यकता होती है।

हाल के वर्षों में, उपभोक्ता संरक्षण राष्ट्रीय सीमाओं से परे विकसित हुआ है, जिसमें अंर्तराष्ट्रीय संगठन और संधियां उपभोक्ता अधिकारों और व्यापार प्रथाओं के लिए वैश्विक मानकों को स्थापित करने के लिए काम कर रही हैं। सीमा पार उपभोक्ता मुद्दों को प्रभावी ढंग से संबोधित करने के लिए राष्ट्रों के बीच सहयोग महत्वपूर्ण है।

उपभोक्ता संरक्षण का यह परिचय उपभोक्ता आंदोलन, उपभोक्ता संरक्षण कानूनों और उपभोक्ताओं के अधिकारों और जिम्मेदारियों के विकास की खोज के लिए मंच निर्धारित करता है। उपभोक्ता संरक्षण के महत्व को समझकर, हम एक निष्पक्ष और न्यायसंगत बाजार को बढ़ावा देने में इसकी भूमिका की सराहना कर सकते हैं जो उपभोक्ताओं और व्यवसायों दोनों को समान रूप से लाभान्वित करता है। जैसा कि हम उपभोक्ता संरक्षण के बहुमुखी पहलुओं में उतरते हैं, हम उपभोक्ता अधिकारों को बनाए रखने, नैतिक व्यावसायिक आचरण को बढ़ावा देने और अधिक सूचित और सशक्त उपभोक्ता आधार के लिए मार्ग प्रशस्त करने के उपायों को उजागर करते हैं। आप उपभोक्ता के अधिकारों और जिम्मेदारियों से भी परिचित होंगे।

7.2 उपभोक्ता आंदोलन का विकास तथा उपभोक्ता संरक्षण कानून

उपभोक्ता आंदोलन का विकास और उपभोक्ता संरक्षण कानूनों का विकास ऐतिहासिक सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों का परिणाम रहा है, जो पिछली शताब्दी में हुए हैं। उपभोक्ता आंदोलन उन उपभोक्ताओं की बढ़ती चिंताओं की प्रतिक्रिया के रूप में शुरू हुआ जिन्होंने बाजार में शोषण और अनुचित प्रथाओं का सामना किया। आइए उपभोक्ता आंदोलन के विकास और उपभोक्ता संरक्षण कानूनों की स्थापना में प्रमुख चरणों का पता लगाएं।

20 वीं शताब्दी की शुरुआत में, औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप उत्पादन और वितरण में निरन्तर महत्वपूर्ण बदलाव आये, जिससे उपभोक्ता वस्तुओं और सेवाओं में वृद्धि हुई। हालांकि, इस अवधि में अनियमित बाजारों और गुणवत्ता नियंत्रण की कमी के साथ उपभोक्ताओं का व्यापक शोषण भी देखा गया।

उपभोक्ताओं ने उचित उपचार उचित मूल्य और सुरक्षित उत्पादों को व्यवस्थित करना और मांग करना शुरू कर दिया। 20 वीं शताब्दी के मध्य में 1900 के दशक के मध्य के दौरान, उपभोक्ता जागरूकता बढ़ी, साक्षरता, शिक्षा और सूचना के प्रसार में वृद्धि के लिए धन्यवाद। उपभोक्ता संघों और यूनियनों जैसे उपभोक्ता वकालत समूहों ने सामूहिक रूप से उपभोक्ताओं के हितों का प्रतिनिधित्व करने के लिए गठन करना शुरू कर दिया। इन समूहों ने उपभोक्ताओं को भ्रामक प्रथाओं और घटिया वस्तुओं से बचाने के लिए कानूनों के अधिनियमन की वकालत की।

(1960–1970) – इस अवधि के दौरान उपभोक्ता आंदोलन ने विश्व स्तर पर गति प्राप्त की। लेखक राल्फ नाडर की असुरक्षित एट एनी स्पीड जैसी प्रभावशाली पुस्तकों ने ऑटोमोबाइल उद्योग में सुरक्षा के मुद्दों को उजागर किया और सख्त उपभोक्ता संरक्षण कानूनों की मांग को बढ़ावा दिया। संगठित उपभोक्ता संरक्षण की आवश्यकता ने दुनिया भर में विभिन्न उपभोक्ता संगठनों और वॉचडॉग एजेंसियों की स्थापना की।

सार्वजनिक दबाव और बढ़ती उपभोक्ता जागरूकता के जवाब में, कई देशों ने उपभोक्ता संरक्षण कानूनों को लागू करना शुरू कर दिया। इन कानूनों का उद्देश्य उत्पाद दोषों, भ्रामक विज्ञापन और अनुचित व्यापार प्रथाओं के मामले में उपभोक्ताओं को कानूनी उपचार प्रदान करना था। संयुक्त राज्य अमेरिका ने 1972 में उपभोक्ता उत्पाद सुरक्षा अधिनियम पेश किया, जो उत्पाद सुरक्षा मानकों पर ध्यान केंद्रित करता है, जबकि अन्य देशों ने अपने स्वयं के कानून के साथ इसका पालन किया।

1980–1990 के दशक, 1980 और 1990 के दशक में विभिन्न देशों में उपभोक्ता संरक्षण कानूनों का महत्वपूर्ण विस्तार देखा गया। अनुचित अनुबंध शर्तों, उपभोक्ता ऋण और उत्पाद देयता जैसे मुद्दों को संबोधित करने के लिए कानून बनाया गया था। संयुक्त राष्ट्र और यूरोपीय संघ जैसे अंर्तराष्ट्रीय निकायों ने भी उपभोक्ता संरक्षण के महत्व को मान्यता दी और वैश्विक उपभोक्ता अधिकारों की वकालत की।

वैश्वीकरण और इंटरनेट के उदय के साथ, उपभोक्ता संरक्षण एक अधिक जटिल मुद्दा बन गया। सीमा पार व्यापार के लिए उपभोक्ता विवादों को प्रभावी ढंग से संबोधित करने के लिए अंर्तराष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त, ऑनलाइन शॉपिंग और ई–कॉमर्स ने नई चुनौतियों को लाया, जैसे कि डेटा गोपनीयता, साइबर सुरक्षा और धोखाधड़ी प्रथाओं, जिसने नए नियमों के

निर्माण की आवश्यकता थी।

हाल के वर्षों में उपभोक्ता संरक्षण को और मजबूत करने के प्रयास किए गए हैं। सरकारें, उपभोक्ता संगठन और व्यवसाय उपभोक्ता निवारण तंत्र में सुधार करने, जिम्मेदार व्यावसायिक प्रथाओं को बढ़ावा देने और उपभोक्ता शिक्षा को बढ़ाने के लिए मिलकर काम करते हैं।

उपभोक्ताओं को व्यापारिक लोगों द्वारा बेईमान और अनैतिक प्रथाओं से बचाने के लिए, भारत सरकार ने समय–समय पर अलग–अलग कानून बनाए हैं। इनमें से कुछ अधिनियम इस प्रकार हैं, आइये इन्हें सूचिबद्ध, कर क्रमशः समझने का प्रयास करें:–

1. माल की बिक्री अधिनियम, 1930
2. औषधि एवं प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940
3. खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954
4. आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955
5. भारतीय मानक संस्थान प्रमाणन अधिनियम, 1952
6. कृषि उत्पाद और ग्रेडिंग और विपणन (एगमार्क) अधिनियम, 1937
7. बाट और माप मानक अधिनियम, 1956
8. कालाबाजारी निवारण और आवश्यक वस्तु आपूर्ति का रखरखाव अधिनियम, 1980

उपर्युक्त कानून मूल्य के संबंध में उपभोक्ताओं को सुरक्षा प्रदान करने के लिए डिजाइन किए गए हैं। गुणवत्ता, सेवा, सूचना, सुरक्षा आदि तथापि, जहां तक उनके कार्यान्वयन का संबंध है, बहुत कुछ अपेक्षित है। लगभग इन सभी अधिनियमों का उद्देश्य और इरादा मुख्य रूप से दंडात्मक है, हालांकि उनमें से कुछ प्रकृति में निवारक हैं।

आज, उपभोक्ता संरक्षण कानून और नियम बदलती उपभोक्ता आवश्यकताओं और बाजार की गतिशीलता के साथ तालमेल रखने के लिए विकसित हो रहे हैं। निष्पक्ष और पारदर्शी प्रथाओं को सुनिश्चित करने, उपभोक्ता अधिकारों की रक्षा करने और व्यवसायों के लिए समान अवसर बनाने पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। उपभोक्ता आंदोलन और उपभोक्ता संरक्षण कानून सूचित उपभोक्ताओं की शक्ति और बाजार में उनकी भलाई सुनिश्चित करने के सामूहिक

प्रयास के प्रमाण के रूप में खड़े हैं।

7.3 उपभोक्ता के अधिकार और दायित्व

हमारे लिए यह जानना महत्वपूर्ण है कि उपभोक्ताओं को दिए गए विभिन्न अधिकार उन्हें स्वयं की रक्षा करने में सक्षम बनाएं। ये अधिकार केवल सामाजिक कोड नहीं हैं बल्कि इनमें से अधिकांश अधिकारों के पीछे अब कानूनी मंजूरी है। दूसरे शब्दों में। उपभोक्ता संरक्षण कानून और न्यायिक निर्णय हैं जिनका उद्देश्य उपभोक्ता अधिकारों को बनाए रखना है।

7.3.1 उपभोक्ता के अधिकार

अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति जॉन एफ केनेडी ने उपभोक्ता के लिए अपने संदेश में उपभोक्ताओं को छह अधिकार दिए थे। ये अधिकार हैं **(1) सुरक्षा का अधिकार (2) सूचित होने का अधिकार (3) चुनने का अधिकार (4) सुनवाई का अधिकार (5) निवारण का अधिकार और (6) प्रतिनिधित्व करने का अधिकार।** इन अधिकारों ने संयुक्त राज्य अमेरिका में संगठित उपभोक्ता आंदोलन का मार्ग प्रशस्त किया था और बाद में यह पूरी दुनिया में फैल गया। भारत में, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 ने भी उपभोक्ताओं को समान अधिकार प्रदान किए हैं। अधिनियम की धारा D6 उपभोक्ताओं के निम्नलिखित छह अधिकारों को मान्यता देती है:



1. चुनने की सुरक्षा का अधिकार
2. सूचित होने का अधिकार
3. चयन का अधिकार
4. सुने जाने का अधिकार
5. निवारण मांगने का अधिकार
6. उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार

आइये उपभोक्ताओं के इन अधिकारों सूचीबद्ध कर समझने का प्रयास करें :–

1. सुरक्षा का अधिकार

यह उपभोक्ताओं का अधिकार है कि वे उन वस्तुओं और सेवाओं से सुरक्षित रहें जो स्वास्थ्य या जीवन के लिए खतरनाक हैं। उदाहरण के लिए, दोषपूर्ण वाहन गंभीर दुर्घटनाओं का कारण बन सकते हैं। घटिया सामग्री वाले बिजली के उपकरणों के बारे में भी यही सच है। हाल ही में स्वीकार्य सीमा से अधिक खतरनाक कीटनाशकों की उपस्थिति के कारण शीतल पेयों का बड़े पैमाने पर विरोध और बहिष्कार किया गया था। इस प्रकार सुरक्षा का अधिकार उपभोक्ता के लिए उपलब्ध एक महत्वपूर्ण अधिकार है जो यह सुनिश्चित करता है कि निर्माता घटिया और खतरनाक उत्पादों का उत्पादन और बिक्री नहीं करेंगे।

2.सूचित होने का अधिकार

सूचित होने का अधिकार उपभोक्ता संरक्षण का एक महत्वपूर्ण घटक है। उपभोक्ता को गुणवत्ता, मात्रा, शुद्धता, मानक और वस्तुओं और सेवाओं की कीमत के बारे में पर्याप्त और सटीक जानकारी प्रदान की जानी चाहिए। आजकल निर्माता उत्पाद की सामग्री इसकी मात्रा, विनिर्माण की तारीख, समाप्ति की तारीख अधिकतम खुदरा मूल्य बरती जाने वाली सावधानियों आदि के बारे में विस्तृत जानकारी प्रदान करते हैं। उत्पाद के लेबल और पैकेज पर। इस तरह की जानकारी उपभोक्ताओं को उनके खरीद निर्णय और उत्पाद के उपयोग में मदद करती है।

3. चयन का अधिकार

चुनने के अधिकार में यह प्रावधान है कि उपभोक्ता को, जब भी संभव हो, प्रतिस्पर्धी मूल्यों पर विभिन्न प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं तक पहुंच सुनिश्चित की जानी चाहिए। यदि बाजार में अत्यधिक प्रतिस्पर्धी कीमतों पर उत्पादों की पर्याप्त किस्में हैं, तो खरीदारों के पास व्यापक चयन का अवसर है। तथापि, रेलवे, डाक सेवा और विद्युत आपूत आदि जैसे एकाधिकार के मामले में। इसका तात्पर्य उचित मूल्य पर सेवा की संतोषजनक गुणवत्ता का आश्वासन देने का अधिकार है।

4. सुनवाई का अधिकार सुरक्षा

सूचना और पसंद के अधिकार सुनवाई के अधिकार के बिना तुच्छ होंगे। इस अधिकार की तीन व्याख्याएं हैं। मोटे तौर पर, इस अधिकार का मतलब है कि उपभोक्ताओं को सरकार और सार्वजनिक निकायों द्वारा परामर्श करने का

अधिकार है जब उपभोक्ता हितों को प्रभावित करने वाले निर्णय और नीतियां बनाई जाती हैं। इसके अलावा, उपभोक्ताओं को उत्पादन, विपणन निर्णयों और उपभोक्ताओं की किसी भी शिकायत पर अपनी राय के बारे में निर्माताओं(डीलरों और विज्ञापनदाताओं द्वारा सुने जाने का अधिकार है। आजकल, अधिकांश शीर्ष निर्माताओं और फर्मों ने उपभोक्ताओं की शिकायतों को सुनने और उनके निवारण के लिए उचित कदम उठाने के लिए उपभोक्ता सेवा सेल स्थापित किए हैं। तीसरा, उपभोक्ताओं को उपभोक्ता शिकायतों से निपटने वाली कानून अदालतों में कानूनी कार्यवाही में सुनवाई का अधिकार है।

5. निवारण का अधिकार

उपभोक्ताओं को कार्य निष्पादन, ग्रेड गुणवत्ता आदि से संबंधित अपनी शिकायतों के निवारण का अधिकार दिया गया है। वस्तुओं और सेवाओं की संख्या। यदि आवश्यक हो, तो उत्पाद की मरम्मत विक्रेता निर्माता द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम में उपभोक्ताओं की वास्तविक शिकायतों के उचित निपटान का विधिवत प्रावधान है। इसने जिला, राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर उनके निवारण के लिए एक उचित तंत्र भी स्थापित किया है।

6. उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार

इसका अर्थ है सूचित उपभोक्ता बनने के लिए ज्ञान और कौशल प्राप्त करने का अधिकार। इस दिशा में उपभोक्ता संघ, शैक्षणिक संस्थान और नीति निर्माता महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे, **क)** संबंधित कानूनों के बारे में जानकारी और ज्ञान प्रदान करें, जिनका उद्देश्य अनुचित व्यापार प्रथाओं को रोकना है, **ख)** वे तरीके और साधन जो बेईमान व्यापारी और उत्पादक उपभोक्ताओं को धोखा देने के लिए अपना सकते हैं, **ग)** खरीद के समय बिल या रसीद पर जोर देना, और **घ)** शिकायत करते समय उपभोक्ताओं द्वारा पालन की जाने वाली प्रक्रिया। प्रभावी उपभोक्ता शिक्षा उपभोक्ता जागरूकता के स्तर में वृद्धि करती है और उन्हें अपने अधिकारों को अधिक प्रभावी ढंग से लागू करने में मदद करती है, और धोखाधड़ी, कपटपूर्ण और घोर भ्रामक विज्ञापन, लेबलिंग आदि के खिलाफ खुद को बचाती है।

7.3.2 कुछ अन्य अधिकार

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 6 में दिए गए उपभोक्ताओं के अधिकारों के अलावा। कुछ अन्य अधिकार भी हैं। आइये इन्हें भी अध्ययन को पूर्णतः प्रदान करने की दृष्टि से समझने का प्रयास करेः–

i. **स्वस्थ पर्यावरण का अधिकार**, इसलिये लाया गया था, यह अधिकार नागरिकों के जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाने में मदद करेगा, यह अधिकार पर्यावरण प्रदूषण के खिलाफ भी सुरक्षा सुनिश्चित करेगा, जिस पर व्यक्तिगत उपभोक्ता का कोई नियंत्रण नहीं हो सकता है।

ii. **बुनियादी जरूरतों की संतुष्टि का अधिकार,** प्रत्येक को बुनियादी और आवश्यक वस्तुओं सेवाओं, पर्याप्त भोजन, कपड़े, आश्रय, स्वास्थ्य देखभाल शिक्षा और स्वच्छता प्राप्त करने का अधिकार प्रदान किया गया है।

7.3.3 उपभोक्ताओं के कर्तव्य और दायित्व

आइये कुछ अतिमहत्वपूर्ण कत्वपूर्ण और दायित्वों को बिन्दुवार समझने का प्रयास करें:–

- एक उपभोक्ता को खरीदने से पहले उत्पादों और सेवाओं की सुरक्षा और गुणवत्ता का ध्यान रखना होगा। उन्हें उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के तहत अपने अधिकारों के बारे में पता होना चाहिए और जरूरत के मामले में इसका अभ्यास करना चाहिए।
- एक ग्राहक को उन मानक चिह्नों की जांच करनी चाहिए जो आईएसआई या हॉलमाक्र आदि जैसे उत्पाद की गुणवत्ता की प्रामाणिकता के लिए पेश किए गए हैं।
- उपभोक्ता को इस बारे में अच्छी तरह से चिंतित होना चाहिए कि वे क्या चाहते हैं और क्या चाहते हैं और इसलिए स्वतंत्र विकल्प बनाते हैं।
- खरीदार को अपनी शिकायतों को बोलने के लिए निडर होना चाहिए और व्यापारियों को बताना चाहिए कि वे वास्तव में क्या चाहते हैं।
- वस्तुओं या सेवाओं की खरीद पर बिल के लिए पूछें।
- यह उपभोक्ता की जिम्मेदारी है कि वह ईमानदारी और निष्पक्ष तरीके से वस्तुओं या सेवाओं के प्रति अपने असंतोष के बारे में शिकायत व्यक्त करे और दर्ज करे।
- एक नैतिक उपभोक्ता होने की जिम्मेदारी– उन्हें निष्पक्ष होना चाहिए और किसी भी भ्रामक अभ्यास के साथ खुद को संलग्न नहीं करना चाहिए।

उन्हें निष्पक्ष होना चाहिए और किसी भी भ्रामक अभ्यास के साथ खुद को संलग्न नहीं करना चाहिए।

7.4. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 भारत सरकार द्वारा पारित किया गया एक महत्वपूर्ण कानून है जो भारत के उपभोक्ताओं को संरक्षित करने के लिए बनाया गया है। इस अधिनियम के अंतर्गत, उपभोक्ताओं को स्वतंत्र व्यक्तियों के तौर पर समान अधिकार दिए गए हैं और उन्हें उनके अधिकारों का संरक्षण भी उपलब्ध है। अधिनियम में उपभोक्ताओं के हकों और उनके संरक्षण के साथ–साथ उन्हें विभिन्न प्रकार की धोखाधड़ी और भ्रष्टाचार से भी बचाने के लिए नियम बनाए गए हैं। इस अधिनियम के अन्तर्गत विवादों के निस्तारण के लिए उपभोक्ता न्यायालयों का गठन किया गया है जो उपभोक्ताओं के अधिकारों का संरक्षण करते हैं। इस अधिनियम के माध्यम से, उपभोक्ताओं को उत्पादों और सेवाओं की गुणवत्ता, मूल्य और संभावित उपयोग के बारे में जानकारी भी दी जाती है ताकि वे सही फैसले ले सकें। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं को संरक्षित करने के लिए व्यापक संरक्षा उपलब्ध कराना है ताकि वे धोखाधड़ी, बेवकूफ बनाया जाना या बुरी गुणवत्ता के उत्पादों या सेवाओं से बच सकें। यह अधिनियम उपभोक्ताओं की संरक्षा के साथ–साथ व्यवसायियों और विक्रेताओं को भी उनके कारोबार के लिए निर्देशित करता है ताकि वे उपभोक्ताओं के साथ इंसाफ से व्यवहार करें। इस अधिनियम के बारे में उपभोक्ताओं को जागरूक करने के लिए उनके लिए एक उपभोक्ता संरक्षण विभाग की स्थापना भी की गई है। इस विभाग का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं को उनके संबंधित मुद्दों के संबंध में सही जानकारी और संबंधित समाधान प्रदान करना है। यह अधिनियम भारत के उपभोक्ताओं के लिए एक महत्वपूर्ण संरक्षा का स्रोत है जो उन्हें उनके अधिकारों के लिए लड़ने की शक्ति देता है।

7.4.1 प्रस्तावना

उपभोक्ताओं को खासकर भारत में ध्यानरहित किया गया था। उत्पादक, व्यापारी या व्यवसायी की शासन शक्ति और हठ को जैसे डॉक्टर शरीर में इंजेक्शन डालता है। सहिष्णुता की सीमा होती है। उपभोक्ता आंदोलन ने हमले का आवाहन किया और धीरे–धीरे लॉबी दिन पर दिन मजबूत हुई। उपभोक्ता की जागरूकता, उसके अधिकारों को सबोटेज किए जाने का अंदाजा, दिन–प्रतिदिन बढ़ता गया। वह महसूस करता था कि वह कागज पर राजा था, फिर भी वह एक दास बना रहता था। भारत में उपभोक्ता ने दशकों से नामुमकिन स्थिति में 'कोई विकल्प नहीं' धारण किया था, इसे उसको 'राजा' नहीं बल्कि केवल 'राजा' सोचने के लिए होना चाहिए। इसलिए, 1986 में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम का अधिनियम बनाया गया।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम वर्ष 1986 में उपभोक्ताओं के हितों की बेहतर सुरक्षा प्रदान करने और उपभोक्ता के विवादों के निपटारे के लिए उपभोक्ता परिषदों और अन्य प्राधिकरणों के माध्यम से उपभोक्ता आंदोलनों को प्रोत्साहित करने के लिए अधिनियमित किया गया था। यह अधिनियम उपभोक्ताओं को कानूनी सुरक्षा प्राप्त करने और शिकायतों आदि जैसी नियमित कार्यवाही में विभिन्न कानूनी प्रक्रियाओं से जुड़ी भय, जटिलताओं और तकनीकी से मुक्त होने में पूर्ण स्वतंत्रता देता है। इसके अलावा, कोई अदालत शुल्क या स्टाम्प ड्यूटी नहीं लगाई जानी है, चाहे शिकायतों में शामिल राशि जो भी हो। इसलिए अधिनियम उपभोक्ताओं को एक बेहतर, सस्ती और त्वरित उपचार प्राप्त करने की सुविधा प्रदान करता है। यह अधिनियम सभी वस्तुओं और सेवाओं पर तब तक लागू होगा जब तक कि अन्यथा, अधिसूचना द्वारा केंद्र सरकार द्वारा स्पष्ट रूप से प्रदान नहीं किया जाता है। कानून आम जनता अर्थात् उपभोक्ताओं के लाभ को देखेगा। यह अधिनियम निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र के साथ–साथ सरकारी एजेंसियों में सभी वस्तुओं और सेवाओं की बिक्री के अतिरिक्त लागू होता है। इसमें केन्द्र सरकार द्वारा केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद और इसी प्रकार संबंधित राज्य सरकार द्वारा राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषद की स्थापना का प्रावधान है।

7.4.2 उपभोक्ता सरंक्षण अधिनियम, 1986 की प्रमुख विशेषताए :

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं को बेहतर और चौतरफा सुरक्षा प्रदान करना और विभिन्न प्रकार के शोषण जैसे दोषपूर्ण वस्तुओं, कम सेवाओं और अनुचित व्यापार प्रथाओं के खिलाफ प्रभावी सुरक्षा उपाय प्रदान करना है। इसमें उपभोक्ताओं के अधिकारों को बढ़ावा देने और उनकी रक्षा करने के लिए केंद्र, राज्य और जिला स्तर पर उपभोक्ता संरक्षण परिषदों की स्थापना और उपभोक्ता शिकायतों और विवादों से निपटने के लिए तीन स्तरीय अर्ध–न्यायिक तंत्र की स्थापना का प्रावधान है।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम (सीपीए) 1986 की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैंः आइये इन्हें सूचिबद्ध करते हुए समझने का प्रयास करेः–

(क) यह सभी वस्तुओं, सेवाओं और अनुचित व्यापार प्रथाओं पर लागू होता है जब तक कि केंद्र सरकार द्वारा विशेष रूप से छूट न दी जाए।

(ख) इसमें सभी क्षेत्र शामिल हैं चाहे वे निजी हों, सार्वजनिक हों या सहकारी हों।

(ग) इसमें उपभोक्ताओं के अधिकारों को बढ़ावा देने और उनकी रक्षा करने के

लिए केन्द्रीय, राज्य और जिला स्तरों पर उपभोक्ता संरक्षण परिषदों की स्थापना और उपभोक्ता शिकायतों और विवादों से निपटने के लिए त्रिस्तरीय अर्ध–न्यायिक तंत्र की स्थापना का प्रावधान है।

(घ) यह उपभोक्ताओं के छ अधिकारों को सांविधिक मान्यता प्रदान करता है।

अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति जॉन एफ केनेडी ने उपभोक्ता के लिए अपने संदेश में उपभोक्ताओं को छह अधिकार दिए थे। ये अधिकार हैं **(क)** सुरक्षा का अधिकार, **(ख)** सूचित होने का अधिकार, **(ग)** चुनने का अधिकार, **(घ)** सुनवाई का अधिकार, **(च)** निवारण का अधिकार और **(छ)** प्रतिनिधित्व करने का अधिकार। इन अधिकारों ने संयुक्त राज्य अमेरिका में संगठित उपभोक्ता आंदोलन का मार्ग प्रशस्त किया था और बाद में यह पूरी दुनिया में फैल गया। भारत में, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 ने भी उपभोक्ताओं को समान अधिकार प्रदान किए हैं।

- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 को उपभोक्ता शिकायतों के लिए एक त्वरित और प्रभावी निवारण तंत्र प्रदान करने के लिए डिजाइन किया गया है। यह अधिनियम जिला स्तर पर उपभोक्ता निवारण मंच, राज्य स्तर पर आयोग और केंद्रीय स्तर पर एक राष्ट्रीय आयोग स्थापित करता है। इन निकायों में दावे के मूल्य के आधार पर अलग–अलग क्षेत्राधिकार सीमाएं हैं।

- यह अधिनियम सुनिश्चित करता है कि उपभोक्ता 1 लाख रुपये तक के दावे (10 लाख रुपये तक संशोधित) से संबंधित शिकायतों के लिए अपने जिले में उपभोक्ता निवारण फोरम से संपक्र कर सकते हैं। इसी तरह, राष्ट्रीय आयोग 10 लाख रुपये से अधिक के नुकसान (20 लाख रुपये तक संशोधित) के दावों पर विचार कर सकता है। यह लंबी अदालती कार्यवाही की आवश्यकता के बिना उपभोक्ता शिकायतों का तेज और कुशल समाधान सुनिश्चित करता है।

- अधिनियम में केंद्र और राज्य दोनों स्तरों पर उपभोक्ता संरक्षण परिषदों की स्थापना का भी प्रावधान है। इन परिषदों में गैर–आधिकारिक और आधिकारिक सदस्य शामिल हैं और इनका उद्देश्य स्वैच्छिक उपभोक्ता आंदोलनों को बढ़ावा देना और उपभोक्ता भागीदारी सुनिश्चित करना है। उनका प्राथमिक उद्देश्य उपभोक्ता अधिकारों की रक्षा करना और उन्हें बढ़ावा देना है।

- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम सभी वस्तुओं और सेवाओं पर लागू होता है,

सिवाय उन वस्तुओं और सेवाओं के जिन्हें विशेष रूप से केंद्र सरकार से अधिसूचना द्वारा छूट दी गई है। यह व्यापक दायरा यह सुनिश्चित करता है कि उपभोक्ताओं को विभिन्न क्षेत्रों में संरक्षित किया जाए।

- अधिनियम के प्रावधान अतिरिक्त हैं और किसी भी अन्य मौजूदा कानूनों का अनादर नहीं करते हैं। इसका मतलब है कि अधिनियम अन्य कानूनों के साथ काम करता है, उपभोक्ता संरक्षण को मजबूत करता है।
- अधिनियम में उपभोक्ताओं की सुरक्षा में इसकी प्रभावशीलता सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक दंडात्मक और दंडात्मक प्रावधान शामिल हैं। ये प्रावधान अनुचित व्यापार प्रथाओं और उपभोक्ता अधिकारों का अनुपालन न करने के खिलाफ निवारक के रूप में कार्य करते हैं।
- उपभोक्ताओं या संगठनों, जैसे पंजीकृत समितियों या उपभोक्ताओं का प्रतिनिधित्व करने वाली कंपनियों को अधिनियम के तहत शिकायत दर्ज करने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त, केंद्र या राज्य सरकार भी उपभोक्ताओं की ओर से शिकायत दर्ज कर सकती है।
- उपभोक्ता विभिन्न परिस्थितियों में शिकायतें दर्ज कर सकते हैं, जिसमें अनुचित व्यापार प्रथाओं के कारण नुकसान या क्षति, माल में दोष, सेवाओं में कमियां, या कानून द्वारा निर्धारित कीमतों की तुलना में अधिक कीमत या माल/पैकेट पर प्रदर्शित करना शामिल है।

वस्तुतः उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986, कानून का एक व्यापक अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योकि यह उपभोक्ताओं को सशक्त बनाता है और उन्हें अपनी शिकायतों के निवारण के लिए एक मजबूत ढांचा प्रदान करता है। यह विभिन्न स्तरों पर विशेष निकायों की स्थापना करता है, व्यापक प्रयोज्यता सुनिश्चित करता है, और इसमें उचित व्यापार प्रथाओं को बढ़ावा देने और उपभोक्ता अधिकारों की रक्षा के लिए दंड प्रावधान शामिल हैं। उपभोक्ता संरक्षण परिषदों की स्थापना करके, अधिनियम उपभोक्ता जागरूकता और उपभोक्ता–अनुकूल बाजार को बढ़ावा देने में भागीदारी को भी बढ़ावा देता है।

7.4.3 इस अधिनियम में दिए गए कुछ शब्दों की परिभाषा एवं विशेषताएं

इस अधिनियम के अन्तर्गत कुछ शब्दो को विशेष :रूप से परिभाशित किया गया है। आइये इन्हें क्रमशः समझने का प्रयास करेः–

i. **शिकायतकर्ता धारा 2(1)(बी)**: शिकायतकर्ता का अर्थ है– (i) एक

उपभोक्ताय या (ii) कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) के तहत पंजीकृत कोई स्वैच्छिक उपभोक्ता संघ या इस समय लागू किसी अन्य कानून के तहतय या (iii) केंद्र सरकार या कोई राज्य सरकार, (iv) एक या अधिक उपभोक्ता, जहां समान हित वाले कई उपभोक्ता हैंय (v) किसी उपभोक्ता की मृत्यु के मामले में, उसका कानूनी उत्तराधिकारी या प्रतिनिधिय कौन या कौन शिकायत करता है।

ii. **शिकायत धारा 2 (1) (सी)**ः इसका अर्थ है शिकायतकर्ता द्वारा लिखित में लगाया गया कोई भी आरोप कि– **(i)** किसी भी व्यापारी या सेवा प्रदाता द्वारा अनुचित व्यापार अभ्यास या प्रतिबंधात्मक व्यापार अभ्यास अपनाया गया हैय **(ii)** उसके द्वारा खरीदा गया या उसके द्वारा खरीदे जाने के लिए सहमत हुआय एक या अधिक दोषों से पीडितय **(iii)** उसके द्वारा किराए पर ली गई या ली गई या किराए पर ली जाने या प्राप्त की जाने वाली सेवाएं किसी भी प्रकार से कमी से ग्रस्त हैं, **(iv)** किसी व्यापारी या सेवा प्रदाता, जैसा भी मामला हो, ने शिकायत में उल्लिखित वस्तुओं या सेवा के लिए मूल्य से अधिक मूल्य वसूला है– (क) उस समय लागू किसी कानून द्वारा या उसके अधीन निर्धारित (ख) माल या ऐसे माल वाले किसी पैकेज पर प्रदर्शित, (ग) उसके द्वारा प्रदर्शित मूल्य सूची पर उस समय लागू किसी कानून द्वारा या उसके अधीन प्रदर्शित (घ) पक्षों के बीच सहमतिः **(v)** ऐसी वस्तुएं जो उपयोग किए जाने पर जीवन और सुरक्षा के लिए खतरनाक होंगी या जनता को बिक्री के लिए पेश की जा रही हैं.– (ए) ऐसी वस्तुओं की सुरक्षा से संबंधित किसी भी मानक का उल्लंघन करते हुए जिनका अनुपालन किया जाना आवश्यक है, किसी कानून द्वारा या उसके तहत, (ख) क्या व्यापारी को उचित तत्परता से यह पता चल सकता था कि इस प्रकार प्रस्तावित माल जनता के लिए असुरक्षित हैं, **(vi)** ऐसी सेवाएं जो खतरनाक हैं अथवा उपयोग किए जाने पर जीवन और जनता की सुरक्षा के लिए खतरनाक होने की संभावना है, सेवा प्रदाता द्वारा दी जा रही हैं जिन्हें ऐसे व्यक्ति को जीवन और सुरक्षा के लिए हानिकारक होने के लिए उचित परिश्रम के साथ पता चल सकता था।

iii. **उपभोक्ता धारा 2 (1) (घ)**ः उपभोक्ता का अर्थ है कोई भी व्यक्ति जो

(क) किसी भी वस्तु को विचार के लिए खरीदता है जिसका भुगतान किया गया है या वादा किया गया है या आंशिक रूप से भुगतान किया गया है और आंशिक रूप से वादा किया गया है, या आस्थगित

भुगतान की किसी भी प्रणाली के तहत और इसमें उस व्यक्ति के अलावा ऐसे सामान का कोई भी उपयोगकर्ता शामिल है जो भुगतान किए गए या वादा किए गए या आंशिक रूप से भुगतान किए गए या आशिक रूप से वादा किए गए ऐसे सामान को खरीदता है, या आस्थगित भुगतान की किसी भी प्रणाली के तहत जब ऐसा उपयोग ऐसे व्यक्ति के अनुमोदन से किया जाता है, लेकिन इसमें एक व्यक्ति शामिल नहीं है जो पुनर्विक्रय के या किसी भी वाणिज्यिक उद्देश्य के लिए ऐसे सामान प्राप्त करता है, नहीं तो

(ख) किसी ऐसी सेवा को किराए पर लेना या उसका लाभ उठाना जिसका भुगतान किया गया हो या वादा किया गया हो या आंशिक रूप से भुगतान किया गया हो और आंशिक रूप से वादा किया गया हो, या आस्थगित भुगतान की किसी प्रणाली के तहत और इसमें उस व्यक्ति के अलावा ऐसी सेवाओं का कोई लाभार्थी शामिल हो जो भुगतान किए गए या वादा किए गए या आंशिक रूप से भुगतान किए गए और आंशिक रूप से वादा किए गए के लिए सेवाओं को किराए पर लेता है या उसका लाभ उठाता है। या आस्थगित भुगतान की किसी भी प्रणाली के तहत, जब ऐसी सेवाओं का लाभ पहले उल्लिखित व्यक्ति के अनुमोदन से लिया जाता है, लेकिन इसमें कोई व्यक्ति शामिल नहीं होता है जो किसी भी वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए ऐसी सेवाओं का लाभ उठाता है,

(ग) इस खंड के प्रयोजनों के लिए, ''वाणिज्यिक उद्देश्य में किसी व्यक्ति द्वारा उसके द्वारा खरीदी गई और उपयोग की गई वस्तुओं का उपयोग और स्वरोजगार के माध्यम से अपनी आजीविका करने के प्रयोजनों के लिए विशेष रूप से उसके द्वारा प्राप्त सेवाओं को शामिल नहीं किया गया है।

उपभोक्ता विवाद धारा 2 (1) (ई): इसका अर्थ है एक विवाद जहां वह व्यक्ति जिसके खिलाफ शिकायत की गई है, शिकायत में निहित आरोपों से इनकार या विवाद करता है।

दोष धारा 2 (1) (एफ): इसका अर्थ है गुणवत्ता, मात्रा, शक्ति, शुद्धता या मानक में कोई दोष, अपूर्णता या कमी जिसे किसी भी अनुबंध के तहत लागू किसी भी कानून द्वारा या उसके तहत बनाए रखा जाना आवश्यक है, व्यक्त या निहित है

या जैसा कि व्यापारी द्वारा किसी भी सामान के संबंध में किसी भी तरीके से दावा किया जाता है।

कमी धारा 2(1)(छ): इसका अर्थ है प्रदर्शन की गुणवत्ता, प्रकृति और तरीके में कोई दोष, अपूर्णता, कमी या अपर्याप्तता जिसे उस समय लागू किसी कानून द्वारा या उसके तहत बनाए रखा जाना आवश्यक है या किसी व्यक्ति द्वारा अनुबंध के अनुसरण में या किसी अन्य सेवा के संबंध में किया जाना आवश्यक हैं।

जिला फोरम ख्धारा 2 (1) (एच): इसका अर्थ है धारा 9 के खंड (ए) के तहत स्थापित एक उपभोक्ता विवाद निवारण फोरमः (i) माल ख्धारा 2 (1) (i),: इसका अर्थ माल की बिक्री अधिनियम, 1930 (1930 का 3) में परिभाषित वस्तुओं से है।

निर्माता धारा 2 (1) (च): इसका अर्थ है एक व्यक्ति जो (i) किसी सामान या उसके हिस्से को बनाता या बनाता हैय या (ii) किसी भी सामान को बनाता या निर्मित नहीं करता है, लेकिन दूसरों द्वारा बनाए या निर्मित उसके भागों को इकट्ठा करता हैय या (iii) किसी अन्य निर्माता द्वारा बनाए गए या निर्मित किसी भी सामान पर अपना निशान लगाता है या लगाता हैय व्याख्या। यदि कोई विनिर्माता अपने द्वारा अनुरक्षित किसी शाखा कार्यालय में कोई माल या उसका भाग भेजता है, तो ऐसे शाखा कार्यालय को निर्माता नहीं माना जाएगा, भले ही उसे भेजे गए पुर्जे ऐसे शाखा कार्यालय में इकट्ठे किए गए हो और ऐसे शाखा कार्यालय से बेचे या वितरित किए गए हो।

राष्ट्रीय आयोग धारा 2(1)(के): इसका अर्थ है धारा के खंड (सी) के तहत स्थापित राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग • व्यक्ति (धारा 2(1)(एम), व्यक्ति में शामिल हैं, (i) एक फर्म चाहे वह पंजीकृत हो या नहीं, (ii) एक हिंदू अविभाजित परिवार, (iii) एक सहकारी समिति (iv) व्यक्तियों का प्रत्येक अन्य संघ चाहे वह सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 (1860 का 21) के तहत पंजीकृत हो या नहीं

iv. **प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार धारा 2(1)(ददद):** प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार एक व्यापार अभ्यास का अर्थ है, जो मूल्य या वितरण की शर्तों में हेरफेर करता है या माल या सेवाओं से संबंधित बाजार में आपूर्ति के प्रवाह को इस तरह से प्रभावित करता है कि उपभोक्ताओं पर अनुचित लागत या प्रतिबंध लगाया जा सके और इसमें शामिल होंगे **(ए)** ऐसी वस्तुओं की – आपूर्ति में एक व्यापारी द्वारा सहमत अवधि से अधिक देरी ऐसी सेवाएं प्रदान करना जिनसे कीमत में वृद्धि हुई है या होने की संभावना हैः **(बी)** कोई भी व्यापार अभ्यास जिसके लिए उपभोक्ता

को किसी भी सामान को खरीदने, किराए पर लेने या लाभ उठाने की आवश्यकता होती है या, जैसा भी मामला हो, अन्य वस्तुओं या सेवाओं को खरीदने, किराए पर लेने या प्राप्त के लिए शर्तों के रूप में सेवाएं।

v. **सेवा धारा 2 (1) (ओ):** इसका अर्थ किसी भी विवरण की सेवा से हैं, जो संभावित उपयोगकर्ताओं को कराई जाती है और इसमें बैंकिंग, वित्तपोषण बीमा, परिवहन, प्रसंस्करण, विदयुत या अन्य ऊर्जा की आपूर्ति, बोर्ड या आवास या दोनों, आवास निर्माण, मनोरंजन, मनोरंजन या समाचार या अन्य जानकारी के वितरण के संबंध में सुविधाओं का प्रावधान शामिल है, लेकिन सीमित नहीं है। लेकिन इसमें किसी भी सेवा का निः शुल्क या व्यक्तिगत सेवा के अनुबंध के तहत प्रतिपादन शामिल नहीं है।

vi. **नकली वस्तुएं और सेवाएं (धारा 2 (1) (आर):** इसका मतलब ऐसी वस्तुओं और सेवाओं से है जिनके वास्तविक होने का दावा किया जाता है लेकिन वे वास्तव में ऐसा नहीं है।

vii. **राज्य आयोग धारा 2 (1) (पी):** इसका अर्थ है धारा 9 के खंड (बी) के तहत एक राज्य में स्थापित उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग। इसका मुख्य कार्य होता है उपभोक्ताओं के अधिकारों की सुरक्षा और उनके विवादों के समाधान का प्रबंधन करना। इस आयोग का मिशन उपभोक्ताओं के हित में कार्यवाही करना और उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करना होता है, जो उनके सामाजिक और आर्थिक हित को सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण होता है।

viii. **व्यापारी धारा 2 (1) (क्यू):** किसी भी सामान के संबंध में एक व्यक्ति का अर्थ है जो बिक्री के लिए किसी भी सामान को बेचता है या वितरित करता है और इसमें उसका निर्माता शामिल है. और जहां ऐसी वस्तुओं को पैकेज के रूप में बेचा या वितरित किया जाता है, उसमें पैकर शामिल है।

7.4.4 अनुचित एवं अवरोधक व्यापारिक व्यवहारों की स्थिति में उपभोक्ताओं को कोई राहत नहीं

अनुचित और प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथाओं से जुड़ी स्थितियों में, उपभोक्ता अक्सर खुद को राहत या सहारा के बिना पाते हैं। ये प्रथाएं उपभोक्ताओं को उनकी पसंद को सीमित करके कीमतों में वृद्धि करके और उन्हें उचित बाजार स्थितियों तक पहुंच से वंचित करके नुकसान पहुंचा सकती हैं। हालांकि, ऐसे कई कारण हैं। कि उपभोक्ताओं को ऐसे मामलों में पर्याप्त राहत क्यों नहीं मिल सकती है:

उपभोक्ताओं को अपने अधिकारों के बारे में पता नहीं हो सकता है या

अनुचित या प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथाओं की पहचान करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है। जागरूकता की कमी उन्हें उचित कार्यवाही करने या शिकायत दर्ज करने से रोक सकती है।

भले ही उपभोक्ता अपने अधिकारों के बारे में जानते हों, उपभोक्ता संरक्षण कानूनों का प्रवर्तन कमजोर या अक्षम हो सकता है। व्यापार प्रथाओं की निगरानी और प्रवर्तन के लिए जिम्मेदार सरकारी एजेंसियों के पास उल्लंघनकर्ताओं के खिलाफ कड़ी कार्यवाही करने के लिए संसाधनों या अधिकार की कमी हो सकती है।

कानूनी प्रक्रियाएं व्यक्तिगत उपभोक्ताओं के लिए समय लेने वाली और महंगी हो सकती हैं। कई उपभोक्ता उच्च लागत और अदालत प्रणाली के माध्यम से राहत प्राप्त करने में शामिल संभावित देरी के कारण कानूनी कार्यवाही का पीछा नहीं कर सकते हैं।

अनुचित और प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथाएं अक्सर सामूहिक रूप से बड़ी संख्या में उपभोक्ताओं को प्रभावित करती हैं। हालांकि, सामूहिक कार्यवाही करने के लिए उपभोक्ताओं को व्यवस्थित करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है, और व्यक्तिगत शिकायतो का ऐसी प्रथाओं में संलग्न कंपनियों पर महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ सकता है। कुछ मामलों में, अनुचित या प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथाओं में शामिल कंपनियां शक्तिशाली और प्रभावशाली हो सकती हैं, जिससे उपभोक्ताओं के लिए उन्हें प्रभावी ढंग से चुनौती देना मुश्किल हो जाता है।

नियामक वातावरण जटिल और विभिन्न खामियों के अधीन हो सकता है, जिससे अनुचित और प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथाओं के हर उदाहरण को प्रभावी ढंग से संबोधित करना चुनौतीपूर्ण हो जाता है।

इन चुनौतियों का सामना करने और उपभोक्ताओं को राहत प्रदान करने के लिए, मजबूत उपभोक्ता संरक्षण कानून, प्रभावी प्रवर्तन तंत्र और आसानी से पहुंच वाली शिकायत निवारण प्रणाली होना आवश्यक है। सरकारों और नियामक निकायों को उपभोक्ता कल्याण को प्राथमिकता देने और उपभोक्ताओं को अनुचित व्यापार प्रथाओं से बचाने के लिए सक्रिय कदम उठाने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, उपभोक्ता शिक्षा और जागरूकता अभियान व्यक्तियों को ऐसी प्रथाओं को पहचानने और रिपोर्ट करने के लिए सशक्त बना सकते हैं, जिससे उपभोक्ता अधिकारों का बेहतर प्रवर्तन और संरक्षण हो सकता है।

7.4.5 व्यक्ति जो इस अधिनियम के अंतर्गत शिकायत पंजीकृत कर सकते हैं

भारतीय गणराज्य में इस महत्वपूर्ण अधिनियम के अन्तर्गत निम्नलिखित व्यक्ति/उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के तहत शिकायत दर्ज कर सकते हैं.

(क) एक उपभोक्ता अपना व्यक्तिगत

(ख) कोई मान्यता प्राप्त स्वैच्छिक उपभोक्ता संघ चाहे वह उपभोक्ता उस संघ का सदस्य हो या नहीं।

(ग) केन्द्र या कोई राज्य सरकार और

(घ) एक या अधिक उपभोक्ता जहां ये समान रुचि रखने वाले कई उपभोक्ता हैं।

(ङ) उपभोक्ता की मृत्यु के मामले में कानूनी उत्तराधिकारी या प्रतिनिधि।

क्या शिकायतें दर्ज की जा सकती हैं?

एक भारतीय उपभोक्ता निम्नलिखित में से किसी एक या अधिक विषय से संबंधित शिकायत दर्ज कर सकता है-

(क) किसी भी व्यापारी या सेवा प्रदाता द्वारा अपनाया गया अनुचित व्यापार अभ्यास या प्रतिबंधात्मक व्यापार अभ्यासय

(ख) उसके द्वारा खरीदी गई या उसके द्वारा खरीदी जाने वाली वस्तुएं एक या अधिक दोष से ग्रस्त हैं।

(ग) किराए पर ली गई या ली गई सेवाएं, या किराए पर लेने या लाभ उठाने के लिए सहमत हों, किसी भी प्रकार से कमी से ग्रस्त हैं।

7.5 एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार (एमआरटीपी) अधिनियम, 1969

1947 में भारत को स्वतंत्रता मिलने के बाद, कई नई और बड़ी फर्मों ने भारतीय बाजार में प्रवेश किया। उस समय इन कंपनियों के पास बहुत कम प्रतिस्पर्धा थी और उन्होंने बाजार पर एकाधिकार करने की कोशिश की। भारत सरकार ने समझा कि व्यापार परिदृश्य में क्या हो रहा है और उपभोक्ताओं के अधिकारों की रक्षा के लिए सरकार ने 1969 में एमआरटीपी विधेयक पारित किया।

एमआरटीपी का पूर्ण रूप एकाधिकार और प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथाएं हैं और यह आर्थिक कानून का एक महत्वपूर्ण लेकिन बेहद विवादास्पद टुकड़ा है।

एमआरटीपी बिल 1969 में पारित किया गया था और एमआरटीपी अधिनियम भारत 1 जून 1970 से पूरी तरह से लागू हुआ था। इस अधिनियम ने बाद के वर्षों (1974, 1980, 1982 और 1991) में कई संशोधन देखे हैं। यह अधिनियम जम्मू और कश्मीर को छोड़कर भारत के सभी राज्यों में लागू है।

एमआरटीपी अधिनियम अब भारत में सक्रिय नहीं है क्योंकि इसे प्रतिस्पर्धा अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है जो 1 सितंबर, 2009 को भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग द्वारा लागू हुआ था।

यहां हम एमआरटीपी अधिनियम की मुख्य विशेषताओं एमआरटीपी अधिनियम के उद्देश्यों, इस अधिनियम को विनियमित करने का उद्देश्य और एमआरटीपी अधिनियम और प्रतिस्पर्धा अधिनियम के बीच अंतर के बारे में जानेंगे। हमने इस लेख को पीडीएफ प्रारूप में भी प्रदान किया है ताकि आप एमआरटीपी अधिनियम 1969 पीडीएफ डाउनलोड कर सकें, जब भी आपको इसकी आवश्यकता हो।

एमआरटीपी अधिनियम क्या हैं?

एकाधिकारवादी व्यापार प्रथाओं का मतलब प्रमुख व्यापार प्रथाओं से है जहां एक फर्म या एक ऑलिगोपोलिस्टिक फर्म जिसमें 3 कंपनियों का एक सेट होता है, बाजार में एक प्रमुख स्थिति तक पहुंच जाता है। फिर वे प्रतिस्पर्धा को समाप्त करके या कीमतों और उत्पादों के उत्पादन को विनियमित करके बाजार को नियंत्रित करने में सक्षम हैं।

प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथाएं बाजार की प्रतिस्पर्धा से बचने के लिए दो या दो से अधिक संगठनों के समूह की संयुक्त कार्यवाही से होती हैं, चाहे बाजार हिस्सेदारी कुछ भी हो। इस तरह की प्रथाओं को सार्वजनिक हितों के लिए पूर्वाग्रहके रूप में देखा जाता है।

एमआरटीपी अधिनियम मुक्त और निरंकुश व्यापार को विनियमित करने के लक्ष्य के साथ पहला महत्वपूर्ण कानून था। यह अधिनियम प्रतिबंधात्मक और एकाधिकारवादी व्यापार प्रथाओं के बीच अंतर सुनिश्चित करने की दिशा में तैयार किया गया था।

1977 से सरकार द्वारा एमआरटीपी अधिनियम की अनिवार्य समीक्षा सुनिश्चित करने के लिए सच्चर समिति नियुक्त की गई थी। समिति ने यह भी सुनिश्चित किया कि इसकी गतिविधियों को सुव्यवस्थित करने के लिए अनिवार्य सिफारिशें हों।

आइये एमआरटीपी अधिनियम के प्रारंभिक उद्देश्यों को सुव्यवस्थित स्वरूप

प्रदान करते हु, ज्ञान प्राप्त करें:–

1. कानून ने यह सुनिश्चित किया कि आर्थिक शक्ति कुछ कंपनियों के हाथों में केंद्रित न हो।
2. एकाधिकार नियंत्रण प्रदान करना
3. एकाधिकार और प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथाओं का विनियमन।

1984 में एक संशोधन किया गया था जिसने अधिनियम के चौथे उद्देश्य को पेश किया था जिसके अंतर्गत अनुचित व्यापार प्रथाओं का विनियमन किया गया था। इससे पहले, अधिनियम केवल एकाधिकार और प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथाओं को नियंत्रित करता था। 1991 में अंतिम संशोधन के बाद, एमआरटीपी अधिनियम के उद्देश्य नीचे वर्णित है:

- एकाधिकार व्यापार प्रथाओं का निषेध (एमटीपी)
- प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथाओं का निषेध (आरटीपी)
- अनुचित व्यापार प्रथाओं का निषेध (यूटीपी)

इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए, अधिनियम निम्नलिखित उपाय करता है:

- एकाधिकार और प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथाओं को प्रतिबंधित करने के लिए कानूनी प्रावधान
- अनुचित व्यापार प्रथाओं को विनियमित करने के लिए कानूनी प्रावधान
- प्रतिस्पर्धा आयोग की स्थापना

प्रतिस्पर्धा आयोग एक स्वतंत्र नियामक निकाय है जो अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने के लिए जिम्मेदार है। आयोग एकाधिकार, प्रतिबंधात्मक और अनुचित व्यापार प्रथाओं की जांच करता है और उचित होने पर कार्यवाही करता है।1991 के संशोधन ने एमआरटीपी अधिनियम को एक अधिक व्यापक और प्रभावी कानून बना दिया। यह अधिनियम भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देने और उपभोक्ता हितों की रक्षा करने में मदद करता है।

एमआरटीपी अधिनियम द्वारा विनियमित तीन प्रकार की व्यापार प्रथाओं को आइये क्रमशः विस्तार से समझने का प्रयास करें:–

1. **एकाधिकार व्यापार प्रथाएं** – यह वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन और बिक्री के संबंध में बाजार का दुरुपयोग करने के लिए बाजार में किसी की पकड़ के दुरुपयोग को संदर्भित करता है। इस अभ्यास कंपनियों के हिस्से

के रूप में:

- प्रतिस्पर्धा को समाप्त या रोका गया
- अनुचित रूप से उच्च कीमतों के साथ उपभोक्ताओं से शुल्क लेकर अपने एकाधिकार का लाभ उठाया।
- उत्पादों की गुणवत्ता खराब हो गई
- अनुचित व्यापार प्रथाओं को अपनाया सीमित तकनीकी विकास
- सीमित तकनीकी विकास

2. **प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथाएं** – बाजार में शक्ति हासिल करने और अपने मुनाफे को अधिकतम करने के लिए व्यापारी अक्सर उन गतिविधियों में लिप्त होते हैं जो उत्पादन में पूंजी के प्रवाह को अवरुद्ध करते हैं। इन व्यापारियों ने डिलीवरी के लिए शर्तों को लाकर आपूर्ति को भी प्रभावित किया, जिसने बदले में अनुचित लागतों को जन्म दिया।

3. **अनुचित व्यापार प्रथाएं** – अनुचित व्यापार प्रथाओं में शामिल हैं:

- सेकंड–हैंड सामान और नए सामान का गलत प्रतिनिधित्व।
- माल की गुणवत्ता, उनकी शैली, उपयोगिता, आवश्यकता, मानक आदि का भ्रामक प्रतिनिधित्व।
- माल और सेवाओं की कीमत पर झूठे दावे या प्रतिनिधित्व
- उत्पाद पर पर्याप्त परीक्षण किए बिना माल और सेवाओं पर झूठी वारंटी और गारंटी।
- संबद्धता(प्रायोजन आदि के संबंध में झूठे तथ्य दिए जाते हैं।

इस अधिनियम के सफल क्रियान्यवयम हेतु सरकार ने निम्नलिखित की स्थापना की है:–

1. एक आयोग जिसमें कम से कम दो और अधिकतम आठ सदस्य होते हैं।
2. इस आयोग के अध्यक्ष को सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश (एक राज्य के लिए) होने के लिए योग्य होना चाहिए।
3. इस आयोग के सदस्यों के पास पर्याप्त ज्ञान और अनुभव था या कानून, अर्थशास्त्र, वाणिज्य, उद्योग, लेखा या सार्वजनिक मामलों से संबंधित मुद्दों को संभालने में क्षमताएं दिखाई हैं।

4. आयोग के सदस्यों की कार्यालय अवधि 5 वर्ष से अधिक नहीं हो सकती है।

5. आयोग के समक्ष जांच के दौरान, डीजी (जांच और पंजीकरण महानिदेशक) ने जांच करने, समझौतों का एक रजिस्टर बनाए रखने और कार्यवाही करने में आयोग की सहायता की।

7.5.1 एकाधिकारी व्यापारिक व्यवहार

एकाधिकार और प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार, (एमआरटीपी) अधिनियम, 1969 के तहत, एकाधिकार व्यापार प्रथाएं, (एमटीपी) उद्यमों द्वारा कुछ प्रथाओं को संदर्भित करती हैं जो आर्थिक शक्ति के केंद्रीकरण और बाजार में प्रतिस्पर्धा में बाधा डालती हैं। ये प्रथाएं एक एकल उद्यम या उद्यमों के एक समूह को वस्तुओं या सेवाओं के उत्पादन, आपूर्ति, वितरण या कीमत को नियंत्रित करने में सक्षम बनाती हैं, जिससे उपभोक्ताओं के लिए उपलब्ध विकल्पों को सीमित किया जाता है और निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा को प्रतिबंधित किया जाता है। एमआरटीपी अधिनियम का उद्देश्य प्रतिस्पर्धी बाजार को बढ़ावा देने और उपभोक्ता हितों की रक्षा के लिए ऐसी प्रथाओं को रोकना और विनियमित करना है।

यह वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन और बिक्री के संबंध में बाजार का दुरुपयोग करने के लिए बाजार में किसी की पकड़ के दुरुपयोग को संदर्भित करता है। इस अभ्यास कंपनियों के हिस्से के रूप में:

1. प्रतिस्पर्धा को समाप्त या रोका गया।
2. अनुचित रूप से उच्च कीमतों के साथ उपभोक्ताओं से शुल्क लेकर अपने एकाधिकार का लाभ उठाया।
3. उत्पादों की गुणवत्ता खराब हो गई
4. सीमित तकनीकी विकास
5. अनुचित व्यापार प्रथाओं को अपनाया गया।

आइये एमआरटीपी अधिनियम के तहत एकाधिकार व्यापार प्रथाओं (एमटीपी) से संबंधित कुछ प्रमुख बिन्दुओं पर प्रकाश डाले। जिससे हमें इसे सुव्यवस्थित रुप से समझने में और सरलता होगी:–

1. एमआरटीपी अधिनियम की धारा 2(आई) एकाधिकार व्यापार प्रथाओं'' को किसी भी व्यापार अभ्यास के रूप में परिभाषित करती है जो किसी भी तरह से प्रतिस्पर्धा को रोकती है विकृत करती है या प्रतिबंधित करती है और इसमें किसी उद्यम द्वारा प्रमुख स्थिति का दुरुपयोग शामिल है।

2. **आर्थिक शक्ति की एकाग्रता:** एमटीपी में एक या कुछ उद्यमों के हाथों में आर्थिक शक्ति की एकाग्रता शामिल है, जिससे प्रतिस्पर्धा और मुक्त बाजार की गतिशीलता में कमी आती है।

3. **निषेध:** एमआरटीपी अधिनियम उद्यमों को एकाधिकार व्यापार प्रथाओं में संलग्न होने से रोकता है क्योंकि वे देश और उपभोक्ताओं के समग्र आर्थिक हित के लिए हानिकारक हैं।

4. **प्रमुख स्थिति का दुरुपयोग:** अधिनियम एमटीपी के रूप में एक उद्यम द्वारा प्रमुख स्थिति के दुरुपयोग पर भी विचार करता है। यह उन स्थितियों को संदर्भित करता है जहां पर्याप्त बाजार शक्ति वाला उद्यम उपभोक्ताओं या प्रतिस्पर्धियों के नुकसान के लिए अपनी स्थिति का फायदा उठाता है।

5. **कारकों पर विचार किया गया:** यह निर्धारित करने में कि क्या कोई व्यापार अभ्यास एकाधिकारवादी है, एमआरटीपी आयोग, (अब भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग में विलय) विभिन्न कारकों को ध्यान में रखता है जिसमें उद्यम की बाजार हिस्सेदारी, नए प्रतियोगियों के लिए प्रवेश की बाधाएं और कीमतों या आपूर्ति को नियंत्रित करने की क्षमता शामिल है।

6. **उपचार:** यदि कोई उद्यम एकाधिकार व्यापार प्रथाओं में संलग्न पाया जाता है, तो एमआरटीपी आयोग के पास ऐसी प्रथाओं को बंद करने और उल्लंघन करने वाले दलों पर दंड लगाने के आदेश जारी करने का अधिकार था।

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि एमआरटीपी अधिनियम, 1969 को प्रतिस्पर्धा अधिनियम, 2002 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है, जो भारत में प्रतिस्पर्धा विनियमन के लिए अधिक व्यापक और आधुनिक दृ–ष्टिकोण है। प्रतिस्पर्धा अधिनियम प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देने, प्रतिस्पर्धा–विरोधी प्रथाओं को रोकने और बाजार में सभी प्रतिभागियों के लिए एक समान अवसर बनाने पर केंद्रित है। यह निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा सुनिश्चित करने और उपभोक्ता हितों की रक्षा के लिए प्रतिस्पर्धा–विरोधी समझौतों और प्रमुख स्थिति के दुरुपयोग दोनों को संबोधित करता है।

7.5.2 प्रतिबंधात्मक व्यापारिक व्यवहार

अधिनियम ''प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार'' को एक व्यापार अभ्यास के रूप में परिभाषित करता है जो मूल्य या वितरण की शर्तों में हेरफेर करता है या माल या सेवाओं से संबंधित बाजार में आपूर्ति के प्रवाह को इस तरह से प्रभावित करता है कि उपभोक्ताओं पर अनुचित लागत या प्रतिबंध लगाया जा सके और ऐसी

वस्तुओं की आपूर्ति में या सेवाओं को प्रदान करने में एक व्यापारी द्वारा सहमत अवधि से अधिक देरी शामिल होगी। या कीमत में वृद्धि होने की संभावना है, कोई भी व्यापार प्रथा जिसमें उपभोक्ता को अन्य वस्तुओं या सेवाओं को खरीदने, किराए पर लेने या प्राप्त करने की शर्त के रूप में किसी भी वस्तु या सेवाओं को खरीदने, किराए पर लेने या लाभ उठाने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार, बाजार में शक्ति हासिल करने और अपने मुनाफे को अधिकतम करने के लिए व्यापारी अक्सर उन गतिविधियों में लिप्त होते थे जो उत्पादन में पूंजी के प्रवाह को अवरुद्ध करते थे। इन व्यापारियों ने डिलीवरी के लिए शर्तों को लाकर आपूर्ति को भी प्रभावित किया, जिसने बदले में अनुचित लागतों को जन्म दिया।

7.5.3 अनुचित व्यापारिक व्यवहार

अनुचित व्यापार प्रथाएं प्रतिस्पर्धियों पर अनुचित लाभ प्राप्त करने या उपभोक्ताओं का शोषण करने के लिए कंपनियों द्वारा नियोजित किसी भी भ्रामक, अनैतिक या धोखाधड़ी वाली व्यावसायिक गतिविधियों को संदर्भित करती हैं। ये प्रथाएं उपभोक्ताओं, प्रतियोगियों और समग्र बाजार के लिए हानिकारक हैं और निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा को विकृत कर सकती हैं। अनुचित व्यापार प्रथाओं को आम तौर पर उपभोक्ता संरक्षण कानूनों, प्रतिस्पर्धा कानूनों और अन्य प्रासंगिक नियमों द्वारा विनियमित और निषिद्ध किया जाता है। सरकारें और नियामक प्राधिकरण उपभोक्ताओं की रक्षा, निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा सुनिश्चित करने और बाजार की अखंडता बनाए रखने के लिए इन कानूनों की निगरानी और प्रवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जब व्यवसाय अनुचित व्यापार प्रथाओं में संलग्न होते हैं, तो उन्हें दंड, जुर्माना और कानूनी कार्यवाही का सामना करना पड़ सकता है। उपभोक्ता अपने अधिकारों और हितों की रक्षा के लिए उपयुक्त अधिकारियों को ऐसी प्रथाओं की रिपोर्ट कर सकते हैं।

अतः अनुचित व्यापार व्यवहार का अर्थ है एक व्यापार व्यवहार जो किसी भी वस्तु की बिक्री, उपयोग या आपूर्ति को बढ़ावा देने के उद्देश्य से या किसी भी सामान की बिक्री, उपयोग या आपूर्ति को बढ़ावा देने के उद्देश्य से या किसी भी सेवा के प्रावधान के लिए, निम्नलिखित प्रथाओं में से एक या अधिक को अपनाता है और इस प्रकार ऐसी वस्तुओं या सेवाओं के उपभोक्ताओं को नुकसान या चोट पहुंचाता है, चाहे समाप्त या प्रतिबंधित या प्रतिस्पर्धा या अन्यथा,

आइये अनुचित व्यापार प्रथाओं के कुछ महत्वपूर्ण उदाहरण के साथ समझने का क्रमशः प्रयास करें:–

1. उपभोक्ताओं को धोखा देने और उन्हें खरीदारी करने के लिए आकर्षित करने के लिए किसी उत्पाद या सेवा की गुणवत्ता, सुविधाओं या लाभों के बारे में झूठे या भ्रामक दावे करना।

2. जब प्रतिस्पर्धी कंपनियां अपने उत्पादों या सेवाओं के लिए निश्चित मूल्य निर्धारित करने के लिए मिलीभगत करती हैं, मूल्य प्रतिस्पर्धा को समाप्त करती हैं और उपभोक्ता पसंद को प्रतिबंधित करती हैं।

3. अक्सर सरकारी अनुबंधों या निविदाओं में बोली प्रक्रिया में हेरफेर करने के लिए गैरकानूनी रूप से साजिश करना, यह सुनिश्चित करने के लिए कि एक विशिष्ट कंपनी बढ़ी हुई कीमत पर अनुबंध जीतती है।

4. प्रतिस्पर्धियों को बाजार से बाहर निकालने और बाद में कीमतों को एकाधिकार स्तर तक बढ़ाने के इरादे से लागत से कम पर वस्तुओं या सेवाओं को बेचना।

5. उपभोक्ताओं को एक अन्य असंबंधित उत्पाद खरीदने के लिए एक शर्त के रूप में एक उत्पाद खरीदने की आवश्यकता होती है, जिससे उनकी पसंद की स्वतंत्रता सीमित हो जाती है।

6. उपभोक्ताओं को धोखा देने या उनके निर्णय लेने को प्रभावित करने के लिए उत्पादों, नियमों या शर्तों के बारे में झूठी या अधूरी जानकारी प्रदान करना।

7. गैरकानूनी रूप से वैध वारंटी दावों से इनकार करना या उपभोक्ताओं के लिए वारंटी सेवाओं का लाभ उठाना बेहद मुश्किल बनाना।

8. कम कीमत पर एक विज्ञापित उत्पाद या सेवा के साथ ग्राहकों को आकर्षित करना(केवल स्टोर में आने के बाद उन्हें उच्च कीमत वाले विकल्प पर स्विच करना।

9. किसी प्रतियोगी के उत्पादों, सेवाओं, या व्यावसायिक प्रथाओं के बारे में झूठी जानकारी फैलाना उनकी प्रतिष्ठा और बाजार की स्थिति को नुकसान पहुंचाना।

10. किसी उत्पाद की सामग्री या गुणवत्ता को गलत तरीके से प्रस्तुत करने के लिए भ्रामक या भ्रामक पैकेजिंग या लेबलिंग का उपयोग करना।

7.6 सारांश

उपभोक्ता आंदोलन और उपभोक्ता संरक्षण कानूनों का विकास एक महत्वपूर्ण यात्रा रही है, जो दुनिया भर में उपभोक्ताओं के अधिकारों, जिम्मेदारियों

और सुरक्षा उपायों को आकार देती है। इकाई में ऐतिहासिक संदर्भ, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 जैसे प्रमुख कानूनों की शुरूआत और एकाधिकार और प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथाओं (एमआरटीपी) अधिनियम, 1969 से आधुनिक प्रतिस्पर्धा अधिनियम में संक्रमण पर प्रकाश डाला गया है। यह उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 में उपयोग की जाने वाली कुछ अभिव्यक्तियों की परिभाषाओं और अनुचित और प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथाओं से संबंधित प्रावधानों की भी पड़ताल करता है।

उपभोक्ता आंदोलन 20 वीं शताब्दी की शुरुआत के दौरान व्यवसायों की अनियंत्रित शक्ति की प्रतिक्रिया के रूप में उभरा। उपभोक्ताओं ने अपने हितों की रक्षा करने की आवश्यकता को पहचानते हुए, उचित उपचार और उत्पाद की गुणवत्ता की मांग करने के लिए सामूहिक समूह बनाना शुरू कर दिया। यह आंदोलन दशकों से विकसित हुआ, उपभोक्ता जागरूकता और सक्रियता से प्रेरित हुआ, जिसके परिणामस्वरूप उपभोक्ता संरक्षण कानूनों की स्थापना हुई।

1986 में, भारत ने उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 को लागू करके उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठाया। इस व्यापक कानून का उद्देश्य उपभोक्ताओं को अनुचित व्यापार प्रथाओं, दोषपूर्ण वस्तुओं और कम सेवाओं से बचाना था। अधिनियम ने उपभोक्ताओं के लिए विभिन्न अधिकारों और जिम्मेदारियों को पेश किया, जिससे उन्हें व्यवसायों के साथ अपने लेनदेन में सशक्त बनाया गया।

उपभोक्ता अधिकारः अधिनियम छह मौलिक उपभोक्ता अधिकारों की गणना करता हैःयथा सुरक्षा का अधिकार, सूचना का अधिकार, चुनने का अधिकार, सुनवाई का अधिकार, निवारण की मांग करने का अधिकार और उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार। उपभोक्ता जिम्मेदारियांः अधिकारों के साथ–साथ, अधिनियम इस बात पर जोर देता है कि उपभोक्ताओं को वस्तुओं और सेवाओं से निपटने के दौरान जिम्मेदार होना चाहिए। यह उपभोक्ताओं के बीच जागरूकता और जवाबदेही की भावना को प्रोत्साहित करता है।

अनुचित और प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथाएंः अधिनियम व्यवसायों को अनुचित व्यापार प्रथाओं और प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथाओं में संलग्न होने से रोकता है जो उपभोक्ताओं का शोषण करते हैं या उनके विकल्पों को प्रतिबंधित करते हैं।

उपभोक्ता संरक्षण परिषदः यह अधिनियम उपभोक्ता जागरूकता को बढ़ावा देने और उपभोक्ता शिकायतों का निवारण करने के लिए राष्ट्रीय, राज्य और जिला स्तर पर उपभोक्ता संरक्षण परिषदों की स्थापना करता है।

उपभोक्ता विवाद निवारण आयोगः यह अधिनियम उपभोक्ता विवादों को

कुशलतापूर्वक और लागत प्रभावी ढंग से तय करने के लिए जिला, राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर उपभोक्ता फोरम स्थापित करता है।

इन सुरक्षात्मक उपायों के बावजूद, अधिनियम अनुचित और प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथाओं के मामलों में उपभोक्ताओं को राहत प्रदान नहीं करता है। ऐसे परिदृश्यों के लिए, उपभोक्ता एमआरटीपी अधिनियम, 1969 के तहत सहारा ले सकते हैं, जो एकाधिकार और प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथाओं को संबोधित करता है। एकाधिकार व्यापार प्रथाओं (एमटीपी) में ऐसी प्रथाएं शामिल हैं जो प्रतिस्पर्धा में बाधा डालती हैं, जबकि प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथाएं (आरटीपी) ऐसे समझौते या व्यवस्थाएं हैं जो माल के उत्पादन, आपूर्ति और वितरण पर प्रतिबंध लगाती हैं। एमआरटीपी अधिनियम का उद्देश्य आर्थिक शक्ति के केंद्रीकरण को रोकना और निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देना था।

7.7 उपयोगी शब्दावली

- **उपभोक्ता विवाद** : एक व्यक्ति जिसके खिलाफ शिकायत की गई है। शिकायत में लगाए गए आरोपों से इनकार या विवाद करता है।

- **दोष** : दोष का अर्थ गुणवत्ता, मात्राए शक्ति, शुद्धता या मानक में कोई दोष, अपूर्णता या कमी है जिसे किसी भी समय लागू कानून द्वारा या किसी भी अनुबंध के तहत, व्यक्त या निहित, या जैसा कि व्यापारी द्वारा किसी भी सामान के संबंध में किसी भी तरीके से दावा किया जाता है, बनाए रखना आवश्यक है।

- **कमी**: उत्पाद के मामले में दोष के अनुरूप(सेवाओं के मामले में 'कमी' शब्द का उपयोग किया जाता है। धारा 2 (1) (जी) के अनुसार कमी का मतलब कोई गलती है। अपूर्णता, गुणवत्ता, प्रकृति और कार्य निष्पादन का तरीका जिसे किसी भी समय लागू कानून द्वारा या उसके अधीन बनाए रखा जाना आवश्यक है या किसी सेवा के संबंध में अन्यथा।

- **जिला फोरम**: राज्य के कच्छ जिले में राज्य सरकार द्वारा धारा 9,(ए) के तहत स्थापित उपभोक्ता विवाद निवारण फोरम। राज्य सरकार, यदि वह उचित समझे, तो एक जिले में एक से अधिक जिला मंच स्थापित कर सकती है।

- **वस्तु**: वस्तु शब्द का अर्थ कार्यवाही योग्य दावों और धन के अलावा हर प्रकार की चल संपत्ति से है, और इसमें स्टॉक और शेयर, बढ़ती फसलें, घास और भूमि से जुड़ी या बनाने वाली चीजें शामिल हैं, जिन्हें बिक्री से अलग करने या बिक्री के अनुबंध के तहत सहमत किया जाता है।

- **प्रतिबंधात्मक व्यापार अभ्यास** : इसका अर्थ है कोई भी व्यापार अभ्यास जिसे उपभोक्ता को खरीदने की आवश्यकता होती है। किसी भी सामान को किराए पर

लेना या उसका लाभ उठाना या, जैसा भी मामला हो, अन्य वस्तुओं या सेवाओं को खरीदने, किराए पर लेने या लाभ उठाने के लिए एक शर्त मिसाल के रूप में सेवाएं।

- **सेवाः** धारा 2 (1) (0) में प्रावधान है कि 'सेवा' का अर्थ किसी भी विवरण की सेवा है जो संभावित उपयोगकर्ताओं को उपलब्ध कराई जाती है और इसमें बैंकिंग, वित्तपोषण, बीमा, परिवहन, प्रसंस्करण, विद्युत या अन्य ऊर्जा की आपूर्ति के संबंध में सुविधाओं का प्रावधान शामिल है। बोर्डिंग या लॉजिंग या दोनों, आवास निर्माण, मनोरंजन, मनोरंजन या समाचार या अन्य जानकारी का प्रसार, लेकिन इसमें किसी भी सेवा का निः शुल्क या व्यक्तिगत सेवा के अनुबंध के तहत प्रतिपादन शामिल नहीं है।

- **राज्य आयोगः** इसका अर्थ है धारा 9, (एच) के तहत एक राज्य में स्थापित उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग। राज्य सरकार द्वार

7.8 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न 1. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 क्या है विस्तार से समझाये।

प्रश्न 2. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के तहत शिकायत कौन दर्ज कर सकता है उदाहरण सहित समझाये।

प्रश्न 3. कम से कम तीन कानूनों के नाम बताइए जो उपभोक्ताओं को व्यापारिक लोगों के बेईमान और अनैतिक प्रथाओं से बचाने के लिए सरकार द्वारा अधिनियमित किए गए थे।

प्रश्न 4. उपर्युक्त अधिनियमों का उद्देश्य और आशय क्या है? क्या वे चूककर्ताओं को दंडित करने के लिए हैं या पीड़ित पक्ष को मुआवजा देने के लिए हैं अपन "ाब्दो में विस्तार से समझाये।

प्रश्न 5. उपर्युक्त कानूनों की कम से कम तीन सीमाओं का उल्लेख करें कि वे उपभोक्ताओं के लिए बहुत मददगार नहीं हो सकती हैं।

प्रश्न 6. क्या उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिए कानूनों के अधिनियमन के अलावा कोई अन्य तरीका है? यदि हां, तो इसे नाम दें।

प्रश्न 7. नवीन प्रतिस्पर्धा अधिनियम पर अपने शब्दो मे एक लधु लेख लिखें ?

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. के. अश्वथप्पा, बिजनेस एनवायरनमेंट फॉर स्ट्रैटेजिक मैनेजमेंट, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुंबई।

2. फ्रांसिस चेरुनिलम, बिजनेस एनवायरनमेंट, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

3. एस.के. मिश्रा और वी. के. पुरी, इंडियन इकोनॉमी, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

4. बी.बी.टंडन और के.के. टंडन, भारतीय अर्थव्यवस्था, टाटा मैकग्रा हिल, नई दिल्ली।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, प्रयागराज

B.Com-203

व्यावसायिक पर्यावरण

खण्ड 3
आर्थिक नीति और ढांचा

इकाई 8 उद्योग नीति

इकाई 9 औद्योगिक रूग्णता

इकाई 10 औद्योगिक संबंध

इकाई 11 छोटे पैमाने का क्षेत्र

विशेषज्ञ समिति

डॉ. ओमजी गुप्ता, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

डॉ देवश रंजन त्रिपाठी, सहायक आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

प्रो. आर.सी. मिश्रा, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन एवं वाणिज्य विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

प्रो. लवकुश मिश्रा, निदेशक, इंस्टीट्यूट ऑफ टूरिज्म एण्ड होटल मैनेजमेंट, श्री भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा।

प्रो. सोमेश शुक्ला विभागाध्यक्ष, वाणिज्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

प्रो. राधेश्याम सिंह आचार्य, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

लेखक

सुश्री सौम्या तिवारी सहायक-आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ. प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

सम्पादक

प्रो. एस.बी. गुप्ता अर्थशास्त्र विभाग, एम.एम.पी.जी. कॉलेज, कालाकांकर, (रज्जू भैय्या) राज्य विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

संयोजकः

देवेश रंजन त्रिपाठी सह–आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ. प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

ISBN: 978-93-83328-81-09

(c) उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट–पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय उत्तरदायी नहीं है।

खंड 3 में हम आर्थिक नीति और ढांचे के बारे में चर्चा करेंगे। इसमें हम जानेंगे कि आर्थिक प्रणालियों का प्रबंधन आमतौर पर राष्ट्रीय आर्थिक नीतियों के माध्यम से कैसे किया जाता है। इस खंड में चार इकाइयां शामिल हैं:

इकाई 8 में हम उद्योग नीति के संबंध में चर्चा करेंगे। इसमें हम उस नीति ढांचे को विवेचना करेंगे जिसके तहत भारतीय अर्थव्यवस्था के उद्योगिक ढांचे का दीर्घकालिक विकास हुआ है। हम उद्योग नीति, नई उद्योग नीति और सार्वजनिक क्षेत्र के सुधारों एवं निजीकरण के संबंध में विचार करेंगे।

इकाई 9 में हम औद्योगिक रूग्णता के संबंध में चर्चा करेंगे। हम औद्योगिक रुग्णता के स्वरूप और उसके कारणों के संबंध में विस्तार से विचार करेंगे। हम औद्योगिक रुग्णता की समस्याओं के समाधान के लिए किए गए विभिन्न प्रकार के उपायों के संबंध में भी विचार करेंगे।

इकाई 10 में हम औद्योगिक संबंधों के संबंध में चर्चा करेंगे। इस इकाई में हम भारत के औद्योगिक संबंधों की रूपरेखा प्रस्तुत करेंगे। हम जानेंगे कि इन औद्योगिक संबंधों के कारणों के संबंध में, इन संवादों के निवारण और समाधान की विचार करेंगे, जो देश के अंदर होते हैं।

इकाई 11 में छोटे पैमाने के क्षेत्र के संबंध में चर्चा की गई है। हमारी अर्थव्यवस्था में छोटे पैमाने के क्षेत्र का बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। इस इकाई में छोटे पैमाने के क्षेत्र के महत्व और उसके विकास, इन संस्थाओं की समस्याओं एवं छोटे पैमाने के उद्योगों के प्रति सरकारी नीतियों के संबंध में विचार किया गया हैं।

इकाई 8 उद्योग नीति

इकाई रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 औधोगिक नीति का विकास

8.3 औधोगिक नीति संकल्प (IPR) 1956

- 8.3.1 औद्योगिक नीति संकल्प 1948 में हुए परिवर्तन
- 8.3.2 औद्योगिक नीति संकल्प 1956 के उद्देश्य
- 8.3.3 औद्योगिक नीति संकल्प 1956 की मुख्य विशेषताएं
- 8.3.4 औद्योगिक लाइसेंस
- 8.3.5 उद्योग नीति की समीक्षा

8.4 नई औधोगिक नीति 1991

- 8.4.1 उद्देश्य
- 8.4.2 नीति संबंधी उपाय
- 8.4.3 नई उद्योग नीति का मूल्यांकन

8.5 सार्वजनिक क्षेत्र में निजीकरण एवं सुधार

- 8.5.1 निजीकरण का अर्थ
- 8.5.2 निजीकरण के पक्ष में तर्क
- 8.5.3 निजीकरण से लाभ
- 8.5.4 निजीकरण के संबंध में कार्यवाहियां
- 8.5.5 सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की पुनः संरचना

8.6 सारांश

8.7 उपयोगी शब्दावली

8.8 महत्वपूर्ण प्रश्न

8.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद, आप इस योग्य हो सकेगें किः—

- अर्थव्यवस्था के औद्योगीकरण में सार्वजनिक क्षेत्र को सौंपी गई भूमिका का वर्णन कर सकेगें;
- इस प्रक्रिया में निजी उद्यम द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका को परिभाषित

कर सकेगें ;

- नई औद्योगिक नीति की आवश्यक विशेषताओं की व्याख्या करते हुए इससे देश में औद्योगिक विकास कार्यक्रमों को कैसे बढ़ावा देने की व्यवस्था को प्रकाशित कर सकेगें तथा
- विश्लेषित कर सकेगें कि निजीकरण और सार्वजनिक क्षेत्र के सुधार हमारे देश में किसी भी सुधार कार्यक्रम के अत्यन्त महत्वपूर्ण घटक है।

8.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था ने योजनाबद्ध चरणों को अपनाया जो यकीनन आत्म स्थिरता की विशेषता थी। यह पर्यावरण पर्याप्त रूप से उन विचारधाराओं से संबंधित था जो आयात प्रतिस्थापन, आंतरिक विकास और नियंत्रण तथा सब्सिडी पर केंद्रित थे। औद्योगिक नीति के विभिन्न पहलू हैं– जो औद्योगिक निवेश और उत्पादन को निरन्तर प्रभावित करते हैं।

औद्योगिक लाइसेंसिंग नीति जो नई औद्योगिक इकाइयों की स्थापना और उनके विस्तार को नियंत्रित और नियंत्रित करती है। एकाधिकार और आर्थिक एकाग्रता के नियंत्रण से संबंधित नीति, प्रौद्योगिकी के आयात से संबंधित नीति, वित्तीय और राजकोषीय नीतियों की पूरी श्रृंखला से भारतीय अर्थव्यवस्था आच्छादित है।

भारत सरकार ने 6 अप्रैल, 1948 को अपनी प्रथम औद्योगिक नीति संकल्प (आईपीआर) की घोषणा की, जिसके तहत सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों को औद्योगिक विकास की दिशा में सम्मिलित किया गया। तदनुसार, उद्योगों को चार व्यापक श्रेणियों में विभाजित किया गया था अध्ययन को सुव्यवस्थित ढंग से आगे बढाते हुए आइये इन्हें समझने का क्रमवार प्रयास करेः–

(क) अनन्य राज्य एकाधिकार– इस प्रकार के उधोगो में हथियारों और गोला–बारूद का निर्माण, परमाणु ऊर्जा का उत्पादन और नियंत्रण और रेल परिवहन का स्वामित्व और प्रबंधन शामिल है। इन उद्योगों पर केन्द्र सरकार का विशेष एकाधिकार था।

(ख) नई इकाइयों के लिए राज्य का एकाधिकार – इस श्रेणी में कोयला, लोहा और इस्पात, विमान निर्माण, पोत निर्माण शामिल थे। टेलीफोन, टेलीग्राफ और वायरलेस (उपकरण–रेडियो प्राप्त करने वाले सेट को छोड़कर) और खनिज तेलों का निर्माण। इस श्रेणी में नए उपक्रम केवल राज्य द्वारा शुरू किए जा सकते हैं।

इस इकाई का मूल उद्देश्य आपको उस नीतिगत ढांचे से परिचित कराना है

जिसके तहत पिछले पांच दशकों में भारतीय अर्थव्यवस्था की औद्योगिक संरचना विकसित हुई है।

8.2 उद्योग नीति का विकास

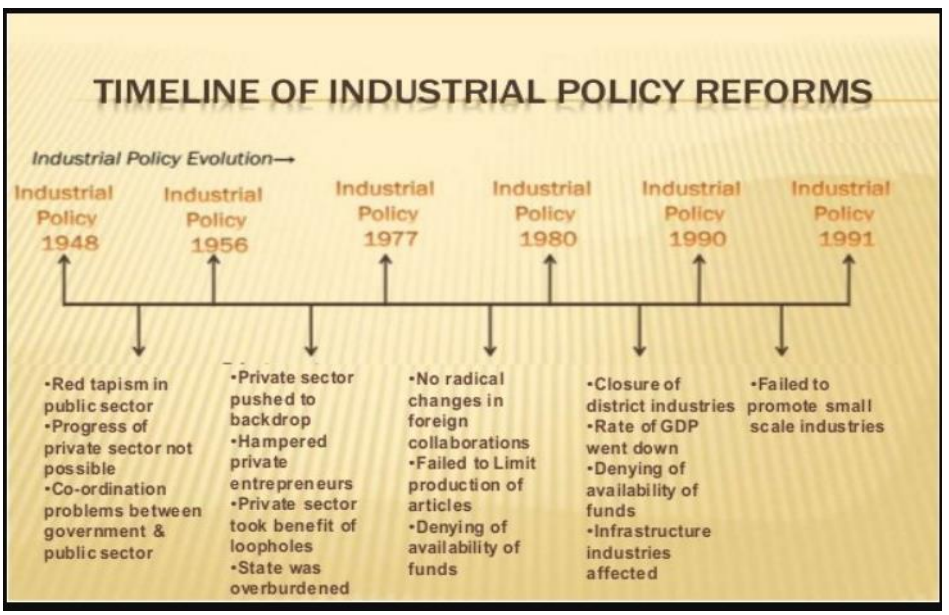
उद्योग के स्वामित्व और संरचना और उसके प्रदर्शन को प्रभावित करने के लिए सरकार की कार्यवाही निरन्तर आगे बढती रही है। यह सब्सिडी का भुगतान करने या अन्य तरीकों से वित्त प्रदान करने या विनियमन के रूप में होता है।

इसमें प्रक्रियाएं, सिद्धांत (अर्थात् किसी दी गई अर्थव्यवस्था का दर्शन), नीतियां, नियम और विनियम, प्रोत्साहन और दंड, टैरिफ नीति, श्रम नीति, विदेशी पूंजी के प्रति सरकार का रवैया आदि शामिल हैं।

भारत में सरकार की औद्योगिक नीति के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है। आइये इन्हें बिन्दुवार ढंग से समझने का प्रयास करें':–

- अर्थव्यवस्था के सुदृढीकरण हेतु उत्पादकता में निरंतर वृद्धि बनाए रखना;
- लाभकारी रोजगार बढ़ाने के लिये,
- मानव संसाधनों का इष्टतम उपयोग प्राप्त करने के हेतु;
- अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा प्राप्त करने के लिय और
- वैश्विक क्षेत्र में भारत को एक प्रमुख भागीदार और खिलाड़ी के रूप में स्थापित करने हेतु तथा
- भारत को एक विकसित अर्थव्यवस्था बनाने हेतु।

चित्र 8.1



8.3 उद्योग नीति संकल्प 1956

आजादी के तुरंत बाद, सरकार द्वारा निजी पूंजी के प्रति अपने रवैये की घोषणा की गई और निजी भागीदारी के दायरे को परिभाषित करते हुए उसे पर्याप्त महत्व दिया गया। इसका उद्देश्य उन सभी अनिश्चितताओं को दूर करना था जो अर्थव्यवस्था में औद्योगिक विकास पर बाधाओं के रूप में काम करती। औद्योगिक नीति संकल्प (IPR) 1948 भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास और उद्योगों के प्रगतिशील विकास को नियंत्रित करने के लिए भारत सरकार द्वारा अपनाया गया एक महत्वपूर्ण नीति दस्तावेज था। यह नीति भारतीय उद्योगों को स्थायीकृत करने, उन्नत और आर्थिक विकास को गति देने, तकनीकी योग्यता को बढ़ाने, उत्पादन को बढ़ाने और राष्ट्रीय आर्थिक मापदंडों को सुधारने का प्रयास किया गया। इस घोषणा ने औद्योगिक नीति संकल्प (IPR) 1948 का रूप ले लिया। नीति का मुख्य ध्येय उद्यमिता को बढ़ावा देना था और यह उद्यमिता के विकास को सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न उपायों को निर्धारित करती थी। नीति ने उद्योगों के विकास और प्रबंधन के लिए नई दिशानिर्देश तय की, जिससे उद्योगों को आर्थिक और तकनीकी दृष्टिकोण से सुदृढ़ता मिलती थी। नीति में देशी उद्योगों का प्रोत्साहन और समर्थन किया गया था। इसका मकसद था देशी उद्योगों को प्रोत्साहित करने के माध्यम से आर्थिक विकास में सुधार करना और उद्योगों की आपूर्ति और निर्यात में स्वतंत्रता प्रदान करना। यह नीति भारतीय अर्थव्यवस्था के उद्योगीकरण के पहले चरण के रूप में मानी जाती है और इसने बाद में विभिन्न आयोगों और नीतियों के माध्यम से औद्योगिक विकास की दिशा में महत्वपूर्ण परिवर्तनों को शुरू किया। (IPR) 1948 के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित थे; जिन पर प्रकाश डालना अति महत्वपूर्ण हैः–

1. प्राथमिकताओं और लक्ष्यों के अनुसार औद्योगिक निवेश और उत्पादन का विकास और विनियमनय की योजनाओं का निर्माण और क्रियान्यवयन,
2. छोटे उद्योगों का संरक्षण और प्रोत्साहन;
3. उद्योगों के स्वामित्व की एकाग्रता की रोकथाम,
4. विकास के स्तर में असमानताओं को कम करने के लिए देश के विभिन्न क्षेत्रों का संतुलित आर्थिक विकास तथा
5. भारत सरकार को उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 के

तहत इन उद्देश्यों को आगे बढ़ाने का अधिकार दिया गया था।

8.3.1 औद्योगिक नीति संकल्प (IPR) 1948 में हुए परिवर्तन

भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था है जिसका मतलब है कि सार्वजनिक और निजी क्षेत्र एक साथ मौजूद होते हैं। इसलिए, सरकार के द्वारा औद्योगिक नीतियों की घोषणा करना अत्यंत महत्वपूर्ण है जो स्पष्ट रूप से राज्य और निजी उद्यमों के क्षेत्र को दर्शाती हो। 1948 के 30 अप्रैल को, भारत सरकार ने एक नीति पर निर्णय पारित किया जिसे–औद्योगिक नीति पारिश्रमिक, 1948 (IPR, 1948) का नामकरण दिया गया।

यहां यह जानना महत्वपूर्ण है कि किस प्रकार के उधोगो की क्या भूमिका थी। आइये इसे समझने का प्रयास करें:–

1. **सामरिक उद्योग (सार्वजनिक क्षेत्र):** हथियार और बम, परमाणु ऊर्जा, रेलवे आदि जैसे मूलभूत और रणनीतिक उद्योग। इन उद्योगों का एक्सक्लूसिव मोनोपॉली राज्य के पास था।

2. **बुनियादी/मुख्य उद्योग (सार्वजनिक–सह–निजी क्षेत्र):** कोयला, लोहा और इस्पात, जहाज निर्माण, टेलीग्राफ, टेलीफोन, खनिज तेल आदि जैसे महत्वपूर्ण उद्योग। राज्य ने इन उद्योगों में भविष्य के सभी विकास की एक्सक्लूसिव जिम्मेदारी ली। इसके अलावा, मौजूदा उद्योगों को 10 वर्षों तक काम करने दिया गया था। अवधि के समाप्त होने के बाद, राज्य समीक्षा करेगा और उचित निर्णय लेगा।

3. **महत्वपूर्ण उद्योग (नियंत्रित निजो क्षेत्र):** कुल 18 उद्योगों में ऑटोमोबाइल, ट्रैक्टर, मशीन टूल्स आदि शामिल थे। निजी क्षेत्र को सरकार नियंत्रण और निगरानी के अधीन इन उद्योगों को खोलने की अनुमति दी गई। ये उद्योग निजी क्षेत्र के अधीन बने रहे हालांकि, केंद्र सरकार, राज्य सरकार के परामर्श से, उन पर सामान्य नियंत्रण रखती थी।

4. **अन्य उद्योग (निजी और सहकारी क्षेत्र):** शेष सभी उद्योग तथापि, जरूरत पड़ने पर सरकार भाग लेने या हस्तक्षेप कर सकती है।

उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम 1951 में औद्योगिक नीति संकल्प, 1948 को लागू करने के लिए पारित किया गया था।

8.3.2 औद्योगिक नीति संकल्प (IPR) 1956 के उद्देश्य

वर्ष 1956 में लाई गई आई0 पी0 आर0 अत्यन्त महत्वपूर्ण था। यह नीति अपनाने के लिए सरकार के पास तीन मुख्य उद्देश्य थे:–

- राज्य की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करना
- समाजवादी आर्थिक नीतियों के विकास के लिए अनुकूल ढंग से उद्योग विकास करना
- उद्योगों की समृद्धि तथा उनसे विकास करने वाले व्यक्तियों को प्रोत्साहित करना

8.3.3 औद्योगिक नीति संकल्प (IPR) 1956 की मुख्य विशेषताएं

दिनांक 30 अप्रैल, 1956 को सरकार ने IPR 1948 को दोबारा देखा और Industrial Policy Resolution 1956 (IPR, 1956) की घोषणा की। इस संशोधन के पीछे तीन कारण थे। भारत के संविधान के प्रस्तावना एक योजना प्रणाली के अधिग्रहण संसद द्वारा समाजवादी ढांचे के अधिसूचना IPR, 1956 के अनुसार, उद्योगों को निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया थाः

- **अनुसूची ए** – 17 उद्योगों की एक सूची जो केवल राज्य की जिम्मेदारी थी। इनमें से चार उद्योग, यानी हथियार और गोला–बारूद, परमाणु ऊर्जा, रेलवे और हवाई परिवहन केंद्र सरकार की अधिसूचना के तहत आते थे और बाकी राज्य सरकारों के अधीन थे।
- **अनुसूची ब** – 12 उद्योगों की सूची जो सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों दोनों के लिए खुली थी। हालांकि, ये उद्योग विस्तार से राज्य के स्वामित्व में थे।
- **अनुसूची सी** – शेष सभी उद्योग। निजी क्षेत्र के पास विकास का प्राथमिक पहलू था। हालांकि, वे सरकार की आर्थिक और सामाजिक बाकी उद्योगों के लिए, जहां निजी क्षेत्र को प्राथमिक विकास करने की अनुमति है। हालांकि, उन्हें सरकारी नीतियों तथा अनुशासन के अधीन होना आवश्यक था।

8.3.4 औद्योगिक लाइसेंस

औद्योगिक लाइसेंसिंग एक औद्योगिक इकाई को स्थापित करने और संचालित करने या मौजूदा एक का विस्तार करने के लिए सरकार से अनुमति प्राप्त करने की प्रक्रिया को संदर्भित करता है। यह अनुमति आमतौर पर उन उद्योगों के लिए आवश्यक होती है जिन्हें सामरिक महत्व का माना जाता है या जिनका पर्यावरण या सार्वजनिक स्वास्थ्य और सुरक्षा पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

भारत सहित कई देशों में, स्वतंत्रता के बाद के युग में उद्योगों के विकास

को विनियमित और नियंत्रित करने के साधन के रूप में औद्योगिक लाइसेंसिंग की शुरुआत की गई थी। उदाहरण के लिए, भारत में 1951 का औद्योगिक विकास और विनियमन अधिनियम (आईडीआरए), हथियारों और गोला– बारूद, हवाई जहाज और कुछ प्रकार की मशीनरी के उत्पादन में शामिल उद्योगों सहित कुछ उद्योगों के अनिवार्य लाइसेंसिंग के लिए प्रदान किया गया।

हालांकि, समय के साथ, व्यापार करने में अधिक आसानी को बढ़ावा देने और अधिक विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए, भारत सहित कई देशों में औद्योगिक लाइसेंसिंग को बड़े पैमाने पर समाप्त कर दिया गया है। उदाहरण के लिए, भारत में, सरकार ने शराब, तम्बाकू, विस्फोटक और कुछ रसायनों जैसे संवेदनशील या खतरनाक माने जाने वाले कुछ उद्योगों को छोड़कर अधिकांश उद्योगों के लिए औद्योगिक लाइसेंसिंग की आवश्यकता को समाप्त कर दिया है।

कुल मिलाकर, औद्योगिक लाइसेंसिंग की आवश्यकता को अर्थव्यवस्था में सरकार के हस्तक्षेप के रूप में देखा जाता है, जिसका औद्योगिक विकास और विकास पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव हो सकते हैं। जबकि यह उद्योगों के विकास को विनियमित और नियंत्रित करने में मदद कर सकता है, यह नौकरशाही देरी और भ्रष्टाचार का एक स्रोत भी हो सकता है, और व्यवसायों की नवीनता और प्रतिस्पर्धा करने की क्षमता को सीमित कर सकता है।

8.3.5 उद्योग नीति की समीक्षा

आईपीआर 1956 ने वह ढांचा प्रदान किया जिसके अंतर्गत भारतीय अर्थव्यवस्था की औद्योगिक संरचना पर प्रभाव डालने वाली नीतियों को तैयार किया गया था। हालाँकि, औद्योगिक नीति ढांचे की लगातार निगरानी और पुनर्मूल्यांकन किया गया है। नीतियों को समय– समय पर पुनर्निर्देशित किया गया है।

पुनर्अभिविन्यास की प्रक्रिया ने अस्सी के दशक के मध्य के बाद गति पकड़ी। सरकार ने अपनी राजकोषीय, मौद्रिक औद्योगिक और व्यापार नीतियों की जांच के लिए कई विशेषज्ञ समितियों का गठन किया। उनके निष्कर्षों और सिफारिशों के सामान्य परिणामो को निम्नलिखित बिन्दुओं पर सूचिबद्ध करते हुए प्रस्तुत किया जा सकता है। आइये इन्हें समझने का प्रयास करें:–

- त्वरित विकास के लिए बढ़े हुए आयात की आवश्यकता होगी।
- बढ़े हुए आयात के भुगतान के लिए निर्यात को बढ़ाना नितांत आवश्यक है।
- निर्यात के प्रतिस्पर्धात्मक लाभ को बढ़ाना आवश्यक है।

• इसके लिए आर्थिक नीतियों में बदलाव की जरूरत है।

इन सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए 24 जुलाई, 1991 को नई औद्योगिक नीति (एनआईपी) की घोषणा की गई थी।

8.4 नई उद्योग नीति 1991

यह औद्योगिक नीति जुलाई 1991 को लागू की गई। इसका प्रतिपादन दो चरणों या भागों में किया गया। एक तो 24 जुलाई, 1991 को जिसका सम्बन्ध बड़े एवं मझोले उद्योगों से था, और दूसरा 6 अगस्त, 1991 को जो लघु उद्योगों से सम्बन्धित है। 24 जुलाई, 1991 को सरकार ने औद्योगिक नीति में व्यापक परिवर्तनों की घोषणा की। परिवर्तित औद्योगिक नीति में 18 प्रमुख उद्योगों को छोड़कर अन्य सभी उद्योगों को लाइसेंस से मुक्त कर दिया गया। जिससे इनकी संख्या घटकर 15 रह गई है। एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम के अन्तर्गत पूँजी सीमा समाप्त कर दी गई है तथा उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में विदेशी पूँजी निवेश की सीमा को बढ़ाकर 51:% कर दिया गया है। नई औधोगिक नीति 1991 भारतीय अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण कदम था, जिसने देश की आर्थिक उदारीकरण की ओर एक परिवर्तनात्मक कदम उठाया। यह नीति 24 जुलाई 1991 को भारतीय सरकार द्वारा घोषित की गई थी। 26 मार्च, 1993 से उन 13 खनिजों को जो पहले सरकारी क्षेत्र के लिए आरक्षित थे उन्हें प्राइवेट क्षेत्र के लिए खोल दिया गया है। इसके परिणामस्वरूप, सरकारी क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों की संख्या घटकर 6 रह गई है, यथा–रक्षा उत्पादन, परमाणु ऊर्जा, कोयला और लिग्नाइट, खनिज तेल, रेलवे परिवहन और परमाणु ऊर्जा आदेश, 1953 की अनुसूची में विनिर्दिष्ट खनिज।

यह नीति पश्चिमी विदेशी प्रतिस्पर्धा के माध्यम से आर्थिक सुधारों की ओर एक अवसर थी और उद्योग विकास के लिए नई संरचनाओं को बनाने और विदेशी पुंजी को आयात करने के लिए द्वार खोलने का आह्वान कर रही थी।

इन नीतिगत सुधारों की प्रक्रिया को आगामी वर्षों में भी जारी रखा गया। औद्योगिक क्षेत्र में इन महत्वपूर्ण सुधारों का वर्णन इस प्रकार से किया जा सकता है। नई उद्योग नीति 1991 के मुख्य प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थेः।आइये इन्हें क्रमशः सूचिबद्ध कर समझने का प्रयास करेंः–

1. विदेशी प्रतिस्पर्धा के माध्यम से उद्योग को सशक्त बनाना।
2. अवैध उद्योगों के संचालन को रोकना और उनके संगठनिक विनियमित करना।

3. औद्योगिक निवेशों के लिए विदेशी पुंजी को आयात करने के लिए द्वार खोलना।
4. उद्योगों के लिए नई संरचनाएं बनाना और वित्तीय प्रणाली को सुधारना।
6. उद्योग सेक्टर में निवेशों के लिए निजी क्षेत्र को आकर्षित करना।
7. सरकारी नियमों और विनियमों को सरल, प्रतिस्पर्धात्मक और अभिकर्षक बनाना।

नई उद्योग नीति 1991 के परिणामस्वरूप, भारतीय अर्थव्यवस्था में बड़े परिवर्तन हुए, जिनमें विदेशी प्रतिस्पर्धा के कारण बड़ी संख्या में नए उद्योगों की स्थापना हुई, विदेशी निवेश बढ़ा, विदेशी ब्रांडों की उपस्थिति में वृद्धि हुई, औद्योगिक क्षेत्र में प्रदर्शन बेहतर हुआ, नए क्षेत्रों में मुद्रा आयात और निर्यात में वृद्धि हुई, और अर्थव्यवस्था में वृद्धि दर बढ़ी। इस नीति ने भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तनों को उजागर किया और देश को आर्थिक विकास की नई ऊंचाईयों की ओर ले जाने में मदद की।इसके अन्य प्रमुख और महत्वपूर्ण परिणामों मे निम्नलिखित को सम्मिलित किया जा सकता हैः–

- **सरकार के एकाधिकार में कमीः** सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों की संख्या 17 (1956 की नीति के अनुसार) से घटाकर 8 उद्योग जैसे हथियार और गोला–बारूद, परमाणु ऊर्जा, कोयला, खनिज तेल, लौह अयस्क का खनन, सरकारी एकाधिकार को कम किया गया। मैंगनीज अयस्क, सोना, चांदी, तांबा, सीसा आदि के खनन को निजी क्षेत्रों को भी सौपा गया।
- **औद्योगिक लाइसेंसिंग की समाप्तिः** एनआईपी, 1991 की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता छह उद्योगों को छोड़कर सभी उद्योगों के औद्योगिक लाइसेंस को समाप्त करना था। छह उद्योग सामाजिक और रणनीतिक चिंता के हैं। छह उद्योग हैं– 1. खतरनाक रसायन 2. शराब 3. सिगरेट 4. औद्योगिक विस्फोटक 5. रक्षा उत्पाद, और 6. दवा और फार्मास्यूटिकल्स।
- **प्रमुख हिस्सेदारी के रूप में विदेशी कंपनियों का प्रावधानः** इसने विदेशी कंपनियों को भारत में बहुमत हिस्सेदारी की अनुमति दी। उदाहरण के लिए, 47 उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगों में 51ः तक थ्क् की अनुमति थी।
- **अनिवासी भारतीयों (एनआरआई) के लिए प्रावधानः** अनिवासी भारतीयों (एनआरआई) को नकारात्मक सूची को छोड़कर सभी गतिविधियों में गैर–प्रत्यावर्तन आधार पर 100ः इक्विटी निवेश की अनुमति दी गई थी।

- **विदेशी तकनीकों पर आंतरिक समझौतेः** विदेशी प्रौद्योगिकियों के बारे में विभिन्न अंर्तराष्ट्रीय समझौते किए गए। उदाहरण के लिए, उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगों को रुपये के एकमुश्त भुगतान की अनुमति देना। 1 करोड़, घरेलू बिक्री के लिए 5ः रॉयल्टी और निर्यात के लिए 8ः।

- **सार्वजनिक क्षेत्र के निवेश पोर्टफोलियो का पुनर्गठनः** सार्वजनिक क्षेत्र के निवेश के पोर्टफोलियो का पुनर्गठन, उदाहरण के लिए, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम जिनका कायापलट होने की संभावना नहीं थी, उन्हें औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (बीआईएफआर) को भेजा जाना था।

- **केंद्र सरकार से पूर्वानुमोदन को हटानाः** नए उपक्रमों की स्थापना, उपक्रमों के विस्तार, विलय, समामेलन आदि के लिए केंद्र सरकार के पूर्व अनुमोदन की आवश्यकता को समाप्त करने के लिए एमआरटीपी अधिनियम में संशोधन किया जाना था।

- **छोटी इकाइयों के लिए मानक में परिवर्तनः** एक छोटी इकाई के मानदंड को 05 लाख रुपये से कम की निवेश सीमा वाली इकाई में बदल दिया गया 5 लाख।

- **सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम की नई परिभाषाः** नई परिभाषा में विनिर्माण और सेवा उद्यम दोनों सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम के अर्थ में शामिल हैं। निवेश की सीमा तय कर दी गई थी। इसकी व्याख्या इस प्रकार हैः–

क) विनिर्माण उद्यमः संयंत्र और मशीनरी में निवेश के आधार पर।

- सूक्ष्म उद्यम – 25 लाख रुपये तक
- लघु उद्यम – 25 लाख रुपये से अधिक और 05 करोड़ रुपये तक
- मध्यम उद्यम– 05 करोड़ रुपये से अधिक और 10 करोड़ रुपये तक

ख) सेवा उद्यमः उपकरणों में निवेश के आधार पर।

- सूक्ष्म उद्यम–10 लाख रुपये तक
- लघु उद्यम– 10 लाख रुपये से अधिक और 02 करोड़ रुपये तक
- मध्यम उद्यम– 02 करोड़ रुपये से अधिक और 05 करोड़ रुपये तक

(नोट यह निवेश राशि तात्कालिक है)

ग) मजदूरों को सुविधाएंः श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए

राष्ट्रीय नवीकरण कोष की स्थापना की गई है। यह कोष तकनीकी परिवर्तन, सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों के बंद होने और सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों के निजीकरण से प्रभावित श्रमिकों को राहत प्रदान करता है।

- **राष्टोय नवीनीकरण कोष की स्थापनाः** इस नीति के अनुसार, सरकार ने श्रम के लिए एक सामाजिक सुरक्षा जाल सुनिश्चित करने के लिए एक राष्ट्रीय नवीनीकरण कोष ((NRF)) की स्थापना की घोषणा की।

8.4.1 उद्देश्य

1991 की उद्योग नीति के मुख्य उद्देश्यों का विस्तारपूर्वक वर्णन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता हैः

- **अंर्तराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता की प्राप्तिः** उद्योग नीति के प्रमुख उद्देश्य में से एक था अंर्तराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता को प्राप्त करना। नई नीति ने विदेशी निवेशों को आयात करने के लिए द्वार खोला, विदेशी प्रतिस्पर्धा के साथ मुकाबला करने के लिए उद्योगों को मजबूत बनाने की योजना बनाई और विदेशी वित्तीय संस्थानों के प्रवेश को अनुमति दी। इससे भारतीय उद्योग संगठनों को विदेशी प्रतिस्पर्धा के साथ तयार होने का मौका मिला।

- **पिछले चार दशकों की आर्थिक योजना के दौरान निर्मित ताकत को मजबूत करना और पहले से प्राप्त लाभों पर निर्माण करनाः** 1991 की उद्योग नीति ने विभिन्न क्षेत्रों में उद्यमिता को प्रोत्साहित किया और नए उद्योगों की स्थापना को बढ़ावा दिया। इससे अनुप्रयोगी और पुरानी तकनीकों के उपयोग पर ध्यान देने वाले उद्योगों को मजबूत करने में मदद मिली और पहले से प्राप्त लाभों के ऊपर नई ऊंचाइयों की प्राप्ति हुई।

- **पिछड़े क्षेत्रों का विकासः** यह नीति पिछड़े क्षेत्रों के विकास को ध्यान में रखते हुए उन्हें प्रोत्साहित करती है। विभिन्न योजनाओं और उपायों के माध्यम से जैसे कि समान्यज्ञान के साधनों के विकास, उद्योगों के लिए आरक्षण, प्रशिक्षण प्रोत्साहन, और उद्योगों की स्थापना के लिए विशेष वित्तीय योजनाएं, पिछड़े क्षेत्रों को उन्नति के मार्ग पर लाने का प्रयास किया गया।

- **भारतीय उद्योग के भीतर प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित करनाः** उद्योग नीति ने भारतीय उद्योग के भीतर प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देने के लिए उद्यमिता, उत्पादन की गुणवत्ता, और वित्तीय सुचारुता को प्रमोट किया। उद्योगों को नई संरचनाएं बनाने, तकनीकी नवाचारों को अपनाने, और उत्पादन प्रक्रिया में

सुधार करने के लिए प्रोत्साहित किया गया।

- **उत्पादक संसाधनों का कुशल उपयोगः** औधोगिक नीति ने संसाधनों का कुशल उपयोग करने की योजना बनाई है। यह मानव संसाधन, प्राकृतिक संसाधन, और तकनीकी संसाधन को अधिकतम उपयोग करके उत्पादकता को बढ़ावा देने का उद्देश्य रखती है।

- **रोजगार पैदा करने के लिए संयंत्रों की क्षमताओं का पूर्ण उपयोगः** उद्योग नीति का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य था रोजगार की समस्या को हल करना। इसके लिए, नई नीति ने उत्पादक संयंत्रों की क्षमताओं का पूर्ण उपयोग करने की योजना बनाई और अधिक रोजगार अवसर पैदा करने के लिए उद्योगों के विस्तार और विकास को प्रोत्साहित किया।

- **कमजोर इकाइयों का पुनरुद्धारः** उद्योग नीति का एक अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य था कमजोर उद्योगों को पुनरुद्धार करना। नई नीति ने कमजोर उद्योगों को प्रोत्साहित करने, उन्हें तकनीकी सहायता और वित्तीय समर्थन प्रदान करने, और उनके सुधार को लागू करने की योजना बनाई।

इन उद्देश्यों के अंतर्गत, 1991 की उद्योग नीति ने भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तनों को लागू किया और उद्योग सेक्टर में विदेशी प्रतिस्पर्धा, तकनीकी प्रगति, और आर्थिक विकास को प्रोत्साहित किया।

8.4.2 नीति संबंधी उपाय

1991 की औधोगिक नीति को कार्यान्वित करने के लिए कई उपायों को अपनाया गया। इनमें से कुछ प्रमुख उपाय निम्नलिखित हैं। आइये इन्हें क्रमबद्ध कर समझने का प्रयास करें।

क) औद्योगिक लाइसेंसिंगः

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित विन्दुओं के सम्मिलित किया गया है। आइये इन्हें क्रमबद्ध कर समझने का प्रयास करें।

1. सुरक्षा और रणनीतिक चिंताओं, सामाजिक कारणों, खतरनाक रसायनों आदि से संबंधित 07 उद्योगों की एक छोटी सूची को छोड़कर सभी परियोजनाओं के लिए औद्योगिक लाइसेंसिंग समाप्त कर दी गई।
2. ऐसे क्षेत्र जहां सुरक्षा और रणनीतिक चिंताएं प्रबल थी उन्हें, सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित किया गया।
3. उन परियोजनाओं में जहां आयातित पूंजीगत माल की आवश्यकता होती

है, स्वतः मंजूरी दी जाने लगी।

4. 10 लाख से अधिक आबादी वाले शहरों के अलावा अन्य स्थानों में, केंद्र सरकार से औद्योगिक अनुमोदन प्राप्त करने की आवश्यकता को समाप्त कर दिया गया।

5. ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में फैलाव को बढ़ावा देने के लिए ढांचागत विकास में प्रोत्साहन और निवेश की मजबूत रणपनीति का निर्माण किया गया।

6. मौजूदा इकाइयां अतिरिक्त निवेश के बिना किसी भी वस्तु का उत्पादन करने में सक्षम बने ऐसा नियोजित और नियंत्रित प्रक्रिया का निर्माण किया गया।

7. वर्तमान में, केवल तीन उद्योग समूह जहां सुरक्षा और रणनीतिक चिंताएं प्रबल हैं, विशेष रूप से सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित होंगे। तीन उद्योग समूह हैंः

   - परमाणु ऊर्जा
   - परमाणु ऊर्जा विभाग द्वारा अधिसूचित पदार्थ
   - रेलवे परिवहन (निजी पूंजी को रेलवे परिवहन में सीमित प्रवेश की अनुमति दी जा रही है)

8. वर्तमान में, निम्नानुसार केवल पांच उद्योग समूह औद्योगिक लाइसेंसिंग के अधीन हैं

   - तंबाकू के मादक पेय
   - सिगार और सिगरेट और निर्मित तंबाकू के विकल्प
   - इलेक्ट्रॉनिक एयरोस्पेस और रक्षा उपकरण सहित सभी प्रकार के हथियार और गोला–बारूद और रक्षा उपकरण, रक्षा विमान और युद्धपोतों की संबद्ध वस्तुओं सहित
   - सभी प्रकार औद्योगिक विस्फोटक जिसमें डेटोनेटिंग फ्यूज, सेफ्टी फ्यूज, गन पाउडर, नाइट्रोसेल्यूलोज और खतरनाक रसायन
   - ड्रग्स और फार्मास्यूटिकल्स शामिल हैं (थोक दवा उद्योग को लाइसेंस मुक्त कर दिया गया है)

ख) विदेशी निवेशः

1. उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगों में 51 प्रतिशत तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की स्वीकृति प्रदान की गई इस प्रक्रिया में किसी प्रकार की कोई बाधा न आने पाये इसके प्रावधान किये गये।
2. आरबीआई द्वारा निगरानी की जाने वाली अन्य घरेलू इकाइयों के लिए लागू सामान्य नीति द्वारा आयात को नियंत्रित किया जाने लगा।
3. अन्य विशेष विदेशी इक्विटी प्रस्ताव, जिनके महत्व कुछ अलग प्रकार के थे उन पर, पूर्व मंजूरी की जरूरत है।
4. एक विशेष अधिकार प्राप्त बोर्ड का गठन किया गया जिसका काम कई बड़ी अंतरराष्ट्रीय फर्मों के साथ बातचीत करने और चुनिंदा क्षेत्रो मे प्रत्यक्ष निवेश को मंजूरी देने को गठन किया गया।

ग) विदेशी प्रौद्योगिकी समझौतेः

1. उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगों में विदेशी प्रौद्योगिकी करारों के लिए एकमुश्त 01 करोड तक की स्वचालित अनुमति प्रदान करने की व्यवस्था की गई।
2. स्वदेशी रूप से विकसित प्रौद्योगिकियों के विदेशी परीक्षण के लिए विदेशी तकनीशियनों को काम पर रखने के लिए किसी अनुमति की आवश्यकता को समाप्त कर दिया गया है।

घ) एमआरटीपी अधिनियमः

मरुदर्शन रेडियो और टेलीविजन प्रसारण प्रतिबंध एक्ट (डत्ज्च्।बज) 1969 भारतीय अधिनियम है जो मरुदर्शन, रेडियो और टेलीविजन सेक्टर में व्यापारिक संरचनाओं, विशेषतः बड़े उद्योगों और कंपनियों के बीमा और प्रतिस्पर्धा के अंतर्गत एकाधिकता और आधिकारिक नियंत्रण को नियंत्रित करता है। यह अधिनियम व्यापारिक उपयोगकर्ताओं, उपभोक्ताओं और सामान्य जनता के हितों की सुरक्षा और संरक्षण के लिए नियमों और नियंत्रणों की प्रदान करता है। एकाधिकार वादी, प्रतिबंधात्मक और अनुचित व्यापार प्रथाओं को नियंत्रित और विनियमित करने पर जोर दिया जाएगा। इसके साथ ही, नव सशक्त एमआरटीपी आयोग एकाधिकार, प्रतिबंधात्मक और अनुचित व्यापार के संबंध में व्यक्तिगत उपभोक्ताओं या उपभोक्ताओं के वर्गों से प्राप्त शिकायतों पर जांच की पहल करने के लिए अधिकृत होगा।

च) सार्वजनिक क्षेत्र की नीतिः

सार्वजनिक क्षेत्र की नीति एक आर्थिक और सामाजिक नीति है जिसमें सरकार द्वारा संचालित किए जाने वाले संस्थान, उद्योग, और सेवाएं सरकारी क्षेत्र में बनाए रखने या सरकार के अधीन संचालित करने का अधिकार रखती है। इसका मतलब होता है कि सरकार संबंधित संस्थानों के संपत्ति, प्रबंधन और नियंत्रण का अधिकार रखती है और उन्हें नियमित करती है।इसके अन्तर्गत निम्नलिखित को सम्मिलित किया गया है:–

1. रणनीतिक, उच्च तकनीक और आवश्यक बुनियादी ढांचे पर सार्वजनिक क्षेत्र पर ध्यान केंद्रित करने की दृष्टि से सार्वजनिक क्षेत्र के निवेश के पोर्टफोलियो की समीक्षा की गई।
2. लंबे समय से बीमार सार्वजनिक उद्यम, औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड को संदर्भित किया गया।
3. सार्वजनिक क्षेत्र में सरकार की हिस्सेदारी का एक हिस्सा म्यूचुअल फंड, वित्तीय संस्थानों, जनता और श्रमिकों को दिया जाता है।
4. सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों के बोर्ड – अधिक पेशेवर और ताकतवर बनाने पर जोर दिया गया।
5. एमओयू प्रणाली– प्रबंधन को अधिक स्वायत्तता दी जाएगी और जवाबदेह बनाया गया।
6. भविष्य में सार्वजनिक उद्यमों के विकास के लिए प्राथमिकता वाले क्षेत्र के अन्तर्गत निम्न को सम्मिलित किया गया।:–

- आवश्यक बुनियादी ढांचा सामान और सेवाएं।
- तेल और खनिज संसाधनों की खोज और दोहन।
- प्रौद्योगिकी विकास और उन क्षेत्रों में विनिर्माण क्षमताओं का निर्माण जो अर्थव्यवस्था के दीर्घकालिक विकास में महत्वपूर्ण हैं और जहां निजी क्षेत्र का निवेश अपर्याप्त है।
- ऐसे उत्पादों का निर्माण जहां रक्षा उपकरण जैसे रणनीतिक विचार प्रबल हों।

8.4.3 नई उद्योग नीति का मूल्यांकन

नई औद्योगिक नीति ने भारत में औद्योगिक स्तर को रातोंरात बदल दिया है।

'सीमा और विस्तार में, यह औद्योगिक नीति एक आधारबिंदु है जो अर्थव्यवस्था के लिए IPR 1956 के समान महत्वपूर्ण होगी, जो औद्योगिक विकास में राज्य के योगदान को प्राथमिकता देता था। अब से, औद्योगिक उद्यम, प्रदर्शन क्षमता और बाजार औद्योगिक प्रगति के निर्धारक बनेंगे। नई औद्योगिक नीति का मूल्यांकन विभिन्न कारकों और दृष्टिकोणों पर निर्भर करता है। यहां, हम इसके प्रभाव का आकलन करने के लिए कुछ प्रमुख पहलुओं पर विचार करेंगेः

- अनेक उद्योगों के डीलाइसेंसिंग और सभी पंजीकरण योजनाओं को समाप्त करने से उद्यमियों को निर्णय लेने में तेजी होगी और वे त्वरित रूप से व्यापार अवसरों को ग्रहण करने के लिए कदम रख सकेंगे।

- दूसरे क्षेत्र में जहां सरकार ने एक विशाल कदम उठाया है, नई और पूर्वतः पवित्र भूमि को तोड़ते हुए, वह भारतीय कंपनियों में विदेशी भागीदारी के संबंध में है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के नियमों का उदारीकरण, जिसमें विभिन्न उद्योगों में 51 प्रतिशत और यहां तक कि 74 प्रतिशत पूंजीकरण की अनुमति दी गई है, विदेशी प्रौद्योगिकी समझौतों को आसानी से सुविधाएं और अन्य संबंधित उपाय भारतीय औद्योगिक नीति के विकास में ऐतिहासिक संधि हैं।

- इसके अलावा, फेजड मैन्युफैक्चरिंग प्रोग्राम पर नीति को छोड़ने का भी एक महत्वपूर्ण घटक है, क्योंकि यह मामूली रूप से विद्यमान तत्व पर आधारित तरीके को दूर करता है, और क्योंकि देशीकरण के लिए उपयुक्त वित्तीय प्रोत्साहन का विदेशी मूल्य में बना हुआ है और व्यापार नीति में शामिल है।

- सार्वजनिक क्षेत्र पर, नीति सही से अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका का मूल्यांकन करती है। सार्वजनिक क्षेत्र ने उन क्षेत्रों में प्रवेश किया है जिनमें कोई वाणिज्यिक तर्क सेवित नहीं होता है और न ही कोई व्यापक कल्याण योजना पूरी होती है। इसलिए, इन उद्योगों में सरकारी हिस्सेदारी को छोड़ देना और वाणिज्यिक तर्क को उनके काम की नीति होना समझदारी है।

- **ईज ऑफ डूइंग बिजनेसः** पॉलिसी में लाइसेंसगि को खत्म करने और रजिस्ट्रेशन स्कीमों को खत्म करने पर जोर दिए जाने से उद्यमियों के लिए ईज ऑफ डूइंग बिजनेस में सुधार हुआ है। सरलीकृत नियम और कम नौकरशाही बाधाएं व्यवसायों के लिए तेजी से निर्णय लेने और सुचारू संचालन को सक्षम करती हैं।

- **विदेशी निवेश और प्रौद्योगिकी हस्तांतरणः** विदेशी निवेश नियमों के उदारीकरण ने भारत में अधिक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) को आकर्षित किया है। उद्योगों में विदेशी भागीदारी में वृद्धि ने उन्नत प्रौद्योगिकी के हस्तांतरण, नवाचार और आधुनिकीकरण को बढ़ावा देने की सुविधा प्रदान की है।

- **प्रतिस्पर्धात्मकता :** औद्योगिक दक्षता और बाजार निर्धारकों पर नीति के फोकस ने व्यवसायों को अधिक प्रतिस्पर्धी बनने के लिए प्रोत्साहित किया है। कंपनियां बाजार में सफल रहने के लिए अपनी उत्पादकता और गुणवत्ता में सुधार करने का प्रयास कर रही हैं।

- **सार्वजनिक क्षेत्र सुधार :** गैर–रणनीतिक क्षेत्रों में विनिवेश के प्रति नीति के दृष्टकोण ने संसाधनों के कुशल आवंटन और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के बेहतर प्रदर्शन को जन्म दिया है। इसने सरकार पर बोझ को कम किया है और सार्वजनिक धन के अधिक कुशल उपयोग की अनुमति दी है।

- **स्वदेशीकरण और निर्यात संवर्धन :** चरणबद्ध विनिर्माण कार्यक्रमों को खत्म करने और स्वदेशीकरण के लिए वित्तीय प्रोत्साहन ने घरेलू उत्पादन और निर्यात को प्रोत्साहित किया है। इसने भारत के व्यापार संतुलन को सकारात्मक रूप से प्रभावित किया है और आयात निर्भरता को कम किया है।

- **सतत विकास :** पर्यावरण के अनुकूल प्रथाओं और पर्यावरण संरक्षण पर नीति का ध्यान सतत विकास लक्ष्यों के साथ संरेखित है। उद्योग अपने पर्यावरणीय प्रभाव के बारे में अधिक जागरूक हो रहे हैं, एक हरियाली और अधिक टिकाऊ औद्योगिक क्षेत्र को बढ़ावा दे रहे हैं।

- **समावेशी विकास :** छोटे और मध्यम आकार के उद्यमों (एसएमई) को प्रदान की गई सहायता ने उनकी वृद्धि को बढ़ावा दिया है और रोजगार सृजन में योगदान दिया है। निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा पर नीति का जोर छोटे व्यवसायों को लाभ पहुंचाता है और एक अधिक समावेशी औद्योगिक पारिस्थितिकी तंत्र को बढ़ावा देता है।

- **चुनौतियां :** इसकी खूबियों के बावजूद, नीति को कार्यान्वयन में चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है। बुनियादी ढांचे के विकास, नौकरशाही जड़ता और क्षेत्रीय असमानता जैसे मुद्दे इसकी पूर्ण प्राप्ति में बाधा डाल सकते हैं।

वस्तुतः नई औद्योगिक नीति में औद्योगिक क्षेत्र को उदार बनाने और आर्थिक वृद्धि को बढ़ावा देने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं। बाजार की ताकतों, विदेशी निवेश, प्रौद्योगिकी हस्तांतरण और सतत विकास पर इसके फोकस में भारत के औद्योगिक परिदृश्य को सकारात्मक रूप से नया रूप देने की क्षमता है। हालांकि, सफल कार्यान्वयन, निगरानी और किसी भी चुनौती को संबोधित करना इसकी दीर्घकालिक सफलता के लिए महत्वपूर्ण होगा।

8.5 सार्वजनिक क्षेत्र में और निजीकरण सुधार

सार्वजनिक क्षेत्र के सुधारों का मुख्य उद्देश्य उद्योगों के प्रभावशील नियंत्रण, बेहतर प्रबंधन और वृद्धि है। सार्वजनिक क्षेत्र में सुधार शासनादेश, नीतियां, और निर्देशिकाएं शामिल होती हैं जो स्थानीय और राष्ट्रीय स्तरों पर लागू की जाती हैं। इससे उद्योगों को संचालित करने के लिए उच्चतम गुणवत्ता मानकों और नैतिकता के पालन के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है।

विपणन, निवेश, और तकनीकी उन्नति में सुधार निजीकरण सुधार के रूप में किया जा सकता है। यह निजी संस्थानों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने, स्वायत्तता के अवसर प्रदान करने और उन्हें विभिन्न अधिकारियों से आजादी देने में मदद करता है। निजीकरण के माध्यम से उद्योगों को स्वतंत्रता और विशेषज्ञता के साथ अपने विकास के लिए अधिक संबंधित कार्यवाहीयों को अवलंबित करने का मौका मिलता है।

इस तरह, सार्वजनिक क्षेत्र में और निजीकरण सुधार का समन्वय किया जा सकता है ताकि देश के उद्योग सेक्टर को सुदृढ़ और समृद्ध बनाने में मदद मिले और साथ ही राष्ट्रीय आर्थिक विकास को बढ़ावा मिले।

8.5.1 निजीकरण का अर्थ

निजीकरण एक प्रक्रिया होती है जिसमें सरकारी संपत्ति या सेवाओं के स्वामित्व और नियंत्रण को निजी इकाइयों जैसे व्यक्ति या कंपनियों के पास स्थानांतरित किया जाता है। निजीकरण शब्द का अर्थ होता है ‘‘"privatization या "disinvestment"। निजीकरण का अभिप्राय– निजी क्षेत्र द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के उद्दमों, व्यवसायों आदि पर पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से स्वामित्व प्राप्त करना तथा उनका प्रबंधन करना है। आर्थिक सुधार के अंतर्गत भारत सरकार ने 1991 ई0 से निजीकरण की नीति को अपनायी है। जिसके परिणामस्वरूप भारत का विकास काफी तेजी से होने लगा है।

उदारीकरण के अन्तर्गत व्यापार, उद्योग एवं निवेश पर लगे ऐसे प्रतिबन्धों को समाप्त किया जा रहा है, जिनके फलस्वरूप व्यापार, उद्योग एवं निवेश के स्वतन्त्र प्रवाह में बाधा उत्पन्न होती है। प्रतिबन्धों को समाप्त करने के अतिरिक्त विभिन्न करों में रियायत सीमा शुल्कों में कटौती तथा मात्रात्मक प्रतिबन्धों को समाप्त करने जैसे उपाय भी किए जा रहे हैं।

8.5.2 निजीकरण के पक्ष में तर्क

एक आर्थिक और सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें सरकार द्वारा संचालित किए जाने वाले संस्थान, उद्योग, और सेवाएं निजी क्षेत्र को सौंप दी जाती हैं। इसका मतलब होता है कि सरकार नये नियम बनाती हैं और संबंधित संस्थान के संपत्ति, प्रबंधन और नियंत्रण का अधिकार निजी व्यक्ति, कम्पनी या संगठन को सौंपती है। निजीकरण के पक्ष में एक तर्क यह हो सकता है कि राज्य के गैर–विकासात्मक, गैर–योजना व्यय की वजह से सरकारी संसाधनों का अपशिष्ट उपयोग हो रहा है और उन्हें सरकार के बढ़ते उपभोग व्यय के लिए बचाना आवश्यक है। इस तरीके से, संसाधनों का निजीकरण और निजी सेक्टर में उपयोग होने से सरकार के खर्च कम होंगे और यह संसाधनों को बढ़ावा देगा। निजीकरण के माध्यम से, संसाधनों का उपयोग प्रभावी ढंग से हो सकता है, जिससे संसाधनों का उपयोग सरकारी क्षेत्र में होने वाले बदलाव के साथ मिलता है।

इस विचारधारा के अनुसार, निजीकरण से सरकार के द्वारा उपयोग किए जाने वाले संसाधनों की व्यवस्था में सुधार होगा, जिससे उनका बेहतर उपयोग होगा। सरकारी क्षेत्र में संसाधनों के अपशिष्ट उपयोग से यह संभव है कि संसाधनों की कमी हो जाए और सरकार विभिन्न क्षेत्रों में योजनाएं और परियोजनाएं नहीं ला सके। इसलिए, निजीकरण के माध्यम से संसाधनों के बेहतर उपयोग के साथ सरकार की व्यय प्रबंधन की क्षमता में सुधार हो सकता है। वैसे भी, निजीकरण के माध्यम से सरकार संचालित क्षेत्रों को निजी सेक्टर में उच्चतर उत्पादकता और दक्षता के साथ निर्माण करने का अवसर प्रदान करता है। निजीकरण द्वारा संचालित क्षेत्रों में नई तकनीकियों, प्रबंधन प्रथाओं और नवीनतम विचारों का उपयोग होता है जो सुविधाओं की गुणवत्ता में सुधार करते हैं और नई रोजगार के अवसर प्रदान करते हैं। इस तरीके से, निजीकरण से एक नया उद्यमी आदान–प्रदान समुदाय उत्पन्न होता है जो आर्थिक विकास को बढ़ावा देता है और नये रोजगार के अवसर सृजित करता है।

यद्यपि निजीकरण के पक्ष में यह तर्क प्रायोगिकता रखता है, इसमें

विचारधारा के प्रतिकूल विचारों के भी तत्व हैं। कुछ लोग यह दावा कर सकते हैं कि निजीकरण आर्थिक असमानता को बढ़ा सकता है और सार्वजनिक सेवाओं की पहुंच में कमी ला सकता है। इसके अलावा, सरकारी संसाधनों को निजीकरण के माध्यम से अन्यथा उपयोग करने से लोगों की हितों को कम प्राथमिकता मिल सकती है।

क) अर्थव्यवस्था के लिए वृद्धिशील पूंजीः उत्पादन अनुपात योजना दर योजना बढ़ता जा रहा है। सार्वजनिक क्षेत्र के लिए यह अनुपात और भी अधिक है और आगे बढ़ने की प्रवृत्ति प्रदर्शित करता है।

ख) क्षमता का विस्तारः निजीकरण से संपत्ति या सेवाएं निजी बनाकर उन्हें निजी संगठनों के द्वारा संचालित करने से, संगठन के विकास और क्षमता का विस्तार हो सकता है।

ग) आर्थिक स्थिरताः सरकारी संस्थानों को निजीकरण के माध्यम से आर्थिक स्थिरता प्राप्त करने में मदद मिलती है। निजीकृत करने से, संस्थानों के आवंटित धनराशि अधिक उपयोगी बनती है और उन्हें वित्तीय स्थिरता मिलती है।

8.5.3 निजीकरण से लाभ

जैसा कि हमने जाना निजीकरण का अर्थ होता है कि सरकारी संस्थानों और उद्योगों को निजी सेक्टर के व्यापारिक संगठनों के लिए खोला जाए, जिससे कि सरकार का हस्तक्षेप कम हो और व्यक्ति एवं संगठनों को अपनी निजी योजनाओं को प्रदान करने की स्वतंत्रता मिले। निजीकरण के विभिन्न लाभ निम्मलिखित है। आइये इन्हें सूचिबद्ध कर क्रमशः समझने का प्रयास करें:–

1. **उत्पादन एवं उत्पादक क्षमता में वृद्धिः** निजीकरण के माध्यम से, उद्योगों को अपने कार्यक्रमों और उत्पादकता में वृद्धि करने की स्वतंत्रता मिलती है। निजी संगठनों का प्रबंधन प्रशासनिक और तकनीकी नवाचारों का अधिक उपयोग कर सकता है जो उत्पादन और उत्पादकता में सुधार करते हैं। इससे उत्पादकता बढ़ती है, जो अवसरों की वृद्धि, रोजगार के अवसरों का बढ़ना और आय बढ़ना संभव बनाता है।

2. **निवेश के क्षेत्र में वृद्धिः** निजीकरण से सरकारी संस्थानों और उद्योगों को निवेश के लिए आकर्षक बनाने का मार्ग खुल जाता है। निजी सेक्टर में निवेश करने के लिए निजी निवेशकों को अधिक सुविधाएं और लाभ प्राप्त

होते हैं, जिससे वे उद्यमिता के लिए आकर्षित होते हैं। यह नए उद्योगों की स्थापना को प्रोत्साहित करता है और विभिन्न क्षेत्रों में नवीनतम तकनीक और उद्योगों की प्रविष्टि को संभव बनाता है।

3. **बहुराष्ट्रीय कंपनियों की संख्या में वृद्धिः** निजीकरण के परिणामस्वरूप, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रवेश में वृद्धि हुई है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रवेश से नए विचार, प्रौद्योगिकी और मानव संसाधन का इस्तेमाल होता है, जो उद्योग में नवीनीकरण और विकास को बढ़ावा देता है। इससे आपूर्ति श्रृंखला विस्तारित होती है, तकनीकी ज्ञान की साझा प्राप्ति होती है और विभिन्न उत्पादों की वृद्धि होती है।

4. **अंर्तराष्ट्रीय व्यापार में सुधार होने लगा हैः** निजीकरण के माध्यम से, भारतीय उद्योगों को विदेशी बाजारों में प्रवेश करने की सुविधा मिलती है। इससे अंर्तराष्ट्रीय व्यापार में सुधार होता है, जैसे कि नए निर्यात और आयात अवसर खुलते हैं, उत्पादों की गुणवत्ता बढ़ती है और बाजार का विस्तार होता है।

5. **जीडीपी के आकार में वृद्धिः** निजीकरण के माध्यम से, देश के जीडीपी (ग्रोस डोमेस्टिक प्रोडक्ट) का आकार वृद्धि करता है। निजी सेक्टर में वृद्धि और उत्पादकता की वृद्धि के कारण विभिन्न क्षेत्रों में अधिक आय, रोजगार और संप्रभुता के अवसर पैदा होते हैं। इससे देश की आर्थिक स्थिति मजबूत होती है और जनसंख्या के आर्थिक विकास में सुधार होता है।

वस्तुतः निजीकरण के फायदे उद्योग एवं आर्थिक विकास को संवार्धित करते हैं, उत्पादन एवं नवाचार को प्रोत्साहित करते हैं, नए विपणन अवसरों का निर्माण करते हैं और देश की आर्थिक स्थिति में सुधार प्रदान करते हैं।

8.5.4 निजीकरण के संबंध में कार्यवाहियां

निजीकरण के सम्बन्ध में सरकारी नीति के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं–

1. भारत में विनिवेश ही निजीकरण का मुख्य आधार रहा है। विनिवेश के माध्यम से सार्वजनिक उपक्रमों के अंश स्वदेशी या विदेशी निजी निवेशकों के हाथ बेचे जाते है। वर्ष 1991–92 या 2001–2002 तक कुल मिलाकर, 65,300 करोड़ रूपये विनिवेश के माध्यम से अर्जित करने का लक्ष्य रखा गया, जबकि सिर्फ 19,435 करोड़ रूपये (अक्टूबर 2001 तक) वास्तव में प्राप्त किए जा सके। दूसरे शब्दों में, मात्र 29.78 प्रतिशत लक्ष्य ही पूरा

किया जा सका।

2. भारत में निजीकरण का कार्यक्रम विनिवेश तक ही सीमित नहीं है। औद्योगिक एवं व्यावसायिक लाइसेन्स की नीति, विदेशी विनिमय की नीति, आयात–निर्यात की नीति तथा कर नीति को उदार बनाकर निजी क्षेत्र के निवेशकों को प्रोत्साहित किया जा रहा है।

3. अब निजी क्षेत्र के किसी प्रतिष्ठान के राष्ट्रीयकरण की बात नहीं हो रही है। रेल और सुरक्षा क्षेत्र को छोड़कर अन्य सरकारी प्रतिष्ठानों के अंश निजी निवेशकों के हाथों बेचे जा रहे हैं या उन पर विचार किया जा रहा है। कई क्षेत्र शत–प्रतिशत निवेश के साथ विदेशी निवेशकों के लिए खोल दिए गए हैं। भारतीय निवेशकों के साथ मिलकर अन्य क्षेत्रों में विदेशी निवेशको की भागीदारी में उत्तरोत्तर वृद्धि की जा रही हैं।

4. निवेशक काफी संख्या में संयुक्त उपक्रम स्थापित कर रहे हैं। सरकारी क्षेत्र में कोई नया औद्योगिक या व्यावसायिक उपक्रम स्थापित नहीं किया जा रहा है और जो उद्योग एवं व्यवसाय सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित थे, उनमें से कई अब अनारक्षित कर दिए गए हैं और निजी क्षेत्र को प्रवेश की अनुमति प्रदान कर दी गई है।

5. बीमा और बैंकिंग व्यवसाय के द्वार भी निजी क्षेत्र के लिए खोल दिए गए हैं। विगत कई वर्षो से ऐसा लगने लगा है कि केन्द्र सरकार अपने राजकोषीय घाटे को पूरा करने के लिए निजीकरण की प्रक्रिया को तेजी प्रदान करने के प्रयास कर रही है।

8.5.5 सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की पुनः संरचना

1991 के आर्थिक सुधार, जिसने भारतीय अर्थव्यवस्था को उदार बनाया, सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों के कामकाज में भी बदलाव लाए। 1991 के बाद पीएसयू के पुनर्गठन की दिशा में उठाए गए कुछ प्रमुख कदम इस प्रकार हैंः। आइये इन्हें समझने का प्रयास करेंः–

1. **विनिवेशः** भारत सरकार ने विनिवेश की प्रक्रिया के माध्यम से पीएसयू में अपनी हिस्सेदारी बेचना शुरू कर दिया। इसने निजी क्षेत्र को सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों में निवेश करने की अनुमति दी, जिससे बहुत आवश्यक पूंजी और विशेषज्ञता लाने में मदद मिली।

2. **विलय और अधिग्रहणः** कई सार्वजनिक उपक्रमों को अन्य कंपनियों के

साथ विलय कर दिया गया ताकि बड़ी संस्थाएँ बनाई जा सकें जो बाजार में अधिक प्रतिस्पर्धी थीं। उदाहरण के लिए, टाटा ऑयल मिल्स कंपनी के साथ हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड का विलय और एयर इंडिया के साथ इंडियन एयरलाइंस का विलय।

3. **प्रबंधन में सुधारः** पीएसयू के प्रबंधन में उनकी दक्षता और प्रतिस्पर्धात्मकता में सुधार करने के लिए ओवरहाल किया गया था। कंपनियों को चलाने के लिए पेशेवर प्रबंधन लाया गया और कर्मचारियों को प्रेरित करने के लिए प्रदर्शन– आधारित प्रोत्साहन पेश किए गए।

4. **गैर :** लाभकारी इकाइयों को बंद करनाः पीएसयू की कई गैर– लाभकारी इकाइयों को उनकी समग्र लाभप्रदता में सुधार के लिए बंद कर दिया गया। इससे कंपनियों के संचालन को सुव्यवस्थित करने और उन्हें और अधिक कुशल बनाने में मदद मिली।

6. **संयुक्त उद्यमः** पीएसयू ने नई तकनीक और विशेषज्ञता लाने के लिए निजी कंपनियों के साथ संयुक्त उद्यम बनाना शुरू किया। इससे उन्हें अपने उत्पादों और सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार करने और बाजार में अधिक प्रतिस्पर्धी बनने में मदद मिली।

8.6 सारांश

भारत की औद्योगिक नीति में पिछले कुछ वर्षों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। आजादी के बाद राज्य के नेतृत्व वाले औद्योगीकरण पर ध्यान देने के साथ देश ने मिश्रित अर्थव्यवस्था मॉडल को अपनाया है। हालाँकि, 1990 के दशक में, देश ने अपनी अर्थव्यवस्था को खोल दिया और बाजार उन्मुख दृष्टिकोण की ओर स्थानांतरित हो गया है।

भारत में शुरुआती औद्योगिक नीतियां आयात प्रतिस्थापन, औद्योगिक लाइसेंसिंग और सार्वजनिक क्षेत्र के प्रभुत्व पर केंद्रित थीं। इससे विनिर्माण क्षेत्र में अक्षमता और धीमी वृद्धि हुई। 1980 के दशक में, सरकार ने कुछ उद्योगों को उदार बनाने और निर्यात को बढ़ावा देने का प्रयास किया। हालाँकि, यह 1990 के दशक में ही था कि देश ने आर्थिक उदारीकरण और वैश्वीकरण को अपनाया।

भारत की औद्योगिक नीति में पिछले कुछ वर्षों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। आजादी के बाद राज्य के नेतृत्व वाले औद्योगीकरण पर ध्यान देने के साथ देश ने मिश्रित अर्थव्यवस्था मॉडल को अपनाया है। हालाँकि, 1990 के दशक में, देश ने अपनी अर्थव्यवस्था को खोल दिया और बाजार उन्मुख दृष्टिकोण की ओर

स्थानांतरित हो गया।

आजादी के बाद भारतीय औद्योगिक नीति ने शुरुआती दशकों में आयात प्रतिस्थापन, औद्योगिक लाइसेंसिंग और सार्वजनिक क्षेत्र के प्रभुत्व पर केंद्रित थी। इन नीतियों के परिणामस्वरूप, उद्योग संगठनों के विकास में समस्याएं उत्पन्न हुईं, जैसे कि उत्पादकता में कमी, नवीनतम तकनीकों की कमी, और गुणवत्ता में कमी।

1980 के दशक में, सरकार ने कुछ उद्योगों को उदार बनाने और निर्यात को बढ़ावा देने का प्रयास किया। इसके लिए उद्योगों को वित्तीय सहायता प्रदान की गई और निर्यात उद्योगों के लिए अधिक उपयोगी मार्ग प्रदान किए गए। हालाँकि, यह चरम पर नहीं पहुंच सका और बहुत सारे संगठन अभी भी सार्वजनिक क्षेत्र में थे।

1990 के दशक में हुए महत्वपूर्ण परिवर्तनों ने देश को आर्थिक उदारीकरण और वैश्वीकरण की ओर ले जाया। इस दौरान, भारत ने बाजार अनुमतियों को बढ़ावा दिया साथ ही विदेशी प्रत्यक्ष निवेशों को खोला और विदेशी कंपनियों के आगमन को बढ़ावा दिया।

भारतीय औद्योगिक नीति में अंर्तराष्ट्रीयकरण का महत्वपूर्ण बदलाव हुआ है। विदेशी प्रतिस्पर्धा के चलते, देश ने नए और नवीनतम तकनीकी नवाचारों को अपनाने की आवश्यकता महसूस की है। इसके परिणामस्वरूप, विदेशी कंपनियों को नया बाजार मिला जिससे उन्हें भारतीय उद्यमिता के साथ काम करने का मौका मिला है।

निजीकरण का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यह देश में उत्पादन क्षमता में वृद्धि और नये उद्योगों के निर्माण को प्रोत्साहित करता है। निजी सेक्टर के निवेशकों को सुविधाएं और लाभ प्रदान करने से उन्हें उद्यमिता के लिए प्रेरित करने का अवसर मिलता है। इसके बाद से, उद्योगों की संख्या और उद्यमिता में वृद्धि हुई है और ये उद्योग संगठन आज भारतीय अर्थव्यवस्था की मुख्य संरचना के रूप में गिने जाते हैं।

भारतीय औद्योगिक नीति में अर्थव्यवस्था के बाजारीकरण का महत्वपूर्ण परिवर्तन देखा गया है। इसके परिणामस्वरूप, बाजार ने अपनी अवधारणा में प्रमुख स्थान लिया है और सरकारी नियंत्रण घटने लगे हैं। नए निजी उद्योगों ने विभिन्न क्षेत्रों में विकास की गति बढ़ाई है और इसने नई रोजगार के अवसर पैदा किए हैं। इसके साथ ही, भारतीय उद्योग सेक्टर में अंर्तराष्ट्रीय व्यापार और निवेश में सुधार हुआ है।

इन सभी परिवर्तनों के साथ, भारतीय औद्योगिक नीति ने एक मिश्रित अर्थव्यवस्था मॉडल को अपनाया है जिसमें सरकारी औद्योगिक संगठनों के साथ निजी उद्योग संगठन भी अपनी भूमिका निभा रहे हैं। इस मॉडल में, वित्तीय संस्थाओं, स्वतंत्र प्रशासनिक निकायों, और निजी उद्योगियों के मिलनसार योजनों के माध्यम से नए प्रोजेक्ट्स को प्रोत्साहित किया जाता है

भारत में वर्तमान औद्योगिक नीति ढांचे का उद्देश्य विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धी और विविध विनिर्माण क्षेत्र बनाना है। सरकार ने मेक इन इंडिया, डिजिटल इंडिया, स्टार्ट– अप इंडिया और स्किल इंडिया जैसे प्रमुख फोकस क्षेत्रों की पहचान की है। फोकस नवाचार, उद्यमिता और प्रौद्योगिकी उन्नयन को बढ़ावा देने पर है।

सरकार ने व्यापार करने में आसानी में सुधार के लिए कई कदम उठाए हैं, जैसे नियमों को सरल बनाना, नौकरशाही लालफीताशाही को कम करना और विदेशी निवेश को बढ़ावा देना। इसने छोटे और मध्यम आकार के उद्यमों (एसएमई) के विकास को बढ़ावा देने के लिए कई पहलें भी शुरू की हैं।

कुल मिलाकर, भारत की औद्योगिक नीति एक संरक्षणवादी और राज्य के नेतृत्व वाले दृष्टिकोण से अधिक बाजारोन्मुखी और विश्व स्तर पर एकीकृत रणनीति के रूप में विकसित हुई है। वर्तमान में कोरोना महामारी से उत्पन्न चुनौतियों का समाधान करते हुए नवाचार, उद्यमिता और प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ावा देने पर ध्यान केंद्रित किया जा रहा है।

8.7 उपयोगी शब्दावली

- **औद्योगिक नीतिः** नीतिगत ढांचे के उन सभी पहलुओं को शामिल करती है जो औद्योगिक निवेश और उत्पादन को प्रभावित करते हैं।
- **एकाधिकार व्यापार प्रथाएँः** व्यापार प्रथाएँ जो प्रतिस्पर्धा को रोकने या विकृत करने का प्रभाव रखती हैं।
- **प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथाएंः** व्यापार प्रथाएं जो उपभोक्ता पर अनुचित लागत या प्रतिबंध लगाती हैं।
- **निजीकरण** : निजीकरण शब्द का अर्थ होता है निजी क्षेत्र द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के उद्दमों, व्यवसायों आदि पर पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से स्वामित्व प्राप्त करना तथा उनका प्रबंधन करना है।
- **अनुचित व्यापार प्रथाएँः** व्यापार प्रथाएँ जो उपभोक्ता को नुकसान या चोट पहुँचाती हैं। उदारीकरणः नीति जिसके द्वारा उद्योग पर लगाए गए विभिन्न

नियंत्रणों और प्रतिबंधों को हटाने की मांग की जाती है।

- **संरक्षणः** वह नीति जिसके द्वारा घरेलू उत्पादकों को टैरिफ दीवारों और गैर– टैरिफ बाधाओं को बढ़ाकर विदेशी प्रतिस्पर्धा से बचाया जाता है।
- **वाणिज्यिक नीतिः** किसी देश द्वारा अपने विदेशी व्यापार और भुगतान के संचालन या नियमन के लिए अपनाए गए नियम।
- **औद्योगिक नीतिः** राज्य द्वारा लगाए गए नियमों और विनियमों का सेट जो औद्योगिक विकास के पैटर्न को प्रभावित करते हैं।
- **औद्योगिक लाइसेंसः** एक नया उद्यम स्थापित करने के लिए राज्य द्वारा एक लिखित अनुमति, विभिन्न महत्वपूर्ण निर्णय एम्बेडेड और वह अनुमति।

8.8 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न 1. भारत में औद्योगिक नीति के विकास को विभिन्न चरणों पर प्रकाश डालिये?

प्रश्न 2. औद्योगिक नीति क्या है? औद्योगिक नीति संकल्प (आईपीआर), 1956 की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए?

प्रश्न 3 औद्योगिक नीति, 1991 के अंतर्गत सरकार द्वारा कौन–कौन से आर्थिक परिवर्तन किए गए? इन परिवर्तनों का व्यापार और उद्योग पर क्या प्रभाव पड़ा है?

प्रश्न 4. निजीकरण की विभिन्न लाभ और हानियों को रेखांक्ति करिये ?

प्रश्न 5. जो सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम लाभ कमा रहे हैं, उनका निजीकरण किया जाना चाहिए,।क्या आप इस दृष्टिकोण से सहमत हैं ? तर्क सहित अपना पक्ष प्रस्तुत करें।

प्रश्न 6. भारत में औद्योगिक लाइसेंसिंग प्रणाली के उद्देश्यों पर प्रकाश डालिये।

प्रश्न 7. प्रतिस्पर्धा अधिनियम, 2002 की मुख्य विशेषताओं का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

प्रश्न 8 मेक इन इण्डिय बिजनेस एनवायरोनमेन्ट पर एक लघु लेख अपने शब्दों मे प्रस्तुत करे।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- अकेलरॉफ जॉर्ज और रॉबर्ट शिलर (2009): पशु आत्माएं: मानव मनोविज्ञान अर्थव्यवस्था को कैसे चलाता है और यह वैश्विक पूंजीवाद के

लिए क्यों मायने रखता है, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।

- बसु, कौशिक और रवि कंबूर (संपादन), (2009): एक बेहतर दुनिया के लिए तर्क, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
- भादुड़ी, अमित, (2009): वह चेहरा जिसे देखकर आप डरते थेः भारतीय अर्थव्यवस्था पर निबंध, पेंगुइन।
- देशपांडे, अश्विनी (सं.), (2007): वैश्वीकरण और विकास, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
- ग्रेगरी, नील, (2009): नई जगहों से नए उद्योग, स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। गोकर्ण, सुबीर एट। (सं.), (2004): भारतीय उद्योग की संरचना, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
- के.एल. कृष्णा और उमा कपिला (सं.), (2009): भारतीय कृषि और उद्योग में रीडिंग, ऑक्सफोर्ड, नई दिल्ली। योजना आयोगः बारहवीं पंचवर्षीय योजना 2012–17 के लिए दृष्टिकोण

इकाई 9 औद्योगिक रूग्णता

इकाई रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 औद्योगिक रुग्णता का स्वरूप

9.3 रुग्णता का संकेत

19.3.1 रुग्णता के वित्तीय संकेतकों की सीमाएं।

9.3.2 अग्रिम चेतावनी के आधार पर रुग्णता की पूर्वसूचनीयता

9.3.3 अग्रिम चेतावनी के संकेतों के रूप में वित्तीय अनुपातों का उपयोग

9.4 रुग्णता के कारण

9.5 सरकारी नीति

9.5.1 प्रबंध का अधिग्रहण और राष्ट्रीयकरण

9.5.2 संस्थागत ऐजेंसियों का आश्रय

9.5.3 नीति निर्देश और ढांचा

9.6 रुग्ण औद्योगिक कंपनी (विशेष उपबंध) अधिनियम, 1985

9.7 औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (बीआईएफआर) की भूमिका

9.8 सारांश

9.9 उपयोगी शब्दावली

9.10 महत्वपूर्ण प्रश्न

9.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययनोपरान्त आप इस योग्य हो सकेंगे कि;

- औद्योगिक रुग्णता की प्रकृति को समझ सकेंगे ;
- औद्योगिक इकाइयों में रुग्णता के संकेतो को सूचिबद्ध कर सकेंगे ;
- औद्योगिक रुग्णता के कारणों की पहचान कर सकेंगे;
- भारत में औद्योगिक रुग्णता के संबंध में सरकारी नीति को रेखांकित कर सकेंगें;
- औधोगिक और वित्तीय पूनर्निर्माण बोर्ड की भूमिका पर प्रकाश डाल

सकेगें;

- रुग्ण औद्योगिक कंपनी (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1985 के प्रावधानों पर चर्चा कर सकेंगे;

9.1 प्रस्तावना

औद्योगिक रुग्णता उस स्थिति को संदर्भित करती है ; जहां एक औद्योगिक इकाई या उद्यम लाभदायक रूप से संचालित नहीं हो सकता या वित्तीय कठिनाइयों का सामना करना पडना है, जिसके परिणामस्वरूप उसको पतन या संभावित बंद होने की स्थिति सामने आ सकती है। यह एक स्थिति है जिसमें उद्योगिक इकाई की उत्पादन, बिक्री, लाभांश और समग्र प्रदर्शन में स्थायी गिरावट होती है।

औद्योगिक रुग्णता के कई कारक हो सकते हैं, जिनमें आर्थिक मंदी, अपर्याप्त प्रबंधन प्रथाएं, प्रतिस्पर्धाशीलता की कमी, प्रौद्योगिकी का पुरानापन, श्रम समस्याएं, अपर्याप्त बुनियादी ढांचा और नीतिगत प्रतिबंध शामिल हो सकते हैं। औद्योगिक रुग्णता आर्थिक नुकसान की ओर प्रवृत्ति करती है, क्योंकि इससे रोजगार की हानि, आर्थिक उत्पादकता की कमी और संसाधनों के अयोग्य उपयोग की स्थिति उत्पन्न होती है।

भारत सहित कई देशों में औद्योगिक रुग्णता एक महत्वपूर्ण चिंता का कारण रही है, विशेष रूप से छोटे और मध्यम आयाम के क्षेत्र में। इस समस्या को संघर्षित करने और अस्वस्थ उद्योगों को पुनर्जीवित करने के लिए विभिन्न उपायों को अपनाया गया है। इन उपायों में वित्तीय पुनर्गठन, कर्ज अनुसूची, कर्ज स्वीकृति, सरकारी सब्सिडी और पुनर्वास योजनाएं शामिल हैं।

भारत में औद्योगिक और वित्तीय पुनर्स्थापन की बोर्ड (बीआईएफआर) 1987 में एक विधायिक निकाय के रूप में स्थापित किया गया है। जो अस्वस्थ औद्योगिक इकाइयों की पहचान करने और उन्हें पुनर्स्थापित करने के लिए स्थापित हुई थी। बीआईएफआर इन इकाइयों की वित्तीय स्थिति का मूल्यांकन करता है और उन्हें उनकी समस्याओं को हल करने के लिए पुनर्स्थापन योजनाएं तैयार करता है। इसके अलावा, सरकार ने औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित करने, प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने, वित्तीय सहायता प्रदान करने और प्रौद्योगिकी को सुधारने के लिए नीतियों को लागू किया है।

औद्योगिक रुग्णता को संबद्ध करना एक जटिल चुनौती है। इसके लिए,

प्रभावी वित्तीय प्रबंधन, सुव्यवस्थित शासन, क्रेडिट और पूंजी के पहुंच, प्रौद्योगिकी को सुधारने, विपणन की विविधीकरण और कुशल मानव संसाधन की आवश्यकता होती है। इसके साथ ही, सक्रिय मॉनिटरिंग और समस्याओं को समय पर खोजने और हल करने के लिए निकायों की कार्यक्षमता अत्यावश्यक है।

संपूर्ण रूप से कहें तो, औद्योगिक रुग्णता का सामना करना उद्योग क्षेत्र को स्वस्थ और जीवंत बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है। इसके लिए, सरकार, उद्योग स्थायियों, वित्तीय संस्थाएं और नीति निर्माताओं को सहयोगपूर्ण प्रयासों की आवश्यकता होती है जो प्रतिस्पर्धाशीलता, उत्पादकता और सतत विकास को बढ़ावा देने के लिए संभव बनाने के लिए सुविधाजनक माहौल सृजन करती है। इस इकाई का उद्देश्य आपको औद्योगिक रुग्णता की प्रकृति और कारणों तथा समस्या को रोकने के लिए अपनाए जाने वाले उपायों से परिचित कराना है।

9.2 औद्योगिक रुग्णता का स्वरूप

रुग्णता आमतौर पर एक ऐसी स्थिति को संदर्भित करती है; जब एक औद्योगिक फर्म खराब प्रदर्शन करती है, कई वर्षों तक घाटे में रहती है और अक्सर अपने ऋण चुकौती दायित्वों में चूक करती है। औद्योगिक रुग्णता उन कंपनियों का वर्णन करता है और उन्हें औद्योगिक इकाइयों के रूप में परिभाषित करने के लिए दो मानदंड प्रदान करता है। सबसे पहले, एक कंपनी को बीमार माना जाता है यदि उसे लगातार वित्तीय वर्षों में नकद नुकसान हुआ है, जो वित्तीय संकट की निरंतर प्रवृत्ति का संकेत देता है। इसके अतिरिक्त, यदि कोई कंपनी पांच साल या उससे अधिक के लिए पंजीकृत है, तो दूसरे वर्ष के अंत तक इसका कुल नुकसान उसके शुद्ध मूल्य से अधिक है।

औद्योगिक इकाइयों के वित्तीय स्वास्थ्य की पहचान करने और संबोधित करने में एक बीमार कंपनी की परिभाषा महत्वपूर्ण है। ऐसी कंपनियों को अपने परिचालन और लाभप्रदता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। समय के साथ उनका वित्तीय प्रदर्शन खराब हो गया है, जिसके परिणामस्वरूप लगातार नकदी का नुकसान हुआ है। यह इंगित करता है कि कंपनी का राजस्व सृजन अपने खर्चों और दायित्वों को कवर करने के लिए अपर्याप्त है और उसकी कारोबारिक क्षमता में कमी हो रही है।। इसका मतलब है कि कंपनी की कुल नुकसान उसके संपूर्ण पूंजी मान से अधिक हो जाती है।

इसके अलावा, अपेक्षित उधार के बावजूद भी, कंपनी लगातार तीन महीनों के भीतर ऋण का भुगतान नहीं कर पा रही है। यह दर्शाता है कि कंपनी की

वित्तीय स्थिति इतनी पतली हो गई है कि उसे अपने लेनदारों के साथ ऋण का समय पर भुगतान नहीं कर पा रही है।

यह सभी मापदंड और परिभाषाएं बीमार कंपनियों की वित्तीय दिक्कतों की पहचान करने और उन्हें समझने में महत्वपूर्ण हैं। ऐसी कंपनियाँ अपने कार्यवाही और लाभकारी होने में महत्वपूर्ण चुनौतियों का सामना कर रही होती हैं। उनकी वित्तीय प्रदर्शन में कमी आती है, और इसके परिणामस्वरूप वे नकदी के घाटे का सामना करना भी मुश्किल पाती हैं।

भारतीय रिजर्व बैंक ने एक रुग्ण इकाई को एक ऐसी इकाई के रूप में परिभाषित किया है ''जिसने एक वर्ष के लिए नकद हानि उठाई है और चालू वर्ष के साथ–साथ अगले वर्ष भी हानि उठाना जारी रखने की संभावना है और इकाई की वित्तीय स्थिति में असंतुलन है संरचना, जैसे, वर्तमान अनुपात 1:1 से कम है और ऋण–इक्विटी अनुपात में बिगड़ती प्रवृत्ति है।''

भारतीय स्टेट बैंक ने एक रुग्ण इकाई को परिभाषित किया है ''जो निरंतर आधार पर आंतरिक अधिशेष उत्पन्न करने में विफल रहता है और धन के बार–बार प्रवाह पर अपने अस्तित्व के लिए निर्भर करता है।''

- वास्तविक रुग्णता जो उनके द्वारा गंभीर प्रयासों के बावजूद चिंता के प्रवर्तकों के नियंत्रण से बाहर है,
- परियोजना की बुनियादी गैर– व्यवहार्यता के कारण प्रारंभिक रुग्णता, और
- प्रेरित रुग्णता जो प्रबंधकीय अक्षमता और वास्तविक हिस्सेदारी की चाह में जानबूझकर अपनाई गई गलत नीतियों के कारण है।

यह एक मानव निर्मित रुग्णता है जिसमें कुछ लालची और बेईमान प्रमोटर एक कंपनी शुरू करने और धोखाधड़ी और धोखे से प्राप्त धन से दूर होने के लिए धोखाधड़ी के तरीकों को अपनाते हैं।

9.3 रुग्णता का संकेत

वित्तीय संकेतकों का उपयोग उद्योगिक इकाई में रुग्णता या कमजोर स्वास्थ्य की पहचान करने के लिए एक सामान्य अभ्यास है। ये संकेतक फर्म के संचालनिक और वित्तीय प्रदर्शन में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं, जिससे हितधारक पार्टियों को इकाई की कुल स्थिति का मूल्यांकन करने में सहायता मिलती है। जब एकाधिक संकेतक नकारात्मक प्रवृत्ति या असामान्यता प्रदर्शित करते हैं, तो यह एक चेतावनी संकेत के रूप में काम कर सकता है कि इकाई

कठिनाइयों का सामना कर रही हो सकती है। चलिए उद्योगिक इकाई में रुग्णता की पहचान करने के लिए सामान्य वित्तीय संकेतकों के बारे में विस्तार से चर्चा करें:

- लाभकारिता, कमाई और राजस्व की हानिः कम हो रही लाभकारिता, निरंतर कमाई की हानि या घटते हुए राजस्व का मतलब हो सकता है कि संचालनिक दोष हैं या पर्याप्त आय उत्पन्न करने में असमर्थता है। ऐसे संकेतक यह सुझा सकते हैं कि उद्योगिक इकाई को बाजार में अपना स्थान बनाए रखने, ग्राहकों को आकर्षित करने या उपयोगयोग्य रूप से लागत प्रबंधन करने में समस्या हो सकती है।

- नकदी की हानिः निरंतर नकारात्मक नकदी प्रवाह और नकदी की हानि वित्तीय तंगी की चिंता का एक चिंताजनक संकेत हो सकते हैं। इसका मतलब होता है कि इकाई के नकदी प्रवाह प्राविधिकता आवश्यक धन के लिए पर्याप्त नहीं है, जिससे लिक्विडिटी समस्याएं और छोटे संक्रमणों की पूर्ति में असमर्थता हो सकती है।

- गिरती हुई चालू अनुपातः चालू अनुपात एक फर्म की चालू संपत्तियों को चालू दायित्वों के साथ तुलना करता है। एक गिरते हुए चालू अनुपात संकेत कर सकता है कि छोटे संक्रमणों की पूर्ति करने, आपूर्तिकर्ताओं को भुगतान करने, संचालन खर्चों को कवर करने या छोटे संक्रमणीय कर्जों का चुकाना में कठिनाइयां हो सकती हैं। इससे संकटकारी संवाद का संकेत मिलता है और तत्परता की आवश्यकता होती है।

- कर्ज के किस्तें चुकाने में असफलताः यदि उद्योगिक इकाई निरंतर ऋण के भुगतान को समय पर नहीं करती है, तो यह वित्तीय तनाव और वित्तीय दायित्वों को पूरा करने में असमर्थता की इशारा करता है। इससे ऋणदाताओं के साथ तनावपूर्ण संबंध, बढ़ते हुए ब्याज लागत और संभावित कानूनी कार्यवाही का सामना करना पड़ सकता है।

- खराब हो रहा ऋण–पूंजी अनुपातः ऋण–पूंजी अनुपात एक फर्म के दीर्घकालिक कर्जों को मालिकों के निधि से तुलना करता है। खराब हो रहा ऋण–पूंजी अनुपात सूचित करता है कि इकाई ऋण की अधिकता और मालिकीयता के मुकाबले अधिक कर्ज पर अधिकता प्राप्त करने पर आधारित है। इससे वित्तीय स्थिरता और दिवालियापन का जोखिम बढ़ सकता है।

- घटता नेट वर्थः नेट वर्थ औद्योगिक इकाई में मालिकों की पूंजी और मुक्त भंडार

के कुल मूल्य का प्रतिनिधित्व करता है। नेटवर्थ में गिरावट से पता चलता है कि इकाई की संपत्ति मूल्य में घट रही है या इसकी देनदारियां बढ़ रही हैं, संभावित रूप से वित्तीय संकट और कमजोर वित्तीय स्थिति का कारण बन रही हैं।

- लाभांश दर में गिरावटध् लाभांश भुगतान को छोड़नाः यदि कोई औद्योगिक इकाई लाभांश दरों में लगातार गिरावट का अनुभव करती है या लाभांश भुगतान को पूरी तरह से छोड़ देती है, तो यह वित्तीय कठिनाइयों का संकेत हो सकता है। लाभांश आमतौर पर कंपनी के मुनाफे से भुगतान किया जाता है, और लाभांश में कमी या उन्मूलन यह सुझाव दे सकता है कि इकाई अपने शेयरधारकों को वितरित करने के लिए पर्याप्त लाभ उत्पन्न करने में असमर्थ है।

इसे ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि इन वित्तीय संकेतकों को गैर–वित्तीय संकेतकों और गुणात्मक कारकों के साथ संयुक्त रूप से विचार करके इकाई की स्थिति को समझने के लिए उपयोग किया जाना चाहिए। वित्तीय संकेतक महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं, लेकिन उन्हें विशेष उद्योग, बाजार की स्थिति और कारोबार की संचालन रणनीति के संदर्भ में व्याख्या किया जाना चाहिए। इन संकेतकों का नियमित मॉनिटरिंग और विश्लेषण हितधारकों को संभावित समस्याओं की पहचान करने और इनके सामयिक समाधान के लिए उचित कार्यवाही लेने में मदद कर सकता है, जो आगे बढ़ने को रोक सकता है और इकाई की दीर्घकालिक स्थायित्व को सुनिश्चित कर सकता है।

9.3.1 रुग्णता के वित्तीय संकेतकों की सीमाएं

शब्द ''रुग्णता के वित्तीय संकेतक'' आम तौर पर वित्तीय मेट्रिक्स को संदर्भित करते हैं जो कंपनी के वित्तीय स्वास्थ्य, जैसे राजस्व, लाभ मार्जिन और ऋण– से– इक्विटी अनुपात को इंगित कर सकते हैं। जबकि ये मेट्रिक्स किसी कंपनी की वित्तीय स्थिति का मूल्यांकन करने में उपयोगी हो सकते हैं, कंपनी के समग्र स्वास्थ्य को निर्धारित करने के लिए केवल वित्तीय संकेतकों पर भरोसा करने की कई सीमाएँ हैं। आइये इन्हें बिन्दुवार समझने का प्रयास करें:–

1. **संदर्भ का अभावः** अकेले वित्तीय संकेतक किसी कंपनी की समग्र स्थिति के बारे में संदर्भ प्रदान नहीं करते हैं। एक कंपनी उच्च राजस्व उत्पन्न कर सकती है, लेकिन यह उच्च लागत या बहुत अधिक ऋण भी ले सकती है।
2. **सीमित दायराः** वित्तीय संकेतक केवल कंपनी के वित्तीय प्रदर्शन को मापते हैं, जो कि इसके समग्र स्वास्थ्य का केवल एक पहलू है। अन्य कारक, जैसे कर्मचारी संतुष्टि, ग्राहक वफादारी और नवाचार, कंपनी की

दीर्घकालिक व्यवहार्यता के महत्वपूर्ण संकेतक भी हैं।

3. **हेराफेरी के प्रति संवेदनशीलताः** वित्तीय संकेतकों को रचनात्मक लेखांकन प्रथाओं के माध्यम से कंपनियों द्वारा आसानी से हेरफेर किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, एक कंपनी अपने मौजूदा मुनाफे को बढ़ाने के लिए खर्चों को बाद की अवधि के लिए टाल सकती है।

4. **अल्पकालिक फोकसः** वित्तीय संकेतक अल्पकालिक परिणामों पर केंद्रित होते हैं, जो कंपनियों को ऐसे निर्णय लेने के लिए प्रेरित कर सकते हैं जो उनके दीर्घकालिक हितों में नहीं हैं। उदाहरण के लिए, एक कंपनी त्रैमासिक लाभ लक्ष्यों को पूरा करने के लिए लंबी अवधि के विकास का त्याग कर सकती है।

5. **भविष्य के प्रदर्शन की भविष्यवाणी करने में असमर्थताः** वित्तीय संकेतक हमें केवल कंपनी के पिछले प्रदर्शन के बारे में बता सकते हैं, और जरूरी नहीं कि भविष्य के प्रदर्शन की भविष्यवाणी करें। आर्थिक स्थिति, उद्योग के रुझान और अन्य बाहरी कारक कंपनी के भविष्य के वित्तीय स्वास्थ्य पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकते हैं।

इसलिए, कंपनी के समग्र स्वास्थ्य और भविष्य की सफलता की संभावनाओं का मूल्यांकन करते समय सिर्फ वित्तीय संकेतकों से परे कारकों की एक विस्तृत श्रृंखला पर विचार करना महत्वपूर्ण है।

9.3.2 अग्रिम चेतावनी के आधार पर रुग्णता की पूर्वसूचनीयता

शुरुआती चेतावनी के संकेतों और प्रारंभिक रुग्णता के महत्व को रेखांकित करने के प्रयास ने भी औद्योगिक रुग्णता की भविष्यवाणी के सवाल पर ध्यान आकर्षित किया है। जाहिर तौर से; यदि रुग्णता के बारे में वह पहले से भविष्यवाणी कर सकता है, तो वास्तविक रुग्णता की घटना बहुत कम हो सकती है। आइए हम प्रबंधन की गुणवत्ता और प्रासंगिक गैर– वित्तीय कारकों के विशेष संदर्भ में प्रश्न की जांच करें। कुछ लेखकों के अनुसार, जिन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन में कॉर्पोरेट विफलताओं के कारणों पर गौर किया, सबसे महत्वपूर्ण प्रबंधन दोष थेः (i) मुख्य कार्यकारी की निरंकुश शैली, (ii) डॉकाइल निदेशक मंडल, (iii) कमजोर वित्त कार्य बोर्ड स्तर पर, (iv) असंतुलित बोर्ड, (v) बोर्ड स्तर से नीचे प्रबंधन की खराब गुणवत्ता, (vi) नियंत्रण की कमी, और (vii) पर्यावरणीय परिवर्तनों के प्रति प्रबंधन की प्रतिक्रिया का अभाव। इस विश्लेषण के बाद, दोषों का एक समूह निर्दिष्ट किया गया है जो एक कंपनी को रुग्णता– प्रवण

बना सकता है, साथ ही गलतियों का एक समूह जो प्रबंधन कर सकता है। दोषों की तीन श्रेणियों की पहचान की गई हैः

क) प्रबंधन दोष (निरंकुश शैली। निष्क्रिय बोर्ड, कमजोर वित्त निदेशक)य

ख) लेखा प्रणाली दोष (बजटीय नियंत्रण, नकदी प्रवाह योजना और लागत की चयनात्मक प्रणाली) य

ग) परिवर्तनों के लिए दोषपूर्ण प्रतिक्रिया (जैसे तकनीकी परिवर्तन और बाजार की स्थिति में परिवर्तन, आदि)।

संभावित गलतियाँ भी तीन श्रेणियों में विभाजित हैं, जैसे... **क)** कार्यशील पूंजी की उपलब्धता सुनिश्चित किए बिना संचालन का विस्तार करना **ख)** ऋण–इक्विटी अनुपात को बहुत अधिक ऊपर धकेलनाय **ग)** बहुत बड़ी परियोजना को हाथ में लेना, जिसकी जिसकी विफलता भी स्थापित व्यवसाय को प्रभावित कर सकती है। यह सुझाव दिया जाता है कि दोष और गलतियों की प्रत्येक श्रेणी को अंक दिए जाने चाहिए। दोषों के लिए 43 प्रतिशत भारांक, गलतियों के लिए 45 प्रतिशत और 12 प्रतिशत के साथ अन्य लक्षणों के लिए भारांक। यदि भारित औसत स्कोर की गणना किसी कंपनी के लिए की जाती है, तो यह तर्क दिया जाता है कि स्कोर को एक संकेतक या संभावित विफलता की पूर्व चेतावनी के रूप में लिया जा सकता है। विश्लेषकों के अनुसार, विफलता के अन्य लक्षण ध्यान देने योग्य होने से पांच साल पहले तक प्रबंधन दोष जारी रह सकते हैं। यह दृष्टिकोण ताक्रिक रूप से ध्वनि है। क्योंकि परिचालन प्रदर्शन मूल रूप से प्रबंधन की गुणवत्ता का कार्य है। लेकिन इसमें व्यावहारिक दिक्कतें हैं। प्रबंधन की गुणवत्ता का मूल्यांकन करने या प्रबंधन दोषों की पहचान करने के लिए, आवश्यक जानकारी तक पहुंच होनी चाहिए और काम पर प्रबंधकों को बारीकी से देखने का अवसर होना चाहिए, जो केवल एक अंदरूनी व्यक्ति के पास हो सकता है। साधारण शेयरधारक, लेनदार और निवेशक ऐसे विशेषाधिकार की उम्मीद नहीं कर सकते। दूसरी ओर, एक प्रभाववादी दृष्टिकोण शायद ही विश्वसनीय हो सकता है। इस प्रकार, व्यावहारिक दृष्टिकोण से, वित्तीय संकेतक अधिक उपयोगी माने जाते हैं।

9.3.3 अग्रिम चेतावनी के संकेतों के रूप में वित्तीय अनुपातों का उपयोग

वित्तीय अनुपातों का उपयोग वित्तीय रुग्णता के प्रारंभिक संकेतोंध संकेतकों के रूप में किया जा सकता है। वित्तीय अनुपात विभिन्न वित्तीय प्रतिक्रियाओं को मापने में मददगार होते हैं जो एक कंपनी द्वारा दिखाए गए लाभ और हानियों को

समझने में मदद करते हैं। वित्तीय रुग्णता की पूर्वसूचनी के लिए विभिन्न अनुपातों और संकेतकों का उपयोग किया जाता है। ये अनुपात विभिन्न वित्तीय स्थितियों को मापने में मदद करते हैं जैसे कि सदस्यता अनुपात, ऋण और ब्याज का अनुपात, वर्तमान अनुपात, ऊंचाई अनुपात, वार्षिक बिक्री अनुपात, लाभांश अनुपात आदि। ये अनुपात और संकेतक फाइनेंशियल स्टेटमेंट के अंतर्गत उपलब्ध होते हैं जैसे कि बैलेंस शीट, लाभ–हानि अधिसूचना और नकद व्यवहार विवरण। इन संकेतकों के आधार पर वित्तीय स्थिति का मूल्यांकन किया जा सकता है और यदि ये संकेतक किसी विशेष सीमा से अधिक होते हैं, तो इससे व्यवसायिक रुग्णता की संभावना दर्शाई जा सकती है। यहां कुछ ऐसे वित्तीय अनुपातों की एक सूची है जो वित्तीय रुग्णता के प्रारंभिक संकेतकों के रूप में उपयोग किए जाते हैं:

i. **वर्तमान अनुपात** : यह अनुपात कंपनी की वर्तमान उत्पादों से उत्पन्न होने वाली राशि के बंधनों को भुगतान करने की क्षमता का मापदंड है। यदि वर्तमान अनुपात 1 से कम है, तो इसका मतलब होता है कि कंपनी को अपने छोटे–मध्यम अवधि के बाध्यताओं को पूरा करने में कठिनाई हो सकती है।

ii. **ऋण–इक्विटी अनुपात** : यह अनुपात कंपनी के ऋण के रूप में विनियोजित धन और उसके स्वतंत्र पूंजी के बीच का अनुपात होता है। यह अनुपात किसी कंपनी द्वारा उसकी इक्विटी की तुलना में ऋण की मात्रा को मापता है। एक उच्च ऋण– से– इक्विटी अनुपात यह संकेत दे सकता है कि कंपनी ऋण पर बहुत अधिक निर्भर है और अपने ऋण दायित्वों पर चूक का जोखिम हो सकता है।

iii. **ब्याज कवरेज अनुपात**: यह अनुपात ब्याज और करों (ईबीआईटी) से पहले अपनी कमाई के साथ अपने ब्याज व्यय का भुगतान करने की कंपनी की क्षमता को मापता है। कम ब्याज कवरेज अनुपात यह संकेत दे सकता है कि कंपनी अपने ब्याज खर्चों को कवर करने के लिए पर्याप्त आय अर्जित करने के लिए संघर्ष कर रही है।

iv. **सकल लाभ मार्जिन**: यह अनुपात बेची गई वस्तुओं की लागत घटाकर कंपनी की बिक्री की लाभप्रदता को मापता है। घटता हुआ सकल लाभ मार्जिन यह संकेत दे सकता है कि कंपनी को अपनी लागतों को नियंत्रित करने में कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है या बढ़ती प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ रहा है।

v. **संपत्ति पर वापसी (आरओए)**: यह अनुपात मापता है कि कोई कंपनी

मुनाफा कमाने के लिए अपनी संपत्ति का कितनी कुशलता से उपयोग कर रही है। घटता हुआ आरओए संकेत दे सकता है कि कंपनी अपनी संपत्ति के सापेक्ष पर्याप्त लाभ नहीं कमा रही है।

vi. कुल मिलाकर, वित्तीय अनुपात संभावित वित्तीय समस्याओं की पहचान करने और वित्तीय रुग्णता के लिए प्रारंभिक चेतावनी संकेत प्रदान करने में एक उपयोगी उपकरण हो सकता है। हालांकि, उद्योग और आर्थिक स्थितियों के संदर्भ में उनकी व्याख्या करना महत्वपूर्ण है जिसमें कंपनी संचालित होती है।

9.4 रुग्णता के कारण

औद्योगिक रुग्णता एक तत्व द्वारा उत्पन्न नहीं होती है, बल्कि कई कारणों के संचयी प्रभाव से होती है। औद्योगिक रुग्णता की स्थिति में, कारणों का परख और उनके प्रभाव को समझना महत्वपूर्ण है। इस बात को समझने के लिए, आमतौर पर दो तरह के कारकों को ध्यान में रखा जाता हैः बाहरी कारक और आंतरिक कारक। यह ध्यान मददगार होता है ताकि समस्या के निदान के लिए उचित कार्यवाही की जा सके।

बाहरी कारक औद्योगिक रुग्णता पर सीधा प्रभाव डालने में सक्षम होते हैं और विशेष रूप से कुछ विशेष इकाइयों पर प्रभाव डालते हैं, हालांकि सभी इकाइयाँ इन कारकों के संपक्र में हो सकती हैं। ये कारक निम्नानुसार हो सकते हैंः

रुग्णता के कारण – आंतरिक

अ. सर्वप्रथम आइये रूग्णता के आन्तरिक कारणों को समझे :–

- **परियोजना मूल्यांकन की कमियांः** औद्योगिक इकाई रुग्णता हो जाती है जब परियोजना की आर्थिक, वित्तीय और तकनीकी व्यवहार्यता के व्यापक मूल्यांकन के बिना इकाई शुरू की जाती है।
- **औद्योगिक अशांति और कर्मचारी प्रेरणा की कमीः** जब श्रम असंतोष होता है, तो कोई भी औद्योगिक इकाई सुचारू रूप से और कुशलता से कार्य नहीं कर सकती है। जब श्रम में प्रेरणा की कमी होती है तो अच्छे परिणाम की उम्मीद नहीं की जा सकती है और इसका परिणाम कई औद्योगिक इकाइयों की रुग्णता और अव्यवहार्यता में होता है।
- **प्रौद्योगिकी का गलत चयनः** यदि प्रवर्तक गलत प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हैं, तो परिणाम असंतोषजनक होने के लिए बाध्य हैं। कई

औद्योगिक इकाइयाँ, विशेष रूप से लघु– स्तरीय क्षेत्र में, सही मशीनरी और संयंत्र स्थापित करने में पेशेवर मार्गदर्शन नहीं लेती हैं। यदि स्थापित मशीनरी और संयंत्र दोषपूर्ण और अनुपयुक्त हो जाते हैं, तो उन्हें नुकसान उठाना पड़ता है और रुग्णता और गैर– व्यवहार्य हो जाते हैं।

- **विपणन समस्याएं:** उत्पाद के अप्रचलित होने और बाजार की संतृप्ति के कारण औद्योगिक इकाई रुग्णता हो जाती है। औद्योगिक इकाई रुग्णता हो जाती है जब इसका उत्पाद– मिश्रण उपभोक्ताओं की मांग के अनुरूप नहीं होता है।

- **गलत स्थान:** यदि एक औद्योगिक इकाई का स्थान या तो बाजार के बिंदु से या इनपुट की आपूर्ति से दोषपूर्ण होता है, तो यह दुर्गम कठिनाइयों का अनुभव करने के लिए बाध्य है।

- **वित्त की कमी:** अपर्याप्त वित्तीय व्यवस्था या समय पर वित्तीय सहायता के अभाव में एक औद्योगिक इकाई को दुःख का सामना करना पड़ता है। यह परिचालन घाटे को झेलने में सक्षम नहीं होगा।

- **अनुचित पूंजी संरचना:** यदि पूंजी संरचना विशेष रूप से विलंबित निर्माण या संचालन के कारण अनुपयुक्त या अनुपयुक्त साबित होती है, तो इसका परिणाम लागत में वृद्धि या अनुचित रूप से बड़ी उधारी में होगा और संबंधित इकाई के लिए वित्तीय परेशानी पैदा करेगा।

- **प्रबंधन की कमी:** औद्योगिक रुग्णता का सबसे बड़ा कारण प्रबंधकीय अक्षमता है। पेशेवर प्रबंधन या अनुभवी प्रबंधन की कमी और वंशानुगत प्रबंधन का अस्तित्व औद्योगिक रुग्णता का एक महत्वपूर्ण कारण है। अक्षम प्रबंधन के परिणामस्वरूप नियमित विचारों से रहित चीजों को उचित परिप्रेक्ष्य में देखने में असमर्थता होती है। अकुशल प्रबंधन भी अच्छी टीम बनाने और एक संगठित सामूहिक प्रयास के लिए आत्मविश्वास को प्रेरित करने में असमर्थ है और निरंकुश और उच्च– स्तरीय निर्णय लेता है।

- **स्वैच्छिक रुग्णता:** कुछ ऐसी रुग्णता होती है जिसे उद्यमी स्वेच्छा से विभिन्न उद्देश्यों जैसे सरकारी रियायत या वित्तीय संस्थानों से सहायता प्राप्त करने के लिए आमंत्रित करते हैं। इस प्रकार औद्योगिक रुग्णता के लिए किसी एक या साधारण कारण को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है, बल्कि संबद्ध कारणों की संख्या के संयोजन का परिणाम हो सकता है।

रुग्णता के कारण – बाह्य

ख. सर्वप्रथम आइये रूग्णता के बाह्य कारणों को समझे :–

- **सामान्य मंदी की प्रवृत्ति** कभी– कभी एक सामान्य अवसाद औद्योगिक इकाइयों को प्रभावित करता है। यह सामान्य रूप से औद्योगिक उत्पादों की मांग में कमी से परिलक्षित होता है। आर्थिक गतिविधियों में समग्र मंदी व्यक्तिगत परियोजनाओं के प्रदर्शन को प्रभावित करती है। उत्पादों की मांग का अनुचित अनुमान औद्योगिक इकाइयों को कठिनाइयों में डाल देता है।

- **इनपुट की ऊंची कीमतें** जब निर्माण की लागत अधिक होती है और बिक्री प्राप्ति कम होती है, तो औद्योगिक इकाई बाजार में टिक नहीं पाती है। यह तब होता है जब ऊर्जा संकट के दौरान ईंधन की कीमत जैसे पेट्रोलियम जैसे इनपुट की कीमतें बढ़ जाती हैं जबकि प्रतिस्पर्धी ताकतें उत्पादों की कीमतों को कम रखती हैं।

- **कच्चे माल की अनुपलब्धता** जब कच्चे माल की आपूर्ति नियमित रूप से या अच्छी गुणवत्ता में उपलब्ध नहीं होती है, तो औद्योगिक इकाइयों का संकट में पड़ना स्वाभाविक है। यह अक्सर आयातित कच्चे माल की आपूर्ति के मामले में होता है।

- **सरकारी नीतियों में परिवर्तनः** औद्योगिक रुग्णता सरकार की नीतियों में कुछ परिवर्तनों के कारण भी होती है। ये लगातार परिवर्तन एक औद्योगिक इकाई के दीर्घकालिक उत्पादन, वित्तीय और विपणन योजना को प्रभावित करते हैं। आयात, औद्योगिक लाइसेंसिंग, कराधान से संबंधित सरकारी नीतियों में परिवर्तन व्यवहार्य इकाइयों को रुग्णता कर सकता है। उदाहरण के लिए, 1991 से उदार आयात नीति ने कई लघु– स्तरीय औद्योगिक इकाइयों को रुग्णता कर दिया है।

- **अवसंरचना संबंधी अड़चनेंः** प्रायः अवसंरचना की कठिनाई औद्योगिक रुग्णता के लिए उत्तरदायी होती है। कोई भी औद्योगिक इकाई लंबे समय तक परिवहन और बाजार बदलाव के दबाव में रहती है, जो उसे अपनी अवसंरचना और कार्य प्रक्रियाओं में सुधार करने की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, अवसंरचना संबंधी अड़चनों का संबंध प्रबंधन प्रथाओं, तकनीकी मुद्दों, मानव संसाधन की अभाव, विपणन समस्याओं, नियमितता के कारण बदल जाता है। इसका सीधा प्रभाव उत्पादकता, गुणवत्ता, वित्तीय स्थिरता, और संगठनात्मक कार्य प्रक्रियाओं पर होता

है।

अवसंरचना संबंधी अड़चनों के बारे में कुछ मुख्य कारण निम्नलिखित हो सकते हैं:

1. **विपणन में परिवर्तन:** व्यापारी और उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं में परिवर्तन के कारण, उद्योगों को अपनी अवसंरचना को समायोजित करने की जरूरत होती है। यह मानव संसाधन, प्रक्रियाओं, और संरचनाओं में परिवर्तन की आवश्यकता पैदा कर सकता है।

2. **तकनीकी मुद्दे:** तकनीकी प्रगति और नवीनतम उपकरणों की उपलब्धता के साथ, उद्योगों को अपनी अवसंरचना को अद्यतन करने की आवश्यकता होती है। इसमें प्रशिक्षित मानव संसाधन की आवश्यकता, तकनीकी प्रक्रियाओं की समझ, और उपयोगिता की जांच शामिल हो सकती है।

3. **मानव संसाधन की अभाव:** यदि किसी उद्योग में कुशल मानव संसाधन की कमी होती है, तो इससे अवसंरचना और कार्य प्रक्रियाओं में कमी हो सकती है। उचित प्रशिक्षण और कौशल विकास के माध्यम से इस समस्या को हल किया जा सकता है।

4. **नियमितता के कारण:** उद्योगों को नियमितता के पालन के लिए अपनी अवसंरचना में बदलाव करना पड़ सकता है। नियमितता के पालन के लिए आवश्यक विभिन्न मानकों, गुणवत्ता नियंत्रण, और प्रदर्शन मॉनिटरिंग की आवश्यकता होती है।

वस्तुतः इन सभी अड़चनों के साथ, उद्योगों को अपनी अवसंरचना में नवीनतम प्रगति को ध्यान में रखते हुए सुधार करने की जरूरत होती है। यह उन्नति, अधिकतम उत्पादकता, अधिक गुणवत्ता, अधिक संगठनात्मक गतिविधियों, और सुसंगठित प्रबंधन प्रक्रियाओं को सुनिश्चित करने में मदद कर सकती है

9.5 सरकारी नीति

औद्योगिक रुग्णता को संबोधित करने के लिए सरकार के नीतिगत दृ ष्टिकोण का उद्देश्य रुग्ण औद्योगिक इकाइयों को पुनर्जीवित करना, पुनर्निर्माण करना और उनका पुनर्वास करना है। समय के साथ, विभिन्न उपायों को अपनाया गया है, जिससे 1980 के दशक में नीतिगत ढांचे का उदय हुआ। निम्नलिखित तीन परस्पर संबंधित दृष्टिकोण हैं जो आधिकारिक नीति के विकास में देखे गए हैं। आइये इन्हें क्रमशः समझने का प्रयास करें:–

- **प्रबंधन का अधिग्रहण और राष्टोयकरणः** कुछ मामलों में, सरकार ने रुग्णता औद्योगिक इकाइयों का प्रबंधन अपने हाथ में ले लिया है या उनका राष्ट्रीयकरण कर दिया है। इस दृष्टिकोण का उद्देश्य श्रमिकों के हितों की रक्षा करना और उत्पादन की निरंतरता सुनिश्चित करना था। हालाँकि, इस दृष्टिकोण की अपनी सीमाएँ हैं और हमेशा एक व्यवहार्य समाधान नहीं हो सकता है।

- **संस्थागत एजेंसियों का सहाराः** सरकार द्वारा अपनाया गया एक अन्य दृ ष्टिकोण संस्थागत एजेंसियों के माध्यम से रुग्णता इकाइयों को सहायता प्रदान करना है। इसमें वित्तीय और तकनीकी सहायता, ऋण पुनर्गठन और विपणन सहायता प्रदान करना शामिल हो सकता है। इस उद्देश्य के लिए भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (प्क्ठप्), राज्य वित्तीय निगमों (थ्ब्) और औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (ठप्थ्त्) जैसी संस्थागत एजेंसियों की स्थापना की गई है।

- **प्रशासनिक मंत्रालयों के लिए नीतिगत दिशानिर्देश और ढांचाः** सरकार ने औद्योगिक रुग्णता से निपटने के लिए प्रशासनिक मंत्रालयों के लिए नीतिगत दिशानिर्देश और रूपरेखा भी तैयार की है। इन दिशानिर्देशों में रुग्णता की रोकथाम, शीघ्र पहचान और निदान, और पुनर्वास के उपाय जैसे क्षेत्र शामिल हैं। इन दिशानिर्देशों को लागू करने के लिए वित्त मंत्रालय और उद्योग और वाणिज्य मंत्रालय जैसे प्रशासनिक मंत्रालय जिम्मेदार हैं।

इस प्रकार कुल मिलाकर, औद्योगिक रुग्णता को संबोधित करने के लिए सरकार के नीतिगत दृष्टिकोण ने रुग्णता इकाइयों को पुनर्जीवित करने, पुनर्निर्माण करने और पुनर्वास करने पर ध्यान केंद्रित किया है। सरकार ने इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्रबंधन के अधिग्रहण, संस्थागत एजेंसियों के लिए सहारा, और नीतिगत दिशानिर्देशों और रूपरेखाओं सहित कई उपायों को अपनाया है।

9.5.1 प्रबंध का अधिग्रहण और राष्ट्रीयकरण

प्रबंधन का अधिग्रहण और राष्ट्रीयकरण औद्योगिक रुग्णता को दूर करने के लिए सरकार द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोणों में से एक है। कुछ मामलों में, जब कोई रुग्णता औद्योगिक इकाई खुद को पुनर्जीवित करने में असमर्थ होती है, तो सरकार उसका प्रबंधन अपने हाथ में ले सकती है या उसका राष्ट्रीयकरण कर सकती है। इस दृष्टिकोण का उद्देश्य श्रमिकों के हितों की रक्षा करना और उत्पादन की निरंतरता सुनिश्चित करना है। जब एक रुग्णता औद्योगिक इकाई का राष्ट्रीयकरण किया जाता है, तो यह सरकार की संपत्ति बन जाती है, और राज्य इसके प्रबंधन

की जिम्मेदारी लेता है। सरकार तब संसाधन आवंटित कर सकती है और इकाई को पुनर्जीवित करने के लिए निवेश कर सकती है। राष्ट्रीयकरण श्रमिकों को नौकरी की सुरक्षा भी प्रदान कर सकता है, क्योंकि सरकार द्वारा राष्ट्रीयकृत इकाई को बंद करने की संभावना कम है। हालाँकि, राष्ट्रीयकरण के दृष्टिकोण की अपनी सीमाएँ हैं। यह सरकार के लिए एक महंगी प्रक्रिया हो सकती है, और यह एक रुग्णता इकाई को पुनर्जीवित करने में हमेशा सफल नहीं भी हो सकती है। इसके अलावा, राष्ट्रीयकरण से नौकरशाही नियंत्रण हो सकता है और हमेशा कुशल प्रबंधन नहीं हो सकता है।

हाल के वर्षों में, सरकार औद्योगिक रुग्णता के समाधान के रूप में राष्ट्रीयकरण से दूर हो गई है और इसके बजाय अन्य दृष्टिकोणों पर ध्यान केंद्रित किया है, जैसे वित्तीय और तकनीकी सहायता प्रदान करना, ऋण पुनर्गठन, और संस्थागत एजेंसियों के माध्यम से विपणन सहायता।

9.5.2 संस्थागत ऐजेंसियों का आश्रय

औद्योगिक रुग्णता को दूर करने के लिए सरकार द्वारा अपनाया गया एक अन्य दृष्टिकोण संस्थागत एजेंसियों का सहारा है। रुग्णता इकाइयों को सहायता प्रदान करने के लिए सरकार द्वारा संस्थागत एजेंसियों की स्थापना की जाती है। ये एजेंसियां इकाइयों को पुनर्जीवित करने में मदद करने के लिए वित्तीय और तकनीकी सहायता, ऋण पुनर्गठन और विपणन सहायता प्रदान करती हैं।

औद्योगिक रुग्णता को दूर करने के लिए सरकार द्वारा स्थापित कुछ संस्थागत एजेंसियों में भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (आईडीबीआई), राज्य वित्तीय निगम (एसएफसी) और औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (बीआईएफआर) शामिल हैं। ये एजेंसियां रुग्ण इकाइयों को ऋण और अन्य प्रकार की वित्तीय सहायता, साथ ही तकनीकी विशेषज्ञता और विपणन सहायता प्रदान करती हैं।

इस दृष्टिकोण का एक लाभ यह है कि यह राष्ट्रीयकरण की तुलना में सरकार के लिए अधिक लागत प्रभावी हो सकता है। संस्थागत एजेंसियां विशिष्ट संस्थाएं हैं जो एक रुग्णता इकाई को पुनर्जीवित करने में शामिल जटिल मुद्दों को संभालने के लिए बेहतर ढंग से सुसज्जित हैं। इसके अलावा, रुग्णता इकाइयों के पुनर्वास में संस्थागत एजेंसियों का स्वयं सरकार की तुलना में एक सफल ट्रैक रिकॉर्ड होने की अधिक संभावना है।

हालाँकि, इस दृष्टिकोण की अपनी सीमाएँ भी हैं। संस्थागत एजेंसियां हमेशा

एक रुग्णता इकाई को पुनर्जीवित करने के लिए आवश्यक सहायता प्रदान करने में सक्षम नहीं हो सकती हैं, खासकर यदि इकाई अत्यधिक प्रतिस्पर्धी उद्योग में हो। इसके अतिरिक्त, संस्थागत एजेंसियां नौकरशाही प्रक्रियाओं और लालफीताशाही के अधीन हो सकती हैं, जो बीमारों को सहायता के

9.5.3 नीति निर्देश और ढांचा

प्रशासनिक मंत्रालयों के लिए नीतिगत दिशाः निर्देश और ढांचा औद्योगिक रुग्णता को दूर करने के लिए सरकार द्वारा अपनाया गया तीसरा दृष्टिकोण है। इस दृष्टिकोण के तहत, सरकार उद्योगों की देखरेख के लिए जिम्मेदार प्रशासनिक मंत्रालयों को नीतिगत दिशानिर्देश और एक ढांचा प्रदान करती है। ये दिशानिर्देश और ढांचा मंत्रालयों को रुग्णता इकाइयों की पहचान करने, उनकी समस्याओं का आकलन करने और उन्हें पुनर्जीवित करने के लिए उचित कार्यवाही करने में मदद करते हैं। नीतिगत दिशानिर्देश और ढांचे में ऋण पुनर्गठन, वित्तीय और तकनीकी सहायता, विपणन सहायता और रुग्णता इकाइयों के प्रबंधन और संचालन के पुनर्गठन जैसे उपाय शामिल हो सकते हैं। सरकार रुग्णता इकाइयों के पुनरुद्धार को प्रोत्साहित करने के लिए कर प्रोत्साहन और अन्य प्रकार की सहायता भी प्रदान कर सकती है।

अक्टूबर 1981 में, भारत सरकार ने औद्योगिक रुग्णता की समस्या से निपटने के लिए प्रशासनिक मंत्रालयों, केंद्र और राज्य सरकारों और वित्तीय संस्थानों के मार्गदर्शन के लिए दिशानिर्देश जारी किए। इन दिशानिर्देशों को फरवरी 1982 में और संशोधित किया गया था, और दिशानिर्देशों में परिलक्षित नीतिगत ढांचे में निम्नलिखित तत्व शामिल थेः

1. **रुग्णता इकाइयों की पहचान और वर्गीकरणः** औद्योगिक रुग्णता को दूर करने का पहला कदम रुग्ण इकाइयों की पहचान और वर्गीकरण है। दिशानिर्देशों ने रुग्णता इकाइयों की पहचान करने और उनकी समस्याओं की गंभीरता के आधार पर उन्हें तीन श्रेणियों में वर्गीकृत करने के लिए मानदंडों का एक सेट प्रदान किया।

2. **निवारक उपायः** दिशाः निर्देशों में औद्योगिक रुग्णता को दूर करने के लिए निवारक उपायों की आवश्यकता पर बल दिया गया है। इन उपायों में कुशल प्रबंधन पद्धतियां, संसाधनों का उचित उपयोग, प्रभावी विपणन रणनीतियां और उपयुक्त प्रौद्योगिकी को अपनाना शामिल हैं।

3. **पुनर्वास और पुनर्गठनः** रुग्णता इकाइयों के पुनर्वास और पुनर्गठन के लिए दिशानिर्देशों में नीतिगत ढांचा निर्धारित किया गया है। इसमें ऋण पुनर्गठन,

वित्तीय और तकनीकी सहायता का प्रावधान और प्रबंधन और संचालन का पुनर्गठन शामिल था।

4. **संस्थागत एजेंसियों के उपयोग को बढ़ावा देना:** दिशानिर्देशों में औद्योगिक रुग्णता की समस्या का समाधान करने के लिए आईडीबीआई और एसएफसी जैसी संस्थागत एजेंसियों के उपयोग को बढ़ावा देने की आवश्यकता पर जोर दिया गया है।

5. **कर प्रोत्साहन:** रुग्णता इकाइयों के पुनरुद्धार को प्रोत्साहित करने के लिए कर प्रोत्साहन के लिए भी दिशा– निर्देश दिए गए हैं। इन प्रोत्साहनों में आयकर, बिक्री कर और उत्पाद शुल्क से राहत शामिल थी।

इस प्रकार वर्ष अक्टूबर 1981 में जारी दिशा– निर्देशों ने भारत में औद्योगिक रुग्णता की समस्या के समाधान के लिए एक व्यापक नीतिगत ढांचा प्रदान किया। ढांचे ने निवारक उपायों, पुनर्वास और पुनर्गठन, और रुग्णता इकाइयों को पुनर्जीवित करने के लिए संस्थागत एजेंसियों और कर प्रोत्साहनों के उपयोग की आवश्यकता पर जोर दिया।

9.6 रुग्ण औद्योगिक कंपनी (विशेष उपबंध) अधिनियम, 1985

रुग्ण औद्योगिक कंपनी (विशेष उपबंध) अधिनियम, 1985 (SICA) भारत में बड़े पैमाने पर औद्योगिक रुग्णताके मुद्दे का सामना कर रही रुग्ण /अव्यवहार्य कंपनियों का पता लगाने के लिए अधिनियमित किया गया था। यह संभावित रूप से रुग्णता कंपनियों से निपटने और यदि संभव हो तो उनके पुनरुद्धार, या यदि नहीं तो उन्हें बंद करने में मदद करने वाले कानून का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था।

- रुग्ण औद्योगिक कंपनी (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1985 के तहत, एक रुग्ण औद्योगिक कंपनी का अर्थ है कम से कम 5 वर्षों के लिए पंजीकृत कंपनी होना, जिसने वित्तीय वर्ष के अंत में अपनी संपूर्ण कुल संपत्ति के बराबर या उससे अधिक का नुकसान किया हो।
- रुग्ण औद्योगिक कंपनी अधिनियम, ने इस औद्योगिक रुग्णता के लिए जिम्मेदार कई आंतरिक और बाहरी कारणों की पहचान की। आंतरिक कारकों में अव्यवस्था, खराब परियोजना कार्यान्वयन, मांग को अधिक आंकना, गलत स्थान, खराब श्रम प्रबंधन संबंध आदि शामिल हैं।
- बाहरी कारकों में बुनियादी ढांचे की अड़चनें, ऊर्जा संकट, तकनीकी परिवर्तन, अपर्याप्त ऋण सुविधाएँ और वैश्विक बाजार की ताकतें शामिल हैं।
- रुग्ण औद्योगिक कंपनी अधिनियम, को निरस्त कर दिया गया और 2003 के रुग्ण औद्योगिक कंपनियों (विशेष प्रावधान) निरसन अधिनियम द्वारा

प्रतिस्थापित किया गया. मूल अधिनियम के कुछ पहलुओं को कम कर दिया गया और कुछ कारक भी तय किए गए जो समस्याग्रस्त थे।

- नए अधिनियम में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह सुनिश्चित करने के द्वारा इसकी बढ़ती घटनाओं को कम करना था कि कंपनियां केवल कानूनी दायित्वों से बचने और वित्तीय संस्थानों से रियायतों तक पहुंच के लिए रुग्णता की घोषणा का सहारा नहीं लेती हैं। रुग्ण औद्योगिक कंपनी अधिनियम, का निरसन 1 दिसंबर 2016 से प्रभावी हआ।
- इसे आंशिक रूप से निरस्त कर दिया गया था, क्योंकि इसके कुछ प्रावधान कंपनी अधिनियम 2013 के साथ ओवरलैप हो गए थे।

इसलिए, रुग्ण औद्योगिक कंपनी (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1985 के तहत, एक रुग्ण औद्योगिक कंपनी का अर्थ कम से कम 5 वर्षों के लिए पंजीकृत कंपनी होना है, जिसने वित्तीय वर्षों के अंत में अपनी संपूर्ण कुल संपत्ति के बराबर या उससे अधिक का नुकसान किया है।

9.7 औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (बीआईएफआर) की भूमिका

औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (BIFR) भारत सरकार की एक एजेंसी थी। इसका उद्देश्य औद्योगिक कंपनियों की रुग्णता का पता लगाना और उन्हें पुनर्जीवित करने में सहायता करना है जो व्यवहार्य हो सकते हैं। ठथ्त् की स्थापना रुग्णता औद्योगिक कंपनी (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1985 के तहत की गई थी। बोर्ड जनवरी 1987 में स्थापित किया गया था और 15 मई 1987 तक कार्य करना शुरू कर दिया था।

औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (ठथ्त्) भारत सरकार का एक महत्वपूर्ण संस्थान है, जो विपणित संगठनों के बंद होने या संकट से ग्रसित होने की स्थिति में इनकी पुनरुद्धार योग्यता का मूल्यांकन करता है।

BIFR की मुख्य भूमिका अस्थिर उद्यमों और अशक्त संगठनों के संचालन में सुधार के लिए आवश्यक निर्देश और सलाह प्रदान करना है। बीआईएफआर संगठन के उद्देश्यों के आधार पर इसकी भूमिका के रूप में दिया गया हैः

1. संकट ग्रस्त संगठनों की समस्याओं के लिए विशेष उपचार देना।
2. संगठनों के बंद होने से रोकना।
3. उनकी बाकी राशि और संपत्ति का संरक्षण करना और संगठनों की पुनर्स्थापना की तैयारियों का सुनिश्चित करना।

4. संगठनों को वित्तीय संरचनाओं और अधिनियमों के अनुसार पुनःस्थापित करने में सहायता करना।

औद्योगिक रुग्णताः अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

भारतीय बाजार को विदेशी निवेशकों के लिए खोल दिया गया है और भारतीय कंपनियों में उनके शेयर बढ़ रहे हैं। विनिवेश की नीति की शुरुआत के बाद कई केंद्रीय और राज्य सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (सीपीएसयू और एसपीएसयू) को सुचारू रूप से चलाने के लिए निजी इकाइयों में बदल दिया गया है। इस अड़चन की स्थिति को दूर करने के लिए पश्चिम बंगाल सरकार ने 1994 में एक अलग औद्योगिक नीति अपनाई है। इस नीति के प्रमुख उद्देश्य थे – इकाइयों का विकेन्द्रीकरण, खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों के माध्यम से ग्रामीण कृषि और शहरी औद्योगिक अर्थव्यवस्था के बीच मजबूत संबंध स्थापित करना, सूक्ष्म और लघु स्तर की इकाइयों के विस्तार पर जोर देना और औद्योगिक समूह का लाभ बनाने के लिए विभिन्न स्थानों में विभिन्न औद्योगिक पार्कों की स्थापना।

9.8 सारांश

इस प्रकरण में हमने देखा कि उद्योगों की समस्याओं से कई उद्योग रुग्णता हो जाते हैं और समाज में नुकसान पहुंचाते हैं। इन बीमारियों की पहचान करना, उनके कारणों को समझना और उनका समाधान करना बहुत जरूरी है। विभिन्न कारणों जैसे अनुदान की कमी, वित्तीय विपणन की अवस्था, अच्छी प्रबंधन नहीं होने से उद्योग रुग्णता होते हैं। औद्योगिक रुग्णता एक गंभीर समस्या है जो किसी भी देश या समाज के विकास में बाधाओं का कारण बन सकती है। यह समस्या न केवल उद्योगों को प्रभावित करती है, बल्कि सामाजिक और आर्थिक माध्यमों पर भी असर डालती है। इसलिए, इस समस्या के समाधान की आवश्यकता बहुत महत्वपूर्ण है।

यह समस्या कई कारणों के कारण हो सकती है। वित्तीय दुर्बलता, प्रबंधन की कमी, प्रौद्योगिकी में पिछड़ाव, बाजार की अनुकूलता की कमी, सरकारी नीतियों का प्रभाव, उत्पादन की अस्तित्वमात्र की कमी, और उत्पादों की गुणवत्ता में कमी आदि इनमें से कुछ मुख्य कारण हैं।

इन समस्याओं का समाधान करने के लिए, सरकारों को नीतियों के माध्यम से उद्योगों के लिए आवश्यक वित्तीय सहायता, समर्थन और विकास को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता होती है। सरकार उद्योगों को आवश्यक बचत और ऋण सुविधाएं प्रदान करके उनकी स्थिति में सुधार कर सकती है। इसके साथ ही,

उद्योगों को नवीनतम तकनीकी प्रगति और सूक्ष्म उद्योगों के विकास के लिए अधिक सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए।

सरकार और उद्योगों के बीच नियमित संवाद बढ़ाना भी महत्वपूर्ण है। यह संवाद उद्योग विकास की योजनाओं, नीतियों, और प्रोग्रामों को समझने और समस्याओं के समाधान के लिए सही दिशा में सहायता प्रदान कर सकता है। संवेदनशील विपणन तकनीक और नवीनतम तकनीकों का उपयोग भी उद्योगों को रुग्णतायों से बचाने में मदद कर सकता है।

उद्योगिक कंपनी अधिनियम, 1985 ने रुग्ण उद्योगों के लिए एक अधिनियमित रणनीति की स्थापना की। 1985 का बीमार औद्योगिक कंपनी अधिनियम (SICA) भारत की औद्योगिक रुग्णता की महामारी से निपटने के लिए कानून का एक महत्वपूर्ण टुकड़ा था। 1985 का बीमार औद्योगिक उद्यम अधिनियम (SICA) भारत में अव्यवहार्य (''बीमार'') कंपनियों की खोज करने के लिए लागू किया गया था जो प्रणालीगत वित्तीय जोखिम का कारण बन सकते हैं। SICA को समाप्त कर दिया गया था और 2003 में बीमार औद्योगिक कंपनी (विशेष प्रावधान) निरसन अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था। जिसने मूल अधिनियम की कुछ विशेषताओं को नरम किया और कुछ मुद्दों को संबोधित किया। एसआईसीए को बाद में 2016 में पूरी तरह से निरस्त कर दिया गया था, क्योंकि इसके कुछ प्रावधान एक अन्य अधिनियम, 2013 के कंपनी अधिनियम के साथ टकरा गए थे।

इस समस्या के समाधान के लिए सरकारों को समय–समय पर नीतियों के तहत उद्योगों के लिए आवश्यक अनुदान, समर्थन और विकास प्रोत्साहन की आवश्यकता है। उद्योगों के लिए अधिक सुविधाओं के साथ सरकार और उद्योगों के बीच संवाद को बढ़ावा देना चाहिए ताकि रुग्णता उद्योगों को बचाया जा सके। संवेदनशील विपणन तकनीक और नई तकनीकों का उपयोग करना भी उद्योगों को बीमारियों से बचाने में सहायता कर सकता है। रुग्ण औद्योगिक कंपनी अधिनियम, 1985 का अधिनियमित किया जाना इस तथ्य की स्वीकारोक्ति थी कि सरकारी अधिग्रहण स समस्या का व्यवहार्य समाधान नहीं हो सकता है। तब इस समस्या पर ध्यान देने और रुग्ण इकाइयों को पुनः लाभप्रद बनाने के लिए बीआईएफआर की स्थापना की गई। अब यह महसूस किया जा रहा है कि बी आई एफ आर की स्थापना के भी वांछित परिणाम नहीं निकले और इसलिए वैकल्पिक तंत्र की तलाश करनी चाहिए।

औद्योगिक रुग्णता आर्थिक प्रगति के लिए एक महत्वपूर्ण बाधा है। इसे एक

ऐसी रुग्णता के रूप में देखा जाता है जो कम उत्पादन के साथ एक मजबूत इकाई को बीमार या कमजोर इकाई में बदलने में सक्षम है। यह एक जहर है जो समय के साथ फैलता है और एक अर्थव्यवस्था को तबाह करने की क्षमता रखता है। इन इकाइयों की वसूली और पुनर्जन्म के साथ–साथ बीमार इकाइयों की संख्या में कमी के बिना अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता है।

9.9 उपयोगी शब्दावली

- **औद्योगिक रुग्णता**– औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादन की क्षमता में धीमी गिरावट, लाभ गिरावट, निवेश की अवकाशकाल, कर्मचारी और विनियोजन की बुरी नीतियों के कारण विकसित और स्थिर न होने की स्थिति का वर्णन करता है।

- **राष्ट्रीयकरण**– ''राष्ट्रीयकरण'' का अर्थ होता है एक राष्ट्र के सभी क्षेत्रों में समान नीतियों, नियमों और संस्कृति के साथ एकीकरण। इसका मुख्य उद्देश्य एक मजबूत एकता और सामरिक संघर्ष को कम करना होता है जिससे एक राष्ट्र के सभी लोगों की एक ही भावना व महत्व बना रहता है।

- **पुनर्जीवित (तमअपअंस)**– जीवनान्तर की ऊर्जा को दोबारा प्रवर्तित करना या फिर जीवनान्तर में फिर से सक्रिय करना। औद्योगिक रुग्णता एक ऐसी स्थिति होती है जब कोई उद्योग नुकसान में हो जाता है और संचालन रोजमर्रा की गतिविधियों को जारी रखना मुश्किल हो जाता है। ऐसी स्थिति में उद्योग को पुनर्जीवित करने के लिए कई उपाय हो सकते हैं, जैसे कि उत्पादकता में सुधार, लागत कम करना, नए बाजारों को खोजना और प्रौद्योगिकी और नवाचारों का उपयोग करना।

- **औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (बीआईएफआर)**– भारत सरकार की एक एजेंसी थी। इसका उद्देश्य औद्योगिक कंपनियों की रुग्णता का पता लगाना और उन्हें पुनर्जीवित करने में सहायता करना है जो व्यवहार्य हो सकते हैं।

- **प्रारंभिक रुग्णता**: एक औद्योगिक इकाई की रुग्णता जिसे पूर्व चेतावनी या प्रारंभिक चेतावनी संकेतों के आधार पर पहचाना जा सकता है।

- **मार्जिन मनी योजना**: लघु क्षेत्र में बीमार इकाइयों को मार्जिन मनी देने की योजना ताकि उन्हें बैंकों और वित्तीय संस्थानों से धन सुरक्षित करने में सक्षम बनाया जा सके।

- **विलय योजना**: रुग्ण औद्योगिक इकाइयों और स्वस्थ इकाइयों को प्रोत्साहन के माध्यम से विलय या समामेलन को प्रोत्साहित करने की योजना।

- **सॉफ्ट लोन योजनाः** निर्दिष्ट उद्योगों में कमजोर इकाइयों को रियायती शर्तों पर वित्तीय सहायता प्रदान करने की योजना।

9.10 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न 1. 'रुग्णता' को आधारभूत तत्वों की व्याख्या करें, जो किसी औद्योगिक इकाई की बीमार का संकेत करते हैं?

प्रश्न 2. बीमार कंपनियों के उत्पन्न होने के प्रमुख कारणों के बारे में विस्तृत चर्चा करें।

प्रश्न 3. भारतीय अर्थव्यवस्था में औद्योगिक रुग्णता के प्रभाव को आकलन करें और इससे अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ सकता है,

प्रश्न 4. प्रारंभिक रुग्णता और वास्तविक रुग्णता के विशेष संदर्भ में औद्योगिक रुग्णता की प्रकृति पर संक्षेप में चर्चा करें।

प्रश्न 5. किसी औद्योगिक इकाई की रुग्णता के छह वित्तीय संकेतक बताइए इन संकेतकों की सीमाएँ क्या हैं,

प्रश्न 6. औद्योगिक रुग्णता, अर्थव्यवस्था पर कैसे प्रभावित करती है,

प्रश्न 7. कुछ औद्योगिक इकाइयों को बीमार कहा जाता है। उन कारणों पर संक्षेप में चर्चा करें जो ऐसी इकाइयों की रुग्णता का कारण बन सकते हैं।

प्रश्न 8. रुग्णता औद्योगिक कंपनी अधिनियम और बीआईएफआर की भूमिका और कार्यों पर चर्चा करें

प्रश्न 9. औद्योगिक रुग्णता के संबंध में सरकारी नीति की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करें।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- एस.के. मिश्रा और वी. के. पुरी, इंडियन इकोनॉमी, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- आर.के. पांडा, औद्योगिक रुग्णताः लघु उद्योगों का एक अध्ययन , एपीएच प्रकाशन निगम
- बी.बी.टंडन और के.के. टंडन, भारतीय अर्थव्यवस्था, टाटा मैकग्रा हिल, नई दिल्ली। भादुड़ी, अमित, (2009): वह चेहरा जिसे देखकर आप डरते थेः भारतीय अर्थव्यवस्था पर निबंध, पेंगुइन। भारत क्षेत्र में औद्योगिक नीति
- भादुड़ी, अमित, (2009): वह चेहरा जिसे देखकर आप डरते थेः भारतीय अर्थव्यवस्था पर निबंध, पेंगुइन।

इकाई 10 औद्योगिक संबंध

इकाई रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 औद्योगिक संबंधों की रूपरेखा

10.3 औद्योगिक विवादों के कारण

10.4 विवादों की रोकथाम और उनका निपटान

10.4.1 कानूनी उपाय

10.4.2 गैरकानूनी उपाय

10.5 सामूहिक सौदेबाजी

10.5.1 अवधारणाएँ

10.5.2 सामूहिक सौदेबाजी समझौते के प्रका

10.5.3 सामूहिक सौदेबानी की प्रक्रिया

10.5.4 सामूहिक सौदेबाजी को पूर्वापेक्षाएँ

10.6 प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता

10.6.1 अवधारणाएँ

10.6.2 भारत में प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की योजना

10.7 सारांश

10.8 उपयोगी शब्दावली

10.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप इस योग्य हो सकेगें कि

- औद्योगिक संबंधों का अर्थ और इसके महत्व को समझ सकेगें;
- औद्योगिक संबंधों में प्रमुख समूहो की भूमिकाओं को रेखांकित कर सकेगें;
- औद्योगिक विवादों की प्रवृत्ति को विश्लेषित कर सकेगें;
- औद्योगिक विवादों के समाधान हेतु विभिन्न संस्थाओ को समझ सकेगें;
- सामूहिक सौदेबाजी और प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारीय तथा

- आर्थिक सुधारों के कारण औद्योगिक संबंधों में आये परिवर्तनो को विश्लेषित कर सकेगें।

10.1 प्रस्तावना

औद्योगिक संबंध आधुनिक औद्योगिक समाज की सबसे नाजुक और जटिल समस्याओं में से एक है जो राष्ट्रीय और अंर्तराष्ट्रीय क्षेत्रों में तेजी से परिवर्तन, औद्योगिक अशांति और परस्पर विरोधी विचारधाराओं की विशेषता है। इसकी अवधारणा और अभ्यास किसी देश के समाज, आर्थिक प्रणाली और राजनीतिक सेट–अप के पैटर्न पर निर्भर करता है और बदलते सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था के साथ बदलता है। यह उत्पादन, उत्पादक दक्षता, मानव कल्याण और औद्योगिक प्रगति के प्रयोजनों के लिए एक साथ रहने की एक कला है। इसमें संस्थानों का एक नेटवक्र शामिल है, जैसे ट्रेड यूनियनवाद, सामूहिक सौदेबाजी, नियोक्ता और उनके संगठन, कानून और राज्य, जो सामान्य मूल्यों और आकांक्षाओं के औद्योगिक संबंधों के वैचारिक ढांचे द्वारा एक साथ बंधे हुए हैं। यदि हम रोजमर्रा के औद्योगिक संबंधों की घटनाओं को समझना चाहते हैं तो ऐसे संस्थानों का ज्ञान आवश्यक है। ये संस्थान संगठनों, प्रतिभागियों, प्रक्रियाओं और निर्णयों का एक सामाजिक नेटवक्र हैं– जिनमें से सभी औधोगित सम्बन्ध वातावरण के भीतर और इससे परे भी एक साथ बातचीत और परस्पर संबंध रखते हैं।

औद्योगिक संबंध दो या अधिक औद्योगिक इकाइयों के बीच स्थापित सम्बन्ध होते हैं। ये संबंध व्यापार, विनिमय, आपूर्ति श्रृंखला, तकनीकी सहयोग, आदि के रूप में हो सकते हैं। औद्योगिक संबंध उद्योग विकास और अधिकारीकरण को प्रोत्साहित करने के लिए महत्वपूर्ण हैं। ये संबंध उद्योगों के बीच विकास और आपसी सहयोग को बढ़ावा देते हैं और सामाजिक–आर्थिक प्रगति को सुनिश्चित करने में मदद करते हैं।

औद्योगिक संबंधों का महत्व व्यापारिक और आर्थिक आधारों पर है। उद्योगों के बीच विभिन्न उत्पादों और सेवाओं की व्यापारिक व्यवस्था स्थापित होती है जिससे उत्पादों की मांग और आपूर्ति को संतुलित रखा जाता है। इसके साथ ही, ये संबंध नई तकनीकों और अभियांत्रिकी की विकास और अवसरों के समावेश को बढ़ावा देते हैं।

औद्योगिक संबंधों के माध्यम से औद्योगिक इकाइयाँ विभिन्न स्तरों पर तकनीकी सहयोग, विनिमय, अनुसंधान और विकास के लिए सहयोग करती हैं। ये संबंध उद्योग विकास के लिए बाजार की मांग और आपूर्ति को संतुलित रखने में

मदद करते हैं और उत्पादकता, गुणवत्ता और नई तकनीकों के प्रयोग में सहायता प्रदान करते हैं।

औद्योगिक संबंधों के माध्यम से उद्योग विकास में विभिन्न सरकारी योजनाओं का लाभ उठाया जा सकता है। सरकार उद्योगों के लिए आवश्यक बचत और ऋण सुविधाएं प्रदान कर सकती है जो इनकी स्थिति में सुधार करती हैं। साथ ही, सरकार उद्योगों को नवीनतम तकनीकी प्रगति और सूक्ष्म उद्योगों के विकास के लिए अधिक सुविधाएं प्रदान करती है।

10.2 औद्योगिक संबंधों की रूपरेखा

''औद्योगिक संबंध'' के सन्दर्भ में, शब्द किसी भी संबंध को संदर्भित करता है जो एक निर्माणात्मक क्षेत्र में एक नियोक्ता और उनके कर्मचारियों और संघ के बीच मौजूद होता है जो उन्हें प्रतिनिधित्व करता है। औद्योगिक संबंधः फिर औद्योगिक संबंध नियोक्ताओं और कर्मचारियों के बीच संबंध है। यह एक अच्छा संबंध होना चाहिए, विभाजन असंगति को अत्यधिक तरीके से काम करना चाहिए, ताकि आर्थिक लाभ और औद्योगिक विकास की संभावना अधिक से अधिक हो सके। अन्य शब्दों में – इन दो विभागों (नियोक्ता और कर्मचारी) के बीच सहयोग के बिना औद्योगिक प्रगति और आर्थिक लाभ रुक जाएगा। इसके अलावा – नियोक्ता और कर्मचारी के बीच के संबंध को संघ के प्रतिनिधित्व से सीधे या असीधे प्रभावित किया जा सकता है।

आज के संदर्भ में, उद्यमों को एक स्वस्थ और सकारात्मक कार्य वातावरण बनाए रखने के लिए औद्योगिक संबंध बढ़ते हुए महत्वपूर्ण हो गए हैं। उद्योगिक संबंधों का सकारात्मक प्रबंधन एक अधिक उत्पादक और लाभदायक संगठन का नेतृत्व कर सकता है। औद्योगिक संबंध प्रबंधन के कुछ मुख्य कार्यों में समूह बातचीत, विवाद संगतन, कर्मचारी शिकायत संबंधी विवरण का हांडलिंग, कर्मचारी भागीदारी और संशोधन तथा श्रम कानून और विनियमों की पालना शामिल होती है।

- **समूह बातचीत** उन संगठनों के बीच समझौते के एक समूह का आकलन करती है जो एक संघ को और उसके कर्मचारियों को दर्शाता है। इस समझौते में, संघ द्वारा संघटित किए गए कर्मचारियों की नियोक्ता की शर्तें और शर्तें शामिल होती हैं, जिसमें वेतन, लाभ और कार्य स्थितियां शामिल होती हैं।

- **विवाद संशोधन** में, प्रबंधन और कर्मचारियों के बीच या विभिन्न समूहों के कर्मचारियों के बीच विवादों को समाधान करना शामिल होता है। प्रभावी विवाद

संशोधन संगठन को नुकसान पहुंचाने वाले हड़ताल, लॉकआउट या अन्य अवरुद्ध कर सकता है।

- **कर्मचारी शिकायतों** के संबंध में उठाए गए शिकायतों या चिंताओं का समाधान करना कर्मचारियों के द्वारा काम की स्थितियों, प्रबंधन द्वारा व्यवहार या अन्य कार्यस्थल संबंधी मुद्दों के संबंध में होता है। एक निष्पक्ष और प्रभावी शिकायत संबंधी प्रक्रिया प्रबंधन और कर्मचारियों के बीच विश्वास को बढ़ावा देने और सकारात्मक संबंध बनाए रखने में मदद कर सकती है।

- **कर्मचारी शामिल होने और भागीदारी** से तात्पर्य उन कार्यक्रमों से होता है जिनमें कर्मचारियों का काम प्रभावित करने वाले निर्णयों में वे शामिल होते हैं। इसमें समितियों, टीमों या अन्य मंचों में भागीदारी शामिल हो सकती है जहां कर्मचारियों को कार्यस्थल से संबंधित मुद्दों पर प्रविष्टि और प्रतिक्रिया देने की सुविधा होती है।

- **श्रम कानूनों और नियमों का पालन** करना महत्वपूर्ण है ताकि कार्यदाताएं अपने कर्मचारियों के साथ निष्पक्ष व्यवहार करें और वेतन, लाभ, काम की स्थिति और अन्य कार्यस्थल से संबंधित मुद्दों से संबंधित कानूनी अनुमोदन का पालन करें।

वस्तुतः औद्योगिक संबंध प्रबंधन एक सकारात्मक और उत्पादक कार्यस्थल बनाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उचित और सकारात्मक औद्योगिक संबंध प्रबंधन से, संगठन कर्मचारियों के साथ मजबूत संबंध बना सकता है, कार्यस्थल विवादों से बचा जा सकता है अंततः, औद्योगिक संबंध प्रबंधन ने एक सकारात्मक और उत्पादक कार्यस्थल बनाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अच्छी तरह से औद्योगिक संबंधों का प्रबंधन करके, संगठन अपने कर्मचारियों के साथ मजबूत संबंध बना सकता है, कार्यस्थल विवादों से बच सकता है और अपने व्यापार लक्ष्यों को हासिल कर सकता है।

10.3 औद्योगिक विवादों के कारण

औद्योगिक विवाद एक सम्बंधित उद्योग के कर्मचारियों और उद्योगपति या प्रबंधन के बीच उभरे मतभेदों या विवादों को संदर्भित करता है। ये विवाद आमतौर पर श्रमिक संगठन और उद्योगपति या उद्योगिक संघ के बीच होते हैं और कामकाज, वेतन, भत्ते, कार्यालय नियम और श्रमिकों के अधिकारों पर आधारित हो सकते हैं।

औद्योगिक विवादों के कारण विभिन्न हो सकते हैं। इनमें वेतन और भत्ते की मांग, कार्य समय, कार्यालय की सुरक्षा, कार्यकारी व्यवस्था और कार्यस्थल में

सुविधाओं का अभाव शामिल हो सकता है। इन विवादों का समाधान सामरिक या विधिक तरीके से हो सकता है, जिसमें मध्यस्थता, वाद–विवाद या कानूनी जांच शामिल हो सकती है।

औद्योगिक विवादों का समाधान विभिन्न तरीकों से किया जा सकता है। श्रमिक संगठन या यूनियन के द्वारा विभिन्न तरह की धरना, हड़ताल, सदन और प्रदर्शन आयोजित किए जा सकते हैं ताकि उद्योगपति या प्रबंधन को उनके मांगों को सुनिश्चित करने के लिए प्रेरित किया जा सके। सरकार द्वारा मध्यस्थता और विवाद सुलझाने के लिए कानूनी निकाय जैसे आदालत या अर्बिट्रेशन कोर्ट भी शामिल हो सकते हैं।

औद्योगिक विवादों के नतीजे में विभिन्न प्रभाव हो सकते हैं। इनमें कामकाज का बंद होना, उत्पादन की गति में कमी, आर्थिक नुकसान, उद्योग की उच्चतम प्रबंधन लागत आदि शामिल हो सकते हैं।

औद्योगिक विवादों के समाधान के लिए संवेदनशील व्यवस्था, विचारशीलता और संवेदनशीलता की आवश्यकता होती है। संगठनित कार्यकर्ता या कर्मचारी और उद्योगपति या प्रबंधन के बीच संवाद और सहमति को बढ़ावा देना चाहिए। समाजिक संगठन, सरकार और औद्योगिक संघों के साथ सहयोग करना और कानूनी तंत्र का सहारा लेना भी महत्वपूर्ण है।

इसके अलावा, कर्मचारी और उद्योगपति के बीच संबंधों को सुधारने के लिए न्यूनतम मानक कार्यकारी मापदंड और अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए कानूनी नियमों को संशोधित और सम्पूर्ण किया जाना चाहिए। ये कदम सुनिश्चित करेंगे कि औद्योगिक विवादों को समाधान करने के लिए समाज, उद्योगपति और कर्मचारी सभी मिलकर काम करते हैं और उद्योगिक संबंधों को मजबूत और स्थायी बनाते हैं।

औद्योगिक विवादों के कई कारण हो सकते हैं, आइये इन्हें क्रमबद्ध कर समझने का प्रयास करें:–

1. **वेतन संबंधी मुद्दे:** औद्योगिक विवादों के सबसे आम कारणों में से एक वेतन संबंधी मुद्दे होते हैं, जिसमें कम वेतन, वेतन वृद्धि की अभावता या अनुचित वेतन वितरण जैसे मुद्दे शामिल होते हैं।

2. **खराब काम के स्थानों से संबंधित मुद्दे:** खराब काम के स्थानों से संबंधित मुद्दों, जिसमें असुरक्षित या अवैध काम के माहौल, लंबी कार्य घंटे और अपर्याप्त सुविधाओं जैसे मुद्दे शामिल होते हैं, से भी औद्योगिक विवाद हो सकते हैं।

3.**नौकरी सुरक्षाः** नौकरी सुरक्षा से संबंधित चिंताएं, जिसमें लेआफ, रिडंडेंट या अवसरों की कमी जैसे मुद्दे शामिल हो सकते हैं, भी नियोक्ता और कर्मचारियों के बीच विवादों का कारण बन सकते हैं।

4.**संचार की कमीः** कार्यदाता और कर्मचारियों के बीच खराब संचार भी कारण बन सकती है, जिससे कार्यस्थल नीतियों, अपेक्षाओं और प्रदर्शन मानकों पर गलतफहमी और असहमति हो सकती है।

5.**भेदभावः** लिंग, जाति, नस्ल या अन्य कारकों पर आधारित भेदभाव भी औद्योगिक विवादों का कारण बन सकता है।

6.**यूनियन संबंधित मुद्देः** प्रबंधन और यूनियन अधिकारियों के बीच संघर्ष भी औद्योगिक विवादों का कारण बन सकता है, जिसमें संगठित वार्ता, यूनियन प्रतिनिधि या यूनियन गतिविधियों पर असहमति हो सकती है।

7.**संगठन की संरचना में बदलावः** संगठन की संरचना में बदलाव जैसे मर्ज, अधिग्रहण या पुनर्गठन के कारण नौकरियों की भूमिका, जिम्मेदारियों और काम की स्थिति में बदलाव के कारण भी औद्योगिक विवाद हो सकते हैं।

8.**व्यवस्थापकीय नीतियों** : पर असहमति, जैसे अनुशासन कार्यवाही, पदोन्नति, या कार्य नियत्रण का वितरण, भी औद्योगिक विवादों का कारण बन सकती है।

वस्तुतः औद्योगिक संबंधों का प्रभावी प्रबंधन इन विवादों को रोकने और हल करने में मदद कर सकता है, जो एक उत्पादक और सकारात्मक कार्य वातावरण सुनिश्चित करता है।

10.4 विवादों की रोकथाम और उनका निपटान

भारतीय औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 मशीनरी संबंधित विवादों के निस्तारण के लिए बनाया गया था। इस अधिनियम के तहत, विभिन्न उपाय विवादों के संलग्न तथा गैर– सांविधिक उपाय भी उपलब्ध होते हैं। औद्योगिक विवादों से संबंधित अधिकांश उपायों का उद्देश्य उनकी घटनाओं को रोकने के बजाय समाधान करना है। विवादों की रोकथाम के उपाय वैधानिक और गैर– सांविधिक उपाय हो सकते हैं। औद्योगिक विवादों से संबंधित अधिकांश उपायों का उद्देश्य उनकी घटनाओं को रोकने के बजाय समाधान करना है। विवादों की रोकथाम के उपाय वैधानिक और गैर– सांविधिक उपाय हो सकते हैं।

वैधानिक उपाय में सुलह (Conciliation), मध्यस्थता (Arbitration), और अधिनिर्णय (Adjudication) शामिल होते हैं। ये उपाय विभिन्न स्तरों पर आवेदकों को उनके विवादों को हल करने की संभावना देते हैं।

इनके अलावा, गैर–सांविधिक उपायों भी उपलब्ध होते हैं। उनमें अनुशासन संहिता, सामूहिक सौदेबाजी, और श्रमिक भागीदारी प्रबंधन (डब्ल्यूपीएम) शामिल होते हैं। अनुशासन संहिता उन संबंधों के लिए उपलब्ध होती है, जो अपराधिक हो सकते हैं जैसे अनुशासन की उल्लंघना या काम न करना। सामूहिक सौदेबाजी संबंधीय उद्योग के सभी पक्षों के बीच विवादों को सुलझाने में मदद कर सकती है।

10.4.1 कानूनी उपाय

वैधानिक उपाय में सुलह (Conciliation), मध्यस्थता (Arbitration), और अधिनिर्णय (Adjudication) शामिल होते हैं। आइये इन सभी उपायों के बारे में विस्तृत जानकारी का से समझने का प्रयास करें:–

क) सुलह (Conciliation): सुलह एक वैधानिक उपाय है जो दो स्तरों पर काम करता है: प्रथम, यह दोनों पक्षों के बीच संवाद को बढ़ावा देता है, और दूसरा, इससे उन्हें समझौते तक पहुंचने में मदद मिलती है। इस उपाय में एक तृतीय व्यक्ति (ब्वदबपसपंजवत) या समझौता विवेक के साथ दोनों पक्षों के बीच वार्ता करता है। वह दोनों पक्षों की बातचीत के आधार पर उन्हें संवाद के माध्यम से एक समझौते तक पहुंचने की कोशिश करता है। सुलह का मूल उद्देश्य विवादों को संभवतः दोनों पक्षों के लिए संभवतः अपने विचार और अभिप्राय को बेहतर ढंग से समझाना होता है।

सुलह में विवादों का त्वरित समाधान प्राप्त करने के उद्देश्य से किसी तीसरे पक्ष को शामिल करके विवाद का निपटान शामिल है, सुलह स्वैच्छिक हो सकती है, जहां राज्य सुलह तंत्र प्रदान करता है जिसका उपयोग विवादित पक्षों द्वारा आवश्यकता पड़ने पर किया जा सकता है। अनिवार्य सुलह में, राज्य सुलह मशीनरी बनाता है और विवादित पक्षों के लिए सुलह सेवाओं के लिए विवादों को अनिवार्य बनाता है।

सुलह में, अंतिम निर्णय स्वयं पार्टियों के पास होता है लेकिन सुलहकर्ता दोनों पक्षों को स्वीकार्य विवाद के समाधान की पेशकश कर सकता है और चौनल संचार के रूप में कार्य कर सकता है। पार्टियां उसकी सिफारिश को स्वीकार या अस्वीकार कर सकती हैं।

यदि समझौता विफल हो जाता है, तो अगला चरण अनिवार्य अधिनिर्णय हो सकता है या पार्टियों को उनकी अपनी पसंद के साथ छोड़ा जा सकता है। ऐसे मामलों में जहां समझौता हो जाता है, वे समझौते को रिकॉर्ड कर सकते हैं और सुलह वार्ता विफल होने की स्थिति में, वे उपयुक्त सरकार को एक विफलता रिपोर्ट भेज सकते हैं।

ख) मध्यस्थता (Arbitration): मध्यस्थता एक वैधानिक उपाय है जो विवादों के निपटान के लिए दो पक्षों के बीच तृतीय व्यक्ति की नियुक्ति के द्वारा काम करता है इस उपाय में, विवाद के पक्षों को तीसरे व्यक्ति के सामने अपने दावे और आपत्तियों का विवरण पेश करना होता है। इसके बाद, मध्यस्थता विधि के अनुसार, मध्यस्थ अपना फैसला देता है जो दोनों पक्षों के लिए बाध्यकारी होता है। इसका मूल उद्देश्य विवादों को समाधान करना होता है जो कभी–कभी न्यायालय के फैसले से भी तेज होता है।

मध्यस्थता की प्रक्रिया में एक मध्यस्थ शामिल होता है जिसका निर्णय विवाद में शामिल पक्षों के लिए बाध्यकारी होता है। मध्यस्थ विवादित पक्षों (कर्मचारियों और नियोक्ताओं) द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर निर्णय पर पहुंचता है। यह औद्योगिक विवाद को हल करने का अंतिम उपाय है। औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के तहत अधिनिर्णयन श्रम न्यायालयों, औद्योगिक न्यायाधिकरणों और राष्ट्रीय न्यायाधिकरणों के लिए तीन तंत्र प्रदान करता है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि मध्यस्थता एक वैधानिक उपाय है जो विवादों को सुलझाने के लिए उपयोग में लाया जाता है। मध्यस्थता की प्रक्रिया निम्नलिखित कदमों में सम्पन्न होती हैं:

1. श्रमिक संघ आम तौर पर मध्यस्थता के लिए पहल करता है। जब संघ निर्णय लेता है, तो वह प्रबंधन को सूचित करता है। विवाद के पक्षों को एक मध्यस्थ चुनने की अनुमति दी जाती है। पक्षों के विकल्पों के आधार पर, दोनों पक्षों के समझौते के आधार पर, या तीसरे व्यक्ति द्वारा चयनित मध्यस्थ के आधार पर मध्यस्थ का चयन किया जा सकता है।

2. संघ और प्रबंधन किसी भी पक्षपात का पता लगाने के लिए विशेष मध्यस्थ द्वारा दिए गए पिछले निर्णयों का सावधानीपूर्वक अध्ययन करके संभावित मध्यस्थ का चयन करते हैं।

3. मध्यस्थ के चयन के बाद, सुनवाई के लिए समय और स्थान निर्धारित किया जाएगा, हल किए जाने वाले मुद्दे को मध्यस्थ को एक दस्तावेज में प्रस्तुत किया जाएगा जो निर्णय किए जाने वाले प्रश्नों का सारांश देता है, कोई भी अनुबंध प्रतिबंध जो मध्यस्थ को निर्णय लेने से रोकता है पुरस्कार जो मौजूदा अनुबंध की शर्तों को बदल देगा। मध्यस्थ द्वारा विवाद के संगठन की जाती है जिसमें विवादों की स्थिति, जॉच, सबूत और तर्कों का विश्लेषण किया जाता है।

4. सुनवाई में प्रत्येक पक्ष अपने मामले का प्रतिनिधित्व करता है।

5. प्रत्येक पक्ष को औपचारिक लिखित बयान प्रस्तुत करना होता है।

6. मध्यस्थ द्वारा संचालित सुनवाई में, विवाद के पक्षों को अपने दावों और आपत्तियों का विवरण प्रस्तुत करना होता है, तब तक मध्यस्थ द्वारा विवाद के तथ्यों और सबूतों का विश्लेषण किया जाता है जब तक एक निर्णय नहीं निकलता है। इस प्रक्रिया में, मध्यस्थ को विवाद के तथ्यों के बारे में ध्यान में रखते हुए निर्णय लेना होता है। निर्णय लेते समय, मध्यस्थ द्वारा निर्धारित अनुष्ठान और विधि के अनुसार एक निर्णय लिया जाता है।

7. मध्यस्थ द्वारा निर्धारित समय के अंत में, उनके द्वारा जारी किए गए निर्णय के आधार पर, विवाद के दोनों पक्षों के लिए एक निर्णय जारी किया जाता है। इस निर्णय के आधार पर, विवादों को समाधान किया जाता है।

8. विवाद के पक्षों को अपने निर्णय को अपील करने की अनुमति दी जा सकती है। यदि कोई पक्ष निर्णय से संतुष्ट नहीं होता है, तो वह उस निर्णय को अपील कर सकता है और उच्चतम न्यायालय के समक्ष आपत्ति दर्ज कर सकता है।

इस प्रकार, मध्यस्थता की प्रक्रिया के माध्यम से विवाद के पक्षों के बीच सुलझाव का माध्यम बनता है और वे एक निर्णय पर सहमति प्राप्त करते हैं जिससे विवाद को शांति से समाधान किया जाता है।

ग) अधिनिर्णय (Adjudication): अधिनिर्णय एक वैधानिक उपाय है जो विवाद के निपटान के लिए न्यायालयों या अन्य अधिकारिक संस्थाओं के माध्यम से काम करता है। विवादों को आम तौर पर उस सुलह अधिकारी की सिफारिश पर अधिनिर्णय के लिए भेजा जाता है, जिसने पहले उनका निपटारा किया था। सरकार के पास सुलह अधिकारी की सिफारिशों को स्वीकार या अस्वीकार करने की विवेकाधीन शक्तियाँ हैं। यह स्पष्ट है कि एक बार न्यायनिर्णयन के लिए संदर्भित किए जाने के बाद, श्रम न्यायालय या न्यायाधिकरण का फैसला दोनों पक्षों पर बाध्यकारी होता है।

यह विवादों को सुलझाने का सबसे महत्वपूर्ण साधन है। लेकिन, संघर्षों को सुलझाने में देरी के कारण इसकी आलोचना की गई है। इसके बारे में फैसला देने वाले व्यक्ति (Judge) के लिए विवाद के दावे और आपत्तियों का विवरण पेश करना होता है। जब न्यायालय या अन्य संस्था अपना फैसला देती है, तो उस फैसले का पालन करना दोनों पक्षों के लिए बाध्यकारी होता है। अधिनिर्णय का मूल उद्देश्य न्याय सुनिश्चित करना होता है जो विवादों को उचित तरीके से निपटाने में मदद करता है। अधिनिर्णयन की प्रक्रिया के लिए, अधिनियम (3-tier) त्रि–स्तरीय व्यवस्था का प्रावधान

करता है। आइये इनके विभिन्न स्तरों को समझने प्रयास करें:–

1. **श्रम अदालत (Labour Courts)** – श्रम अदालत जिले स्तर पर स्थापित किए जाते हैं जो कि कामगारों के विवादों को समाधान करने में सक्षम होते हैं। इन अदालतों के जज अधिकतर अधिकारियों या वकीलों से चुने जाते हैं जो कि श्रम संबंधित मुद्दों पर विशेषज्ञ होते हैं।

2. **औद्योगिक अदालत (Industrial Tribunals)** – औद्योगिक अदालत क्षेत्र स्तर पर स्थापित किए जाते हैं जो कि श्रम संबंधित विवादों को समाधान करने में सक्षम होते हैं। इन अदालतों के जज न्यायधीश या उच्च न्यायाधीशों से नियुक्त किए जाते हैं।

3. **राष्ट्रीय अधिवक्ता (National Tribunals)** – राष्ट्रीय अधिवक्ता राज्यों से अलग एक स्तर पर स्थापित किए जाते हैं जो कि औद्योगिक विवादों को समाधान करने में सक्षम होते हैं। राष्ट्रीय मामले, ऐसे मामले जिनमें उद्योग एक से अधिक राज्यों में हैं, या विवाद के परिणाम से प्रभावित हैं।राष्ट्रीय न्यायाधिकरण का कर्तव्य है कि वह अपनी कार्यवाही तेजी से करे और दिए गए निर्दिष्ट समय के भीतर अपनी रिपोर्ट केंद्र सरकार को प्रस्तुत करे।

10.4.2 गैरकानूनी उपाय

भारत में औद्योगिक विवादों को संभालने के लिए उपयोग होने वाली निवारक इकाइयां हैं: कार्य संबंधों की नीतियां और अनुशासन, मध्यस्थता और सुलझाव, उच्च्तम समन्वय और दल–दल संघर्ष संगठन, संवेदनशील औद्योगिक संघों के गठन और मध्यस्थता, संगठित वार्ता–विचार और विचाराधीनता, और कानूनी तंत्र का सहारा। विवादों और सामंजस्यपूर्ण औद्योगिक संबंधों की रोकथाम के लिए, तीन स्तरों पर परामर्शी इकाइयों की व्यवस्था की व्यवस्था की गई है। यथा राष्ट्रीय स्तर, उद्योग स्तर और उद्यम स्तर इन विभिन्न स्तरों की इकाइयों के उद्देश्य है। आइये इन्हें क्रमशः समझने का प्रयास करें:–

इन विभिन्न स्तरों की इकाइयों के उद्देश्य है। आइये इन्हें क्रमशः समझने का प्रयास करें:–

- **प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी** इस निवारक मशीन के तहत, श्रमिकों को संगठित कर इन्हें कंपनी के प्रबंधन में भागीदार बनाया जाता है। इससे कंपनी में शांति बनी रहती है और कर्मचारियों को अपने हितों की रक्षा करने के लिए मुद्दों पर चर्चा करने का एक मंच भी मिलता है।

- **सामूहिक सौदेबाजी** : इस निवारक मशीन के तहत, कर्मचारियों के प्रतिनिधि

संगठन और कंपनी के प्रतिनिधि संगठन के बीच वार्ता करके वेतन, भत्ते, अधिकार और कानूनी अधिकारों से संबंधित मुद्दों को हल किया जाता है। सामूहिक सौदेबाजी मुद्दों के निपटारे और औद्योगिक विवादों की रोकथाम में मदद करती है। ऐसा तब होता है जब श्रमिक संघ के प्रतिनिधि कर्मचारियों के वेतन और लाभों को निर्धारित करने, कार्य नियमों को बनाने या संशोधित करने और श्रम अनुबंध के विवादों या उल्लंघनों को हल करने के लिए प्रबंधन प्रतिनिधियों से मिलते हैं। सौदेबाजी इस अर्थ में सामूहिक है कि चुना गया है कर्मचारियों के प्रतिनिधि (अर्थात संघ) प्रबंधन के साथ बातचीत और व्यवहार करने में सभी कर्मचारियों के लिए सौदेबाजी एजेंट के रूप में कार्य करता है। नियोक्ता की ओर से, यह उन सामान्य स्थितियों में सामूहिक है जिसमें कंपनियां एक संघ के साथ सौदेबाजी के उद्देश्यों के लिए एक नियोक्ता संघ में शामिल हो गई हैं।

- **शिकायत करने की प्रक्रिया : इस** निवारक मशीन के तहत, कर्मचारियों को शिकायत करने के लिए एक विशेष प्रक्रिया का पालन करना होता है। इस प्रक्रिया में कर्मचारी अपनी शिकायत कंपनी के विभिन्न स्तरों तक ले जाते हैं ताकि उनकी शिकायतों का समाधान हो सके। शिकायत प्रक्रियाः यह विवादों को सुलझाने का एक और तरीका है। शिकायत कोई भी असंतोष या असंतोष है, जो रोजगार संबंध से उत्पन्न होता है, जिसे एक कर्मचारी अनुचित, अन्यायपूर्ण या असमान मानता है या महसूस करता है। एक शिकायत प्रक्रिया एक औपचारिक प्रक्रिया है जो मध्यस्थता के लिए प्रारंभिक है, जो शामिल पक्षों को अपने मतभेदों को शांतिपूर्ण और व्यवस्थित तरीके से हल करने का प्रयास करने में सक्षम बनाती है। यह कंपनी और ट्रेड यूनियन को किसी भी तरह से व्यापार के शांतिपूर्ण संचालन को बाधित किए बिना समस्या की जांच और चर्चा करने में सक्षम बनाता है। जब शिकायत निवारण तंत्र प्रभावी ढंग से काम करता है, तो यह श्रम और प्रबंधन के बीच अधिकांश विवादों को संतोषजनक ढंग से हल करता है।

- **त्रिपक्षीय निकाय** : इस निवारक मशीन के तहत, सरकार, श्रम संगठन और कंपनियों के प्रतिनिधि एक साथ आते है। यह उन निकायों को कहते हैं जिनमें केंद्र सरकार, राज्य सरकार और श्रम संगठनों के प्रतिनिधि होते हैं। इन निकायों का मुख्य उद्देश्य औद्योगिक शांति बनाए रखना होता है। ये निकाय विवादों के समाधान में सहायता करते हैं और निष्पक्ष रूप से समस्या का समाधान करते हैं।

- **अनुशासन संहिता** : यह एक संघर्ष निवारक होती है जो किसी उद्योग या कंपनी के अंदर अनुशासन बनाए रखने में मदद करती है। इसमें कंपनी द्वारा निर्धारित नियमों, कार्य क्रम और आचरण से संबंधित नियम शामिल होते हैं। इसे निष्पक्षता से अपनाना बहुत आवश्यक होता है ताकि कोई भी श्रमिक इसे समझ सके और अनुशासन के नियमों का पालन कर सके। अनुशासन संहिताः अनुशासन संहिता नियोक्ताओं और श्रमिकों के कर्तव्यों और जिम्मेदारियों को परिभाषित करती है। आइये इस अनुशासन संहिता के विभिन्न उद्देश्यो को क्रमशः समझने का प्रयास करें:–

  i. यह सुनिश्चित करने के लिए कि नियोक्ता और कर्मचारी एक दूसरे के अधिकारों और दायित्वों को पहचानते हैं।

  ii. सभी स्तरों पर संबंधित पक्षों के बीच लगातार सहयोग को बढ़ावा देना।

  iii. भारतीय रेल में सभी प्रकार के दबाव, धमकी और हिंसा को समाप्त करना।

  iv. काम में रुकावट से बचने के लिए।

  v. ट्रेड यूनियनों के विकास को सुगम बनाना।

  vi. उद्योग में अनुशासन बनाए रखना।

स्थायी आदेश : यह आदेश कंपनी के अंदर निर्धारित नियमों, अधिनियमों और विनियमों के लिए होता है। इसका उद्देश्य कंपनी में अनुशासन और विश्वास बढ़ाना होता है। स्थायी आदेश कंपनी द्वारा निर्धारित नियमों पालन को सुनिश्चित करने के लिए होते हैं। इसका उद्देश्य कंपनी में अनुशासन और विश्वास बढ़ाना होता है।

10.5 सामूहिक सौदेबाजी

सामूहिक सौदेबाजी नियोक्ता और कर्मचारियों के बीच रोजगार की शर्तों पर चर्चा और बातचीत को संदर्भित करती है, जिसमें काम के माहौल, रोजगार की स्थिति, शिफ्ट की लंबाई, काम की छुट्टियां, छुट्टी का समय, बीमार छुट्टी और स्वास्थ्य देखभाल लाभ, साथ ही मुआवजा शामिल है। आधारित आइटम जैसे मूल वेतन और सेवानिवृत्ति लाभ।

निर्माताओं का राष्ट्रीय संघ के अनुसार – ''सामूहिक सौदेकारी की प्रक्रिया एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा प्रबन्ध एवं श्रमिक एक दूसरे की समस्याओं एवं दृ

ष्टिकोण को सामने ला सकते है तथा सेवा सम्बन्धों की रूप रेखा का विकास करते हैं।

सामूहिक सौदेबाजी में, नियोक्ता के प्रबंधन और श्रमिक संघ के नेताओं के बीच बातचीत होती है, जो ट्रेड यूनियन श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करते हैं। संघ के सदस्य श्रमिक संघ के नेताओं को बाद का प्रतिनिधित्व करने के लिए भुगतान करते हैं। बातचीत सामूहिक सौदेबाजी समझौते में परिणत होती है, जो एक निश्चित संख्या में वर्षों के लिए रोजगार के नियमों का वर्णन करती है। सामूहिक सौदेबाजी बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि नियोक्ता और कर्मचारियों के बीच असंगति के परिणामस्वरूप विभिन्न विरोधी घटनाएं हो सकती हैं, जैसे श्रमिक हड़तालें, तालाबंदी आदि।

10.5.1 अवधारणाएँ

अंर्तराष्ट्रीय श्रम संगठन के सामूहिक सौदेबाजी सम्मेलन, 1981 (संख्या 154) के अनुच्छेद 2 के अनुसार, ''सामूहिक सौदेबाजी उन सभी वार्ताओं तक फैली हुई है जो एक नियोक्ता, नियोक्ताओं के एक समूह या एक या एक से अधिक नियोक्ताओं के संगठनों के बीच होती है। एक ओर, और दूसरी ओर एक या अधिक श्रमिक संगठनों के लिए

- काम करने की स्थिति और रोजगार की शर्तों का निर्धारणय या
- नियोक्ताओं या उनके संगठनों और श्रमिकों या श्रमिकों के संगठनों के बीच संबंधों को विनियमित करना''।

10.5.2 सामूहिक सौदेबाजी समझौते के प्रकार

भारत में, मुख्य रूप से तीन प्रकार के सामूहिक सौदेबाजी अत्यधिक प्रचलित है। आइये इन्हें क्रम"ाः समझने का प्रयास करेः–

(क) द्विपक्षीय या स्वैच्छिक समझौता – द्विपक्षीय समझौते वे समझौते या समझौते हैं जो सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया में स्वैच्छिक बातचीत में बनते हैं। औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 18 के अनुसार, ऐसे समझौते शामिल पक्षों पर बाध्यकारी होते हैं।

(ख) समझौता – एक समझौता आमतौर पर त्रिपक्षीय चरित्र के एक समझौते को संदर्भित करता है क्योंकि इसमें पहुंचने में तीसरा पक्ष शामिल होता है। यह वह समझौता है जो नियोक्ता और कर्मचारियों द्वारा एक सुलह अधिकारी की मदद से किया जाता है। यदि सुलह की प्रक्रिया के दौरान सुलह अधिकारी को लगता है कि समझौता होने की संभावना है तो वह स्वयं इसे वापस ले लेता है। उसके बाद, पार्टियां समझौते की शर्तों की जांच करती हैं और एक निर्दिष्ट अवधि

के भीतर अधिकारी को वापस रिपोर्ट करती हैं।

(ग) सहमति पुरस्कार – जब कोई विवाद किसी अनिवार्य सहायक प्राधिकारी के समक्ष लंबित हो, तब भी पक्षकार आपस में बातचीत कर सकते हैं। इस तरह की बातचीत के परिणामस्वरूप बनने वाले समझौते को भी प्राधिकरण के पुरस्कार में शामिल किया जाएगा और यह बाध्यकारी बल प्राप्त करेगा।

सामूहिक सौदेबाजी एक ऐसी विधि है जो श्रमिकों और उद्योगपतियों के बीच विवादों को सुलझाने के लिए उपयोग की जाती है। यह विधि आम तौर पर तीन स्तरों पर आयोजित की जाती हैः यथा संयंत्र स्तर, औधोगिक स्तर, और राष्ट्रीय स्तर। आइये इन विभिन्न स्तर को समझने का प्रयास करें:–

- **संयंत्र स्तरः** संयंत्र स्तर पर सामूहिक सौदेबाजी की बैठकें कंपनी के स्तर पर होती हैं। इस स्तर पर, कंपनी के श्रमिकों के प्रतिनिधि अपनी मांगों को कंपनी के प्रबंधन से सीधे चर्चा करते हैं।
- **औधोगिक स्तरः** उद्योग स्तर पर सामूहिक सौदेबाजी की बैठकें उद्योग के सभी कंपनियों के श्रमिकों के प्रतिनिधि द्वारा आयोजित की जाती हैं। इस स्तर पर, कंपनियों के श्रमिकों के प्रतिनिधि अपनी मांगों को उनके उद्योग के उपरांत अधिकृतों से चर्चा करते हैं।
- **राष्ट्रीय स्तरः** राष्ट्रीय स्तर पर सामूहिक सौदेबाजी की बैठकें देश के सभी क्षेत्रों के श्रमिकों के प्रतिनिधि द्वारा आयोजित की जाती हैं।

10.5.3 सामूहिक सौदेबानी की प्रक्रिया

सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया में पाँच चरण होते हैं जिनका पालन कर्मचारी और नियोक्ता दोनों द्वारा सौहार्दपूर्ण समाधान तक पहुँचने के लिए किया जाता है। ये पांच चर.ा निम्नवत् हैः–

1. तैयारीः पहले चरण में, प्रत्येक पक्ष के दोनों प्रतिनिधि बैठक के दौरान की जाने वाली वार्ता तैयार करते हैं। प्रत्येक सदस्य को बैठक में उठाए जाने वाले मुद्दों से अच्छी तरह जानकारी होनी चाहिए और श्रम कानूनों का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए। प्रबंधन को रोजगार की शर्तों में आवश्यक परिवर्तन के प्रस्तावों के साथ अच्छी तरह से तैयार रहना चाहिए और अपने रुख को सही ठहराने के लिए सांख्यिकीय आंकड़ों के साथ तैयार रहना चाहिए। दूसरी ओर, संघ को व्यवसाय की वित्तीय स्थिति के साथ– साथ भुगतान करने की क्षमता के बारे में पर्याप्त जानकारी एकत्र करनी चाहिए और मुद्दों और श्रमिकों की इच्छाओं पर एक विस्तृत रिपोर्ट तैयार करनी चाहिए।

2. चर्चा करें: यहां, दोनों पक्ष जमीनी नियम तय करते हैं जो बातचीत का मार्गदर्शन करेंगे और मुख्य वार्ताकार प्रबंधन टीम से है जो चर्चा का नेतृत्व करेगा। साथ ही, जिन मुद्दों के लिए बैठक आयोजित की जाती है, उनकी पहचान इस स्तर पर की जाती है। मुद्दे वेतन, पूरक आर्थिक लाभ (पेंशन योजना, स्वास्थ्य बीमा, सवेतन अवकाश, आदि), संस्थागत मुद्दे (अधिकार और कर्तव्य, ईएसओपी योजना), प्रशासनिक मुद्दे (स्वास्थ्य और सुरक्षा, तकनीकी परिवर्तन, नौकरी की सुरक्षा, आदि) से संबंधित हो सकते हैं। काम करने की स्थिति)।

3. प्रस्ताव: इस स्तर पर, मुख्य वार्ताकार एक प्रारंभिक वक्तव्य के साथ बातचीत शुरू करता है और फिर दोनों पक्षों)ारा अपनी शुरुआती मांगें रखीं जाती है। इस सत्र को एक विचार– मंथन कहा जा सकता है, जहां प्रत्येक पक्ष अपनी राय देता है जो तर्क और प्रतिवाद की ओर ले जाता है।

4. सौदा: इस स्तर पर बातचीत शुरू होती है, जहाँ प्रत्येक पक्ष दूसरे पर जीत हासिल करने की कोशिश करता है। अंतिम समझौता होने तक बातचीत दिनों तक चल सकती है। कभी– कभी, दोनों पक्ष जल्द ही एक सौहार्दपूर्ण समाधान पर पहुँच जाते हैं, लेकिन कई बार विवाद को निपटाने के लिए तीसरा पक्ष मध्यस्थता या अधिनिर्णय के रूप में बातचीत में हस्तक्षेप करता है।

5. समझौता: यह सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया का अंतिम चरण है, जहाँ दोनों पक्ष अब तक चर्चा की गई समस्या के सामान्य समाधान पर सहमत होते हैं। इसलिए, कर्मचारी और नियोक्ता के बीच एक आपसी समझौता होता है, जिस पर निर्णय को सार्वभौमिक स्वीकृति देने के लिए प्रत्येक पक्ष द्वारा हस्ताक्षर किए जाने होते हैं।

इस प्रकार, विवाद को निपटाने के लिए प्रबंधन को इन चरणों का पालन करना चाहिए।

10.5.4 सामूहिक सौदेबाजी को पूर्वापेक्षाएँ

आइये सामूहिक सौदेबाजी को पूर्वापेक्षाएँ को सूचिबद्ध कर समझने का प्रयास करें:–

- संघों की स्वतंत्रता
- श्रमिकों और नियोक्ताओं के संगठनों की स्थिरता
- अनुकूल राजनीतिक वातावरण– सरकार को केवल सहानुभूति ही नहीं बल्कि समझौते, सामूहिक सौदेबाजी को प्रोत्साहित भी करने चाहिए।
- सामूहिक सौदेबाजी या बातचीत से सभी मामलों को निपटाने के लिए

संबंधित पक्षों की ओर से आपसी विश्वास और सम्मान और इच्छा भी।

10.6 प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता

प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी औद्योगिक लोकतंत्र का एक अनिवार्य घटक है। प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी की अवधारणा प्रबंधन के मानवीय संबंधों के दृष्टिकोण पर आधारित है, जो श्रम और प्रबंधन के लिए मूल्यों का एक नया सेट लेकर आया है।

परंपरागत रूप से प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी की अवधारणा संगठन की निर्णय लेने की प्रक्रिया में गैर– प्रबंधकीय कर्मचारियों की भागीदारी को संदर्भित करती है। श्रमिकों की भागीदारी को प्रबंधन में 'श्रम भागीदारी' या 'कर्मचारी भागीदारी' के रूप में भी जाना जाता है। प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी का तात्पर्य उद्यम के प्रबंधन में श्रमिकों की मानसिक और भावनात्मक भागीदारी से है। इसे एक तंत्र के रूप में माना जाता है जहां निर्णय लेने में श्रमिकों का कहना है।

10.6.1 अवधारणाएँ

प्रबंध में श्रमिको की सहभाि्ता के सम्बन्ध में आइये निम्नलिखित अवधार. ाओं को सरलतम "ाब्दों में समझने का प्रयास करें:–

क) कीथ डेविस के अनुसार, भागीदारी एक समूह की स्थिति में एक व्यक्ति की मानसिक और भावनात्मक भागीदारी को संदर्भित करती है जो उसे समूह के लक्ष्यों में योगदान करने और उपलब्धि की जिम्मेदारी साझा करने के लिए प्रोत्साहित करती है।

ख) वालपोल के अनुसार, प्रबंधन में भागीदारी कार्यकर्ता को महत्व, गर्व और उपलब्धि की भावना देती हैय यह उसे आत्म– अभिव्यक्ति के अवसर की स्वतंत्रता देता हैय काय**स्थल** के साथ अपनेपन की भावना और रचनात्मकता की भावना को प्रोत्साहित करती है।

प्रबन्ध मे श्रमिको की भागीदारी की विशेषताओं में निम्नलिखित को सूचिबद्ध किया जा सकता है:–

1. भागीदारी का अर्थ केवल शारीरिक उपस्थिति के बजाय मानसिक और भावनात्मक जुड़ाव है।
2. श्रमिक प्रबंधन में व्यक्तिगत रूप से नहीं बल्कि सामूहिक रूप से अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से एक समूह के रूप में भाग लेते हैं।

3. प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी औपचारिक या अनौपचारिक हो सकती है। दोनों ही मामलों में यह संचार और परामर्श की एक प्रणाली है जिसके द्वारा कर्मचारी अपनी राय व्यक्त करते हैं और प्रबंधकीय निर्णयों में योगदान करते हैं।

10.6.2 भारत में प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता की योजना

- **सुझाव योजना**

सुझाव योजना के माध्यम से कार्यकर्ताओं की भागीदारी हो सकती है आइये इसे बिन्दुवार समझने का प्रयास करें:–

i. इस पद्धति के तहत कर्मचारियों को आमंत्रित किया जाता है और उद्यम के कामकाज में सुधार के लिए सुझाव देने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

ii. एक सुझाव पेटी लगाई गई है और कोई भी कार्यकर्ता अपने सुझाव लिखकर बाक्स में डाल सकता है।

iii. सुझाव समिति या सुझाव जांच समिति द्वारा समय– समय पर सभी सुझावों की जांच की जाती है।

iv. समिति का गठन प्रबंधन और श्रमिकों के समान प्रतिनिधित्व द्वारा किया जाता है।

v. समिति कार्यकर्ताओं से प्राप्त विभिन्न सुझावों की जांच करती है। कार्यान्वयन के लिए अच्छे सुझावों को स्वीकार किया जाता है और संबंधित कार्यकर्ताओं को उपयुक्त पुरस्कार दिया जाता है।

vi. सुझाव योजनाएँ उद्यम के कामकाज में श्रमिकों की रुचि को प्रोत्साहित करती हैं।

- **कार्य समिति:**

आइये उपरोक्त के सम्बन्ध में कार्य समिति से सम्बन्धित कुछ प्रावधानों को समझने का प्रयास करें:–

i. औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के तहत, 100 या अधिक श्रमिकों को रोजगार देने वाले प्रत्येक प्रतिष्ठान को एक कार्य समिति का गठन करना आवश्यक है। ऐसी समिति में नियोक्ता और कर्मचारियों के समान संख्या में प्रतिनिधि होते हैं।

ii. इस समिति का मुख्य उद्देश्य नियोक्ता और कर्मचारियों के बीच सौहार्द और अच्छे संबंधों को सुरक्षित रखने और बनाए रखने के लिए उपाय प्रदान करना

है।

iii. कार्य समिति जमीनी स्तर पर स्तर पर दिन– प्रतिदिन के कामकाज से संबंधित मामलों को देखती है। इन कार्य समितियो के निम्नलिखित दायित्व को सूचिबद्ध) किये जा सकते हैः–

- काम की शर्तें जैसे वेंटिलेशन, प्रकाश व्यवस्था और स्वच्छता।
- पीने का पानी, कैंटीन, भोजन कक्ष, चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवाएं जैसी सुविधाएं।
- शैक्षिक और मनोरंजक गतिविधियों।
- सुरक्षा उपाय, दुर्घटना निवारण तंत्र आदि।

संयुक्त प्रबंधन परिषदेंः

आइये संयुक्त प्रबन्धन परिषदों के सम्बन्ध में अपने ज्ञान में वृद्धि करते हुए इनकी कार्य प्रणाली को रेखांकित कर सकेः–

इन प्रणाली के तहत संयत्र स्तर पर संयुक्त प्रबंधन परिषदों का गठन किया जाता है।

i. इन परिषदों की स्थापना 1958 की शुरुआत में की गई थी।

ii. इन परिषदों में नियोक्ताओं और कर्मचारियों के समान संख्या में प्रतिनिधि होते हैं, जो संयंत्र स्तर पर 12 से अधिक नहीं होते हैं।

iii. संयंत्र में कम से कम 500 श्रमिकों को रोजगार देना चाहिए। परिषद उद्योग के कामकाज से संबंधित विभिन्न मामलों पर चर्चा करती है।

iv. इस परिषद को कल्याणकारी उपायों के संचालन, सुरक्षा और स्वास्थ्य योजनाओं की देखरेख, काम के घंटे निर्धारित करने, सुझावों के लिए पुरस्कार आदि की जिम्मेदारी सौंपी गई है।

v. श्रमिकों की मजदूरी, बोनस, व्यक्तिगत समस्याएं संयुक्त प्रबंधन परिषदों के दायरे से बाहर हैं।

vi. परिषद को दुर्घटना की रोकथाम, कैंटीन के प्रबंधन, पानी, भोजन, कार्य नियमों में संशोधन, अनुपस्थिति, अनुशासनहीनता आदि से संबंधित मुद्दों को उठाना है।

• संयुक्त परिषदः

i. पूरी इकाई के लिए संयुक्त परिषद का गठन किया जाता है, 500 या अधिक श्रमिकों को रोजगार देने वाली प्रत्येक औद्योगिक इकाई में पूरी

इकाई के लिए एक संयुक्त परिषद होनी चाहिए। आइये इनकी वि"ोा"ाताओं को समझने का प्रयास करें:–

ii. केवल ऐसे व्यक्ति जो वास्तव में यूनिट में लगे हुए हैं, संयुक्त परिषद के सदस्य होंगे।

iii. एक संयुक्त परिषद की बैठक तिमाही में कम से कम एक बार होगी। यूनिट का मुख्य कार्यकारी संयुक्त परिषद का अध्यक्ष होगा।

iv. संयुक्त परिषद् का उपाध्यक्ष परिषद् के कार्यकर्ता सदस्यों द्वारा मनोनीत किया जायेगा। संयुक्त परिषद के निर्णय आम सहमति पर आधारित होंगे न कि मतदान के आधार पर।

v. संयुक्त परिषदों के मुख्य कार्य हैं: निम्नलिखित होगें:– **क)** उत्पादकता मानदंड तय करनाय **ख)** दुकान परिषदों द्वारा न सुलझे मामलों को हल करनाय **ग)** देखें कि कच्चे माल का इष्टतम उपयोग करने के लिए उत्पादन लक्ष्य प्राप्त किए गए हैंय और **घ)** समग्र रूप से इकाई के सामान्य स्वास्थ्य विरोधी सुरक्षा उपायों में बदलाव देखें।

- **दुकान परिषद:**

i. भारत सरकार ने 30 अक्टूबर 1975 को एक नई योजना की घोषणा की जिसे दुकान परिषद का नाम दिया गया। 500 या उससे अधिक कामगारों वाले प्रत्येक औद्योगिक प्रतिष्ठान में, नियोक्ता एक दुकान परिषद का गठन करेगा।

ii. दुकान परिषद एक इकाई में प्रत्येक विभाग या दुकान का प्रतिनिधित्व करती है। प्रत्येक दुकान परिषद में नियोक्ता और कर्मचारियों दोनों के समान संख्या में प्रतिनिधि होते हैं।

iii. नियोक्ताओं के प्रतिनिधियों को प्रबंधन द्वारा नामित किया जाएगा और इसमें प्रतिष्ठान के भीतर के व्यक्ति शामिल होने चाहिए।

iv. कर्मचारियों के प्रतिनिधि संबंधित विभाग या दुकान के कर्मचारियों में से होंगे। कर्मचारियों की कुल संख्या 12 से अधिक नहीं हो सकती है।

v. दुकान परिषदों के मुख्य कार्य हैं: उत्पादन, उत्पादकता और दक्षता में सुधार करनाय अनुपस्थिति, कम उत्पादकता की समस्याओं का अध्ययन करना और उन्हें कम करने के उपायों की सिफारिश करनाय दुकान में अनुशासन बनाए रखने में सहायता करनाय सुरक्षा उपायों और अन्य भौतिक कामकाजी परिस्थितियों, दुकान की कल्याण और स्वास्थ्य

स्थितियों में बदलाव देखने के लिएः और प्रबंधन और श्रमिकों के बीच दो– तरफा संचार का प्रवाह सुनिश्चित करना, विशेष रूप से उत्पादन लक्ष्यों से संबंधित मामलों पर।

10.7 सारांश

जैसा कि हम जानते है श्रम संबंधों का व्यवस्थापन कैसे काम करता है और उसमें कौन, क्या, कब, कहाँ और क्यों शामिल होते हैं। ज्ञान शक्ति होती है, और ऊपर दिए गए जानकारियां आपको संचार में विफलता और उत्पादन में रुकावट या उत्पादकता में गिरावट की पहचान और संबोधित करने में पूरी तरह से सक्षम बनाती हैं।

चाहे आप एक कर्मचारी हों, एक नियोक्ता हों या एक आकस्मिक दर्शक हों, महत्वपूर्ण है कि आप कार्यस्थल में संचार की तोड़ में या अन्यायपूर्ण व्यवहार के मामले में किससे संपक्र करना होगा।

निजी क्षेत्र में बड़ी संख्या में विवाद होते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र की तुलना में निजी क्षेत्र में कम हुए श्रमिकों के मामलों में विवादों की तीव्रता, इसमें शामिल कामगारों की औसत संख्या अधिक है। औद्योगिक विवादों के दो घटक हैं– रोकथाम और निपटान। विवादों की रोकथाम के लिए, राष्ट्रीय स्तर पर त्रिपक्षीय परामर्श और कंपनी और शॉप जमीनी स्तरों पर कार्य समितियों और संयुक्त प्रबंधन परिषद के प्रावधान हैं।

औद्योगिक विवादों के निपटान के लिए, औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 में निपटान तंत्र का प्रावधान है जिसमें सुलह अधिकारी, सुलह बोर्ड, जांच अदालत, श्रम न्यायालय और औद्योगिक न्यायाधिकरण शामिल हैं। विवादों को निपटाने के लिए राष्ट्रीय मध्यस्थता संवर्धन बोर्ड, अनुशासन संहिता, औद्योगिक संघर्ष विराम अन्य स्वैच्छिक उपाय हैं। भारत में सामूहिक सौदेबाजी औद्योगिक केंद्रों के कुछ हिस्सों तक ही सीमित है और इसके संचालन में कई बाधाएं आती हैं। प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी ने भी देश में औद्योगिक संबंधों पर बहुत अधिक प्रभाव नहीं डाला है। यह योजना कई कमजोरियों से पीड़ित है जैसे कि अंतर और अंतर संघ प्रतिद्वंद्विता, संघ की मान्यता का निपटान न होना आदि।

औद्योगिक संबंध– कर्मचारी से तक लेकर मालिक तक, सार्वजनिक से लेकर सरकार तक। उन सभी लोगों की सेवा और संरक्षण करने के लिए होते हैं यदि संचार की रेखाएं खुली हों और औद्योगिक संबंधों का पालन किया जाए, तो सभी का जीत होती है।

इसलिए, श्रम संबंधों के व्यवस्थापन में संचार की महत्वपूर्ण भूमिका होती

है। संबंधयों को स्पष्ट और सुगम बनाए रखने, समस्याओं को समय पर शीघ्र समाधान करने और सभी स्तरों पर सही समझौतों को प्रोत्साहित करने से उच्चतम स्तर का उत्पादन और सुखद और संतुष्ट कर्मचारी समुदाय निर्मित होता है। इसलिए, संचार के माध्यम से संबंधों को स्थायी बनाए रखने के लिए नियमित रूप से सम्पक्र करना चाहिए और सभी पक्षों के बीच बातचीत और समझौता बढ़ाना चाहिए।

10.8 उपयोगी शब्दावली

- **सामूहिक सौदेबाजीः** निर्माताओं का राष्ट्रीय संघ के अनुसार – ''सामूहिक सौदेकारी की प्रक्रिया एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा प्रबन्ध एवं श्रमिक एक दूसरे की समस्याओं एवं दृष्टिकोण को सामने ला सकते है तथा सेवा सम्बन्धों की रूप रेखा का विकास करते हैं।"

- **संयुक्त प्रबंधन परिषदें (जेएमसी):** परिषद दुर्घटना की रोकथाम, कैंटीन के प्रबंधन, पानी, भोजन, कार्य नियमों में संशोधन, अनुपस्थिति, अनुशासनहीनता आदि से संबंधित मुद्दों का समाधान करती है। कुछ मामलों में प्रबंधन से परिषद के सदस्यों के साथ जानकारी साझा करने की अपेक्षा की जाती है। कुछ निर्दिष्ट मामलों पर प्रबंधन द्वारा इससे परामर्श किया जा सकता है।

- **अधिनिर्णयः** अधिनिर्णय एक वैधानिक उपाय है जो विवाद के निपटान के लिए न्यायालयों या अन्य अधिकारिक संस्थाओं के माध्यम से काम करता है। विवादों को आम तौर पर उस सुलह अधिकारी की सिफारिश पर अधिनिर्णय के लिए भेजा जाता है, जिसने पहले उनका निपटारा किया था।

- **सुलहः** सुलह एक वैधानिक उपाय है जो दो स्तरों पर काम करता हैः प्रथम, यह दोनों पक्षों के बीच संवाद को बढ़ावा देता है, और दूसरा, इससे उन्हें समझौते तक पहुंचने में मदद मिलती है।

- **अनुशासन संहिता** : यह एक संघर्ष निवारक होती है जो किसी उद्योग या कंपनी के अंदर अनुशासन बनाए रखने में मदद करती है। इसमें कंपनी द्वारा निर्धारित नियमों, कार्य क्रम और आचरण से संबंधित नियम शामिल होते हैं।

- **मध्यस्थताः** मध्यस्थता एक वैधानिक उपाय है जो विवादों के निपटान के लिए दो पक्षों के बीच तृतीय व्यक्ति (Arbitrator) की नियुक्ति के द्वारा काम करता है इस उपाय में, विवाद के पक्षों को तीसरे व्यक्ति (Arbitrator) के सामने अपने दावे और आपत्तियों का विवरण पेश करना होता है।

10.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न 1. सामूहिक सौदेबाजी को परिभाषित कीजिए।

प्रश्न 2. सफल सामूहिक सौदेबाजी के लिए किन्हीं दो पूर्वापेक्षाओं का उल्लेख कीजिए।

प्रश्न 3. जेएमसी योजना के मुख्य उद्देश्य क्या हैं?

प्रश्न 4. औद्योगिक संबंधों की अवधारणा को परिभाषित कीजिए। स्वतंत्रता के बाद से भारत में औद्योगिक संबंधों के परिदृश्य की संक्षेप में व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 5. औद्योगिक विवादों के विभिन्न कारणों पर एक टिप्पणी लिखिए।

प्रश्न 6. औद्योगिक विवादों की रोकथाम और समाधान के लिए विभिन्न उपायों का परीक्षण कीजिए।

प्रश्न 7. सामूहिक सौदेबाजी की अवधारणा की व्याख्या कीजिए। सामूहिक सौदेबाजी समझौते के प्रकार क्या हैं और यह कैसे आयोजित किया जाता है?

प्रश्न 8. प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी की योजनाओं की चर्चा कीजिए।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- रामास्वामी ई.ए. और यू. रामास्वामी (1981): उद्योग और श्रम, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, बॉम्बे, अध्याय 6, 8.
- शर्मा एएम (1984): औद्योगिक संबंध–वैचारिक और कानूनी ढांचा, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
- सामूहिक सौदेबाजी: एक श्रमिक शैक्षिक मैनुअल (1986), आईएलओ।
- बी.बी.टंडन और के.के. टंडन, भारतीय अर्थव्यवस्था, टाटा मैकग्रा हिल, नई दिल्ली।

इकाई–11 लघ, उद्योग क्षेत्र

इकाई रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 लघु उद्योग क्षेत्र का महत्व और विकास

- 11.2.1 परिभाषा
- 11.2.2 महत्व
- 11.2.3 लघु उद्योग के क्षेत्र की विकास

11.3 लघु उद्योग के क्षेत्र की समस्याएं

11.4 संस्थागत ढांचा

- 11.4.1 राष्ट्रीय स्तर की संस्था,
- 11.4.2 राज्य स्तर की संस्था,
- 11.4.3 जिला स्तर के केन्द्र

11.5 छोटे पैमानों के उद्योगों हेतु सरकारी नीति

- 11.5.1 छोटे पैमानों के उद्योगों हेतु औधोगिक नीति
- 11.5.2 छोटे पैमाने के उद्योगों के संवर्धन हेतु कार्यक्रम

11.6 सारांश

11.7 उपयोगी शब्दावली

11.8 महत्वपूर्ण प्रश्न

11.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप इस योग्य हो सकेगं किः–

1. लघु उद्यमों को परिभाषित करते हुए इन्हें बढावा देने के कारणों की व्याख्या कर सकेगें
2. उत्पादन, रोजगार और निर्यात के प्रति छोटे उद्यमों के योगदान को समझ सकेगें
3. छोटे क्षेत्र की अक्षमताओं की पहचान सकेगें;
4. भारत में लघु क्षेत्र सम्बन्धी औद्योगिक नीति के रेखांकित कर सकेगें तथा

5. सरकारी नीति नीतियों और लघु क्षेत्र के वास्तविक कार्यप्रणाली के मध्य के अंतर को स्थापित कर सकेगें।

11.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई भारत में लघु उद्योग, इसकी परिभाषा, उद्देश्यों और अर्थव्यवस्था में इसके महत्व के पीछे के कारणों का पता लगाएंगे। हम लघु उद्योगों के ऐतिहासिक विकास में प्रवेश करेंगे और समग्र आर्थिक परिदृश्य पर उनके प्रभाव का विश्लेषण करेंगे। इस अध्याय के अंत तक, पाठकों को भारत के आर्थिक विकास को आकार देने में लघु उद्योग क्षेत्र की भूमिका और योगदान की व्यापक समझ होगी।

लघु उद्योग क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है, जो उद्यमों के एक विशाल नेटवक्र का प्रतिनिधित्व करता है जो रोजगार पैदा करने, उद्यमिता को बढ़ावा देने और न्यायसंगत विकास को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इन उद्यमों को उनके अपेक्षाकृत छोटे आकार, सीमित पूंजी निवेश और स्थानीय कृत संचालन की विशेषता है। अपने मामूली पैमाने के बावजूद, लघु उद्योग सामूहिक रूप से भारतीय अर्थव्यवस्था का एक मजबूत खंड बनाते हैं, जो जीडीपी, निर्यात और सामाजिक कल्याण में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

भारत में लघु उद्योग क्षेत्र आर्थिक विकास, सामाजिक विकास और रोजगार सृजन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसका विकास प्रक्षेपवक्र बदलती आर्थिक गतिशीलता के लिए इन उद्यमों की लचीलापन और अनुकूलनशीलता को दर्शाता है। सरकार का निरंतर समर्थन, छोटे पैमाने के उद्यमियों की उद्यमशीलता की भावना के साथ मिलकर, यह सुनिश्चित करता है कि यह क्षेत्र भारत के समावेशी और सतत आर्थिक विकास के पीछे एक प्रेरक शक्ति बना रहे।

11.2 लघु उद्योग क्षेत्र का महत्व और विकास

लघु उद्योगों को विभिन्न मानदंडों के आधार पर परिभाषित किया जाता है, जिसमें संयंत्र और मशीनरी, कारोबार और रोजगार में निवेश शामिल है। भारत में, बदलती आर्थिक वास्तविकताओं और समावेशी विकास की आवश्यकता को समायोजित करने के लिए समय के साथ परिभाषा विकसित हुई है। सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम अधिनियम, 2006, उद्यमों को मशीनरी और उपकरणों में उनके

निवेश के आधार पर सूक्ष्म, लघु और मध्यम श्रेणियों में वर्गीकृत करता है।

11.2.1 परिभाषा

आइये अध्ययन को सुव्यवस्थित स्वरूप प्रदान करते हए छोटे पैमाने की इकाइयों की आधिकारिक परिभाषाओं को क्रमवार समझने का प्रयास करें :

क) लघु उद्योगः ऐसे औद्योगिक उपक्रम हैं जिनका संयंत्र और मशीनरी में निश्चित निवेश है, चाहे स्वामित्व के आधार पर या पट्टे के आधार पर या किराया खरीद के आधार पर 1 करोड़ रुपये से अधिक न हो।

ख) सहायक उद्योगः ये ऐसे औद्योगिक उपक्रम हैं जिनका संयंत्र और मशीनरी में निश्चित निवेश 1 करोड़ रुपये से अधिक नहीं है, (ए) भागों, घटकों, उप–असेंबली, टूलिंग या मध्यस्थों का निर्माण, या (बी) अन्य वस्तुओं के उत्पादन के लिए अन्य इकाइयों को उनके उत्पादन या सेवाओं के 30 प्रतिशत की आपूर्ति करने वाली सेवाओं का प्रतिपादन।

ग) लघु इकाइयाँः ये उन उपक्रमों को संदर्भित करती हैं जिनका संयंत्र और मशीनरी में निश्चित निवेश 23 लाख रुपये से अधिक नहीं है। इनमें कपड़े धोने, जेरॉक्सिंग, ग्राहक उपकरण और मशीनरी की मरम्मत और रखरखाव, हैचिंग और पोल्ट्री आदि जैसी सेवाएं प्रदान करने वाले उपक्रम भी शामिल हैं। 50,000 से कम आबादी वाले शहरों में स्थित है।

घ) लघु सेवा प्रतिष्ठानः इनका अर्थ ऐसे उद्यमों से है जो ग्रामीण क्षेत्रों और कस्बों में 50,000 से अधिक जनसंख्या वाले और संयंत्र और मशीनरी में 25 लाख रुपये से अधिक का निश्चित निवेश करने वाले उद्यम हैं।

च) घरेलू उद्योगः इनमें कारीगरों के कुशल शिल्पकार और तकनीशियन शामिल हैं जो अपने घरों में काम कर सकते हैं यदि उनके काम के लिए 300 वर्ग फुट से कम जगह, 1 किलोवाट से कम बिजली, 5 श्रमिकों से कम की आवश्यकता होती है और कोई प्रदूषण नहीं होता है। हस्तशिल्प, खिलौने, गुड़िया, छोटे प्लास्टिक और कागज उत्पाद इलेक्ट्रॉनिक और इलेक्ट्रिकल गैजेट इन उद्योगों के कुछ उदाहरण हैं।

लघु उद्योगों के अस्तित्व को कई उपयोगी और महत्वपूर्ण कारणों से रेखांकित किया गया है, आइये इन्हें वर्गीकृत कर समझने का प्रयास करें : –

- **रोजगार सृजन** लघु उद्योग विशेष रूप से ग्रामीण और अर्ध–शहरी क्षेत्रों में रोजगार सृजन में महत्वपूर्ण योगदानकर्ता हैं। वे स्वरोजगार के अवसर

प्रदान करते हैं और बेरोजगारी और गरीबी को कम करने में योगदान करते हैं।

- **उद्यमिता को बढावा देना:** लघु उद्योग महत्वाकांक्षी व्यक्तियों को अपना व्यवसाय शुरू करने और विकसित करने के लिए एक मंच प्रदान करके उद्यमिता का पोषण करते हैं। ये उद्यम नवाचार को प्रोत्साहित करते हैं और जोखिम लेने और रचनात्मकता की संस्कृति को बढ़ावा देते हैं।
- **संतुलित क्षेत्रीय विकास:** लघु उद्योग विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक गतिविधियों की स्थापना करके संतुलित क्षेत्रीय विकास प्राप्त करने में सहायक होते हैं। वे क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने और उद्योगों के विकेंद्रीकरण को प्रोत्साहित करने में मदद करते हैं।

Type of Industry	Investment Limit (₹)
Small Scale Industry	1 crore (For 71 products it is 5 crores)
Ancillary Industry	1 crore (50% of the output supplied to the parent unit.)
Tiny Enterprise	25 Lakhs
Service and Business (Industry related Enterprise)	10 Lakhs
Women Enterprise	Any of the above (51% of the holding by the women and managed by women)
Export Oriented Units (EOUs)	1 Crore (100% EOUs can sell 25% in domestic markets.)

- **औद्योगिक आधार का विविधीकरण:** लघु उद्योग उत्पादों और सेवाओं की एक विस्तृत श्रृंखला का उत्पादन करके देश के औद्योगिक आधार में विविधता जोड़ते हैं। यह विविधीकरण आर्थिक लचीलापन को बढ़ाता है और कुछ बड़े उद्योगों पर निर्भरता को कम करता है।
- **निर्यात संवर्धन:** कई लघु उद्योग निर्यात–उन्मुख गतिविधियों में संलग्न हैं, जो देश की विदेशी मुद्रा आय में योगदान करते हैं और इसकी वैश्विक प्रतिस्पर्धा को बढ़ाते हैं

11.2.2 महत्व

लघु उद्योग क्षेत्र किसी देश की अर्थव्यवस्था के लिए बहुत महत्व रखता है। यह समावेशी विकास को बढ़ावा देने, रोजगार के अवसर पैदा करने, उद्यमिता को बढ़ावा देने और राष्ट्र के समग्र विकास में योगदान देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यहां कुछ प्रमुख आयाम दिए गए हैं जो लघु उद्योग क्षेत्र के महत्व को

उजागर करते हैं: बिन्दुवार समझने का प्रयास करें–

1. लघु उद्योग विशेष रूप से ग्रामीण और अर्ध–शहरी क्षेत्रों में रोजगार सृजन में महत्वपूर्ण योगदानकर्ता हैं। वे कुशल, अर्ध–कुशल और अकुशल श्रमिकों सहित बड़ी संख्या में लोगों को नौकरी प्रदान करते हैं। यह क्षेत्र अधिशेष श्रम को अवशोषित करता है, जिससे बेरोजगारी और बेरोजगारी कम हो जाती है।

2. लघु उद्योग अक्सर ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में स्थापित किए जाते हैं, जिससे संतुलित क्षेत्रीय विकास होता है। वे शहरी केंद्रों से परे आर्थिक गतिविधियों को फैलाने, क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने और ग्रामीण उत्थान को बढ़ावा देने में मदद करते हैं।

3. लघु उद्योग क्षेत्र उद्यमिता को प्रोत्साहित करता है और नवाचार और जोखिम लेने की संस्कृति को बढ़ावा देता है। यह व्यक्तियों को अपने विचारों और कौशल को व्यवहार्य व्यवसायों में बदलने के अवसर प्रदान करता है, जिससे आर्थिक आत्मनिर्भरता और विकास होता है।

4. लघु उद्योग पारंपरिक शिल्प, हस्तशिल्प, कृषि–आधारित उत्पादों और आला वस्तुओं सहित उत्पादों की एक विस्तृत श्रृंखला के उत्पादन में योगदान करते हैं। यह विविधता देश की औद्योगिक ताकत और सांस्कृतिक विरासत को जोड़ती है।

5. कई लघु उद्योग निर्यात–उन्मुख गतिविधियों में लगे हुए हैं, जो विदेशी मुद्रा आय में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। वे देश की निर्यात प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ाने और इसकी वैश्विक बाजार उपस्थिति का विस्तार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

6. लघु उद्योग अक्सर स्थानीय संसाधनों और कच्चे माल का उपयोग करते हैं, उपलब्ध संसाधनों का कुशल उपयोग करते हैं। यह आयात पर निर्भरता को कम करता है, आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देता है, और सतत विकास का समर्थन करता है।

7. लघु उद्योग आधुनिक उत्पादन तकनीकों और मशीनरी को अपनाकर प्रौद्योगिकी के प्रसार की सुविधा प्रदान करते हैं। इससे उत्पादकता में वृद्धि, उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार और अर्थव्यवस्था में समग्र तकनीकी प्रगति होती है।

8. लघु उद्योग अपेक्षाकृत अधिक लचीले और बदलते बाजार की मांगों और

आर्थिक स्थितियों के अनुकूल हैं। वे उपभोक्ता वरीयताओं के लिए जल्दी से प्रतिक्रिया दे सकते हैं और अभिनव उत्पादों और सेवाओं को पेश कर सकते हैं।

9. लघु उद्योग क्षेत्र की वृद्धि और विकास देश के औद्योगिक आधार को मजबूत करने में योगदान देता है। यह बड़े पैमाने पर उद्योगों का पूरक है और पूरे विनिर्माण पारिस्थितिकी तंत्र के विकास का समर्थन करता है।

10. ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों पर लघु उद्योग क्षेत्र का ध्यान हाशिए के समुदायों को स्थायी आजीविका और आय स्रोत प्रदान करके गरीबी उन्मूलन में मदद करता है।

11. छोटे उद्योगों को अक्सर बड़े उद्योगों की तुलना में कम पूंजी निवेश की आवश्यकता होती है। यह उन्हें उद्यमियों की एक विस्तृत श्रृंखला के लिए सुलभ बनाता है, जिसमें सीमित वित्तीय संसाधन वाले लोग भी शामिल हैं।

12. कई लघु उद्योगों में पारंपरिक शिल्प और कला रूप शामिल हैं, जो सांस्कृतिक विरासत और पारंपरिक कौशल के संरक्षण और प्रचार में मदद करते हैं।

इस प्रकार, लघु उद्योग क्षेत्र का महत्व समावेशी विकास, रोजगार सृजन और संतुलित क्षेत्रीय विकास के इंजन के रूप में इसकी भूमिका में निहित है। यह उद्यमिता का पोषण करता है, तकनीकी प्रगति को बढ़ावा देता है, और राष्ट्र के समग्र आर्थिक विकास में योगदान देता है। नीति निर्माता लघु उद्योग क्षेत्र की महत्वपूर्ण भूमिका को पहचानते हैं और इसके सतत विकास को बढ़ावा देने के लिए समर्थन और प्रोत्साहन प्रदान करना जारी रखते हैं।

11.2.3 लघु उद्योग के क्षेत्र की विकास

भारत में लघु उद्योगों का विकास पथ उल्लेखनीय रहा है। ऐतिहासिक रूप से, ये उद्यम पारंपरिक, कारीगर सेटअप से आधुनिक, तकनीकी रूप से उन्नत इकाइयों में विकसित हुए हैं। अनुकूल सरकारी नीतियों, वित्तीय सहायता और बाजार की मांग जैसे कारकों ने उनके विकास में योगदान दिया है।

1956 की औद्योगिक नीति और उसके बाद की पंचवर्षीय योजनाओं जैसी सरकारी पहलों ने लघु उद्योगों के महत्व को पहचाना और उन्हें विभिन्न प्रोत्साहन और समर्थन उपाय प्रदान किए। सिडबी (भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक) जैसे वित्तीय संस्थानों की स्थापना का उद्देश्य इन उद्यमों को समय पर और पर्याप्त वित्तीय सहायता प्रदान करना है।

पिछले कुछ वर्षों में, लघु उद्योग क्षेत्र ने परिवर्तनकारी परिवर्तनों का अनुभव किया है, आधुनिक प्रौद्योगिकियों को अपनाया है, और उत्पाद की गुणवत्ता और प्रतिस्पर्धा को बढ़ाया है। लघु उद्योग अब विनिर्माण क्षेत्र, सेवा क्षेत्र और निर्यात आय में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

11.3 लघु उद्योग के क्षेत्र की समस्याएं

लघु उद्योग क्षेत्र, आर्थिक विकास और रोजगार सृजन में महत्वपूर्ण योगदान देते हुए, कई चुनौतियों और समस्याओं का सामना करता है जो इसकी वृद्धि और स्थिरता में बाधा डालते हैं। लघु उद्योग क्षेत्र द्वारा सामना की जाने वाली कुछ प्रमुख समस्याओं में शामिल हैं:

1. **वित्त तक पहुंच की कमी:** छोटे पैमाने के उद्यम अक्सर अपने सीमित संपार्श्विक और क्रेडिट इतिहास के कारण क्रेडिट के लिए औपचारिक वित्तीय संस्थानों तक पहुंचने के लिए संघर्ष करते हैं। वित्त तक पहुंच की यह कमी आधुनिक प्रौद्योगिकियों में निवेश करने, संचालन का विस्तार करने और प्रतिस्पर्धी बने रहने की उनकी क्षमता को बाधित करती है।

2. **अवसंरचनात्मक बाधाएं:** परिवहन, बिजली की आपूर्ति और संचार नेटवक्र सहित अपर्याप्त बुनियादी ढांचा, लघु उद्योगों के लिए महत्वपूर्ण चुनौतियां पैदा करता है। अविश्वसनीय बुनियादी ढांचा उत्पादन लागत को बढ़ाता है और माल और सेवाओं के समय पर वितरण को प्रभावित करता है।

3. **तकनीकी अप्रचलन:** कई छोटे पैमाने के उद्यमों को आधुनिक प्रौद्योगिकियों और प्रक्रियाओं को अपनाने में चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। यह तकनीकी अप्रचलन की ओर जाता है, जिससे बाजार में उनकी प्रतिस्पर्धा कम हो जाती है।

4. **सीमित बाजार पहुंच:** छोटे पैमाने के उद्यम अक्सर अपने आकार और सीमित विपणन क्षमताओं के कारण व्यापक बाजार तक पहुंचने के लिए संघर्ष करते हैं। बाजार संपक्र ों की कमी और वैश्विक बाजारों के संपक्र में आने से उनकी वृद्धि की संभावनाएं बाधित होती हैं।

5. **कुशल श्रम की कमी:** सस्ती मजदूरी पर कुशल श्रम ढूंढना लघु उद्योगों के लिए एक चुनौती है। कुशल जनशक्ति की कमी उनकी उत्पादकता और दक्षता को प्रभावित करती है।

6. **अक्षम नियामक अनुपालन:** छोटे पैमाने के उद्यमों को अक्सर जटिल और समय लेने वाली नियामक आवश्यकताओं का पालन करना बोझिल लगता

है। अनुपालन लागत और नौकरशाही बाधाएं उनकी परिचालन चुनौतियों को बढ़ाती हैं।

7. **अनौपचारिक क्षेत्र से प्रतिस्पर्धा:** अनौपचारिक क्षेत्र की उपस्थिति और प्रतिस्पर्धात्मकता छोटे पैमाने के उद्यमों के लिए चुनौतियां पैदा करती है क्योंकि वे अक्सर नियामक मानदंडों का पालन किए बिना काम करते हैं और लागत लाभ का आनंद लेते हैं।

8. **कच्चे माल की उपलब्धता और लागत:** लघु उद्योगों को प्रतिस्पर्धी कीमतों पर कच्चे माल की सोर्सिंग में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। कच्चे माल की कीमतों में उतार–चढ़ाव उनकी उत्पादन लागत और लाभप्रदता को प्रभावित करता है।

9. **अपर्याप्त प्रशिक्षण और कौशल विकास:** छोटे पैमाने पर उद्यमियों और श्रमिकों के लिए उचित प्रशिक्षण और कौशल विकास कार्यक्रमों की कमी बाजार की बदलती मांगों और प्रौद्योगिकियों के अनुकूल होने की उनकी क्षमता में बाधा डालती है।

10. **सूचना तक सीमित पहुंच:** छोटे पैमाने के उद्यमों में अक्सर प्रासंगिक बाजार की जानकारी, तकनीकी प्रगति और सरकारी योजनाओं तक पहुंच की कमी होती है, जो सूचित निर्णय लेने की उनकी क्षमता को प्रतिबंधित करती है।

11. **अक्षम गुणवत्ता नियंत्रण:** छोटे पैमाने के उद्यमों के लिए लगातार उत्पाद की गुणवत्ता सुनिश्चित करना चुनौतीपूर्ण है, बाजार में उनकी विश्वसनीयता को प्रभावित करता है और बड़े खिलाड़ियों के साथ प्रतिस्पर्धा करने की उनकी क्षमता को सीमित करता है।

12. **निर्यात बाधाएं:** लघु उद्योगों को निर्यात मानकों को पूरा करने और निर्यात से संबंधित कागजी कार्यवाही से निपटने में चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जो वैश्विक बाजार में उनकी भागीदारी को सीमित करता है।

वस्तुतः इन चुनौतियों से निपटने के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता है जिसमें सहायक सरकारी नीतियां, वित्त तक पहुंच, बुनियादी ढांचे के विकास, कौशल वृद्धि कार्यक्रम और प्रौद्योगिकी अपनाने और बाजार लिंकेज को बढ़ावा देने के प्रयास शामिल हैं। इन समस्याओं का समाधान करके, लघु उद्योग क्षेत्र अपनी वास्तविक क्षमता को उजागर कर सकता है और देश की आर्थिक वृद्धि और विकास में और भी महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

11.4 संस्थागत ढांचा

भारत में लघु उद्योगों के लिए संस्थागत ढांचे में एक बहु–स्तरीय दृष्टिकोण शामिल है, जिसमें राष्ट्रीय स्तर के संस्थान, राज्य स्तर के बुनियादी ढांचे और जिला स्तर के केंद्र लघु उद्योगों के विकास का समर्थन करने और बढ़ावा देने के लिए मिलकर काम कर रहे हैं। प्रत्येक स्तर लघु उद्योग क्षेत्र में उद्यमियों को आवश्यक सेवाएं, वित्तीय सहायता और मार्गदर्शन प्रदान करने में एक अलग भूमिका निभाता है। उदारीकरण और बाजार सुधारों की प्रक्रिया ने लघु उद्योगों के विकास के व्यापक अवसर पैदा किए हैं। साथ ही, बदलते विश्व परिदृश्य ने इस क्षेत्र के अस्तित्व के लिए नई चुनौतियां खड़ी कर दी हैं। समय की मांग है कि इस क्षेत्र को उपयुक्त रूप से मजबूत किया जाए ताकि यह बदले हुए माहौल के अनुरूप खुद को ढाल सके और चुनौतियों का साहसपूर्वक और प्रभावी ढंग से सामना कर सके। लघु उद्यमों को अवसंरचना और सहायता सेवाएं प्रदान करने के लिए नीतियों और विभिन्न प्रोग्रामरोंध्स्कीमों का कार्यान्वयन इसके संबद्ध कार्यालय नामत लघु उद्योग विकास संगठन (एसआईडीओ), सांविधिक निकायोंध्खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग (केवीआईसी) और कॉयर बोर्ड, राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम (एनएसआईसी) और तीन प्रशिक्षण संस्थानों–राष्ट्रीय लघु उद्योग विस्तार प्रशिक्षण संस्थान (एनआईएसआईईटी) के माध्यम से किया जाता है। हैदराबाद, भारतीय उद्यमिता संस्थान (आईआईई), राष्ट्रीय उद्यमिता और लघु व्यवसाय विकास संस्थान (एनआईईएसबीयूडी) आइए प्रत्येक स्तर पर संस्थागत ढांचे के प्रमुख घटकों का पता लगाएंः

11.4.1 राष्ट्रीय स्तर की संस्था

क) सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम मंत्रालय (एमएसएमई): एमएसएमई मंत्रालय राष्ट्रीय स्तर पर शीर्ष निकाय है जो लघु उद्योगों के संवर्धन और विकास के लिए नीतियां तैयार करने, कार्यक्रमों के समन्वय और योजनाओं को लागू करने के लिए जिम्मेदार है। यह उद्यमिता के लिए अनुकूल वातावरण बनाता है और एमएसएमई को वित्तीय और तकनीकी सहायता प्रदान करता है।

ख) भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (सिडबी): सिडबी लघु उद्योग क्षेत्र के संवर्धन, वित्तपोषण और विकास के लिए प्रमुख वित्तीय संस्थान है। यह लघु उद्यमों की विविध वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विभिन्न वित्तीय उत्पाद और सेवाएं प्रदान करता है, जैसे कि सावधि ऋण, कार्यशील पूंजी सहायता और उद्यम पूंजी वित्त पोषण।

ग) राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम (एनएसआईसी): एनएसआईसी एक

सरकारी स्वामित्व वाला उद्यम है जो लघु उद्योगों द्वारा उत्पादित उत्पादों और सेवाओं के विपणन को सुविधाजनक बनाने के लिए काम करता है। यह उत्पादों की खरीद और वितरण, तकनीकी सहायता और निर्यात सुविधा के लिए एक एकल–बिंदु संपक्र प्रदान करता है।

घ) राष्ट्रीय सूक्ष्म, लघु और मध् यम उद्यम संस् थान (एनआई–एमएसएमई): राष्ट्रीय लघु उद्योग विस्तार प्रशिक्षण संस्थान (एनआईएसआईईटी), हैदराबाद, एनआईएसआईईटी, जिसे एनआईएमएसएमई (राष्ट्रीय सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम संस्थान) के रूप में भी जाना जाता है, एमएसएमई मंत्रालय के तहत एक स्वायत्त संस्थान है। यह एमएसएमई को प्रशिक्षण, परामर्श और अनुसंधान सेवाएं प्रदान करने पर केंद्रित है। एनआई–एमएसएमई लघु उद्योगों के लिए अनुसंधान, प्रशिक्षण और परामर्श सेवाओं में लगा हुआ है। यह छोटे पैमाने पर उद्यमियों की क्षमताओं को बढ़ाने के लिए विभिन्न कौशल विकास कार्यक्रम, प्रबंधन प्रशिक्षण और तकनीकी सहायता प्रदान करता है। एनआईएसआईईटी के प्रमुख कार्यों में शामिल हैं: निम्न को भी अध्ययन की उपयोगिता की दृष्टि से समझना आवश्यक है:–

- प्रशिक्षण कार्यक्रम: एनआईएसआईईटी एमएसएमई में उद्यमियों और श्रमिकों के प्रबंधकीय और तकनीकी कौशल को बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रम और कार्यशालाएं आयोजित करता है।
- उद्यमिता विकास: संस्थान नए एमएसएमई की स्थापना को प्रोत्साहित करने और स्वरोजगार को बढ़ावा देने के लिए उद्यमिता विकास कार्यक्रम प्रदान करता है।
- अनुसंधान और परामर्श: एनआईएसआईईटी एमएसएमई के सामने आने वाली चुनौतियों का सामना करने और उचित समाधान सुझाने के लिए अनुसंधान करता है और परामर्श सेवाएं प्रदान करता है।

ङ) लघु उद्योग विकास संगठन (एसआईडीओ) भारत में सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम मंत्रालय (एमएसएमई) के तहत संलग्न कार्यालय है। यह देश भर में लघु उद्योगों को बढ़ावा देने और समर्थन करने के उद्देश्य से विभिन्न नीतियों और कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए जिम्मेदार है। SIDO एमएसएमई के लिए विकास पहलों के समन्वय और कार्यान्वयन के लिए एक नोडल एजेंसी के रूप में कार्य करता है और उनकी वृद्धि और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सीडो के प्रमुख कार्यों में शामिल हैं: आइये इन्हें सूचिबद्ध) करते हुए क्रमशः समझने का प्रयास करें:–

- सीडो लघु उद्योगों से संबंधित सरकारी नीतियों, योजनाओं और कार्यक्रमों के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए जिम्मेदार है। यह सुनिश्चित करता है कि इन नीतियों का लाभ इच्छित लाभार्थियों तक पहुंचे।
- सीडो उत्पाद विकास, प्रौद्योगिकी उन्नयन, गुणवत्ता सुधार और कौशल वृद्धि जैसे क्षेत्रों में लघु उद्यमों को तकनीकी सहायता और सहायता प्रदान करता है।
- संगठन छोटे पैमाने पर उद्यमियों और श्रमिकों के लिए उनके प्रबंधकीय और तकनीकी कौशल को बढ़ाने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम और क्षमता–निर्माण पहल आयोजित करता है।
- सीडो लघु उद्योगों द्वारा निर्मित उत्पादों के विपणन की सुविधा प्रदान करता है और अपने उत्पादों के लिए घरेलू और अंर्तराष्ट्रीय बाजारों की खोज में सहायता करता है।
- सीडो लघु उद्योगों द्वारा सामना की जाने वाली चुनौतियों की पहचान करने के लिए अनुसंधान और अध्ययन करता है और उन्हें प्रभावी ढंग से संबोधित करने के लिए रणनीतितैयार करता है।

च) खादी और ग्रामोद्योग आयोग (केवीआईसी) और कॉयर बोर्ड : खादी और ग्रामोद्योग आयोग ग्रामीण क्षेत्रों में खादी और ग्रामोद्योग को बढ़ावा देने और विकसित करने के लिए भारत सरकार द्वारा स्थापित एक वैधानिक निकाय है। यह स्थायी रोजगार के अवसर पैदा करने और ग्रामीण कारीगरों और बुनकरों की सामाजिक–आर्थिक स्थितियों में सुधार करने की दिशा में काम करता है। केवीआईसी के प्रमुख कार्यों में शामिल हैं:। आइये के0वी0आई0सी0 के प्रमुख कार्यों को समझने का प्रयास करें :–

- **खादी को बढ़ावा देना:** केवीआईसी ग्रामीण रोजगार पैदा करने और पारंपरिक कौशल को संरक्षित करने के लिए खादी के उत्पादन और विपणन को बढ़ावा देता है।
- **ग्रामोद्योग का विकास:** केवीआईसी ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका के अवसर प्रदान करने के लिए हथकरघा, हस्तशिल्प, मधुमक्खी पालन और कृ षि–आधारित उद्योगों जैसे विभिन्न ग्रामोद्योगों के विकास का समर्थन करता है।
- **विपणन सहायता:** केवीआईसी खादी और ग्रामोद्योग उत्पादों को विपणन सहायता और वित्तीय सहायता प्रदान करता है, कारीगरों के लिए उचित मूल्य सुनिश्चित करता है और उन्हें व्यापक बाजारों से जोड़ता है।

छ) कॉयर बोर्ड : कॉयर बोर्ड सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम मंत्रालय के तहत एक वैधानिक निकाय है, जो भारत में कॉयर उद्योग को बढ़ावा देने के लिए जिम्मेदार है। कॉयर बोर्ड के प्रमुख कार्यों में निम्नलिखित को सम्मिलित किया जा सकता हैः–

- कॉयर बोर्ड उत्पाद विविधीकरण, आधुनिकीकरण और तकनीकी उन्नयन सहित कॉयर उद्योग के समग्र विकास की दिशा में काम करता है।
- बोर्ड कॉयर श्रमिकों के लिए कौशल विकास और प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर ध्यान केंद्रित करता है ताकि उनकी उत्पादकता और उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार हो सके।
- कॉयर बोर्ड कॉयर उत्पादों के विपणन की सुविधा प्रदान करता है और कॉयर उत्पादों की वैश्विक पहुंच का विस्तार करने के लिए निर्यात से संबंधित सहायता प्रदान करता है।

ज) राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम (एनएसआईसी)ः राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम (एनएसआईसी) एक सरकारी स्वामित्व वाला उद्यम है जो विभिन्न तरीकों से एमएसएमई को बढ़ावा देने और समर्थन करने के लिए स्थापित किया गया है। यह लघु उद्योगों के विकास को बढ़ावा देने और उन्हें बाजार में प्रभावी ढंग से प्रतिस्पर्धा करने में सक्षम बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एनएसआईसी के प्रमुख कार्यों मेंनिम्नलिखित कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हैः–

- एनएसआईसी प्रतिस्पर्धी दरों पर लघु उद्योगों को कच्चे माल और इनपुट की आपूर्ति की सुविधा प्रदान करता है, जिससे सुचारू उत्पादन प्रक्रिया सुनिश्चित होती है।
- एनएसआईसी अपनी विभिन्न योजनाओं के माध्यम से लघु उद्योगों को वित्तीय सहायता प्रदान करता है, जिससे वे अपनी कार्यशील पूंजी और मशीनरी से संबंधित आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम होते हैं।
- एनएसआईसी लघु उद्योगों को अपने उत्पादों के विपणन और सरकारी एजेंसियों, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों और अन्य बड़े संगठनों से आदेश प्राप्त करने में सहायता करता है।
- एनएसआईसी प्रौद्योगिकी हस्तांतरण,गुणवत्ता सुधार और उत्पाद मानकीकरण सहित छोटे पैमाने के उद्यमों को तकनीकी सहायता और सेवाएं प्रदान करता है।
- एनएसआईसी निर्यात बाजारों की खोज में एमएसएमई की मदद करता है

और निर्यात से संबंधित गतिविधियों,जैसे व्यापार मेलों, प्रदर्शनियों और खरीदार–विक्रेता बैठकों के लिए सहायता प्रदान करता है।

इसी क्रम में एमएसएमई के लिए प्रशिक्षण संस्थानों की भी स्थापना की गई है(जिनमे कुछ प्रमुख महत्वपूर्ण संस्थानों मे निमनलिखित को सम्मिलित किया जाता है।

1. **भारतीय उद्यमिता संस्थान (आईआईई):** आईआईई कौशल विकास और उद्यमिता मंत्रालय के तहत एक स्वायत्त संस्थान है, जो उद्यमिता विकास और कौशल वृद्धि पर ध्यान केंद्रित करता है। आईआईई के मुख्य कार्यों में शामिल हैं:

   - उद्यमिता विकासः आईआईई उभरते उद्यमियों का पोषण और समर्थन करने के लिए विभिन्न उद्यमिता विकास कार्यक्रमों का आयोजन करता है।
   - कौशल विकासः संस्थान व्यक्तियों की रोजगार क्षमता बढ़ाने और कुशल श्रमिकों को प्राप्त करने में एमएसएमई का समर्थन करने के लिए कौशल विकास कार्यक्रम प्रदान करता है।

2. **राष्ट्रीय उद्यमिता एवं लघु व्यवसाय विकास संस्थान (एनआईईएसबीयूडी):** एनआईईएसबीयूडी कौशल विकास एवं उद्यमिता मंत्रालय के अधीन एक सुव्यवस्थित संस्थान है, जो उद्यमिता और लघु व्यवसाय विकास को बढ़ावा देने की दिशा में कार्य कर रहा है। इसके मुख्य कार्यों में शामिल हैं:

   - एनआईईएसबीयूडी अपने स्वयं के व्यवसाय शुरू करने के इच्छुक व्यक्तियों को उद्यमिता शिक्षा और प्रशिक्षण प्रदान करता है।
   - संस्थान एमएसएमई के लिए उनकी प्रबंधकीय और तकनीकी क्षमताओं में सुधार के लिए क्षमता–निर्माण कार्यक्रम आयोजित करता है।

वस्तुतः भारत में लघु उद्योगों का समर्थन करने के लिए संस्थागत ढांचा अच्छी तरह से संरचित है और इसमें उद्यमिता को बढ़ावा देने, वित्तीय सहायता प्रदान करने, कौशल विकास कार्यक्रमों की पेशकश करने और बाजार पहुंच की सुविधा के लिए मिलकर काम करने वाले विभिन्न संगठन और संस्थान शामिल हैं। इन संस्थाओं के सामूहिक प्रयासों का उद्देश्य छोटे पैमाने पर उद्यमियों को सशक्त बनाना, समावेशी आर्थिक विकास को बढ़ावा देना और भारतीय अर्थव्यवस्था में एमएसएमई क्षेत्र के योगदान को मजबूत करना है। निरंतर नीतिगत समर्थन, कौशल वृद्धि और तकनीकी उन्नयन के माध्यम से, लघु उद्योग क्षेत्र अपनी वास्तविक क्षमता को उजागर कर सकता है और देश के आर्थिक परिवर्तन में

महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

11.4.2 राज्य स्तर की संस्था

राज्य स्तर की संस्थाओं में निमलिखित को आइये समझने का प्रयास करें:–

क) राज्य लघु उद्योग विकास निगम (एसएसआईडीसी): प्रत्येक राज्य का अपना एसएसआईडीसी होता है, जो अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर लघु उद्योगों को वित्तीय सहायता, विपणन सहायता और तकनीकी मार्गदर्शन प्रदान करने वाले राज्य स्तरीय वित्तीय संस्थान के रूप में कार्य करता है। राज्य स्तर के संस्थान अपने संबंधित राज्यों के भीतर उद्यमियों और लघु उद्योगों का समर्थन करने और बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये संस्थान उद्यमियों को उनके व्यवसायों की स्थापना और विकास की सुविधा के लिए विभिन्न सेवाएं, सहायता और मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। आइए उद्यमियों का समर्थन करने वाले राज्य स्तर के संस्थानों के कार्यों और भूमिकाओं का पता लगाएं:

i. **राज्य लघु औद्योगिक विकास निगम (एसएसआईडीसी):** राज्य लघु औद्योगिक विकास निगम राज्य के भीतर लघु उद्योगों के विकास को बढ़ावा देने और समर्थन करने के लिए राज्य स्तर पर स्थापित सरकारी स्वामित्व वाले निगम हैं। प्रत्येक राज्य का अपना एसएसआईडीसी है, जो उद्यमियों और लघु उद्योगों को वित्तीय और गैर–वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए जिम्मेदार प्रमुख एजेंसी के रूप में कार्य करता है। राज्य लघु औद्योगिक विकास निगमों के प्रमुख कार्यों में शामिल हैं:

- एसएसआईडीसी छोटे पैमाने के उद्यमियों को सावधि ऋण, कार्यशील पूंजी ऋण और क्रेडिट गारंटी के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं। वे लघु उद्योगों को समय पर और पर्याप्त ऋण प्रवाह सुनिश्चित करने के लिए बैंकों और वित्तीय संस्थानों के साथ समन्वय में काम करते हैं।

- एसएसआईडीसी आकांक्षी उद्यमियों के कौशल और ज्ञान को बढ़ाने और स्व–रोजगार को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न उद्यमिता विकास कार्यक्रम और प्रशिक्षण कार्यशालाएं आयोजित करते हैं।

- ये निगम निवेश को आकर्षित करने और लघु उद्योगों के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करने के लिए आवश्यक बुनियादी सुविधाओं के साथ औद्योगिक सम्पदा, पाक्र और क्लस्टर विकसित करने में शामिल हैं।

- एसएसआईडीसी छोटे पैमाने के उद्यमों को अपने उत्पादों के विपणन और सरकारी एजेंसियों और बड़े संगठनों से आदेश हासिल करने में सहायता करते

हैं। वे नए बाजारों का पता लगाने के लिए व्यापार मेलों और प्रदर्शनियों में भागीदारी का भी समर्थन करते हैं।

ii. **राज्य उद्योग निदेशालय (एसडीआई):** राज्य उद्योग निदेशालय एक सरकारी विभाग है जो राज्य स्तर पर औद्योगिक नीतियों और कार्यक्रमों को तैयार करने और कार्यान्वित करने के लिए जिम्मेदार है। एसडीआई औद्योगिक विकास के लिए अनुकूल वातावरण बनाने और विभिन्न तरीकों से उद्यमियों का समर्थन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। राज्य उद्योग निदेशालय के प्रमुख कार्यों में शामिल हैं:

- एसडीआई राज्य के भीतर लघु उद्योगों और अन्य क्षेत्रों के विकास का समर्थन करने के लिए औद्योगिक नीतियों, योजनाओं और दिशानिर्देशों को तैयार करते हैं।
- निवेश की सुविधाः विभाग संभावित अवसरों, प्रोत्साहनों और नियामक प्रक्रियाओं के बारे में जानकारी प्रदान करके लघु उद्यमों सहित उद्योगों में निवेश को बढ़ावा देता है।
- औद्योगिक बुनियादी ढांचा विकासः एसडीआई निवेश को आकर्षित करने और औद्योगिक विकास का समर्थन करने के लिए औद्योगिक पार्कों, निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्रों और औद्योगिक सम्पदा सहित औद्योगिक बुनियादी ढांचे को विकसित करने की दिशा में काम करते हैं।
- एकल खिड़की मंजूरीः एसडीआई अक्सर विभिन्न सरकारी विभागों से विभिन्न अनुमोदन, लाइसेंस और मंजूरी मांगने वाले उद्यमियों के लिए संपक्र के एकल बिंदु के रूप में कार्य करते हैं।
- कौशल विकास और प्रशिक्षणः एसडीआई एमएसएमई में उद्यमियों और श्रमिकों को उनकी क्षमताओं और उत्पादकता को बढ़ाने के लिए कौशल विकास कार्यक्रम और तकनीकी प्रशिक्षण प्रदान कर सकते हैं।

ख) राज्य औद्योगिक विकास निगम (एसआईडीसी): एसआईडीसी लघु उद्योगों सहित राज्य में औद्योगिक विकास को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे औद्योगिक सम्पदा की स्थापना की सुविधा प्रदान करते हैं, छोटे पैमाने के उद्यमों के लिए बुनियादी ढांचा और सुविधाएं प्रदान करते हैं।

ग) राज्य सरकारें: राज्य सरकारें अपने–अपने राज्यों के भीतर लघु उद्योगों के विकास के लिए नीतियां और योजनाएं तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वे इस क्षेत्र में उद्यमिता और निवेश को बढ़ावा देने के लिए प्रोत्साहन,

सब्सिडी और सहायता भी प्रदान करते हैं।

11.4.3 जिला स्तर के केन्द्र

जिस प्रकार क्रेन्द्र स्तर पर और राज्य स्तर पर इस प्रकृति के उधोगो हेंतु संस्थाओं की सुव्यवस्थित संरंचनाओ की स्थापना की गई है। कुछ वैसी ही व्यवस्था जिला स्तर पर की गई है। आइये क्रमशः इन्हें समझने का प्रयास करेंः–

क) जिला उद्योग केंद्र (डीआईसी): डीआईसी जिला स्तर पर लघु उद्योगों के लिए केंद्र बिंदु के रूप में कार्य करते हैं। वे लाइसेंस और अनुमोदन प्राप्त करने, बाजार खुफिया, कौशल विकास और वित्त तक पहुंच में सहायता सहित कई सेवाएं प्रदान करते हैं। जिला उद्योग केंद्र जमीनी स्तर पर हैं, जो एक विशिष्ट जिले के भीतर उद्यमियों और लघु उद्योगों को सहायता और सहायता प्रदान करने के लिए जिला स्तर पर काम कर रहे हैं। जिला उद्योग केंद्रों के प्रमुख कार्यों में शामिल हैंः

- डीआईसी नए उद्यमों की स्थापना को प्रोत्साहित करने और उद्यमिता को बढ़ावा देने के लिए उद्यमिता विकास कार्यक्रम और कार्यशालाएं आयोजित करते हैं।
- परियोजना पहचान और समर्थनः डीआईसी उद्यमियों को व्यवहार्य परियोजनाओं की पहचान करने और बैंकों और वित्तीय संस्थानों से वित्तीय सहायता प्राप्त करने के लिए परियोजना रिपोर्ट तैयार करने में सहायता करते हैं।
- डीआईसी नए उद्यमियों को हैंडहोल्डिंग समर्थन प्रदान करते हैं, उन्हें अपने व्यवसाय स्थापित करने और सरकारी प्रोत्साहन और लाभ प्राप्त करने की प्रक्रिया के माध्यम से मार्गदर्शन करते हैं।
- ये केंद्र व्यक्तियों की रोजगार क्षमता बढ़ाने और जिले में लघु उद्योगों की कौशल आवश्यकताओं का समर्थन करने के लिए कौशल विकास प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रदान कर सकते हैं।
- डीआईसी बाजार लिंकेज की सुविधा प्रदान करते हैं और लघु उद्यमों द्वारा निर्मित उत्पादों के लिए बाजारों तक पहुंचने में सहायता प्रदान करते हैं।

राज्य स्तरीय संस्थान, अर्थात् राज्य लघु औद्योगिक विकास निगम, राज्य उद्योग निदेशालय और जिला उद्योग केंद्र, विभिन्न स्तरों पर उद्यमियों और लघु उद्योगों का समर्थन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उनके संयुक्त प्रयासों का उद्देश्य उद्यमशीलता को बढ़ावा देना, औद्योगिक विकास को बढ़ावा देना, वित्तीय सहायता प्रदान करना और प्रत्येक राज्य के भीतर लघु उद्योगों के विकास के लिए

अनुकूल वातावरण बनाना है। समन्वित कार्यों और लक्षित समर्थन के माध्यम से, ये संस्थान राज्य और देश के समग्र विकास और आर्थिक समृद्धि में योगदान करते हैं।

ख) जिला औद्योगिक विकास एजेंसियां (डीआईडीए): डीआईडीए लघु उद्योगों के विकास सहित जिला स्तर पर औद्योगिक विकास और निवेश को बढ़ावा देने की दिशा में काम करते हैं। वे औद्योगिक समूहों की स्थापना की सुविधा प्रदान करते हैं और मौजूदा और नए उद्यमों को सहायता प्रदान करते हैं।

इन राष्ट्रीय, राज्य और जिला स्तर के संस्थानों के सहयोगात्मक प्रयास भारत में लघु उद्योगों के संवर्धन और विकास के लिए एक मजबूत संस्थागत ढांचा बनाते हैं। समन्वित प्रयासों के माध्यम से, इन संस्थानों का उद्देश्य छोटे पैमाने के उद्यमियों द्वारा सामना की जाने वाली चुनौतियों का समाधान करना, उन्हें आवश्यक संसाधन प्रदान करना और राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में उनके निरंतर विकास और योगदान के लिए एक सक्षम वातावरण बनाना है।

11.5 छोटे पैमानों के उद्योगों हेतु सरकारी नीति

भारत में लघु उद्योगों के लिए नीतिगत समर्थन का पता स्वतंत्रता–पूर्व युग में लगाया जा सकता है, जहां स्थानीय उद्योगों की रक्षा और बढ़ावा देने के लिए कुछ उपाय किए गए थे। स्वतंत्रता के बाद, औद्योगिकीकरण और आर्थिक विकास पर सरकार के ध्यान ने लघु उद्योगों के प्रति अधिक व्यापक दृष्टिकोण को जन्म दिया। 1948 के औद्योगिक नीति संकल्प ने लघु उद्योगों के महत्व को मान्यता दी और इसका उद्देश्य संतुलित औद्योगिक विकास को बढ़ावा देना था।

11.5.1 छोटे पैमानों के उद्योगों हेतु औधोगिक नीति

1956 की औद्योगिक नीति: 1956 की औद्योगिक नीति ने लघु उद्योगों के प्रति सरकार के दृष्टिकोण को आकार देने में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर चिह्नित किया। इसने समावेशी विकास को बढ़ावा देने, क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने और रोजगार के अवसर पैदा करने में लघु उद्योगों की भूमिका पर जोर दिया। नीति ने ''कुटीर और ग्रामीण उद्योग'' की अवधारणा पेश की और इन क्षेत्रों के लिए एकीकृत विकास और समर्थन की आवश्यकता पर प्रकाश डाला।

1. **स्वतंत्रता के बाद के युग में नीतिगत पहल:** सरकार ने विशेष रूप से लघु उद्योगों द्वारा उत्पादन के लिए कुछ उत्पादों की पहचान की, उन्हें उनके विनिर्माण के लिए आरक्षित किया। इस उपाय ने एसएसआई को बड़े पैमाने पर

उद्योगों के साथ प्रतिस्पर्धा से बचाया और उन्हें विशिष्ट उत्पाद श्रेणियों में विशेषज्ञता विकसित करने की अनुमति दी। लघु उद्योगों को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए विभिन्न वित्तीय संस्थानों और योजनाओं की शुरुआत की गई थी। भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (आईडीबीआई) और भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (सिडबी) की स्थापना का उद्देश्य छोटे पैमाने पर उद्यमियों की ऋण आवश्यकताओं को पूरा करना है। सरकार ने लघु उद्योगों के विकास के लिए तकनीकी प्रगति के महत्व को मान्यता दी। आधुनिक प्रौद्योगिकी को अपनाने की सुविधा और लघु उद्योगों की उत्पादकता और गुणवत्ता बढ़ाने के लिए कई योजनाएं और कार्यक्रम शुरू किए गए थे। लघु उद्योगों को निर्यातोन्मुखी गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए विशेष प्रोत्साहन और सहायता उपाय शुरू किए गए थे। सरकार ने निर्यात को बढ़ावा देने के लिए निर्यात लाइसेंस, विपणन सहायता और वित्तीय प्रोत्साहन प्राप्त करने में सहायता प्रदान की।

2. **लघु उद्योग क्षेत्र की 1991 की नई नीतिः** 1991 में शुरू किए गए आर्थिक सुधारों ने लघु उद्योगों के प्रति सरकार की नीति में महत्वपूर्ण बदलाव लाए। नई आर्थिक नीति ने उदारीकरण, वैश्वीकरण और निजीकरण पर जोर दिया, जिसका एसएसआई के लिए सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव थे। अगस्त 1991 के दौरान, भारत सरकार ने लघु उद्योग के लिए एक नई नीति जारी की, जिसका शीर्षक था ''छोटे, छोटे और ग्रामीण उद्यमों को बढ़ावा देने और मजबूत करने और पूरक करने के लिए नीतिगत उपाय''। इस नीति के अर्न्तगत आइये इन्हें भी समझनें का प्रयास करें:–

   क) उदारीकरणः उदारीकरण के उपायों ने अर्थव्यवस्था को खोल दिया, जिससे लघु उद्योगों को घरेलू और अंर्तराष्ट्रीय खिलाड़ियों से बढ़ती प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा। इससे इस क्षेत्र में दक्षता और प्रतिस्पर्धा बढ़ाने की आवश्यकता हुई।

   ख) वित्त तक पहुंचः उदारीकरण के साथ, लघु उद्योगों को बढ़ती प्रतिस्पर्धा और अधिक संपार्श्विक की आवश्यकता के कारण औपचारिक ऋण प्राप्त करने में चुनौतियों का सामना करना पड़ा। सरकार ने लघु उद्योगों के लिए वित्त तक पहुंच बढ़ाने के लिए सूक्ष्म और लघु उद्यमों के लिए क्रेडिट गारंटी फंड ट्रस्ट (सीजीटीएमएसई) जैसी योजनाएं शुरू कीं।

   ग) प्रौद्योगिकी उन्नयन निधि योजना (टीयूएफएस): वस्त्र और पटसन उद्योगों के आधुनिकीकरण और तकनीकी उन्नयन का समर्थन करने,

लघु उद्यमों में अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी के उपयोग को बढ़ावा देने के लिए टीयूएफएस शुरू किया गया था।

सरकार की औद्योगिक नीति विभिन्न उपायों के माध्यम से लघु क्षेत्र और ग्रामोद्योगों के उत्थान पर केंद्रित थी। इन नीतियों की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं: आइये इन्हें क्रमशः समझने का प्रयास करें:–

- लघु उद्योगों, सहायक और निर्यातोन्मुखी इकाइयों के लिए निवेश सीमा को बढ़ाकर क्रमशः 60 लाख रुपये, 75 लाख रुपये और 75 लाख रुपये कर दिया गया है। छोटे उद्योगों के लिए, निवेश सीमा 2 लाख रुपये से बढ़ाकर 5 लाख रुपये कर दी गई थी, जिसे बाद में 1997 में बढ़ाकर 3 करोड़ रुपये कर दिया गया था।

- सभी उद्योग–संबंधित सेवा और व्यावसायिक उद्यमों को छोटे पैमाने के उद्योगों के रूप में मान्यता दी गई थी, और उनकी निवेश सीमा को छोटे क्षेत्र के उद्यमों के साथ संरेखित किया गया था।

- स्वदेशी कच्चे माल के आवंटन में छोटे और छोटे क्षेत्र को प्राथमिकता देना। राज्य ने छोटे पैमाने के क्षेत्र, विशेष रूप से छोटे क्षेत्र में स्वदेशी और आयातित कच्चे माल का समान वितरण सुनिश्चित किया।

- इस नीति ने लघु उद्योग क्षेत्र के लिए पर्याप्त ऋण उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए ऋण सब्सिडी देने से जोर दिया। लघु उद्योग में अन्य औद्योगिक उपक्रमों द्वारा इक्विटी भागीदारी की अनुमति दी गई थी, जो कुल शेयरधारिता के 24% से अधिक नहीं होगी, रोजगार वृद्धि के लिए आधुनिकीकरण और उप–संविदा को प्रोत्साहित करेगी।

- भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (सिडबी) के माध्यम से लघु क्षेत्र, लघु उद्योगों, फैक्टरिंग सेवाओं को विलंबित भुगतान की समस्या में मदद करने के लिए सेवाओं की शुरुआत की गई थी।

- इसने वाणिज्यिक बैंकों द्वारा संचालित सेवाओं के नेटवक्र के माध्यम से समय पर भुगतान संग्रह की सुविधा प्रदान की।

- उद्योग से संबंधित सेवाओं और व्यावसायिक उद्यमों को उनके स्थान के बावजूद एसएसआई के रूप में शामिल किया जाता है।

- एकल खिड़की योजना का विस्तार करने के लिए राष्ट्रीय इक्विटी कोष (एनईएफ) का दायरा बढ़ाना और कॉर्पोरेट ऋणों के प्रावधान के साथ वाणिज्यिक बैंकों को भी जोड़ना।

- सीमित भागीदारी अधिनियम की शुरूआत।
- लघु उद्योग विकास संगठन SIDO में प्रौद्योगिकी विकास प्रकोष्ठ की स्थापना करना। लघु उद्योग विकास निगम में एक प्रौद्योगिकी विकास प्रकोष्ठ (टीडीसी) की स्थापना लघु उद्योग इकाइयों में प्रौद्योगिकी में सुधार, उत्पादकता और प्रतिस्पर्धा बढ़ाने के लिए की गई थी। SIDO में निर्यात विकास केंद्र EDC की स्थापना की गई।
- लघु उद्योगों के लिए प्रौद्योगिकी बैकअप सेवाओं के साथ एकीकृत अवसंरचना विकास (आईआईडी) की योजना शुरू करना सुनिश्चित किया गया।
- सह–प्रचालन/सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थानों, अन्य विशिष्ट पेशेवर/विपणन एजेंसियों और कंसोर्टियम दृष्टिकोण के माध्यम से लघु उद्योग उत्पादों का बाजार संवर्धन।

वस्तुतः, सरकार की नीति का उद्देश्य निवेश सीमा बढ़ाकर, वित्तीय सहायता प्रदान करके, बुनियादी ढांचे और प्रौद्योगिकी में सुधार करके, समय पर भुगतान की सुविधा प्रदान करके, विपणन और निर्यात को बढ़ावा देकर और हस्तशिल्प और हथकरघा क्षेत्रों में कारीगरों और बुनकरों की आजीविका बढ़ाकर लघु उद्योग और ग्रामोद्योग क्षेत्र को मजबूत करना है। इन उपायों ने इन क्षेत्रों की वृद्धि और विकास में योगदान दिया और ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक रोजगार के अवसर पैदा करने में मदद की।

सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम (एमएसएमई) विकास अधिनियम, 2006:

2006 में एमएसएमई विकास अधिनियम के अधिनियमन ने लघु उद्योगों के प्रति सरकार के दृष्टिकोण में एक बड़ा बदलाव लाया। इसने संयंत्र और मशीनरी या उपकरणों में निवेश के आधार पर एमएसएमई के वर्गीकरण को फिर से परिभाषित किया। अधिनियम ने देश के सामाजिक–आर्थिक विकास में एमएसएमई की महत्वपूर्ण भूमिका को मान्यता दी और उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं और चुनौतियों का समाधान करने की मांग की।

11.5.2 छोटे पैमाने के उद्योगों के संवर्धन हेतु कार्यक्रम

भारत में लघु उद्योगों (एसएसआई) को बढ़ावा देना सरकार का एक प्रमुख फोकस रहा है, और इस क्षेत्र के विकास का समर्थन करने और प्रोत्साहित करने के लिए कई कार्यक्रम और योजनाएं पेश की गई हैं। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य लघु उद्योगों द्वारा सामना की जाने वाली विभिन्न चुनौतियों का समाधान करना और वित्तीय, तकनीकी और विपणन सहायता प्रदान करना है। भारत में लघु

उद्योग को बढ़ावा देने के लिए आइये कुछ प्रमुख महत्वपूर्ण कार्यक्रमों पर चर्चा कर इन्हें समझने का प्रयास करें:–

1. उत्पादन के लिए वस्तुओं का आरक्षण: सरकार की औद्योगिक नीति के तहत, कुछ उत्पादों को विशेष रूप से लघु उद्योग क्षेत्र द्वारा उत्पादन के लिए आरक्षित किया जाता है। ये आरक्षित आइटम आम तौर पर वे होते हैं जिन्हें छोटे उद्योगों द्वारा कुशलता से उत्पादित किया जा सकता है और महत्वपूर्ण रोजगार उत्पन्न करने की क्षमता होती है। आरक्षण नीति लघु उद्योगों के विकास को बढ़ावा देने में मदद करती है, जिससे उन्हें सुनिश्चित बाजार पहुंच और अपने संबंधित क्षेत्रों में पनपने के अवसर मिलते हैं।

2. लघु उद्योग क्षेत्र से विशेष खरीद के लिए वस्तुओं का आरक्षण: सरकार के साथ–साथ विभिन्न सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों और सरकारी विभागों के पास ऐसी नीतियां हैं जो लघु उद्योग क्षेत्र से उनकी खरीद का एक निश्चित प्रतिशत अनिवार्य करती हैं। लघु उद्योग क्षेत्र से विशेष खरीद के लिए वस्तुओं का यह आरक्षण छोटे व्यवसायों के लिए एक तैयार बाजार सुनिश्चित करता है और उनकी बिक्री और राजस्व को बढ़ाता है। यह अपने उत्पादों के लिए लगातार मांग पैदा करके इन उद्यमों के विकास को भी प्रोत्साहित करता है।

3. पिछड़े क्षेत्रों में प्रोत्साहन: पिछड़े और आर्थिक रूप से वंचित क्षेत्रों में औद्योगिक विकास को बढ़ावा देने के लिए, सरकार इन क्षेत्रों में काम करने वाले लघु उद्योगों को विभिन्न प्रोत्साहन प्रदान करती है। इन प्रोत्साहनों का उद्देश्य निवेश को आकर्षित करना, रोजगार के अवसर पैदा करना और इन क्षेत्रों में सामाजिक–आर्थिक स्थितियों का उत्थान करना है। कुछ सामान्य प्रोत्साहनों में शामिल हैं:

- **पूंजी निवेश सब्सिडी:** सरकार पिछड़े क्षेत्रों में लघु उद्योगों द्वारा किए गए पूंजी निवेश पर सब्सिडी प्रदान करती है, जिससे उनके प्रारंभिक निवेश बोझ को कम किया जाता है।

- **ब्याज सब्सिडी:** पिछड़े क्षेत्रों में काम करने वाले लघु उद्योग अपने व्यवसायों की स्थापना या विस्तार के लिए लिए गए ऋण पर ब्याज सब्सिडी प्राप्त कर सकते हैं।

- **बिजली टैरिफ सब्सिडी:** पिछड़े क्षेत्रों में बिजली–गहन उद्योग उत्पादन लागत को कम करने के लिए सब्सिडी वाले बिजली टैरिफ के लिए पात्र हो सकते हैं।

- **बुनियादी ढांचा सहायता:** सरकार पिछड़े क्षेत्रों में निवेश को आकर्षित करने के लिए औद्योगिक सम्पदा और पार्कों के विकास जैसे बुनियादी ढांचे की सहायता

प्रदान कर सकती है।

4. **केंद्रीय उत्पाद शुल्क छूटः** लघु उद्योग अपने उत्पादों के लिए केंद्रीय उत्पाद शुल्क पर कुछ छूट और रियायतों का आनंद लेते हैं। सरकार लघु उद्योगों द्वारा निर्मित विशिष्ट वस्तुओं पर उत्पाद शुल्क से आंशिक या पूर्ण छूट दे सकती है। यह उत्पादन की लागत को कम करने में मदद करता है और उनके उत्पादों को बाजार में अधिक प्रतिस्पर्धी बनाता है।

5. **प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (पीएमईजीपी):** पीएमईजीपी एमएसएमई मंत्रालय द्वारा शुरू की गई एक क्रेडिट–लिंक्ड सब्सिडी योजना है जो शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में नए सूक्ष्म उद्यमों की स्थापना और रोजगार के अवसर पैदा करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करती है। यह योजना परियोजना लागत पर पर्याप्त सब्सिडी प्रदान करती है, जिससे इच्छुक उद्यमियों के लिए अपना व्यवसाय शुरू करना आसान हो जाता है।

6. **सूक्ष्म और लघु उद्यमों के लिए क्रेडिट गारंटी फंड ट्रस्ट (सीजीटीएमएसई):** सीजीटीएमएसई को सूक्ष्म और लघु उद्यमों को संपार्श्विक मुक्त ऋण प्रदान करने के लिए लॉन्च किया गया था। यह योजना पात्र एमएसएमई को दिए गए ऋणों के लिए बैंकों और वित्तीय संस्थानों को क्रेडिट गारंटी प्रदान करती है, जिससे वे संपार्श्विक के बोझ के बिना ऋण प्राप्त कर सकते हैं।

7. **प्रौद्योगिकी उन्नयन निधि योजना (टीयूएफएस):** टीयूएफएस का उद्देश्य नई प्रौद्योगिकियों और मशीनरी को अपनाने के लिए एमएसएमई को वित्तीय सहायता प्रदान करके कपड़ा और जूट उद्योगों के प्रौद्योगिकी उन्नयन और आधुनिकीकरण की सुविधा प्रदान करना है। यह इन क्षेत्रों में उत्पादकता और गुणवत्ता बढ़ाने में मदद करता है।

8. **राष्ट्रीय विनिर्माण प्रतिस्पर्धात्मकता कार्यक्रम (एनएमसीपी):** लघु उद्योगों सहित विनिर्माण क्षेत्र की प्रतिस् पर्धात् मकता बढ़ाने के लिए सूक्ष् म, लघु और मध् यम उद्यम मंत्रालय द्वारा शुरू किया गया एक यापक कार्यक्रम है। इसमें लीन मैन्युफैक्चरिंग कॉम्पिटिटिवनेस स्कीम, एमएसएमई के लिए डिजाइन क्लीनिक और इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स (आईपीआर) पर जागरूकता बढ़ाने जैसे विभिन्न घटक शामिल हैं।

9. **शून्य दोष शून्य प्रभाव (जेडईडी) प्रमाणन योजनाः** जेडईडी प्रमाणन योजना का उद्देश्य गुणवत्ता विनिर्माण को बढ़ावा देना और एमएसएमई के पर्यावरणीय प्रभाव को कम करना है। यह एमएसएमई को शून्य दोष विनिर्माण प्रथाओं और पर्यावरण

पर शून्य प्रभाव को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करता है।

10. **बाजार संवर्धन और विकास सहायता (एमपीडीए):** बाजार संवर्धन और विकास सहायता योजना घरेलू और अंर्तराष्ट्रीय व्यापार मेलों और प्रदर्शनियों में भाग लेने में एमएसएमई का समर्थन करती है। यह उन्हें अपने उत्पादों का प्रदर्शन करने और नए बाजारों का पता लगाने में मदद करता है।

11. **अंर्तराष्ट्रीय सहयोग योजना (आईसीएस):** अंर्तराष्ट्रीय सहयोग योजना विदेशों में अंर्तराष्ट्रीय व्यापार मेलों और प्रदर्शनियों में एमएसएमई की भागीदारी की सुविधा प्रदान करती है। यह निर्यात को बढ़ावा देता है और एमएसएमई के लिए वैश्विक संबंध बनाने में मदद करता है।

12. **पारंपरिक उद्योगों के पुनरुद्धार के लिए निधि योजना (एसएफय्आरटीआई):** स्फूर्ती का उद्देश्य पारंपरिक कारीगरों और श्रमिकों को समूहों में संगठित करके पारंपरिक उद्योगों का समर्थन करना है। यह सामान्य बुनियादी ढांचा सुविधाओं, क्षमता निर्माण और बाजार लिंकेज के विकास के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करता है।

13. **क्लस्टर विकास कायक्रम:** क्लस्टर विकास कार्यक्रम का उद्देश्य औद्योगिक समूहों के विकास को बढ़ावा देकर एमएसएमई की प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ाना है। यह क्लस्टर के भीतर बुनियादी ढांचे के विकास, प्रौद्योगिकी उन्नयन और कौशल विकास के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करता है।

14. **उद्यमिता विकास कार्यक्रम (ईडीपी):** ईडीपी संभावित और मौजूदा उद्यमियों के बीच उद्यमशीलता कौशल और ज्ञान विकसित करने पर केंद्रित है। यह अपने स्वयं के व्यवसाय शुरू करने में रुचि रखने वाले व्यक्तियों को प्रशिक्षण, परामर्श और सहायता प्रदान करता है।

इस प्रकार ये कार्यक्रम, विभिन्न अन्य पहलों के साथ, सामूहिक रूप से भारत में लघु उद्योगों के विकास और स्थिरता में योगदान करते हैं। वे उद्यमियों को अपने व्यवसायों को स्थापित करने और विस्तार करने के लिए बहुत आवश्यक समर्थन और प्रोत्साहन प्रदान करते हैं, जिससे देश में आर्थिक विकास और रोजगार सृजन को बढ़ावा मिलता है। कुल मिलाकर, ये कार्यक्रम और प्रोत्साहन लघु उद्योगों के विकास और निर्वाह को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आरक्षित उत्पादन के अवसर प्रदान करके, एक स्थिर बाजार सुनिश्चित करके, पिछड़े क्षेत्रों में प्रोत्साहन की पेशकश करके, और उत्पाद शुल्क में छूट देकर, सरकार उद्यमशीलता को प्रोत्साहित करती है, रोजगार सृजन का समर्थन करती है

और देश में लघु उद्योग क्षेत्र के समग्र विकास को बढ़ावा देती है।

11.6 सारांश

लघु उद्योग भारत के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सरकार औद्योगिकीकरण को बढ़ावा देने, उद्यमिता को बढ़ावा देने और देश भर में रोजगार के अवसर पैदा करने में इसके महत्व को पहचानती है। एक अनुकूल वातावरण और लक्षित समर्थन प्रदान करके, सरकार का उद्देश्य लघु उद्योगों के विकास को बढ़ावा देना है, यह सुनिश्चित करना कि वे आर्थिक प्रगति के इंजन बने रहें।

लघु उद्योगों का संवर्धन कई सम्मोहक कारणों से प्रेरित है। सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण, ये उद्योग विशेष रूप से ग्रामीण और अर्ध–शहरी क्षेत्रों में पर्याप्त रोजगार के अवसर प्रदान करते हैं, इस प्रकार गरीबी उन्मूलन और समावेशी विकास में योगदान देते हैं। इसके अलावा, उनकी विकेन्द्रीकृत प्रकृति आय और संसाधनों का अधिक न्यायसंगत वितरण सुनिश्चित करती है, क्षेत्रीय असमानताओं को कम करती है।

लघु उद्योगों का योगदान रोजगार सृजन से परे है। वे उत्पादन को बढ़ावा देने, स्थानीय और आला बाजारों को पूरा करने और निर्यात–उन्मुख विनिर्माण को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस क्षेत्र का लचीलापन और अनुकूलनशीलता इसे बाजार की बदलती मांगों और गतिशील आर्थिक परिस्थितियों के प्रति उत्तरदायी बनाती है, जिससे यह भारत के आर्थिक लचीलेपन का एक अनिवार्य स्तंभ बन जाता है।

उनके कई फायदों के बावजूद, छोटे पैमाने के उद्योगों को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, मुख्य रूप से ऋण, प्रौद्योगिकी और बुनियादी ढांचे तक अपर्याप्त पहुंच से संबंधित। इन कमजोरियों की पहचान करना और उन्हें संबोधित करना इस क्षेत्र की विकास क्षमता को पूरी तरह से पोषित करने के लिए महत्वपूर्ण है।

1991 की लघु उद्योग (एसएसआई) नीति ने भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु उद्योगों की महत्वपूर्ण भूमिका को पहचानने में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर चिह्नित किया। नीति का उद्देश्य उनके विकास के लिए एक सहायक वातावरण प्रदान करना, तकनीकी उन्नयन, निर्यात अभिविन्यास को प्रोत्साहित करना और बाजार पहुंच को बढ़ाना है। आठवीं योजना ने इस क्षेत्र के विकास के लिए महत्वाकांक्षी लक्ष्य निर्धारित किए, जिसका उद्देश्य सकल घरेलू उत्पाद और निर्यात में इसकी हिस्सेदारी को काफी हद तक बढ़ाना था।

हालांकि, इच्छित परिणामों को प्राप्त करने के लिए नीतियों और योजनाओं

का प्रभावी कार्यान्वयन समान रूप से महत्वपूर्ण है। सरकारी घोषणाओं और जमीनी कार्यान्वयन के बीच असमानताओं को दूर करने की आवश्यकता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि सहायक नीतियों के लाभ इच्छित लाभार्थियों तक पहुंचें।

11.7 महत्वपूर्ण शब्दावली

- **सहायक इकाई**– सहायक इकाई को एक के रूप में परिभाषित किया गया है, जो अपने विनिर्माण का कम से कम 50% एक या अधिक औद्योगिक इकाइयों को बेचता है।

- **सहकारीकरण**– सहकारीकरण का अर्थ है अधिक से अधिक छोटी इकाइयों को एक साथ लाने की प्रक्रिया ताकि वे एकजुट होकर कार्य कर सकें। एक सहकारी के रूप में, वे अधिक प्रभाव का प्रयोग कर सकते हैं और अपने लिए बेहतर लाभ सुरक्षित कर सकते हैं।

- **निगमीकरण**– निगमीकरण का तात्पर्य है कि एक निश्चित क्षेत्र की शेयर पूंजी में कॉर्पोरेट क्षेत्र की हिस्सेदारी बढ़ाने की प्रक्रिया, लघु उद्योग क्षेत्र हो सकता है।

- **फैक्टरिंग सेवा**–फैक्टरिंग सेवा का अर्थ है कि कोई भी विकास या वाणिज्यिक बैंक एसएसआई इकाइयों से निर्माताओं के चालान खरीदेगा और कमीशन या ब्रोकरेज चार्ज करके उन्हें देय भुगतान एकत्र करने की जिम्मेदारी लेगा।

- **लघु उद्यम**–लघु उद्यम भारत सरकार के अनुसार, एक लघु उद्यम वह है जिसका संयंत्र और मशीनरी में निवेश 3 करोड़ रुपये तक है।

- **भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (सिडबी)** – विशेष रूप से छोटे उद्योगों के विकास के लिए ऋण प्रदान करने के लिए बनाया गया एक बैंक।

- **लघु उद्योग विकास निगम (एसआईडीसी)** – लघु उद्योगों को प्राथमिकता के आधार पर कच्चे माल और घटकों के आवंटन के लिए बनाया गया एक संगठन।

- **लघु इकाइयाँ**:– लघु इकाइयाँ टिनी यूनिट को उस इकाई के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसका संयंत्र और मशीनरी में निवेश 25 लाख रुपये तक है।

11.8 उपयागी प्रश्न

प्रश्न 1. आप एक छोटे उद्यम को उदाहरण सहित परिभाषित करेगें

प्रश्न 2. एक सहायक इकाई को परिभाषित करें?

प्रश्न 3. एक छोटे पैमाने की इकाई को परिभाषित करेंघ् भारत में लघु उद्योग क्षेत्र के महत्व और वृद्धि को विस्तार से समझाइए

प्रश्न 4. लघु उद्योग के समक्ष कौन.कौन सी प्रमुख समस्याएं हैंघ् सूचिबद्ध करतें

हुए अपने शब्दों में समझाये ?

प्रश्न 5. लघु क्षेत्र औद्योगिक नीति की तीन प्रमुख सिफारिशों को सूचीबद्ध कीजिए तथा उसके महत्व को रेखांकित कीजिए।

प्रश्न 6. लघु उद्योग के विकास के लिए विकसित संस्थागत ढांचे की चर्चा कीजिए

प्रश्न 7. लघु उद्योगों के प्रति सरकार की नीति का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- फ्रांसिस चेरुमिलम, बिजनेस एनवायरनमेंट, हिमालय पब्लिशिंग हाउस। मुंबई।
- जॉर्ज स्टीनर, बिजनेस एंड सोसाइटी, मैकमिलन, न्यूयॉक्र।
- इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, पाठ्यक्रम सामग्री–एमएस–3% आर्थिक और सामाजिक पर्यावरण।
- टंडन, बी.बी. और टंडन, के.के., भारतीय अर्थव्यवस्था, टाटा मैकग्रा हिल, नई दिल्ली।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, प्रयागराज

B.Com-203

व्यावसायिक पर्यावरण

खण्ड 4

बाह्य क्षेत्र और आर्थिक सुधार

इकाई **12** विदेशी निवेश और बहुराष्ट्रीय निगम

इकाई **13** भारत का विदेश व्यापार

इकाई **14** भुगतान शेष और निर्यात-आयात नीति

इकाई **15** अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संबंध

इकाई **16** नई आर्थिक नीति

विशेषज्ञ समिति

डॉ. ओमजी गुप्ता, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

डॉ देवश रंजन त्रिपाठी, सहायक आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

प्रो. आर.सी. मिश्रा, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन एवं वाणिज्य विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

प्रो. लवकुश मिश्रा, निदेशक, इंस्टीट्यूट ऑफ टूरिज्म एण्ड होटल मैनेजमेंट, श्री भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा।

प्रो. सोमेश शुक्ला विभागाध्यक्ष, वाणिज्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

प्रो. राधेश्याम सिंह आचार्य, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

लेखक

सुश्री सौम्या तिवारी सहायक-आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ. प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

सम्पादक

प्रो. एस.बी. गुप्ता अर्थशास्त्र विभाग, एम.एम.पी.जी. कॉलेज, कालाकांकर, (रज्जू भैय्या) राज्य विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

संयोजकः

देवेश रंजन त्रिपाठी सह–आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ. प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

ISBN: 978-93-83328-81-09

(c) उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट–पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय उत्तरदायी नहीं है।

खंण्ड 4

भारतीय अर्थव्यवस्था के बाह्य क्षेत्र के विभिन्न तत्वों और 1991 में शुरू किए गए आर्थिक सुधारों के संबंध में चर्चा करता है।

इकाई–12 विदेशी निवेश और बहुराष्ट्रीय निगमों के संबंध में है। इसमें विदेशी निवेश के अर्थ और उसकी भूमिका के संबंध में विवेचन किया गया है। इसमें संयुक्त उद्यमों और बहुराष्ट्रीय निगमों के गुणों और दोषों का परीक्षण किया गया है। इसमें भारत में विदेशी निवेश नीति का विहंगावलोकन किया गया है।

इकाई–13 भारत के विदेश व्यापार के संबंध है। इसमें भारत विदेश व्यापार की प्रवृत्तियों, उसके संघटन और उसकी दिशाओं का विवेचन किया गया है। विदेश व्यापार के महत्व को स्पष्ट किया गया है और भारत के विदेश व्यापार की संवृद्धि की प्रवृत्तियों को प्रस्तुत किया गया है। सरकार द्वारा शुरू किए गए निर्यात संवर्धन उपायों के संबंध में संक्षेप में परीक्षण किया गया है।

इकाई–14 भारत के भुगतान संतुलन और भारत सरकार की निर्यात–आयात (EXIM) नीति के संबंध में है। इसमें भुगतान संतुलन (BOP) की अवधारणा और उसके महत्व की व्याख्या की गई है। 1950–51 से भारत के BOP में प्रमुख प्रवृत्तियों और 1990 के दशक में हुए BOP संकटों के कारणों के संबंध में विवेचन किया गया है। वर्तमान निर्यात (1997–2002) का भी परीक्षण किया गया है।

इकाई–15 अंर्तराष्ट्रीय व्यापार संबंध दो या दो से अधिक देशों के बीच व्यापार के आदान–प्रदान पर आधारित होते हैं। GATT और WTO अंतरराष्ट्रीय व्यापार संबंधों को बढ़ावा देने और विनियमित करने के लिए अंतरराष्ट्रीय संगठन हैं। मैंने इन परिवर्तनों को करके यह सुनिश्चित करने की कोशिश की है कि पुनर्फ्रेमिंग मूल पाठ से मौलिक रूप से अलग है।

इकाई–16 भारत सरकार ने 2021 में एक नई आर्थिक विकास नीति (NEP) की घोषणा की। इस नीति का उद्देश्य भारत को एक विकसित देश बनाने के लिए एक दीर्घकालिक दृष्टिकोण प्रदान करना है। NEP की आवश्यकता – भारत ने पिछले कुछ दशकों में महत्वपूर्ण आर्थिक प्रगति की है। हालांकि, भारत अभी भी एक विकासशील देश है और उसे कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। भारत में बेरोजगारी, प्रदूषण, पर्यावरणीय गिरावट एक चिंताजनक प्रवृत्ति है।

12 विदेशी निवेश और बहुराष्ट्रीय निगम

इकाई रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 विदेशी पूंजी

12.3 पूंजी के प्रकार

12.4 विदेशी प्रत्यक्ष निवेश

12.5 पोर्टफोलियो निवेश

12.6 विदेशी पूंजी की भूमिका

12.7 सरकारी नीति

12.8 संयुक्त उद्यम

- 12.8.1 अर्थ
- 12.8.2 संयुक्त उद्यमों के प्रकार
- 12.8.3 लाभ
- 12.8.4 हानि
- 12.8.5 भारतीय संयुक्त उद्यम

12.9 बहुराष्ट्रीय निगम

- 12.9.1 परिभाषा
- 12.9.2 बहुराष्ट्रीय निगमों की विशेषताएं
- 12.9.3 गुण
- 12.9.4 दोष

12.10 सारांश

12.11 उपयोगी शब्दावली

12.12 महत्वपूण प्रश्न

12.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि

- विदेशी पूंजी की परिभाषित करते हुए उसका वर्गीकरण कर सकेंगे

- विदेशी पूंजी की भूमिका एवं उसकी कमियों को सूचिबद्ध कर सकेगें ;
- संयुक्त उद्यम की की अवधारणा समझते हुए उसके गुण और दोष की व्याख्या कर सकेगें वर्तमान सरकारी नीतियो पर प्रकाश डाल सकेगें तथा
- बहुराष्ट्रीय कंपनियों के पक्ष और विपक्ष का मूल्यांकन कर सकेगें ;

12.1 प्रस्तावना

इस इकाई विदेशी निवेश और बहुराष्ट्रीय निगम (एमएनसी) तथा अंतरराष्ट्रीय व्यापार और निवेश के महत्वपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डालती है। अध्ययन मे उपयोगीता की दृष्टि से इस खंड में, हम विदेशी पूंजी को परिभाषित करते हैं, जो दूसरे देश में स्थित संस्थाओं द्वारा एक देश में निवेश की गई वित्तीय परिसंपत्तियों को संदर्भित करती है। इसमें वित्तीय प्रवाह और विदेशी स्रोतों से निवेश के विभिन्न रूप शामिल हैं। परिभाषा को समझाया गया है, विदेशी पूंजी की विविध प्रकृति और प्राप्तकर्ता अर्थव्यवस्थाओं पर इसके प्रभाव पर जोर दिया गया है।साथ ही परस्पर वैश्विक अर्थव्यवस्था में विदेशी पूंजी की महत्वपूर्ण भूमिका पर प्रकाश डालता है। आर्थिक विकास को बढ़ावा देने, विकास को बढ़ावा देने और सीमा पार व्यापार और निवेश को सुविधाजनक बनाने में विदेशी पूंजी के महत्व पर विस्तार से बताया गया है। इस इकाई मे विदेशी पूंजी के प्रवाह से प्राप्त पारस्परिक लाभों पर जोर दिया गया है। जिस क्रम में, हम विदेशी पूंजी की विभिन्न श्रेणियों का पता लगाते हैं। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) किसी देश की वास्तविक संपत्तियों, जैसे कारखानों, बुनियादी ढांचे और व्यवसायों में विदेशी संस्थाओं द्वारा किए गए निवेश को संदर्भित करता है। एफडीआई की अवधारणा को मेजबान और घरेलू देशों के लिए इसके निहितार्थ के साथ समझाया गया है। एफडीआई के संभावित लाभों और चुनौतियों पर चर्चा की जाती है।

पोर्टफोलियो निवेश में निवेश पर वापसी अर्जित करने के उद्देश्य से विदेशों में स्टॉक और बॉन्ड जैसी वित्तीय परिसंपत्तियों की खरीद शामिल है। पोर्टफोलियो निवेश की विशेषताओं, उनकी अस्थिरता और वित्तीय बाजारों पर प्रभाव का विश्लेषण भी इस इकाई के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जायेगा।

वस्तुतः प्रस्तुत इकाई; यह विदेशी सहायता और ऋण सहित विदेशी पूंजी के अन्य रूपों को कवर करता है। आर्थिक विकास का समर्थन करने और वैश्विक चुनौतियों का समाधान करने में उनकी संबंधित भूमिकाओं के साथ विदेशी सहायता और निवेश के बीच अंतर का भी सुव्यवस्थित विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए विदेशी

पूंजी और बहुराष्ट्रीय निगमों के विविध पहलुओं को समझने के लिए नींव निर्धारित की गई है। आगे की इकाई में संयुक्त उद्यमों की पेचीदगियों, उनके प्रकार, फायदे और नुकसान में गहराई से उतरेंगे। इस इकाई मे बहुराष्ट्रीय निगमों की विशेषताओं, वैश्विक अर्थव्यवस्था पर उनके प्रभाव और उनके संचालन से जुड़े गुण और दोषों की भी जांच की गई है।

12.2 विदेशी पूंजी

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश विदेशी निवेश का एक रूप है जो तब होता है जब एक विदेशी देश में स्थित एक कंपनी घर देश में स्थापित व्यवसाय का नियंत्रण स्वामित्व लेती है। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के साथ, अंतरराष्ट्रीय कंपनियां सीधे दूसरे देश में स्थापित व्यवसाय के नियमित संचालन में शामिल होती हैं। एफडीआई के रूप में विदेशी कंपनियां न केवल अपने साथ पैसा लाती हैं, बल्कि कौशल, ज्ञान और नवीनतम प्रौद्योगिकियां भी लाती हैं।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को भारत के आर्थिक विकास के लिए एक महत्वपूर्ण मौद्रिक स्रोत माना जाता है। विदेशी कंपनियां सस्ती मजदूरी और देश के बदलते कारोबारी माहौल का लाभ उठाने के लिए तेजी से बढ़ती निजी भारतीय कंपनियों में सीधे निवेश करती हैं। 1991 के आर्थिक संकट के कारण आर्थिक उदारीकरण शुरू किया गया था, और तब से, देश में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश लगातार बढ़ा है।

17 अप्रैल 2022 को भारत ने अपनी प्रत्यक्ष विदेशी निवेश नीति में बदलाव किया ताकि भारतीय कंपनियों को कोविड–19 महामारी के कारण अवसरवादी अधिग्रहण या अधिग्रहण से बचाया जा सके। नई एफडीआई नीति बाजार को प्रतिबंधित नहीं करती है, लेकिन नीति यह सुनिश्चित करती है कि सभी एफडीआई वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय की जांच के तहत किए जाएंगे।

12.3 पूंजी के प्रकार

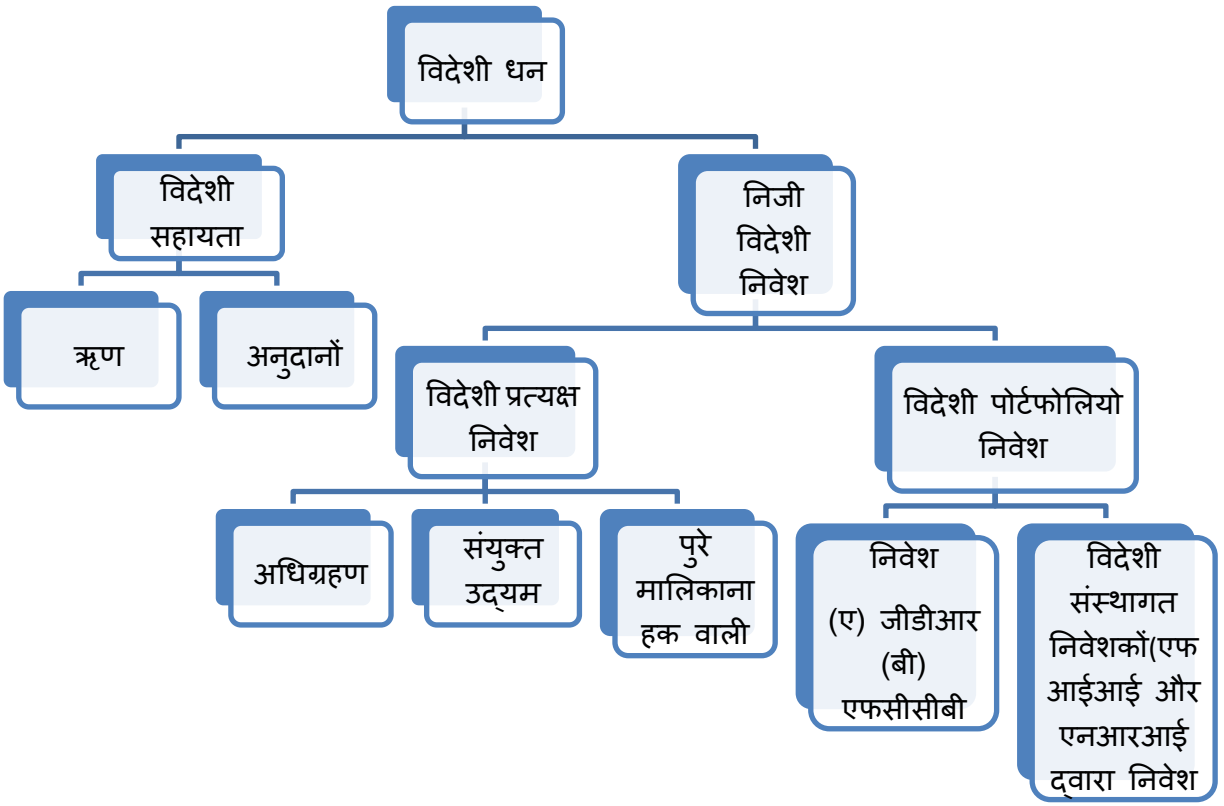
विदेशी सहायता में ऋण और अनुदान शामिल हो सकते हैं। निजी विदेशी निवेश दो रूप लेता हैं **क) प्रत्यक्ष विदेशी निवेश** (एफडीआई) **ख) विदेशी पोर्टफोलियो निवेश** (FPI)। भारत में **प्रत्यक्ष विदेशी निवेश** आगे **(i)** पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनी **(पi)** संयुक्त उद्यम और **(iii)** अधिग्रहण का रूप ले सकता है। **विदेशी पोर्टफोलियो निवेश (i)** अनिवासी भारतीयों (एनआरआई) सहित विदेशी संस्थागत निवेशकों (एफआईआई) द्वारा निवेश, **(ii)** वैश्विक डिपॉजिटरी रसीदों (जीडीआर) और ख) विदेशी मुद्रा परिवर्तनीय बांड (एफसीसीबी) में निवेश हो सकता

है।

विदेशी सहायता: विदेशी सहायता विभिन्न उद्देश्यों के लिए एक देश द्वारा दूसरे देश को प्रदान की जाने वाली वित्तीय सहायता, संसाधन या अनुदान को संदर्भित करती है। इसका उद्देश्य आर्थिक विकास का समर्थन करना, गरीबी को कम करना, मानवीय संकटों को संबोधित करना या विशिष्ट परियोजनाओं का समर्थन करना है। विदेशी सहायता ऋण, अनुदान या तकनीकी सहायता के रूप में हो सकती है।

1. **ऋण:** विदेशी सहायता ऋण एक देश द्वारा दूसरे देश को पुनर्भुगतान की उम्मीद के साथ प्रदान की जाने वाली धनराशि है, अक्सर एक निर्दिष्ट अवधि में ब्याज के साथ। ये ऋण आम तौर पर रियायती होते हैं, जिसका अर्थ है कि वाणिज्यिक ऋणों की तुलना में उनकी ब्याज दरें कम हैं या लंबी चुकौती अवधि है।

2. **अनुदान:** विदेशी सहायता अनुदान पुनर्भुगतान की उम्मीद के बिना एक देश द्वारा दूसरे देश को प्रदान किए गए वित्तीय योगदान हैं। अनुदान अक्सर विशिष्ट परियोजनाओं या कार्यक्रमों के लिए दिए जाते हैं जो दाता देश के विकास उद्देश्यों के साथ संरेखित होते हैं।



निजी विदेशी निवेशः निजी विदेशी निवेश निजी संस्थाओं, जैसे व्यक्तियों, निगमों या संस्थागत निवेशकों द्वारा एक देश से दूसरे देश में किए गए पूंजी निवेश को संदर्भित करता है। इसमें प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) और विदेशी पोर्टफोलियो निवेश (एफपीआई) शामिल हैं। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI) तब होता है जब एक विदेशी निवेशक किसी अन्य देश में स्थित व्यावसायिक उद्यम में स्थायी रुचि प्राप्त करता है। एफडीआई में प्रत्यक्ष स्वामित्व हिस्सेदारी शामिल है, जिससे निवेशक को व्यवसाय के संचालन पर महत्वपूर्ण नियंत्रण और प्रभाव मिलता है।

कुल मिलाकर, विदेशी सहायता और निजी विदेशी निवेश देशों के आर्थिक विकास में आवश्यक भूमिका निभाते हैं, पूंजी प्रवाह, ज्ञान हस्तांतरण और प्रौद्योगिकी विनिमय की सुविधा प्रदान करते हैं। इस प्रकार की विदेशी पूंजी का संयोजन दाता और प्राप्तकर्ता दोनों देशों में विकास और समृद्धि को बढ़ावा देने में योगदान कर सकता है।

12.4 विदेशी प्रत्यक्ष निवेश

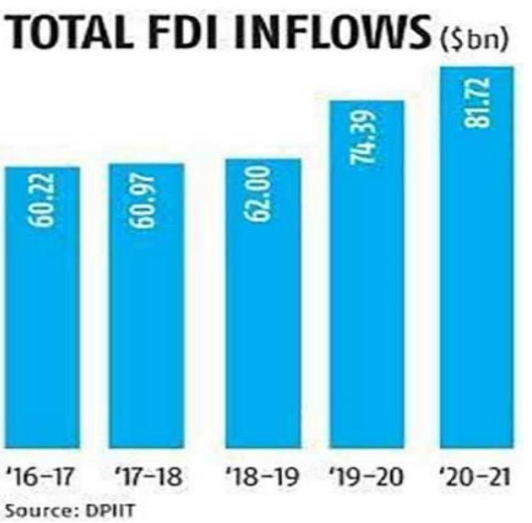
भारत में विदेशी निवेश आर्थिक वृद्धि और विकास का एक महत्वपूर्ण चालक रहा है। पिछले कुछ वर्षों में, भारत ने वैश्विक आर्थिक स्थितियों, घरेलू नीतियों और निवेशकों की भावना से प्रभावित विदेशी निवेश प्रवाह में अलग–अलग रुझान देखे हैं। विदेशी निवेश के रुझानों का विश्लेषण विभिन्न अवधियों के माध्यम से किया जा सकता हैः

क) प्रारंभिक उदारीकरण चरण (1990 का दशक): 1990 के दशक की शुरुआत में, भारत ने आर्थिक उदारीकरण के मार्ग पर चलना शुरू किया, अपनी अर्थव्यवस्था को विदेशी निवेश के लिए खोल दिया। इस चरण के दौरान, एफडीआई प्रवाह धीरे–धीरे बढ़ने लगा क्योंकि विदेशी निवेशकों ने भारत के बड़े और बढ़ते बाजार के साथ–साथ इसके कुशल कार्यबल में क्षमता देखी।

ख) स्थिर विकास चरण (2000 के दशक): 2000 के दशक में, भारत में विदेशी निवेश ने एक स्थिर विकास प्रक्षेपवक्र देखा। एशियाई बाजार में उपस्थिति स्थापित करने की मांग करने वाले बहुराष्ट्रीय निगमों के लिए देश एक आकर्षक गंतव्य बन गया। भारत के सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) और आईटी–सक्षम सेवा (आईटीईएस) क्षेत्रों के साथ–साथ इसके तेजी से बढ़ते दूरसंचार उद्योग ने महत्वपूर्ण एफडीआई प्रवाह को आकर्षित किया।

ग) एफडीआई अंतर्वाह में वृद्धि (2000 के दशक के अंत से 2010 के दशक की शुरुआत तक): 2000 के दशक के अंत से 2010 के दशक की शुरुआत तक, भारत ने अनुकूल आर्थिक परिस्थितियों, मजबूत घरेलू मांग और नीतिगत सुधारों से प्रेरित एफडीआई प्रवाह में वृद्धि का अनुभव किया। भारत सरकार ने विभिन्न क्षेत्रों में एफडीआई मानदंडों को और आसान बना दिया, जिससे अधिक विदेशी निवेशकों को देश में अवसरों का पता लगाने के लिए प्रोत्साहित किया गया।

घ) मध्यम विकास और नीतिगत परिवर्तन (2010 के दशक के मध्य से): 2010 के दशक के मध्य में, एफडीआई प्रवाह में वृद्धि जारी रही, हालांकि अधिक मध्यम गति से। सरकार ने भारत में व्यापार करने में आसानी में सुधार के लिए विभिन्न नीतिगत परिवर्तनों और पहलों को लागू किया, जिसने विदेशी निवेश भावना को सकारात्मक रूप से प्रभावित किया।



भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के संकलन संबंधी समिति (अक्तूबर, 2002) के अनुसार प्रत्यक्ष विदेशी निवेश वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक देश (गृह देश) के निवासी दूसरे देश (मेजबान देश) में किसी फर्म के उत्पादन, वितरण और अन्य गतिविधियों को नियंत्रित करने के उद्देश्य से परिसंपत्तियों का स्वामित्व प्राप्त करते हैं।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश किसी अन्य देश के निवेशक द्वारा किसी व्यवसाय में निवेश है जिसके लिए खरीदी गई कंपनी पर विदेशी निवेशक का नियंत्रण होता है। इसे एक अर्थव्यवस्था में एक निवासी द्वारा दूसरी कंपनी में उद्यम में किए गए सीमा पार निवेश के रूप में भी परिभाषित किया गया है। एफडीआई किसी अन्य देश में स्थित कंपनी द्वारा किसी देश में उत्पादन में प्रत्यक्ष निवेश है, या तो लक्षित देश में एक कंपनी खरीदकर या उस देश में मौजूदा व्यवसाय के संचालन का विस्तार करके। भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश विभिन्न क्षेत्रों में फैला हुआ है, कुछ उद्योग दूसरों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण प्रवाह आकर्षित करते हैं। विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम (फेमा) के तहत 1991 में विदेशी निवेश की शुरुआत की गई थी , जिसे तत्कालीन वित्त मंत्री मनमोहन सिंह ने संचालित किया था। भारत ने विदेशी कॉर्पोरेट निकायों (ओसीबी) को भारत में निवेश करने की अनुमति नहीं दी।

भारत ने विभिन्न क्षेत्रों में विदेशी निवेशकों द्वारा इक्विटी होल्डिंग पर सीमा लगाई, विमानन और बीमा क्षेत्रों में वर्तमान एफडीआई अधिकतम 49ः तक सीमित है। 2012 के अंकटाड (UNCTAD) सर्वेक्षण ने 2010–2012 के दौरान अंर्तराष्ट्रीय निगमों के लिए भारत को दूसरे सबसे महत्वपूर्ण एफडीआई गंतव्य (चीन के बाद) के रूप में पेश किया। आंकड़ों के अनुसार सेवा, दूरसंचार, निर्माण गतिविधियां और कंप्यूटर सॉफ्टवेयर तथा हार्डवेयर जैसे क्षेत्रों में अधिक निवेश आया। मॉरीशस, सिंगापुर, अमेरिका और ब्रिटेन एफडीआई के प्रमुख स्रोतों में से थे। अंकटाड के आंकड़ों के आधार पर एफडीआई प्रवाह 10.4 अरब डॉलर था, जो पिछले वर्ष की पहली छमाही से 43 प्रतिशत कम था। 2015 में, भारत चीन और अमेरिका को पीछे छोड़ते हुए शीर्ष एफडीआई गंतव्य के रूप में उभरा। भारत ने 31 अरब डॉलर का एफडीआई आकर्षित किया, जबकि चीन और अमेरिका ने क्रमशः 28 अरब डॉलर और 27 अरब डॉलर का एफडीआई आकर्षित किया। प्रमुख क्षेत्र जो पारंपरिक रूप से विदेशी निवेशकों द्वारा पसंद किए जाते हैं, उनमें शामिल हैंः

क) सेवा क्षेत्रः भारत का सेवा क्षेत्र, विशेष रूप से आईटी और आईटी–सक्षम सेवाएं, एफडीआई का एक प्रमुख प्राप्तकर्ता रहा है। देश के कुशल कार्यबल, अंग्रेजी बोलने वाली आबादी और तकनीकी क्षमताओं ने बहुराष्ट्रीय निगमों को भारत में सेवा–आधारित संचालन स्थापित करने के लिए आकर्षित किया है।

ख) दूरसंचारः भारत के दूरसंचार क्षेत्र ने अपनी विशाल बाजार क्षमता और उन्नत प्रौद्योगिकियों के रोलआउट के कारण पर्याप्त एफडीआई प्रवाह भी देखा है।

ग) ऑटोमोबाइल और विनिर्माणः ऑटोमोबाइल और विनिर्माण क्षेत्रों में विदेशी निवेश महत्वपूर्ण रहा है, जो भारत के बढ़ते उपभोक्ता आधार और निर्यात केंद्र के रूप में क्षमता से प्रेरित है।

डी) फार्मास्यूटिकल्सः भारत का फार्मास्युटिकल उद्योग, जो अपनी जेनेरिक दवा निर्माण क्षमताओं के लिए जाना जाता है, ने अनुसंधान, उत्पादन और निर्यात उद्देश्यों के लिए विदेशी निवेश को आकर्षित किया है।

ई) खुदरा और ई–कॉमर्स : भारत में खुदरा और ई–कॉमर्स क्षेत्र धीरे–धीरे विदेशी निवेश के लिए खुल रहे हैं, जो भारत के बढ़ते उपभोक्ता बाजार में प्रवेश करने की मांग करने वाले वैश्विक खिलाड़ियों को आकर्षित कर रहे हैं।

भारत में, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश निम्नलिखित रूप ले सकता हैः

(i) **पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनीः** इस रूप में, एक विदेशी निवेशक भारत में निगमित कंपनी के 100 प्रतिशत शेयरों का मालिक है। सहायक

कंपनी के संचालन और प्रबंधन पर विदेशी निवेशक का पूरा नियंत्रण होता है।

(ii) **संयुक्त उद्यमः** एक संयुक्त उद्यम में एक विदेशी निवेशक शामिल होता है जो एक नई व्यावसायिक इकाई स्थापित करने के लिए एक घरेलू कंपनी के साथ भागीदारी करता है। दोनों भागीदार पूंजी का योगदान करते हैं, जोखिम और पुरस्कार साझा करते हैं, और संयुक्त रूप से उद्यम का संचालन करते हैं।

(iii) **अधिग्रहणः** विदेशी निवेशक एक महत्वपूर्ण हिस्सेदारी या पूर्ण स्वामित्व खरीदकर मौजूदा भारतीय कंपनियों का अधिग्रहण कर सकते हैं। अधिग्रहण विदेशी कंपनियों के लिए भारत में उपस्थिति स्थापित करने और इसके बाजार तक पहुंचने का एक तेज तरीका हो सकता है।

12.5 पोर्टफोलियो निवेश

विदेशी पोर्टफोलियो निवेश (एफपीआई) विदेशी निवेशकों द्वारा वित्तीय संपत्तियों, जैसे स्टॉक, बॉन्ड और अन्य प्रतिभूतियों में निवेश को संदर्भित करता है, निवेशित कंपनी में महत्वपूर्ण नियंत्रण या स्वामित्व प्राप्त किए बिना। विदेशी पोर्टफोलियो प्रबंधन (एफपीएम) व्यक्तिगत और संस्थागत निवेशकों द्वारा विदेशी बाजारों में वित्तीय संपत्तियों, जैसे स्टॉक, बॉन्ड और अन्य प्रतिभूतियों में निवेश के प्रबंधन को संदर्भित करता है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) के विपरीत, जहां निवेशक व्यवसायों पर प्रत्यक्ष स्वामित्व और नियंत्रण प्राप्त करते हैं, एफपीएम में विदेशी देशों के वित्तीय बाजारों में अप्रत्यक्ष निवेश शामिल है।

विदेशी पोर्टफोलियो प्रबंधन के प्रमुख पहलुओं में शामिल हैं:

- एफपीएम में, निवेशकों के पास उन कंपनियों पर प्रत्यक्ष स्वामित्व या प्रबंधन नियंत्रण नहीं होता है जिनमें वे निवेश करते हैं। इसके बजाय, वे इन कंपनियों में स्वामित्व हिस्सेदारी का प्रतिनिधित्व करने वाले वित्तीय साधन खरीदते हैं, जैसे कि स्टॉक या बॉन्ड के शेयर।
- एफपीएम निवेशकों को भौगोलिक रूप से अपने निवेश पोर्टफोलियो में विविधता लाने का अवसर प्रदान करता है। विदेशी बाजारों में निवेश करके, निवेशक विभिन्न देशों, उद्योगों और परिसंपत्ति वर्गों में अपना जोखिम फैला सकते हैं।
- एफपीएम निवेशकों को अंतरराष्ट्रीय वित्तीय बाजारों में निवेश के अवसरों की एक विस्तृत श्रृंखला तक पहुंचने की अनुमति देता है। यह उन कंपनियों और परिसंपत्तियों को एक्सपोजर प्रदान करता है जो अपने घरेलू देशों में उपलब्ध नहीं हो सकते हैं, संभावित रूप से उच्च रिटर्न और बेहतर

जोखिम–समायोजित प्रदर्शन का कारण बन सकते हैं।

- मध्यस्थों के माध्यम से निवेशः निवेशक म्यूचुअल फंड, एक्सचेंज ट्रेडेड फंड (ईटीएफ) और निवेश फर्मों जैसे विभिन्न मध्यस्थों के माध्यम से एफपीएम में भाग ले सकते हैं। ये मध्यस्थ निवेशकों की ओर से पोर्टफोलियो का प्रबंधन करते हैं, सूचित निवेश निर्णय लेने के लिए विशेषज्ञता और अनुसंधान प्रदान करते हैं।

- एफपीएम निवेशकों को मुद्रा जोखिमों के लिए उजागर करता है। विनिमय दरों में उतार–चढ़ाव विदेशी निवेश के मूल्य को प्रभावित कर सकता है जब निवेशक की घरेलू मुद्रा में वापस परिवर्तित हो जाता है। मुद्रा जोखिम विदेशी पोर्टफोलियो प्रबंधन के लिए जटिलता की एक और परत जोड़ता है।

- विदेशी पोर्टफोलियो प्रबंधकों को निवेशक के गृह देश और विदेशी देश दोनों की नियामक आवश्यकताओं का पालन करना चाहिए जिसमें वे निवेश करते हैं। विभिन्न देशों में विदेशी निवेश पर अलग–अलग नियम और प्रतिबंध हो सकते हैं, जिन्हें पोर्टफोलियो प्रबंधकों को नेविगेट करने की आवश्यकता होती है।

- विदेशी बाजारों को घरेलू बाजारों की तुलना में उच्च अस्थिरता और कम तरलता का अनुभव हो सकता है। निवेशकों को निवेश निर्णय लेते समय और अपने पोर्टफोलियो का प्रबंधन करते समय इन कारकों पर विचार करने की आवश्यकता होती है।

- विदेशी पोर्टफोलियो निवेश निवेशक के गृह देश और विदेशी देश दोनों में कर निहितार्थ के अधीन हो सकता है। टैक्स संधियों और विदहोल्डिंग टैक्स पर नियम निवेशकों के लिए शुद्ध रिटर्न को प्रभावित कर सकते हैं।

- निवेशकों को विदेशी निवेश से धन को अपने देश वापस भेजने की प्रक्रियाओं और प्रतिबंधों के बारे में पता होना चाहिए। कुछ देश पूंजी नियंत्रण लागू कर सकते हैं या धन प्रत्यावर्तन की आसानी को सीमित कर सकते हैं।

विदेशी पोर्टफोलियो प्रबंधन निवेशकों को वैश्विक आर्थिक विकास से लाभ उठाने और अपने निवेश जोखिमों में विविधता लाने की अनुमति देता है। हालांकि, यह मुद्रा जोखिम, नियामक जटिलताओं और बाजार की अस्थिरता जैसी चुनौतियों के साथ भी आता है। इसलिए, एफपीएम में भाग लेने के इच्छुक निवेशकों को पूरी तरह से शोध करना चाहिए, उनकी जोखिम सहिष्णुता पर विचार करना चाहिए, और सूचित निर्णय लेने और अपने निवेश परिणामों को अनुकूलित करने के लिए वित्तीय पेशेवरों से सलाह लेनी चाहिए।

भारत में, विदेशी पोर्टफोलियो निवेश निम्नलिखित रूप ले सकता हैः

(i) अनिवासी भारतीयों (एनआरआई) सहित विदेशी संस्थागत निवेशकों (एफआईआई) द्वारा निवेशः एफआईआई और एनआरआई स्टॉक और बॉन्ड खरीदकर भारतीय वित्तीय बाजारों में निवेश करते हैं। वे निवेश ति कंपनियों के प्रबंधन में सक्रिय रूप से भाग नहीं लेते हैं।

(ii) ग्लोबल डिपॉजिटरी रिसीट्स (जीडीआर) और विदेशी मुद्रा परिवर्तनीय बांड (एफसीसीबी) में निवेशः भारतीय कंपनियां विदेशी निवेशकों से पूंजी जुटाने के लिए जीडीआर या एफसीसीबी जारी कर सकती हैं। जीडीआर अंतरराष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंजों पर सूचीबद्ध हैं, और एफसीसीबी को बाद की तारीख में इक्विटी शेयरों में परिवर्तित किया जा सकता है।

12.6 विदेशी पूंजी की भूमिका

विदेशी पूंजी की भूमिका दुनिया भर के देशों के आर्थिक परिदृश्य को आकार देने में महत्वपूर्ण है। विदेशी पूंजी वित्तीय निवेश और संसाधनों को संदर्भित करती है जो अपनी सीमाओं के बाहर स्थित विदेशी संस्थाओं से देश में प्रवाहित होते हैं। यह प्राप्तकर्ता (मेजबान) और प्रदाता (घरेलू) देशों दोनों में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जो उनकी अर्थव्यवस्थाओं के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करता है। विदेशी पूंजी की कुछ प्रमुख भूमिकाएं यहां दी गई हैं। आइये इन्हें सूचिबद्ध समझने का प्रयास करेंः–

i. **आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करनाः** विदेशी पूंजी, विशेष रूप से विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एफडीआई), मेजबान देशों में आर्थिक विकास के लिए उत्प्रेरक के रूप में कार्य कर सकता है। एफडीआई नई पूंजी, प्रौद्योगिकी, प्रबंधकीय विशेषज्ञता और नए बाजारों तक पहुंच लाता है। ये कारक औद्योगिकीकरण, उत्पादकता और रोजगार सृजन में वृद्धि में योगदान करते हैं, समग्र आर्थिक विकास को बढ़ावा देते हैं।

ii. **बुनियादी ढांचे का विकासः** विकासशील देशों में बुनियादी ढांचा परियोजनाओं के वित्तपोषण में विदेशी पूंजी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। परिवहन, संचार, ऊर्जा और उपयोगिताओं जैसे क्षेत्रों में निवेश एक राष्ट्र की प्रतिस्पर्धात्मकता, कनेक्टिविटी और उत्पादकता को बढ़ा सकता है।

iii. **तकनीकी उन्नति को बढ़ावा देनाः** एफडीआई में अक्सर घर देश से मेजबान देश में उन्नत प्रौद्योगिकियों और ज्ञान का हस्तांतरण शामिल होता है। यह प्रौद्योगिकी हस्तांतरण घरेलू उद्योगों को बढ़ावा दे सकता है, उत्पाद की

गुणवत्ता में सुधार कर सकता है, और नवाचार और अनुसंधान और विकास गतिविधियों को प्रोत्साहित कर सकता है।

iv. **भुगतान संतुलन को संतुलित करना:** विदेशी सहायता और एफडीआई सहित विदेशी पूंजी का प्रवाह, प्राप्तकर्ता देश में भुगतान घाटे के संतुलन को संबोधित करने में मदद कर सकता है। विदेशी मुद्रा लाकर, यह आयात के लिए भुगतान करने की देश की क्षमता में सुधार कर सकता है, विदेशी ऋण ों पर निर्भरता कम कर सकता है, और मुद्रा को मजबूत कर सकता है।

v. **निर्यात क्षमता बढ़ाना:** विदेशी पूंजी निवेश मेजबान देशों को निर्यात–उन्मुख उद्योगों को विकसित करने और वैश्विक मूल्य श्रृंखलाओं में भाग लेने में सक्षम बना सकता है। यह बदले में, निर्यात आय को बढ़ावा दे सकता है और विदेशी मुद्रा भंडार बढ़ा सकता है।

vi. **रोजगार सृजन और मानव पूंजी विकास:** विदेशी पूंजी निवेश मेजबान देश में नौकरी के अवसर पैदा करता है, गरीबी में कमी और जीवन स्तर को बढ़ाने में योगदान देता है। इसके अतिरिक्त, यह स्थानीय कार्यबल के लिए कौशल विकास और ज्ञान हस्तांतरण का कारण बन सकता है।

vii. **वित्तीय बाजार विकास:** विदेशी पोर्टफोलियो निवेश, जैसे स्टॉक और बॉन्ड में निवेश, मेजबान देश में वित्तीय बाजारों की तरलता और गहराई को बढ़ा सकता है। यह घरेलू कंपनियों को निवेशकों के एक व्यापक पूल तक पहुंच प्रदान कर सकता है, जिससे वित्त पोषण के अवसर बढ़ सकते हैं।

viii. **प्रतिस्पर्धा और दक्षता को प्रोत्साहित करना:** विदेशी पूंजी अक्सर घरेलू बाजारों में प्रतिस्पर्धा लाती है, जिससे दक्षता और उत्पादकता में वृद्धि होती है। घरेलू कंपनियों को विदेशी संस्थाओं के साथ प्रभावी ढंग से प्रतिस्पर्धा करने के लिए अपने परिचालन में सुधार करने के लिए दबाव का सामना करना पड़ सकता है।

ix. **क्षेत्रीय एकीकरण और सहयोग:** विदेशी पूंजी क्षेत्रीय आर्थिक एकीकरण और सहयोग को बढ़ावा देती है। यह देशों के बीच सीमा पार व्यापार, निवेश और आर्थिक साझेदारी को प्रोत्साहित करता है, साझा आर्थिक हितों और स्थिरता को बढ़ावा देता है।

x. **वैश्विक आर्थिक एकीकरण:** वैश्विक आर्थिक एकीकरण के लिए विदेशी पूंजी प्रवाह आवश्यक है। वे अंर्तराष्ट्रीय व्यापार, निवेश और आर्थिक सहयोग की सुविधा प्रदान करते हैं, जिससे देशों के बीच अधिक अन्योन्याश्रितता और परस्पर संबंध होता है।

जबकि विदेशी पूंजी कई लाभ प्रदान करती है, यह चुनौतियों और जोखिमों को भी प्रस्तुत करती है। इनमें विदेशी निवेश पर निर्भरता, संभावित लाभ प्रत्यावर्तन, मुद्रा में उतार–चढ़ाव और नियामक जटिलताओं के बारे में चिंताएं शामिल हैं। जैसे, मेजबान देशों को संभावित जोखिमों को कम करते हुए विदेशी पूंजी के लाभों को अधिकतम करने के लिए ठोस नीतियों, नियमों और निगरानी तंत्र को अपनाने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, विदेशी पूंजी द्वारा सुविधाजनक स्थायी और समावेशी आर्थिक विकास सुनिश्चित करने के लिए वैश्विक सहयोग और जिम्मेदार निवेश प्रथाएं महत्वपूर्ण हैं।भारत एक विकासशील राष्ट्र है, जो विश्व अर्थव्यवस्था में सीढ़ी पर अपना रास्ता बनाने की कोशिश कर रहा है। अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, इसे राष्ट्रीय और अंर्तराष्ट्रीय दोनों तरह के निवेश की आवश्यकता होती है। विदेशी पूंजी, जबकि कई मायनों में फायदेमंद है, कुछ कमियों और जोखिमों के साथ भी आती है जो मेजबान देश की अर्थव्यवस्था और विकास को प्रभावित कर सकती हैं। विदेशी पूंजी की कुछ प्रमुख कमियां हैं:

1. **अस्थिरता** : विदेशी पूंजी प्रवाह अस्थिर हो सकता है और अचानक परिवर्तन के अधीन हो सकता है। वैश्विक आर्थिक स्थितियों, ब्याज दरों और निवेशकों की भावना में परिवर्तन जैसे बाहरी कारक विदेशी निवेश में महत्वपूर्ण उतार–चढ़ाव का कारण बन सकते हैं, जो मेजबान देश के वित्तीय बाजारों को अस्थिर कर सकते हैं।

2. **निर्भरता और भेद्यता**: विदेशी पूंजी पर अत्यधिक निर्भरता मेजबान देश के लिए निर्भरता और भेद्यता पैदा कर सकती है। विदेशी निवेश या ऋण पर भारी निर्भरता देश को बाहरी झटकों के लिए उजागर कर सकती है और इसे वैश्विक आर्थिक मंदी के लिए अधिक संवेदनशील बना सकती है।

3. **पूंजी उड़ान की संभावना**: आर्थिक अनिश्चितता या अस्थिरता के समय में, विदेशी निवेशक मेजबान देश से अपनी पूंजी को तेजी से वापस लेने का विकल्प चुन सकते हैं। यह पूंजी पलायन वित्तीय संकट को बढ़ा सकता है और मुद्रा मूल्यह्रास और आर्थिक उथल–पुथल का कारण बन सकता है।

4. **मुद्रा जोखिम**: विदेशी पूंजी प्रवाह मेजबान देश की मुद्रा विनिमय दर में उतार–चढ़ाव का कारण बन सकता है। विनिमय दर में अचानक परिवर्तन निर्यात प्रतिस्पर्धा, आयात लागत और भुगतान के समग्र संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है।

5. **आर्थिक असंतुलन**: मेजबान देश के भीतर क्षेत्रों या क्षेत्रों में विदेशी पूंजी

का असमान वितरण आर्थिक असंतुलन का कारण बन सकता है। कुछ उद्योगों या क्षेत्रों पर अतिनिर्भरता अन्य क्षेत्रों की उपेक्षा कर सकती है, संभावित रूप से समग्र आर्थिक विविधीकरण और सतत विकास में बाधा डाल सकती है।

6. **मुनाफे का प्रत्यावर्तनः** विदेशी निवेशक अपने मुनाफे का एक महत्वपूर्ण हिस्सा अपने घरेलू देशों में वापस भेज सकते हैं, जिससे मेजबान देश की अर्थव्यवस्था में कमाई का प्रतिधारण कम हो जाता है। यह स्थानीय विकास और आर्थिक विकास के लिए मुनाफे के पुनर्निवेश को सीमित कर सकता है।

7. **दोहरी अर्थव्यवस्थाः** विदेशी पूंजी प्रवाह एक दोहरी अर्थव्यवस्था के निर्माण में योगदान कर सकता है, जिसमें उन क्षेत्रों के बीच असमानताएं हैं जो विदेशी निवेश को आकर्षित करते हैं और जो नहीं करते हैं। यह दोहरी अर्थव्यवस्था आय असमानता और सामाजिक तनाव को जन्म दे सकती है।

8. **नियामक और राजनीतिक जोखिमः** मेजबान देश के नियमों, कराधान नीतियों या राजनीतिक अस्थिरता में परिवर्तन विदेशी निवेशकों के विश्वास और निवेश निर्णयों को प्रभावित कर सकते हैं। नियामक वातावरण के बारे में अनिश्चितता संभावित निवेशकों को रोक सकती है।

9. **पर्यावरण और सामाजिक चिंताएंः** कुछ मामलों में, विदेशी निवेश पर्यावरणीय गिरावट या सामाजिक मुद्दों को जन्म दे सकता है, जैसे कि भूमि अधिग्रहण विवाद या स्थानीय समुदायों का विस्थापन। इन चिंताओं को कम करने के लिए जिम्मेदार और टिकाऊ निवेश सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण हो जाता है।

10. **ऋण बोझः** विदेशी ऋणों पर अतिनिर्भरता मेजबान देश के लिए बढ़ते ऋण बोझ का कारण बन सकती है, खासकर यदि उधार ली गई धनराशि का कुशलतापूर्वक या उत्पादक उद्देश्यों के लिए उपयोग नहीं किया जाता है। उच्च ऋण स्तर के परिणामस्वरूप ऋण–सेवा चुनौतियां हो सकती हैं, जिससे संभावित ऋण संकट हो सकता है।

विदेशी पूंजी की कमियों को संबोधित करने के लिए प्रभावी नीतियों और नियमों की आवश्यकता होती है जो विदेशी निवेश को आकर्षित करने और मेजबान देश के आर्थिक हितों की रक्षा के बीच संतुलन बनाते हैं। मजबूत राजकोषीय और मौद्रिक नीतियां, पारदर्शी निवेश ढांचे, और अर्थव्यवस्था में विविधता लाने के प्रयास विदेशी पूंजी प्रवाह से जुड़े जोखिमों को कम करने और टिकाऊ और समावेशी

आर्थिक विकास सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हैं।

12.7 सरकारी नीति

आइये यह जानने का प्रयास करे कि हमारी केन्द्रीय सरकार ने किस प्रकार की सरकारी नीतियों की संरचना की है। इन्हें हम निम्नलिखित सम्दर्भित कर सकते है–

1. इलेक्ट्रॉनिक्स विनिर्माण के लिए 2020 में उत्पादन से जुड़ी प्रोत्साहन (पीएलआई) योजना जैसी सरकारी योजनाओं को विदेशी निवेश आकर्षित करने के लिए अधिसूचित किया गया है।
2. 2019 में, सरकार द्वारा एफडीआई नीति 2017 में संशोधन, कोयला खनन गतिविधियों में स्वचालित मार्ग के तहत 100% एफडीआई की अनुमति देने के लिए एफडीआई प्रवाह में वृद्धि हुई।
3. विनिर्माण में एफडीआई पहले से ही 100% स्वचालित मार्ग के तहत था, हालांकि, 2019 में, सरकार ने स्पष्ट किया कि अनुबंध विनिर्माण में लगी भारतीय संस्थाओं में निवेश को भी 100% स्वचालित मार्ग के तहत अनुमति दी गई है, बशर्ते यह एक वैध अनुबंध के माध्यम से किया गया हो।
4. इसके अलावा, सरकार ने डिजिटल क्षेत्रों में 26% एफडीआई की अनुमति दी। इस क्षेत्र में भारत में विशेष रूप से उच्च रिटर्न क्षमताएं हैं क्योंकि अनुकूल जनसांख्यिकी, पर्याप्त मोबाइल और इंटरनेट पैठ, प्रौद्योगिकी अपटेक के साथ बड़े पैमाने पर खपत एक विदेशी निवेशक के लिए महान बाजार अवसर प्रदान करती है।
5. विदेशी निवेश सुविधा पोर्टल (एफआईएफपी) एफडीआई की सुविधा के लिए निवेशकों के साथ भारत सरकार का ऑनलाइन एकल बिंदु इंटरफेस है। यह वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय के उद्योग और आंतरिक व्यापार संवर्धन विभाग द्वारा प्रशासित है।
6. एफडीआई प्रवाह में और वृद्धि होने की उम्मीद है क्योकिः–

- चूंकि विदेशी निवेशकों ने निजी ट्रेन संचालन की अनुमति देने और हवाई अड्डों के लिए बोली लगाने के सरकार के कदमों में रुचि दिखाई है।
- रक्षा विनिर्माण जैसे मूल्यवान क्षेत्र, जहां सरकार ने मई 2020 में स्वचालित मार्ग के तहत एफडीआई सीमा को 4%: से बढ़ाकर 74% कर दिया है, से भी आगे चलकर बड़े निवेश को आकर्षित करने की उम्मीद है।

भारत में FDI के लिए नियामक ढांचा भी बडा ही सुव्यवस्थित ढंग से निर्मित

किया गया है।

भारत में, एफडीआई प्रवाह को विनियमित करने वाले कई कानून हैं। आइये इन्हें क्रमशः सूचिबद्ध करें:–

1. कंपनी अधिनियम
2. भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड अधिनियम, 1992 और सेबी विनियम
3. विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम (फेमा)
4. विदेश व्यापार (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1992
5. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908
6. भारतीय संविदा अधिनियम, 1872
7. मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996
8. प्रतिस्पर्धा अधिनियम, 2002
9. आयकर अधिनियम, 1961
10 प्रत्यक्ष विदेशी निवेश नीति (एफडीआई नीति)

12.8 संयुक्त उद्यम अर्थ

भारतीय अर्थव्यवस्था में संयुक्त उद्यम की महत्ता उसके द्वारा भारतीय जी0 डी0 पी0 में किए जा रहें योगदान से आकि जा सकती हैं। आइये इस अवधारणा को विस्तार से समझनें का प्रयास करें :–

12.8.1 अर्थ

एक संयुक्त उद्यम (जेवी) एक व्यावसायिक व्यवस्था है जहां दो या दो से अधिक अलग–अलग संस्थाएं या कंपनियां एक विशिष्ट परियोजना पर सहयोग करने या किसी विशेष व्यावसायिक गतिविधि को करने के लिए एक साथ आती हैं। संयुक्त उद्यम में शामिल संस्थाएं परियोजना से जुड़े जोखिम, लागत और पुरस्कार साझा करते हुए उद्यम में संसाधन, विशेषज्ञता और पूंजी का योगदान करती हैं। एक संयुक्त उद्यम की प्रमुख विशेषताओं में निम्नलिखित को विशेष रूप से सम्मिलित किया जाता है :–

1. **साझा स्वामित्वः** भाग लेने वाली संस्थाएं संयुक्त उद्यम के स्वामित्व और नियंत्रण को साझा करती हैं। यह साझा स्वामित्व उन्हें निर्णय लेने की प्रक्रिया में समान रूप से कहने की अनुमति देता है।

2. **साझा लाभ और हानिः** संयुक्त उद्यम से उत्पन्न लाभ और हानि प्रत्येक पार्टी द्वारा सहमत शर्तों और योगदान के अनुसार भागीदारों के बीच वितरित की जाती है।

3. सीमित अवधिः संयुक्त उद्यम अक्सर एक विशिष्ट उद्देश्य या परियोजना के लिए स्थापित किए जाते हैं और इसमें एक परिभाषित जीवनकाल या समाप्ति खंड हो सकता है।

4. **अलग कानूनी इकाईः** कई मामलों में, संयुक्त उद्यमों को अलग–अलग कानूनी संस्थाओं के रूप में बनाया जाता है, जैसे कि निगम या साझेदारी, मूल कंपनियों को संयुक्त उद्यम के संचालन से उत्पन्न देनदारियों से बचाने के लिए।

5. **साझा जोखिम और जिम्मेदारियांः** भाग लेने वाली संस्थाएं परियोजना में शामिल जोखिम और जिम्मेदारियों दोनों को साझा करती हैं। यह साझा जोखिम संभावित चुनौतियों को कम करने के लिए प्रत्येक पार्टी की विशेषज्ञता का लाभ उठाने में मदद करता है।

संयुक्त उद्यम निम्नलिखित कारणों से बनाए जा सकते हैं। आइये इन्हें बिन्दुवार करते हुए समझने का प्रयास करें :–

1. **नए बाजारों तक पहुंचः** कंपनियां उन बाजारों तक पहुंचने के लिए एक संयुक्त उद्यम में प्रवेश कर सकती हैं जिनसे वे परिचित नहीं हैं या अकेले प्रवेश करने के लिए आवश्यक बुनियादी ढांचा नहीं है।

2. **लागत और जोखिम साझाकरणः** अन्य कंपनियों के साथ सहयोग करने से वित्तीय बोझ को फैलाने और व्यक्तिगत जोखिम जोखिम को कम करने में मदद मिल सकती है।

3. तकनीकी या रणनीतिक तालमेलः कंपनियां अभिनव उत्पादों या सेवाओं को बनाने के लिए अपनी विशेषज्ञता और प्रौद्योगिकियों को संयोजित करने के लिए एक साथ आ सकती हैं।

4. **नियामक आवश्यकताएंः** कुछ मामलों में, कुछ उद्योगों या क्षेत्रों में विशिष्ट नियामक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए संयुक्त उद्यमों की आवश्यकता हो सकती है।

12.8.2 संयुक्त उद्यमों के प्रकार

भारतीय अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत संयुक्त उद्यम मुख्य रूप से चार प्रकार के होते हैं। आइये इन्हें समझने का प्रयास करें :–

1. **परियोजना आधारित संयुक्त उद्यम** – जहां संयुक्त उद्यम कुछ विशिष्ट कार्य को पूरा करने के उद्देश्य से किया जाता है।

2. **कार्यक्षेत्र संयुक्त उद्यम** – जहां खरीदारों और आपूर्तिकर्ताओं के बीच संयुक्त उद्यम होता है।

3. **क्षैतिज संयुक्त उद्यम** – जहां संयुक्त उद्यम व्यवसाय की एक ही पंक्ति वाली कंपनियों के बीच होता है।

4. **कार्यात्मक–आधारित संयुक्त उद्यम** – जहां संयुक्त उद्यम तालमेल के कारण पारस्परिक लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से किया जाता है।

12.8.3 लाभ

संयुक्त उद्यमो के विभिन्न लाभ निम्निलिखित है :–

1. पैमाने की अर्थव्यवस्थाएं

संयुक्त उद्यम संगठनों को उनकी सीमित क्षमता के साथ स्केल करने में मदद करता है। एक संगठन की ताकत का उपयोग दूसरे द्वारा किया जा सकता है। यह दोनों संगठनों को मापनीयता की अर्थव्यवस्थाओं को उत्पन्न करने के लिए प्रतिस्पर्धात्मक लाभ देता है।

2. नए बाजारों और वितरण नेटवक्र तक पहुंच

जब एक संगठन दूसरे संगठन के साथ संयुक्त उद्यम में प्रवेश करता है, तो यह एक विशाल बाजार खोलता है जिसमें बढ़ने और विकसित होने की क्षमता होती है। उदाहरण के लिए, जब संयुक्त राज्य अमेरिका का एक संगठन भारत में स्थित किसी अन्य संगठन के साथ संयुक्त उद्यम में प्रवेश करता है, तो संयुक्त राज्य अमेरिका की कंपनी को भुगतान क्षमता और पसंद के विविधीकरण के विभिन्न रूपों के साथ विशाल भारतीय बाजारों तक पहुंचने का लाभ होता है।

साथ ही, भारतीय कंपनी को संयुक्त राज्य अमेरिका के बाजारों तक पहुंचने का लाभ है जो भौगोलिक रूप से बिखरे हुए हैं और अच्छी भुगतान क्षमता है जहां उत्पाद की गुणवत्ता से समझौता नहीं किया जाता है। अद्वितीय भारतीय उत्पादों के दुनिया भर में बड़े बाजार हैं।

3. नवाचार

संयुक्त उद्यम प्रौद्योगिकी के संबंध में उत्पादों और सेवाओं को अपग्रेड करने के लिए एक अतिरिक्त लाभ देते हैं। विपणन विभिन्न अभिनव प्लेटफार्मों के साथ किया जा सकता है और तकनीकी उन्नयन कुशल लागत पर अच्छे

उत्पाद बनाने में मदद करता है। अंतरराष्ट्रीय कंपनियां लागत कम करने और बेहतर गुणवत्ता वाले उत्पाद प्रदान करने के लिए नए विचारों और प्रौद्योगिकी के साथ आ सकती हैं।

4. उत्पादन की कम लागत

जब दो या दो से अधिक कंपनियां एक साथ हाथ मिलाती हैं, तो मुख्य उद्देश्य उत्पादों को सबसे कुशल मूल्य पर प्रदान करना है। और यह तब किया जा सकता है जब उत्पादन की लागत कम की जा सकती है या सेवाओं की लागत का प्रबंधन किया जा सकता है। एक वास्तविक संयुक्त उद्यम का उद्देश्य केवल अपने उपभोक्ताओं को सर्वोत्तम उत्पाद और सेवाएं प्रदान करना है।

5. ब्रांड नाम

संयुक्त उद्यम के लिए एक अलग ब्रांड नाम बनाया जा सकता है। यह ब्रांड को एक विशिष्ट रूप और पहचान देने में मदद करता है। जब दो पक्ष एक संयुक्त उद्यम में प्रवेश करते हैं, तो बाजार में पहले से ही स्थापित एक कंपनी की सद्भावना का उपयोग बाजार में अन्य खिलाड़ियों पर प्रतिस्पर्धात्मक लाभ प्राप्त करने के लिए दूसरे संगठन द्वारा किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, यूरोप का एक बड़ा ब्रांड एक भारतीय कंपनी के साथ एक संयुक्त उद्यम में प्रवेश करता है, जो एक सहक्रियात्मक लाभ देगा क्योंकि ब्रांड पहले से ही दुनिया भर में स्थापित है।

6. प्रौद्योगिकी तक पहुंच

प्रौद्योगिकी संगठनों के लिए एक संयुक्त उद्यम में प्रवेश करने का एक आकर्षक कारण है। उत्पादों की बेहतर गुणवत्ता का उत्पादन करने के लिए एक संगठन के साथ उन्नत तकनीक बहुत समय, ऊर्जा और संसाधनों की बचत करती है। एक ऐसी तकनीक बनाने के लिए फिर से भारी राशि के निवेश के बिना, जो पहले से ही अस्तित्व में है, उसी तकनीक तक पहुंच केवल तभी की जा सकती है जब कंपनियां संयुक्त उद्यम में प्रवेश करती हैं और प्रतिस्पर्धात्मक लाभ देती हैं।

12.8.4 हानि

जबकि संयुक्त उद्यम विभिन्न लाभ प्रदान कर सकते हैं, वे कुछ नुकसान और चुनौतियों के साथ भी आते हैं जिनके बारे में प्रतिभागियों को पता होना चाहिए:

1. साझा नियंत्रण और निर्णय लेना: संयुक्त उद्यमों को भाग लेने वाली

संस्थाओं के बीच सहयोग और आम सहमति की आवश्यकता होती है। प्रबंधन शैलियों या निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में असहमति और मतभेद प्रगति को धीमा कर सकते हैं या संघर्ष का कारण बन सकते हैं।

2. **हितों का संभावित टकरावः** चूंकि संयुक्त उद्यमों में अपने स्वयं के उद्देश्यों और प्राथमिकताओं के साथ अलग–अलग कंपनियां शामिल होती हैं, इसलिए भागीदारों के बीच परस्पर विरोधी हितों की संभावना होती है। ये संघर्ष संसाधन आवंटन, रणनीतिक दिशा या लाभ वितरण से संबंधित मामलों में उत्पन्न हो सकते हैं।

3. **साझेदार गैर–प्रदर्शन का जोखिमः** यदि भागीदारों में से एक अपने दायित्वों को पूरा करने में विफल रहता है या अपेक्षित योगदान नहीं देता है, तो यह संयुक्त उद्यम की समग्र सफलता को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है।

4. **संचालन में जटिलताः** एक संयुक्त उद्यम चलाना एक व्यक्तिगत कंपनी के प्रबंधन की तुलना में अधिक जटिल हो सकता है। विभिन्न संगठनात्मक संस्कृतियों, प्रणालियों और प्रक्रियाओं को एकीकृत करना परिचालन चुनौतियों का सामना कर सकता है।

5. **लाभ और नियंत्रण का साझाकरणः** जबकि लाभ साझा करना फायदेमंद हो सकता है, इसका मतलब यह भी है कि प्रत्येक भागीदार को उनके योगदान के लिए पुरस्कार का एक हिस्सा प्राप्त होता है। कुछ मामलों में, एक साथी महसूस कर सकता है कि उनके प्रयास उन्हें प्राप्त होने वाले लाभों से अधिक हैं।

6. **प्रतिस्पर्धात्मक लाभ का नुकसानः** कंपनियों को एक संयुक्त उद्यम में मालिकाना ज्ञान या प्रौद्योगिकियों को साझा करने की आवश्यकता हो सकती है, संभावित रूप से प्रतिस्पर्धी लाभ का नुकसान हो सकता है यदि इस जानकारी का उपयोग भागीदार द्वारा अन्य उद्देश्यों के लिए किया जाता है।

7. **बाहर निकलने की कठिनाइयांः** एक संयुक्त उद्यम को समाप्त करना जटिल हो सकता है, खासकर अगर इस बात पर असहमति है कि कैसे आगे बढ़ना है या यदि उद्यम में महत्वपूर्ण संपत्ति और देनदारियां हैं।

8. **भागीदार प्रदर्शन पर निर्भरताः** संयुक्त उद्यम की सफलता भागीदार कंपनियों के प्रदर्शन और प्रतिबद्धता पर भारी निर्भर हो सकती है। यदि एक भागीदार वित्तीय कठिनाइयों या अन्य मुद्दों का सामना करता है, तो यह समग्र उद्यम की व्यवहार्यता को प्रभावित कर सकता है।

9. **बौद्धिक संपदा संबंधी चिंताएं:** एक संयुक्त उद्यम में बौद्धिक संपदा और जानकारी साझा करने से बौद्धिक संपदा अधिकारों के स्वामित्व, लाइसेंस या संरक्षण से संबंधित मुद्दे हो सकते हैं।

10. **सीमित लचीलापन:** संयुक्त उद्यम पूर्ण स्वामित्व वाले उद्यमों की तुलना में कम लचीला हो सकता है, क्योंकि निर्णय लेने में अक्सर भागीदारों के बीच आम सहमति की आवश्यकता होती है।

इन नुकसानों के बावजूद, संयुक्त उद्यम अभी भी फायदेमंद हो सकते हैं यदि शामिल पार्टियां जोखिमों पर सावधानीपूर्वक विचार करती हैं, स्पष्ट समझौते स्थापित करती हैं, और पूरे सहयोग में खुले संचार को बनाए रखती हैं। संयुक्त उद्यम के जीवनकाल के दौरान उत्पन्न होने वाली संभावित चुनौतियों का सामना करने के लिए पूरी तरह से उचित परिश्रम करना और एक अच्छी तरह से परिभाषित निकास रणनीति रखना आवश्यक है।

12.8.5 भारतीय संयुक्त उद्यम

24 जुलाई, 1991 को नई औद्योगिक नीति के आगमन के साथ, भारत ने अपनी अर्थव्यवस्था को खोल दिया और भारत सरकार ने भारत में विदेशी निवेश की अनुमति दी। 1991 में, भारत ने आर्थिक उदारीकरण और संरचनात्मक सुधार किए, अपनी अर्थव्यवस्था को विदेशी निवेश के लिए खोला और व्यापार बाधाओं को कम किया। आर्थिक सुधारों की इस अवधि के कारण प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) में वृद्धि हुई और संयुक्त उद्यमों को पुनर्जीवित किया गया।

भारत सरकार ने विदेशी निवेश को आकर्षित करने, प्रौद्योगिकी हस्तांतरण को बढ़ावा देने और आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के साधन के रूप में संयुक्त उद्यमों को सक्रिय रूप से प्रोत्साहित किया। विदेशी कंपनियों ने संयुक्त उद्यमों को जटिल भारतीय बाजार और नियामक वातावरण को नेविगेट करने के लिए एक व्यवहार्य प्रवेश रणनीति के रूप में पाया, जबकि भारतीय कंपनियों को उन्नत प्रौद्योगिकियों और वैश्विक बाजारों तक पहुंच से लाभ हुआ।

1990 के दशक के दौरान और 2000 के दशक की शुरुआत में, संयुक्त उद्यमों ने भारत के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मोटर वाहन, फार्मास्यूटिकल्स, सूचना प्रौद्योगिकी, दूरसंचार और उपभोक्ता वस्तुओं जैसे क्षेत्रों में कई प्रमुख संयुक्त उद्यमों का गठन किया गया था।

समय के साथ, भारत ने अपने नियमों को सुव्यवस्थित करना और अपनी अर्थव्यवस्था को और उदार बनाना जारी रखा, जिससे विदेशी कंपनियों के लिए संयुक्त उद्यमों और सहयोग के अन्य रूपों में संलग्न होना अधिक आकर्षक हो

गया। संयुक्त उद्यम परिदृश्य विभिन्न मॉडलों को शामिल करने के लिए विकसित हुआ, जिसमें भारतीय कंपनियों और बहुराष्ट्रीय निगमों (एमएनसी) के बीच साझेदारी के साथ–साथ भारतीय फर्मों के बीच संयुक्त उद्यम शामिल हैं।

भारत में संयुक्त उद्यमों की स्थिति और प्रमुखता में आर्थिक नीतियों और बाजार स्थितियों में बदलाव के साथ उतार–चढ़ाव जारी रहा है। सितंबर 2021 में मेरे अंतिम अपडेट के अनुसार, संयुक्त उद्यम भारत में व्यापार सहयोग का एक प्रासंगिक और लोकप्रिय तरीका बना हुआ है, विशेष रूप से उन कंपनियों के लिए जो भारतीय बाजार तक पहुंचने या आपसी विकास के लिए एक–दूसरे की ताकत का लाभ उठाने की मांग कर रही हैं।

यह ध्यान देने योग्य है कि भारत में संयुक्त उद्यमों का इतिहास देश में व्यापक आर्थिक और राजनीतिक विकास के साथ निकटता से जुड़ा हुआ है। जैसा कि भारत प्रगति और विकास जारी रखता है, संयुक्त उद्यमों की भूमिका और महत्व बदलते व्यावसायिक परिदृश्य के अनुकूल होने की संभावना है।

इस परिवर्तन के आधार पर कई औद्योगिक क्षेत्र, जो बंद हो गए थे, घरेलू और विदेशी दोनों निवेश के लिए खोल दिए गए थे। तब से, सरकार ने पीछे मुड़कर नहीं देखा है, और वर्तमान में कई क्षेत्रों में विदेशी निगमों को निवेश करने की अनुमति है, जिससे विदेशी निगमों ने भारत में पूर्ण (100%) स्वामित्व वाली सहायक कंपनियों और संयुक्त उद्यमों की स्थापना की है। इन उपक्रमों में भारतीय और विदेशी दोनों कंपनियां शामिल हो सकती हैं जो भारतीय बाजार तक पहुंचने या किसी विशेष उद्योग में एक–दूसरे की ताकत का लाभ उठाने के लिए सहयोग कर सकती हैं।

भारत में संयुक्त उद्यम विभिन्न कानूनी संरचनाओं के माध्यम से स्थापित किए जा सकते हैं, जैसे कि सीमित देयता भागीदारी (एलएलपी), प्राइवेट लिमिटेड कंपनियां, या सार्वजनिक सीमित कंपनियां। विशिष्ट कानूनी रूप उद्यम की प्रकृति, इसमें शामिल उद्योग और भाग लेने वाली संस्थाओं की वरीयताओं पर निर्भर करेगा। भारत में संयुक्त उद्यम पर विचार करने वाली कंपनियों के लिए यह महत्वपूर्ण है कि वे पूरी तरह से जांच–पड़ताल करें, स्पष्ट उद्देश्यों को परिभाषित करें, और साझेदारी को नियंत्रित करने के लिए अच्छी तरह से तैयार किए गए समझौते स्थापित करें। सहयोग के कानूनी, वित्तीय और सांस्कृतिक पहलुओं को समझना संयुक्त उद्यम की सफलता के लिए महत्वपूर्ण है।

किसी भी व्यावसायिक व्यवस्था के साथ, संयुक्त उद्यमों में शामिल संभावित चुनौतियां और जोखिम हैं, जैसे प्रबंधन शैलियों में अंतर, परस्पर विरोधी हित और बौद्धिक संपदा अधिकारों से संबंधित मुद्दे। इसलिए, कंपनियों को भारत में किसी भी

संयुक्त उद्यम समझौते में प्रवेश करने से पहले व्यापक व्यवहार्यता अध्ययन करना चाहिए और कानूनी सलाह लेनी चाहिए।

12.9 बहुराष्ट्रीय निगम

भारतीय अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत एक प्रमुख क्षेत्र है; जिनमें बहुराष्ट्रीय निगमों का प्रमुख योगदान है;आइये इसके अवधारणा को समझने का प्रयास करें :–

12.9.1 परिभाषा

एक बहुराष्ट्रीय निगम को डनिंग द्वारा ''एक उद्यम के रूप में परिभाषित किया गया है जो विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एफडीआई) में संलग्न है और एक से अधिक देशों में मूल्य वर्धित गतिविधियों का मालिक है या नियंत्रित करता है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों की दो विशेषताएं हैंः (1) एक ही संरचना के भीतर कई उद्यमों का समन्वय (2) समन्वित गतिविधि राष्ट्रीय सीमाओं के पार होती है।

एक बहुराष्ट्रीय निगम (MNC) एक ऐसी कंपनी है जो अपने देश के साथ–साथ दुनिया भर के अन्य देशों में भी काम करती है। यह एक देश में स्थित एक केंद्रीय कार्यालय रखता है, जो अपने सभी अन्य कार्यालयों, जैसे प्रशासनिक शाखाओं या कारखानों के प्रबंधन का समन्वय करता है। निश्चित रूप से, मुझे सरल शब्दों में बहुराष्ट्रीय निगमों के विभिन्न मॉडलों की व्याख्या करने देंः

1. केंद्रीकृत मॉडलः इस मॉडल में, एक कंपनी अपने गृह देश में अपना मुख्य कार्यालय (मुख्यालय) स्थापित करती है। फिर, यह अन्य देशों में विनिर्माण संयंत्र और सुविधाएं स्थापित करता है। इस दृष्टिकोण का लाभ यह है कि कंपनी माल आयात करने पर कुछ करों और प्रतिबंधों से बच सकती है। इसके अतिरिक्त, यह उन अन्य देशों में उत्पादन की कम लागत से लाभ उठा सकता है।

- **शाखाएंः** केंद्रीकृत मॉडल में, शाखाओं को मुख्य मुख्यालय के विस्तार के रूप में विभिन्न देशों में स्थापित किया जा सकता है। ये शाखाएं बिक्री या वितरण जैसे विशिष्ट व्यावसायिक कार्यों को संभाल सकती हैं, जबकि मुख्य निर्णय लेने की प्रक्रिया केंद्रीकृत रहती है।

- **सहायक कंपनियांः** केंद्रीकृत मॉडल विशिष्ट संचालन के लिए विदेशों में अलग–अलग कानूनी संस्थाओं को स्थापित करने के लिए सहायक कंपनियों का उपयोग कर सकता है। हालांकि, अन्य मॉडलों की तुलना में स्वायत्तता की डिग्री सीमित हो सकती है।

2.क्षेत्रीय मॉडलः क्षेत्रीय मॉडल में, एक कंपनी का अभी भी अपने गृह देश में अपना

मुख्य मुख्यालय है, लेकिन यह विभिन्न देशों में कार्यालयों और सहायक कंपनियों के नेटवक्र की देखरेख करता है। ये सहायक कार्यालय मुख्य मुख्यालय को वापस रिपोर्ट करते हैं। यह मॉडल कंपनी को विभिन्न क्षेत्रों की विशिष्ट आवश्यकताओं और वरीयताओं की बेहतर समझ और अनुकूलन करने की अनुमति देता है।

- **शाखाएं**: क्षेत्रीय बहुराष्ट्रीय कंपनियां क्षेत्रीय मुख्यालय द्वारा निर्धारित दिशानिर्देशों का पालन करते हुए उन क्षेत्रों की विशिष्ट आवश्यकताओं और वरीयताओं को पूरा करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में शाखाएं स्थापित कर सकती हैं।

- **सहायक कंपनियां**: क्षेत्रीय मुख्यालय के ढांचे के भीतर स्थानीय बाजारों के लिए बेहतर प्रबंधन और अनुकूलन को सक्षम करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में सहायक कंपनियां स्थापित की जा सकती हैं।

3. बहुराष्ट्रीय मॉडल: बहुराष्ट्रीय मॉडल में, एक मूल कंपनी अपने देश में आधारित है और विभिन्न अन्य देशों में सहायक कंपनियों की स्थापना करती है। हालांकि, इन सहायक कंपनियों के पास स्वतंत्रता की एक उच्च डिग्री है कि वे कैसे काम करते हैं। वे ऐसे निर्णय लेते हैं जो उनके विशिष्ट स्थानीय बाजारों के लिए सबसे उपयुक्त हैं। मूल कंपनी समग्र मार्गदर्शन और दिशा प्रदान करती है, लेकिन सहायक कंपनियों को अपनी रणनीतियों को तैयार करने की अधिक स्वतंत्रता है। देश एम में स्थित मूल कंपनी के बारे में सोचें जो देशों एन, ओ और पी में अर्ध–स्वायत्त व्यवसायों का मालिक है और उनका समर्थन करता है। मूल कंपनी के व्यापक लक्ष्यों के साथ संरेखित करते हुए प्रत्येक सहायक कंपनी की अपनी रणनीतियाँ होती हैं।

- **सहायक कंपनियां**: बहुराष्ट्रीय मॉडल में अक्सर विभिन्न देशों में सहायक कंपनियों की स्थापना शामिल होती है जिनके पास अपने संचालन में स्वतंत्रता की एक महत्वपूर्ण डिग्री होती है। ये सहायक कंपनियां मूल कंपनी के समग्र लक्ष्यों के साथ संरेखित करते हुए स्थानीय बाजारों के लिए अपनी रणनीतियों को अनुकूलित करती हैं।

- **संयुक्त उद्यम**: बहुराष्ट्रीय मॉडल का पीछा करने वाली बहुराष्ट्रीय कंपनियां अपनी विशेषज्ञता का लाभ उठाने और विदेशी बाजार में एक मजबूत उपस्थिति स्थापित करने के लिए स्थानीय भागीदारों के साथ संयुक्त उद्यमों में संलग्न हो सकती हैं।

- **फ्रैंचाइज धारक**: फ्रैंचाइज समझौतों का उपयोग विभिन्न देशों में एमएनसी की ब्रांड उपस्थिति और बाजार पहुंच का विस्तार करने के लिए किया जा

सकता है, जिसमें स्थानीय फ्रैंचाइज धारक स्थापित व्यवसाय मॉडल के तहत काम कर रहे हैं

सारांश में, ये मॉडल विभिन्न तरीकों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो बहुराष्ट्रीय निगम सीमाओं के पार संचालित करने के लिए खुद को व्यवस्थित करते हैं। वे स्थानीय परिस्थितियों और नियमों के अनुकूल होने के लाभों के साथ केंद्रीकृत नियंत्रण की आवश्यकता को संतुलित करते हैं। प्रत्येक मॉडल की अपनी ताकत और चुनौतियां होती हैं, और कंपनियां उस मॉडल को चुन सकती हैं जो उनकी वैश्विक व्यापार रणनीति के लिए सबसे उपयुक्त हो।

12.9.2 बहुराष्ट्रीय निगमों की विशेषताएं

बहुराष्ट्रीय निगम (एमएनसी) अलग–अलग विशेषताओं के साथ जटिल संस्थाएं हैं जो उन्हें विशुद्ध रूप से घरेलू कंपनियों से अलग करती हैं। ये विशेषताएं बहुराष्ट्रीय कंपनियों के वैश्विक दायरे, संरचना और संचालन को उजागर करती हैं। बहुराष्ट्रीय निगमों की कुछ प्रमुख विशेषताएं यहां दी गई हैं:

- **वैश्विक उपस्थिति**: बहुराष्ट्रीय कंपनियों की कई देशों में महत्वपूर्ण उपस्थिति है, जो अपने देश की सीमाओं से परे व्यावसायिक गतिविधियों का संचालन करती हैं। वे अंतरराष्ट्रीय बाजारों में प्रवेश करने के लिए विभिन्न देशों में सहायक कंपनियां, शाखाएं और सहयोगी स्थापित करते हैं।

- **केंद्रीकृत प्रबंधन**: जबकि बहुराष्ट्रीय कंपनियों के पास विभिन्न देशों में संचालन है, वे अक्सर अपने देश में एक केंद्रीय मुख्यालय या मुख्य कार्यालय बनाए रखते हैं। यह केंद्रीय कार्यालय विभिन्न सहायक कंपनियों और शाखाओं की गतिविधियों के समन्वय और देखरेख में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

- **विविध संचालन**: बहुराष्ट्रीय कंपनियां विभिन्न बाजारों और उद्योगों में विविध व्यावसायिक गतिविधियों में संलग्न हैं। वे उत्पादों का निर्माण कर सकते हैं, सेवाएं प्रदान कर सकते हैं, या विभिन्न देशों में आर्थिक गतिविधि के अन्य रूपों में संलग्न हो सकते हैं।

- **सीमा पार व्यापार**: बहुराष्ट्रीय कंपनियां अपने देश से विदेशी बाजारों में उत्पादों का निर्यात करके और विदेशों से अपने देश में माल आयात करके अंर्तराष्ट्रीय व्यापार में संलग्न हैं। यह सीमा पार व्यापार उनके वैश्विक संचालन में योगदान देता है।

- **प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई)**: बहुराष्ट्रीय कंपनियां अक्सर सहायक

कंपनियों या संयुक्त उद्यमों की स्थापना के माध्यम से विदेशों में महत्वपूर्ण निवेश करती हैं। इसमें एक विदेशी बाजार के लिए दीर्घकालिक प्रतिबद्धता शामिल है और इसमें कारखानों, कार्यालयों या वितरण केंद्रों का निर्माण शामिल हो सकता है।

- **वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला**: बहुराष्ट्रीय कंपनियां अक्सर जटिल आपूर्ति श्रृंखलाएं बनाती हैं जो कई देशों में फैली होती हैं। उत्पादन के विभिन्न चरण, जैसे कच्चे माल की सोर्सिंग, विनिर्माण और वितरण, दक्षता और लागत–प्रभावशीलता को अनुकूलित करने के लिए विभिन्न देशों में हो सकते हैं।

- **सांस्कृतिक विविधता**: विभिन्न देशों में काम करना बहुराष्ट्रीय कंपनियों को सांस्कृतिक, भाषाई और सामाजिक मतभेदों की एक श्रृंखला को उजागर करता है। उन्हें स्थानीय रीति–रिवाजों, परंपराओं और व्यावसायिक प्रथाओं को नेविगेट करना और अनुकूलित करना चाहिए।

- **ज्ञान और प्रौद्योगिकी का हस्तांतरण**: बहुराष्ट्रीय कंपनियां अक्सर सीमाओं के पार ज्ञान, कौशल और प्रौद्योगिकी का हस्तांतरण करती हैं। यह मेजबान देशों में प्रौद्योगिकी प्रसार और कौशल वृद्धि का कारण बन सकता है, आर्थिक विकास में योगदान दे सकता है।

- **वैश्विक कार्यबल**: बहुराष्ट्रीय कंपनियां एक विविध और बहुराष्ट्रीय कार्यबल को रोजगार देती हैं। कर्मचारी विभिन्न देशों और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आ सकते हैं, जो दृष्टिकोण और विशेषज्ञता के समृद्ध मिश्रण में योगदान करते हैं।

- **जटिल कानूनी और नियामक वातावरण**: बहुराष्ट्रीय कंपनियों को कई देशों में जटिल कानूनी और नियामक ढांचे को नेविगेट करना चाहिए। उन्हें विभिन्न कानूनों, विनियमों और कराधान प्रणालियों का पालन करने की आवश्यकता है, जो चुनौतीपूर्ण हो सकते हैं और विशेष विशेषज्ञता की आवश्यकता होती है।

- **ग्लोबल मार्केटिंग और ब्रांडिंग**: बहुराष्ट्रीय कंपनियां अक्सर वैश्विक ब्रांड पहचान बनाने के लिए विभिन्न बाजारों में लगातार ब्रांडिंग और मार्केटिंग रणनीतियों का उपयोग करती हैं। हालांकि, वे स्थानीय वरीयताओं और बाजार की स्थितियों के अनुरूप अपनी रणनीतियों को भी तैयार कर सकते हैं।

- **राजनीतिक और आर्थिक प्रभाव**: अपने पर्याप्त संचालन और निवेश के कारण, बहुराष्ट्रीय कंपनियां अपने घर और मेजबान देशों दोनों के राजनीतिक और आर्थिक परिदृश्य पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकती हैं।

- **जोखिम विविधीकरणः** कई देशों में परिचालन बहुराष्ट्रीय कंपनियों को विभिन्न बाजारों में अपने संचालन को फैलाकर जोखिमों में विविधता लाने की अनुमति देता है। यह उन्हें आर्थिक, राजनीतिक या बाजार–विशिष्ट अनिश्चितताओं के प्रभाव को कम करने में मदद कर सकता है।

- **विवाद और नैतिक चिंताएंः** बहुराष्ट्रीय कंपनियों को श्रम प्रथाओं, पर्यावरणीय प्रभाव, मानव अधिकारों और निष्पक्ष व्यापार प्रतिस्पर्धा जैसे मुद्दों से संबंधित आलोचना और नैतिक चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है, खासकर अलग–अलग मानकों और नियमों वाले क्षेत्रों में।

12.9.3 गुण

इसके निम्नलिखित गुण होते है। आइये इन्हें क्रमशः समझने का प्रयास करें :–

- **पूंजी प्रवाह और एफडीआई**– बहुराष्ट्रीय कंपनियां मुख्य माध्यम रही हैं जिनके माध्यम से विकासशील देशों में एफडीआई का प्रवाह होता है। यह 1962 में 2.4 बिलियन डॉलर की वार्षिक दर से बढ़कर 1999 में 185 बिलियन डॉलर और 2010 में लगभग 1790 बिलियन डॉलर हो गया, यह 1307 बिलियन डॉलर था। चीनी आर्थिक विकास सहित पूर्वी एशियाई चमत्कार एफडीआई के सकारात्मक प्रभावों की पुष्टि करता है। यह पूंजी और विदेशी मुद्रा की कमी की दोहरी समस्याओं का समाधान करता है।

- **प्रौद्योगिकी हस्तांतरण**– बहुराष्ट्रीय कंपनियां प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के सबसे प्रभावी चौनलों के रूप में काम करती हैं। क्योंकि बहुराष्ट्रीय कंपनियां मालिकाना परिसंपत्तियों को नियंत्रित करती हैं जो अक्सर विशेष ज्ञान पर आधारित होती हैं, विकासशील देशों में वे जो निवेश करते हैं, वह अक्सर स्वदेशी फर्मों को हस्तांतरित होने वाले ज्ञान का कारण बनता है। उदाहरण के लिए, मोटोरोला मलेशिया ने एक मलेशियाई फर्म को एक विशेष प्रकार के मुद्रित सक्रिट बोर्ड के उत्पादन के लिए प्रौद्योगिकी हस्तांतरित की। इसने मलेशिया में इलेक्ट्रॉनिक उद्योग की नींव रखी और मलेशिया मुद्रित सक्रिट बोर्ड का निर्यातक बन गया। एक और उदाहरण सिंगर ताइवान है जिसे स्थानीय स्तर पर 83 प्रतिशत उत्पादन करने की आवश्यकता थी। स्थानीय घटकों को मानकीकृत और अपग्रेड करके, सिंगर ने सिलाई मशीनों का उत्पादन किया, जिनमें से 86 प्रतिशत निर्यात किए गए थे। स्थानीय सिलाई मशीन उत्पादक प्रतिस्पर्धी बन गए।

- **प्रबंधन कौशल का हस्तांतरण**– बहुराष्ट्रीय कंपनियां नवीनतम प्रबंधन

कौशल पेश करती हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियां स्थानीय प्रबंधकों को नए प्रबंधकीय कौशल के बारे में शिक्षित करती हैं। उपभोक्ताओं को लाभ। उपभोक्ताओं को सबसे सस्ती कीमत पर बेहतर उत्पाद मिलते हैं। मजदूरी, उत्पादकता और श्रम मानकों पर लाभकारी प्रभाव। प्रतिस्पर्धा स्थानीय फर्मों को मजदूरी बढ़ाने और श्रम मानकों में सुधार करने और प्रतिस्पर्धी बने रहने की दृष्टि से उत्पादकता बढ़ाने के लिए मजबूर करती है।

- उत्पादन में वृद्धि करके एफडीआई कर आधार को बड़ा बनाता है और बुनियादी ढांचे के सुधार के लिए अतिरिक्त संसाधन प्रदान करता है।

12.9.4 दोष

जिस प्रकार पूंजी प्रवाह के गुण है। उसी प्रकार आइये पूंजी प्रवाह का प्रतिकूल प्रभावो का अध्ययन भी निम्नलिखित बिन्दुओ की सहायता से पूर्ण करें

- **पर्यावरण क्षरण**– बहुराष्ट्रीय कंपनियां मेजबान देशों में गरीब नागरिक हैं। वे पर्यावरण के प्रति उदासीन हैं और अपने प्रभाव का दुरुपयोग करके सजा से बचते हैं।

i. **भोपाल त्रासदी** – भोपाल में यूनियन कार्बाइड संयंत्र के विस्फोट में 2000 से 5000 लोग मारे गए थे और 100,000 से अधिक लोगों को आजीवन स्वास्थ्य क्षति हुई थी। कंपनी प्रति व्यक्ति केवल $ 500 का भुगतान करती है। अमेरिका के इनकार के कारण, अधिकारियों पर मुकदमा नहीं चलाया जा सका।

ii. **एक्सॉन वाल्डेज**– एक्सॉन वाल्डेज के कप्तान जिन्होंने तेल रिसाव का कारण बना, जिसके परिणामस्वरूप अरबों डॉलर का पर्यावरणीय नुकसान हुआ, उन पर जुर्माना लगाया गया। पापुआ न्यू गिनी में, एक बड़ी सोने और तांबे की खान, ओके टेडी और फ्लाई रिवर्स ने $ 6 बिलियन मूल्य के अयस्क निकाले और 80,000 टन दूषित सामग्री को डंप किया और सफाई के बिना छोड़ दिया। ज्यादातर मामलों में वे अंतरराष्ट्रीय समझौतों द्वारा संरक्षित हैं।

- **बहुराष्ट्रीय कंपनियां छोटे व्यवसायों को नष्ट करती हैं और श्रमिकों का शोषण करती हैं**: उदाहरण वॉल–मार्ट: वाल–मार्ट्स की सफलता कम लागत पर आधारित है। हालांकि, श्रमिकों को कम मुआवजे और आपूर्तिकर्ताओं से उच्च छूट को निचोड़ने के लिए इसकी बाजार शक्ति द्वारा कम लागत सुनिश्चित की जाती है। छोटी कंपनियां उनके साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकती हैं और परिणामस्वरूप, बहुत से लोग अपनी आजीविका खो

देते हैं और छोटे समुदाय नष्ट हो जाते हैं। वालमार्ट अपने आधे कर्मचारियों को स्वास्थ्य सेवा प्रदान नहीं करता है।

- **भ्रष्टाचार और रिश्वतः** वे राज्य की निगरानी के लिए बहुत बड़े हैं। खनन और तेल कंपनियां अक्सर सरकारी अधिकारियों और राजनेताओं को रिश्वत देकर प्राकृतिक संसाधनों को प्राप्त करने की लागत को कम कर सकती हैं। वे अपने हितों की रक्षा के लिए पैरवी करते हैं। 1998 और 2004 के बीच, अमेरिकी दवा कंपनियों ने लॉबिंग के लिए $ 759 मिलियन खर्च किए।

- **ताकत बौद्धिक संपदाः** अधिकार बहुराष्ट्रीय कंपनियों की मुख्य ताकत बौद्धिक संपदा अधिकार (ट्रेडमाक्र, कॉपी राइट) है। वे ईर्ष्या से इन अधिकारों की रक्षा करते हैं और कई मामलों में प्रौद्योगिकी हस्तांतरण को असंभव बनाते हैं (कोका कोला, पेप्सी)। इसके अलावा, बौद्धिक संपदा अधिकार विकासशील देशों के लिए आवश्यक दवाओं को निषेधात्मक रूप से महंगा बनाते हैं।

- **कर रियायतें और परिहार**, हालांकि बहुराष्ट्रीय कंपनियां करों का भुगतान करती हैं, लेकिन उनके योगदान अक्सर कर छुट्टियों, कर रियायतों, प्रच्छन्न सार्वजनिक सब्सिडी (जैसे सस्ती जमीन) आदि से कम हो जाते हैं। स्थानांतरण मूल्य निर्धारण अक्सर बहुत दुरुपयोग का स्रोत होता है। ट्रांसफर प्राइसिंग साथी सहयोगियों से प्रतिस्पर्धा के बिना प्रशासनिक रूप से प्राप्त इनपुट या सेवाओं की कीमत है। ऐसे मामलों में, एलडीसी में स्थानीय कंपनियों को विदेशी सहयोगियों द्वारा अधिक शुल्क लिया जाता है। इससे आयात बिल बढ़ता है और टैक्स कम होता है।

- **बहुराष्ट्रीय कंपनियां राजनीतिक रूप** से बहुत शक्तिशाली हैं। ईस्ट इंडिया कंपनी, डच ईस्ट इंडिया कंपनी, ब्रिटिश दक्षिण अफ्रीका कंपनी जैसी शुरुआती बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने साम्राज्यों और उपनिवेशों की स्थापना की। अरामको और एंग्लो ईरानी ऑयल कंपनी जैसी तेल बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने राजनीति में हस्तक्षेप किया। मध्य अमेरिका में यूनाइटेड फ्रूट कंपनी और इंडोनेशिया, वियतनाम, मैक्सिको और अन्य देशों में नाइकी ने पसीने की दुकानें चलाईं और मानवाधिकारों का उल्लंघन किया। आईटीटी (अंर्तराष्ट्रीय टेलीग्राफ और टेलीफोन कंपनी) ने ब्राजील और चिली में तख्तापलट को वित्त पोषित किया। वे मेजबान देश के सहयोग करने से इनकार करने पर पीछे हटने की धमकी देते हैं।

- **बढ़ी हुई असमानताः** दो तरह की असमानताएं बढ़ रही हैं। अमीर और गरीब के बीच असमानता बहुत अधिक है। 2009 में, कम आय वाले देशों के

लिए पीपीपी में प्रति व्यक्ति आय $ 1032 है जबकि पीपीपी में उच्च आय वाले देशों में प्रति व्यक्ति आय $ 40,433 है। अधिकांश एलडीसी के भीतर गिनी गुणांक बढ़ रहा है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि पूंजी और कुशल श्रम का रिटर्न अकुशल की तुलना में तेजी से बढ़ता है।

12.10 सारांश

पिछले साढ़े छह वर्षों के दौरान इस दिशा में उठाए गए कदमों के परिणाम सामने आए हैं, जो देश में प्राप्त हो रहे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की निरंतर बढ़ती मात्रा से स्पष्ट है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के उदारीकरण और सरलीकरण के मार्ग पर चलते हुए सरकार ने विभिन्न क्षेत्रों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में सुधार किए हैं। एफडीआई नीति सुधारों, निवेश सुविधा और व्यापार करने में आसानी के मोर्चों पर सरकार द्वारा किए गए उपायों के परिणामस्वरूप देश में एफडीआई प्रवाह में वृद्धि हुई है।

12.11 उपयोगी शब्दावली

- **देशी प्रत्यक्ष निवेश (Foreign Direct Investment)** : इससे आशय विदेश में किए गए निवेश से जाता है जहां पर निवेश पर निवेशकर्ता का नियंत्रण रहता है।
- **वैदेशी संस्थागत निवेशकर्ता (Foreign Institutional Investors)**: वे वित्तीय संस्थाएं जो किसी अन्य देश में अपना धन लगाती है।
- **विदेशी मुद्रा परिवर्तनीय बांड (Foreign Currency Convertible Bonds)**: ये अर्ध–ऋण तिभूतियां होते हैं। निवेशकर्ता को यह विकल्प होता है कि एक निश्चित अवधि के बाद वह एक निश्चित कीमत पर इन बांडों को डिपोजिटरी रिसिटों या ईक्विटी शेयरों में बदल दे।
- **वैश्विक डिपोजिटरी रसीद (Global Depository Receipt)**: यह एक प्रकार का प्रपत्र है जिसका मूल्य डॉलर में अंकित होता है तथा इसका क्रय–विक्रय यू. एस. ए. और यूरोप में होता है। कंपनी डेपोजिटरी को शेयर जारी करती है तथा फिर डिपोजिटरी उसे ळक्त को जारी करता है। इस प्रकार यह जारी करने वाली कंपनी के शेयरों का प्रतिनिधित्व करता है।
- **संयुक्त उद्यम (Joint Venture)**: इसके अंतर्गत वाणिज्यिक और औद्योगिक उद्यम आते हैं जिनमें दो या उससे अधिक देशों के दो या उससे अधिक पक्ष उपक्रम को चलाने की जिम्मेदारी संयुक्त रूप में अपने ऊपर लेते हैं।

- **बहुराष्ट्रीय निगम (Multinational Corporation):** एक ऐसा निगम जिसका एक से अधिक देशों में व्यावसायिक या वाणिज्यिक उपक्रमों पर स्वामित्व तथा नियंत्रण होता है।
- **अनिवासी भारतीय (Non&Resident Indian):** वे भारतीय जिनका निवास भारत में नहीं है।
- **पोर्टफोलियो निवेश (Portfolio Investment):** इससे आशय होता है किसी अन्य देश में निवेश करना जहां पर निवेश करने वाला पक्ष निवेश पर नियंत्रण करने का प्रयास नहीं करता।

12.12 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न 1. वैश्वीकरण के मुख्य फायदे और नुकसान क्या हैं।

प्रश्न 2. बहुराष्ट्रीय कंपनियों की मुख्य विशेषताओं पर चर्चा कीजिए। बहुराष्ट्रीय कंपनियों /एफडीआई के फायदे और नुकसान क्या हैं।

प्रश्न 3. विदेशी पूंजी खतरनाक होती है और इसकी अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। क्या आप इस कथन से सहमत है? यदि नहीं, तो क्यों।

प्रश्न 4. किसी उद्यम का बहुराष्ट्रीय निगम (MNC) कहे जाने के मुख्य आधार क्या हैं। MNC से क्या कोई लाभ होते हैं?

प्रश्न 5. विदेशीय प्रत्यक्ष निवेश (FDI) की मुख्य विशेषताएं बताइए।

प्रश्न 6. संयुक्त उद्यम की परिभाषा दीजिए। उनके गुणों और दोषों के संबंध में विवेचन कीजिए।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. नीति भसीन, 2006, भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेशः नीतियां और प्रदर्शन'' अकादमिक फाउंडेशन
2. वी. राजवाड़े, 2007 ''भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेशः नीतियां, प्रक्रियाएं और केस स्टडीज'', एक्सेल बुक्स
3. विवेकानंद एन 2011 ''एशिया में विदेशी निवेश और विवाद समाधान कानून और अभ्यास'', क्लूवर लॉ इंटरनेशनल
4. ''एशिया और प्रशांत में बहुराष्ट्रीय निगम और उभरती नेटवक्र अर्थव्यवस्था'', 2015, एडवर्ड एल्गर प्रकाशन विदेशी निवेश और बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर अंर्तराष्ट्रीय पुस्तकें

इकाई –13 भारत का विदेश व्यापार

इकाई रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 विदेश व्यापार का महत्व

13.3 भारत के विदेश व्यापार की प्रवृत्तियाँ

13.4 विदेश व्यापार का संघटन

13.4.1 निर्यातों का संघटन

13.4.2 आयातो का संघटन

13.5 विदेश व्यापार की दिशा

13.5.1 निर्यातों की दिशा

13.5.2 आधातों की दिशा

13.6 विदेश व्यापार का विनियमन

13.7 निर्यात संवर्धन के उपाय

13.7.1 उत्पादन आधार बनाने की सुविधाएं

13.7.2 विशेष प्रतिष्ठा के निर्माण द्वारा सुविधाएं

13.7.3 राजकोषीय प्रोत्साहन

13.7.4 बाजार विकास सहायता

13.8 सारांश

13.9 शब्दावली

13.10 स्वपरख प्रश्न

13.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि,

- विदेश व्यापार के महत्व का वर्णन कर सकेंगे;
- भारत के विदेश व्यापार की प्रवृत्ति की विवेचना कर सकेंगे;
- विदेश व्यापार के संघटन की व्याख्या कर सकेंगे;
- विदेश व्यापार की दिशा का विश्लेषण कर सकेंगे तथा

• निर्यात संवर्धन के उपायों की विवेचना कर सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

विदेशी व्यापार पर यह अध्याय अंर्तराष्ट्रीय वाणिज्य के गतिशील क्षेत्र की पड़ताल करता है, जहां राष्ट्र सीमाओं के पार वस्तुओं, सेवाओं और पूंजी के आदान–प्रदान में संलग्न होते हैं। वैश्विक लेनदेन का यह जटिल जाल अर्थव्यवस्थाओं को प्रभावित करता है, उद्योगों को आकार देता है, और राजनयिक संबंधों को बढ़ावा देता है। संसाधनों के विविधीकरण से लेकर आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने तक, विदेशी व्यापार का प्रभाव दूरगामी है। यह अध्याय अंर्तराष्ट्रीय व्यापार के महत्व पर प्रकाश डालता है, नवाचार को बढ़ावा देने, उपभोक्ता विकल्पों का विस्तार करने और अंतर–सांस्कृतिक कनेक्शन बनाने में इसकी बहुमुखी भूमिका को उजागर करता है। विदेशी व्यापार की पेचीदगियों को समझकर, हम आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं को चलाने वाले तंत्र और वैश्विक बाजार में राष्ट्रों की अन्योन्याश्रितता में अंतर्दृष्टि प्राप्त करते हैं।

13.2 विदेश व्यापार का महत्व

विदेशी व्यापार, जिसे अंर्तराष्ट्रीय व्यापार के रूप में भी जाना जाता है, राष्ट्रीय सीमाओं के पार वस्तुओं, सेवाओं और पूंजी के आदान–प्रदान को संदर्भित करता है। इसमें देशों के बीच वस्तुओं और सेवाओं की खरीद और बिक्री शामिल है, और यह वैश्विक अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विदेशी व्यापार में आयात (विदेशों से किसी देश में लाई गई वस्तुएं और सेवाएं) और निर्यात घरेलू रूप से उत्पादित और अन्य देशों को बेची जाने वाली वस्तुएं दोनों शामिल हैं।

विदेशी व्यापार के महत्व को कई प्रमुख बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता हैः। आइये इसे बिन्दुवार समझने का प्रयास करे :–

- अंर्तराष्ट्रीय व्यापार में संलग्न होकर, राष्ट्र उन उत्पादों की एक विविध श्रृंखला तक पहुंच सकते हैं जो स्थानीय रूप से उत्पादित नहीं हो सकते हैं, उपभोक्ता विकल्पों को समृद्ध करते हैं और जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाते हैं। इसके अतिरिक्त, विदेशी व्यापार देशों को वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में विशेषज्ञता प्राप्त करने में सक्षम बनाता है जहां उनके पास तुलनात्मक लाभ होता है, कुशलता से अपने संसाधनों का उपयोग करते हैं और आर्थिक उत्पादन को अधिकतम करते हैं। संसाधनों का यह रणनीतिक आवंटन नवाचार, तकनीकी प्रगति और आर्थिक विकास को बढ़ावा देता है, राष्ट्रों के बीच एक सहजीवी संबंध स्थापित करता है जो समृद्धि और सतत विकास को बढ़ावा

देता है।

- विदेशी व्यापार बड़े बाजारों तक पहुंच की अनुमति देकर देश की आर्थिक वृद्धि और विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। यह देशों को उन वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में विशेषज्ञता प्राप्त करने में सक्षम बनाता है जो वे कुशलतापूर्वक और प्रतिस्पर्धात्मक रूप से उत्पादन कर सकते हैं, जबकि उन वस्तुओं का आयात करते हैं जो अन्य देशों द्वारा अधिक कुशलता से उत्पादित की जा सकती हैं।
- विदेशी व्यापार से नौकरी के अवसरों में वृद्धि हो सकती है क्योंकि व्यवसाय अंतरराष्ट्रीय मांग को पूरा करने के लिए अपने संचालन का विस्तार करते हैं। निर्यातोन्मुखी उद्योग रोजगार के नए अवसर पैदा कर सकते हैं, जिससे स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं को बढ़ावा मिल सकता है।
- अंर्तराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा घरेलू उद्योगों को अधिक कुशल और अभिनव बनने के लिए प्रेरित कर सकती है। वैश्विक बाजार में प्रतिस्पर्धी बने रहने के लिए, कंपनियों को अक्सर उन्नत तकनीकों को अपनाने और अपनी उत्पादन प्रक्रियाओं में सुधार करने की आवश्यकता होती है।
- विदेशी व्यापार देशों को आपूर्ति और मांग के अपने स्रोतों में विविधता लाने में मदद करता है। यह घरेलू उत्पादन में कमी या व्यवधान के समय में विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो सकता है, जिससे स्थानीय अर्थव्यवस्था पर ऐसी घटनाओं का प्रभाव कम हो जाता है।
- देशों में उत्पादन के लिए आवश्यक कुछ प्राकृतिक संसाधनों या कच्चे माल की कमी हो सकती है। विदेशी व्यापार उन्हें अन्य देशों से इन संसाधनों तक पहुंचने की अनुमति देता है, जिससे उनके उद्योगों के लिए लगातार आपूर्ति सुनिश्चित होती है।
- वस्तुओं और सेवाओं का निर्यात किसी देश के लिए विदेशी मुद्रा आय उत्पन्न करता है। इस विदेशी मुद्रा का उपयोग आयात के लिए भुगतान करने, बाहरी ऋणों की सेवा और अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में निवेश करने के लिए किया जा सकता है।

13.3 भारत के विदेश व्यापार की प्रवृत्तियाँ

वैश्विक स्तर पर, देशों, उद्योगों और उद्यमों के बीच तीव्र प्रतिस्पर्धा कई मुख्य विकासों के अभिसरण के कारण एक नया विकास है। ये कुछ वर्तमान रुझान हैं–

Table 1: Trade during January 2023*

		January 2023 (USD Billion)	January 2022 (USD Billion)
Merchandise	Exports	32.91	35.23
	Imports	50.66	52.57
Services*	Exports	32.24	21.63
	Imports	15.76	13.24
Overall Trade (Merchandise +Services) *	Exports	65.15	56.86
	Imports	66.42	65.80
	Trade Balance	-1.27	-8.95

** Note: The latest data for services sector released by RBI is for December 2022. The data for January 2023 is an estimation, which will be revised based on RBI's subsequent release. (ii) Data for April-January 2021-22 and April-September 2022 has been revised on pro-rata basis using quarterly balance of payments data.*

- व्यापारिक सिद्धांतों ने हमे समझाया है; कि अंर्तराष्ट्रीय व्यापार किसी भी अर्थव्यवस्था या देश के लिए विकास का एक इंजन है और भारत इसका अपवाद नहीं है। भारत ने 1990 के दशक की शुरुआत में उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (एलपीजी) नीति को अनुकूलित किया, जिसने व्यापार बाधाओं को दूर करके वैश्विक दुनिया के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था के खुलेपन को बढ़ाया और अंर्तराष्ट्रीय व्यापार के रूप में वस्तुओं और सेवाओं के आयात और निर्यात को बढ़ाया।जनवरी 2023' में भारत का कुल निर्यात (मर्चेंडाइज एंड सर्विसेज संयुक्त) 65.15 बिलियन अमरीकी डालर होने का अनुमान है, जो पिछले वर्ष की इसी अवधि की तुलना में 14.58 प्रतिशत की सकारात्मक वृद्धि दर्शाता है। जनवरी 2023' में कुल आयात 66.42 बिलियन अमरीकी डॉलर होने का अनुमान है, जो पिछले वर्ष की इसी अवधि की तुलना में 0.94 प्रतिशत की सकारात्मक वृद्धि दर्शाता है।

- वस्तु निर्यात के तहत, 30 प्रमुख क्षेत्रों में से 14 ने जनवरी 2023 में पिछले वर्ष की इसी अवधि (जनवरी 2022) की तुलना में सकारात्मक वृद्धि का प्रदर्शन किया। इनमें इलेक्ट्रॉनिक सामान (55.54%), ऑयल मील (48.89:), तिलहन (23. 81%), लौह अयस्क (21%), चावल (18.8%), फल और सब्जियां (14.57%), काजू (10.34%), तंबाकू (9.41%), सिरेमिक उत्पाद और ग्लासवेयर (8.25%), पेट्रोलियम उत्पाद (8.01%), समुद्री उत्पाद (6.61%), अन्य अनाज (3.92%) शामिल हैं।

- अप्रैल–जनवरी 2022–23 के दौरान पिछले वित्त वर्ष (अप्रैल–जनवरी 2021–22) की तुलना में 30 प्रमुख क्षेत्रों में से 17 में सकारात्मक वृद्धि दर्ज की गई। इनमें पेट्रोलियम उत्पाद (54.78%), इलेक्ट्रॉनिक सामान (51.96%), तंबाकू (38.71%), ऑयल मील (29.63%), अनाज की तैयारी और विविध प्रसंस्कृत वस्तुएं (17.36%), चावल (16.38%), चमड़ा और चमड़ा उत्पाद (13.92%), तिलहन (13.77%), अन्य अनाज (12.32%), कॉफी (12.15%), चाय (11.62%), फल और सब्जियां (11. 62%), समुद्री उत्पाद (3.06%) और ड्रग्स एंड फार्मास्यूटिकल्स (2.97%)।

- कॉफी को छोड़कर सभी कृषि जिंसों के निर्यात में जनवरी 2023 में सकारात्मक वृद्धि दर्ज की गई है।

- इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं का निर्यात जनवरी 2023 के दौरान 50 प्रतिशत से अधिक बढ़कर 2.11 अरब डॉलर हो गया, जो जनवरी 2022 में 1.36 अरब डॉलर था। अप्रैल–जनवरी 2022–23 के दौरान इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं का निर्यात 18.78 अरब डॉलर दर्ज किया गया, जबकि पिछले साल की समान अवधि के दौरान यह 12. 36 अरब डॉलर था।

13.4 विदेश व्यापार का संघटन

भारत की आयात टोकरी की संरचना में स्वतंत्रता के समय तेल, दालें, मशीनरी, रसायन, हार्डवेयर, फार्मास्यूटिकल्स, रंजक, यार्न, कागज, अनाज, अलौह धातु, कार और अन्य वस्तुएं शामिल थीं। योजना के आगमन और पूंजीगत वस्तुओं और इंजीनियरिंग क्षेत्रों की स्थापना पर जोर देने के साथ, सरकार को बड़ी संख्या में पूंजीगत उपकरण और रखरखाव आयात खरीदने की आवश्यकता थी। 1950 के दशक के दौरान, भारत का निर्यात मुख्य रूप से कृषि आधारित था। कपड़ा, जूट विनिर्माण और चाय जैसे प्रमुख पारंपरिक वस्तुओं का कुल निर्यात में लगभग 54% हिस्सा था, जबकि प्राथमिक और पारंपरिक उत्पादों का लगभग 85% हिस्सा था। इस अवधि ने आत्मनिर्भरता प्राप्त करने पर ध्यान केंद्रित किया, जिससे सख्त आयात प्रतिबंध लग गए। हालांकि, औद्योगिकीकरण की आवश्यकता स्पष्ट हो गई, जिसमें प्रौद्योगिकी और पूंजीगत वस्तुओं की आवश्यकता थी। आधुनिक तकनीक, मशीनरी और कच्चे माल की कमी ने इस एहसास को प्रेरित किया कि औद्योगिक नींव के निर्माण और निर्यात उत्पादन पैदा करने के लिए इन आवश्यक वस्तुओं के आयात में वृद्धि महत्वपूर्ण थी।

1960 के दशक में, भारत ने विदेशी व्यापार को बढ़ावा देने के उपायों को अपनाया, आयात को अपेक्षाकृत आसान बना दिया और निर्यात संवर्धन

रणनीतियों को लागू किया। इससे निर्यात में पारंपरिक वस्तुओं की हिस्सेदारी में गिरावट आई और लोहा और इस्पात, मशीनरी, परिवहन उपकरण, गैर–धातु खनिज विनिर्माण और रसायन जैसी श्रेणियों में वृद्धि हुई।

1970 के दशक में, भारत सरकार ने एक स्पष्ट निर्यात नीति स्थापित की, जिससे रक्षा और भोजन के बाद निर्यात को महत्व की स्थिति में ले जाया गया। इस बदलाव के परिणामस्वरूप निर्यात संरचना में बदलाव आया, जिसमें पारंपरिक उत्पाद कम हो गए और गैर–पारंपरिक वस्तुओं में वृद्धि हुई। इंजीनियरिंग सामान, चमड़े और चमड़े के निर्माण, तैयार वस्त्र, रत्न और गहने, रसायन और समुद्री उत्पादों को प्रमुखता मिली। कुल निर्यात में विनिर्मित वस्तुओं का अनुपात 1960–61 में 45% से बढ़कर 1980–81 में लगभग 59% हो गया।

1980 के दशक के दौरान, निर्यात बढ़ाने के प्रयास जारी रहे, और कुल निर्यात में निर्मित निर्यात का हिस्सा काफी बढ़ गया। इस अवधि के दौरान प्रमुख विदेशी मुद्रा अर्जक में रत्न और गहने, तैयार वस्त्र, इंजीनियरिंग सामान, चमड़ा निर्माण, समुद्री उत्पाद और रसायन शामिल थे।

13.4.1 निर्यातों का संघटन

भारत का कुल निर्यात वित्त वर्ष 2022–23 में 770.18 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुंच गया, जो वित्त वर्ष 2021–22 की तुलना में 13.84 प्रतिशत की वृद्धि है। यह वृद्धि मुख्य रूप से मशीनरी, इलेक्ट्रॉनिक्स, और रसायनों के निर्यात में वृद्धि के कारण हुई है।

भारत में निर्यात 1957 से 2023 तक औसतन 7.21 बिलियन अमरीकी डालर था, जो मार्च 2022 में 44.57 अमरीकी डालर के उच्चतम स्तर और 1958 के जून में 0.06 बिलियन अमरीकी डालर के रिकॉर्ड निचले स्तर पर पहुंच गया। 1960–61 में, कुल निर्यात में विनिर्मित वस्तुओं का अंश केवल 45% था। 1970 और 1980–81 में, यह अनुपात क्रमशः 52% और 59% तक पहुंच गया। 2022–2023 में, यह अनुपात 68% तक पहुंच गया। विनिर्मित वस्तुओं के निर्यात में वृद्धि भारत की अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण है। इससे भारत को अधिक विदेशी मुद्रा आय होती है, जो आर्थिक विकास और रोजगार सृजन को बढ़ावा देती है।वैश्विक मंदी के बावजूद, भारत का निर्यात मजबूत रहा है। यह भारत की बढ़ती अर्थव्यवस्था और बढ़ती घरेलू मांग के कारण है।

भारतीय विदेशी व्यापार की संरचनाः निर्यात वित्त वर्ष 2022 की अप्रैल–फरवरी अवधि के दौरान शीर्ष आठ निर्यातित वस्तुएं थीं:

- इंजीनियरिंग सामान (कुल निर्यात का 26.9 प्रतिशत)
- कार्बनिक और अकार्बनिक रसायन (7.1 प्रतिशत)
- रत्न और आभूषण (9.4 प्रतिशत)
- औषध और फार्मास्यूटिकल्स (5.9 प्रतिशत)
- कपड़ा (3.8 प्रतिशत)
- इलेक्ट्रॉनिक सामान (3.7 प्रतिशत)
- पेट्रोलियम उत्पाद (14.8 प्रतिशत)
- सूती/धागा/रेडीमेड कपड़े, हथकरघा उत्पाद आदि (3.7 प्रतिशत)।

इन आठ वस्तुओं का वित्त वर्ष 2022 में कुल निर्यात में लगभग 75 प्रतिशत का हिस्सा था। भारत की निर्यात संरचना को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता हैः पारंपरिक निर्यात और गैर–पारंपरिक निर्यात।

पारंपरिक उत्पादः पारंपरिक वस्तुओं में कॉफी, चाय, जूट के सामान, लौह अयस्क, पशुओं की त्वचा, कपास, खनिज, मछली और मछली उत्पाद आदि का निर्यात शामिल है। योजना युग की शुरुआत में इन उत्पादों का हमारे कुल निर्यात में लगभग 80% हिस्सा था। हालांकि, इन वस्तुओं का योगदान धीरे–धीरे कम हो रहा है, जबकि गैर–पारंपरिक वस्तुओं का योगदान बढ़ रहा है।

- **गैर–पारंपरिक उत्पादः** गैर–पारंपरिक वस्तुओं में इंजीनियरिंग सामान, चीनी, रसायन, विद्युत सामान, लौह और इस्पात, चमड़े के सामान, रत्न और आभूषण शामिल हैं। इंजीनियरिंग सामान और पेट्रोलियम उत्पाद भारत के कुल निर्यात के दो प्रमुख घटक हैं। इंजीनियरिंग सामानों का निर्यात वित्त वर्ष 2022 में 49.8% की वृद्धि के साथ 101 अरब अमेरिकी डॉलर तक पहुंच गया है। साथ ही, पेट्रोलियम निर्यात वित्त वर्ष 2021 में 22.2 अरब अमेरिकी डॉलर से बढ़कर वित्त वर्ष 2022 में 55.5 अरब अमेरिकी डॉलर हो गया है।
- **शीर्ष निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में** – खनिज ईंधन (तेल) और रत्न और कीमती धातुएं 18 प्रतिशत की संयुक्त हिस्सेदारी के लिए दो सबसे अधिक निर्यात की जाने वाली वस्तुएं थीं। 2021 में भी फार्मास्युटिकल उद्योग के प्रदर्शन में वृद्धि देखी गई, जिसका उत्पादन वित्तीय वर्ष के लिए वस्तुओं की तीसरी सबसे अधिक निर्यात की जाने वाली श्रेणी के लिए जिम्मेदार था। पिछले साल से, भारत के दवा उद्योग को नए निवेश प्रवाह, वैक्सीन उत्पादन और जैव प्रौद्योगिकी में साझेदारी, और जैविक मांग में वृद्धि के अलावा विनिर्माण प्रोत्साहन

(उत्पादन–लिंक्ड प्रोत्साहन या पीएलआई) योजनाओं से लाभ हुआ है।

वस्तुतः निर्यात के तहत 30 प्रमुख क्षेत्रों में से 13 ने मार्च 2023 में पिछले साल की समान अवधि (मार्च 2022) की तुलना में सकारात्मक वृद्धि का प्रदर्शन किया। इनमें ऑयल मील (156.56%), तिलहन (99.5%), इलेक्ट्रॉनिक सामान (57.36%), कॉफी (17.86%), समुद्री उत्पाद (12.85%), फल और सब्जियां (11.37%), चावल (10.02%), सिरेमिक उत्पाद और ग्लासवेयर (9.73%), लौह अयस्क (6.85%), ड्रग्स एंड फार्मास्यूटिकल्स (4.19%), मांस, डेयरी और पोल्ट्री उत्पाद (3.44%). हाल के वर्षों में, भारत ने ज्यादातर निर्यात कियाः मोती, कीमती और अर्ध–कीमती पत्थर और गहने (कुल शिपमेंट का 16 प्रतिशत)य खनिज ईंधन, तेल और मोम और बिटुमिनस पदार्थ (12 प्रतिशत)य वाहन, पार्ट्स और सहायक उपकरण (5 प्रतिशत)य परमाणु रिएक्टर, बॉयलर, मशीनरी और यांत्रिक उपकरण (5 प्रतिशत)य फार्मास्युटिकल उत्पाद (5 प्रतिशत)य और कार्बनिक रसायन (4 प्रतिशत)।

13.4.2 आयात का संघटन

वित्त वर्ष 2020–21 में आयात में 16 प्रतिशत से अधिक की गिरावट आई, जो 394 बिलियन अमेरिकी डॉलर थी। खनिज ईंधन और कीमती पत्थर और धातुएं शीर्ष आयातित वस्तुएं बनी रहीं, जिसमें पशुध्वनस्पति वसा और तेलों की मांग बढ़ी। भारत का कुल आयात वित्त वर्ष 2022–23 में 1164.19 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुंच गया, जो वित्त वर्ष 2021–22 की तुलना में 16.51 प्रतिशत की वृद्धि है। यह वृद्धि मुख्य रूप से कच्चे माल, पेट्रोलियम उत्पादों, और मशीनरी के आयात में वृद्धि के कारण हुई है। अगस्त 2023 में भारत का आयात सालाना आधार पर 5.2ः घटकर 58.64 अरब डॉलर हो गया, क्योंकि तेल की बढ़ी हुई कीमतों और कमजोर रुपये ने आयात लागत बढ़ा दी, जबकि घरेलू मांग मजबूत रही।

यह ध्यान देने योग्य है कि कच्चे माल और मध्यवर्ती उत्पाद भारत के निर्यात के एक बड़े हिस्से के लिए जिम्मेदार हैं, जबकि भारत के आयात टोकरी में तैयार उत्पादों की भारी मौजूदगी है।

भारत के मुख्य आयात हैंः खनिज ईंधन, तेल और मोम और बिटुमिनस पदार्थ (कुल आयात का 27 प्रतिशत)य मोती, कीमती और अर्ध–कीमती पत्थर और गहने (14 प्रतिशत)य विद्युत मशीनरी और उपकरण (10 प्रतिशत)य परमाणु रिएक्टर, बॉयलर, मशीनरी और यांत्रिक उपकरण (8 प्रतिशत)य और कार्बनिक रसायन (4 प्रतिशत)।

भारत के शीर्ष आठ आयातित वस्तुओं मे निम्नलिखित को सूचिबद्ध किया जा सकता है

- पेट्रोलियम कच्चा और उत्पाद (कुल आयात का 25.7 प्रतिशत)
- प्लास्टिक सामग्री, कृत्रिम रेजिन, आदि (3.3 प्रतिशत)
- मोती, अर्ध–कीमती और कीमती पत्थर (5 प्रतिशत)
- सोना (8.2 प्रतिशत)
- इलेक्ट्रॉनिक सामान (11.8 प्रतिशत)
- विद्युत और गैर–विद्युत उपकरण (6.6 प्रतिशत)
- अकार्बनिक और कार्बनिक रसायन (5 प्रतिशत)
- कोयला, कोक, आदि (4.9 प्रतिशत)

वित्त वर्ष 2022 में, इन मुख्य आयात वस्तुओं ने कुल आयात का 70.6 प्रतिशत हिस्सा लिया। भारत के आयात की संरचना को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया हैः कच्चे माल, पूंजीगत सामान और उपभोक्ता उत्पाद।

- **कच्चे माल**– इस श्रेणी में पेट्रोलियम तेल, स्नेहक, खाद्य तेल, लोहा और इस्पात, उर्वरक, अलौह धातु, कीमती पत्थर, मोती और अन्य वस्तुएं शामिल हैं। इन सभी वस्तुओं से बने कुल आयात का प्रतिशत 1960–61 में 47% से बढ़कर 1980–81 में लगभग 80% हो गया। 2023, में रूस द्वारा यूक्रेन पर आक्रमण के कारण आपूर्ति बाधित होने की चिंता बढ़ गई है, जिससे तेल की कीमतें बहु–वर्षीय ऊंचाई पर पहुंच गई हैं। यह देखते हुए कि भारत अपना लगभग 80% तेल आयात करता है, परिस्थिति इसके व्यापार घाटे को खतरे में डालती है।
- जनवरी 2023 में पेट्रोलियम आयात 13.1 बिलियन अमरीकी डॉलर से बढ़कर 22 फरवरी को 15.3 बिलियन अमरीकी डॉलर हो गया। बढ़ती अंतरराष्ट्रीय तेल की कीमतों, बढ़ती गतिशीलता और घरेलू और विदेशी तेल खपत में वृद्धि के कारण, पेट्रोलियम आयात वित्त वर्ष 2021 में 72.4 अरब अमरीकी डॉलर से बढ़कर वित्त वर्ष 2022 में 141.7 अरब अमरीकी डॉलर हो गया।
- **पूंजीगत सामान**– इस श्रेणी में गैर–विद्युत और विद्युत मशीनरी, धातु, लोकोमोटिव और अन्य परिवहन उपकरण शामिल हैं। ये वस्तुएं देश के औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक हैं। 1960–61 में पूंजीगत सामानों के आयात का कुल आयात में लगभग 32% हिस्सा था, जो लगभग INR 356 करोड़ था। यह

धीरे–धीरे कम हुआ और 1992–93 में यह लगभग 21% था।

- **उपभोक्ता उत्पाद**– इसमें विद्युत उपकरण, खाद्यान्न, दवाएं और कागज आदि का आयात शामिल है। तीसरी पंचवर्षीय योजना के अंत तक, भारत में अनाज की भारी कमी थी। नतीजतन, भारत बड़ी मात्रा में खाद्यान्न आयात करता था। वर्तमान में, भारत खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भर हो गया है।

13.5 विदेश व्यापार की दिशा

भारतीय विदेश व्यापार की दिशा को हम प्रमुख रूप से निम्नलिखित काल खण्डो मे विभाजित कर समझने का प्रयास कर सकते हैः–

1950 और 1960 के दशकः

1. इस अवधि के दौरान भारत का निर्यात काफी हद तक कृषि–आधारित था, जिसमें वस्त्र, जूट विनिर्माण और चाय प्रमुख पारंपरिक वस्तुएं थीं।
2. ऐतिहासिक व्यापार संबंधों के कारण निर्यात मुख्य रूप से यूनाइटेड किंगडम और अन्य राष्ट्रमंडल देशों की ओर निर्देशित किया गया था।
3. आत्मनिर्भरता पर जोर दिया गया था, और आयात प्रतिबंधित थे।

1970 के दशकः

1. विनिर्मित वस्तुओं पर ध्यान केंद्रित करने के साथ निर्यात में विविधता आई।
2. निर्यात में पारंपरिक वस्तुओं की हिस्सेदारी कम हो गई, जबकि इंजीनियरिंग सामान, चमड़ा, वस्त्र, रत्न और रसायनों को प्रमुखता मिली।
3. संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोपीय देशों और मध्य पूर्वी देशों में निर्यात में वृद्धि हुई।

1980 के दशकः

1. निर्यात विविधीकरण जारी रहा, जिसमें इंजीनियरिंग सामान, कपड़ा और रसायन प्रमुख योगदानकर्ता थे।
2. प्रौद्योगिकी–गहन और मूल्य वर्धित उत्पादों पर ध्यान केंद्रित करें।
3. संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोपीय संघ, मध्य पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया में निर्यात में वृद्धि हुई।

1990 के दशकः

1. आर्थिक उदारीकरण और वैश्वीकरण ने महत्वपूर्ण निर्यात वृद्धि को जन्म दिया।

2. सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) और सॉफ्टवेयर सेवाएं प्रमुख निर्यात क्षेत्रों के रूप में उभरीं।

3. संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोपीय संघ और वैश्विक बाजारों में सॉफ्टवेयर सेवाओं के निर्यात का विस्तार हुआ।

2000 के दशक:

1. आईटी और सॉफ्टवेयर सेवाएं फलती–फूलती रहीं।

2. फार्मास्यूटिकल्स, रसायन, वस्त्र और मोटर वाहन घटकों में विविधीकरण।

3. एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका में उभरते बाजारों में निर्यात का विस्तार।

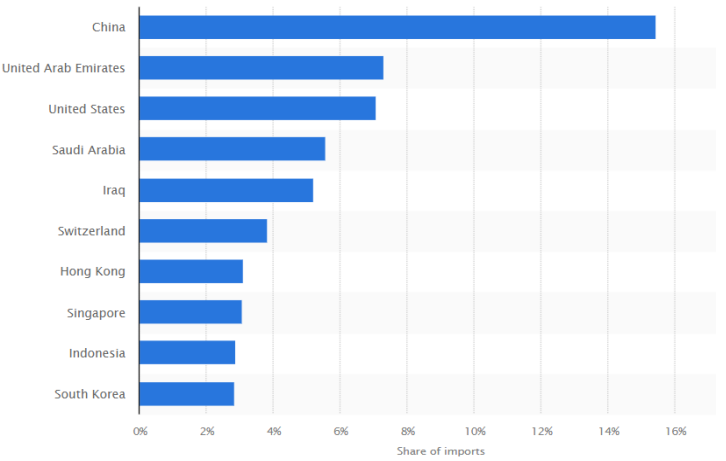
2010 के दशक:

1. आईटी और सॉफ्टवेयर सेवाओं, फार्मास्यूटिकल्स, रसायन, कपड़ा और मोटर वाहन निर्यात में निरंतर वृद्धि।

2. अफ्रीकी और लैटिन अमेरिकी बाजारों में विविधता लाने और निर्यात बढ़ाने के प्रयास।

3. मूल्य वर्धित उत्पादों और सेवाओं पर अधिक जोर दिया गया।

इन दशकों के दौरान, बदलते वैश्विक व्यापार गतिशीलता, तकनीकी प्रगति और आर्थिक नीतियों के आधार पर भारत की निर्यात दिशा विकसित हुई है। भारत ने विविधीकरण और मूल्य वर्धन पर निरंतर ध्यान देने के साथ विभिन्न क्षेत्रों में देशों की एक विस्तृत श्रृंखला को शामिल करने के लिए अपने निर्यात बाजारों का विस्तार किया है।



13.5.1 निर्यातों की दिशा

वैश्विक आर्थिक रुझानों, भू–राजनीतिक कारकों, तकनीकी प्रगति और उपभोक्ता वरीयता में बदलाव के कारण किसी देश से निर्यात की दिशा समय के साथ भिन्न हो सकती है। भारत सरकार अपने निर्यात बाजारों में विविधता लाने के लिए भी कदम उठा रही है। उदाहरण के लिए, सरकार ने अफ्रीका और लैटिन

अमेरिका में भारतीय निर्यात को बढ़ावा देने के लिए कई पहल शुरू की हैं। सरकार भारतीय कंपनियों को उच्च मूल्य की वस्तुओं और सेवाओं के निर्यात के लिए भी प्रोत्साहित कर रही है।

कुल मिलाकर भारत में निर्यात की दिशा विकासशील देशों, खासकर एशिया की ओर शिफ्ट हो रही है। यह कई कारकों के कारण है, जिसमें एक प्रमुख आर्थिक शक्ति के रूप में चीन का उदय, अन्य एशियाई देशों की बढ़ती अर्थव्यवस्थाएं और भारत और अन्य एशियाई देशों के बीच मुक्त व्यापार समझौतों पर हस्ताक्षर करना शामिल है।

उपर्युक्त के अलावा, भारत आईटी सेवाओं, बीपीओ सेवाओं और पर्यटन सेवाओं जैसी सेवाओं का एक प्रमुख निर्यातक भी है। भारतीय सेवाओं के लिए शीर्ष निर्यात गंतव्य संयुक्त राज्य अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम और यूरोपीय संघ हैं।

भारत सरकार भारत के निर्यात को बढ़ाने और अपने निर्यात बाजारों में विविधता लाने के लिए प्रतिबद्ध है। सरकार इसे प्राप्त करने के लिए कई कदम उठा रही है, जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित कदम अति महत्वपूर्ण है।

1. अन्य देशों के साथ मुक्त व्यापार समझौतों पर हस्ताक्षर
2. निर्यातकों को सब्सिडी और कर छूट प्रदान करना
3. निर्यात प्रक्रिया को सरल बनाना
4. अंर्तराष्ट्रीय बाजारों में भारतीय उत्पादों और सेवाओं को बढ़ावा देना

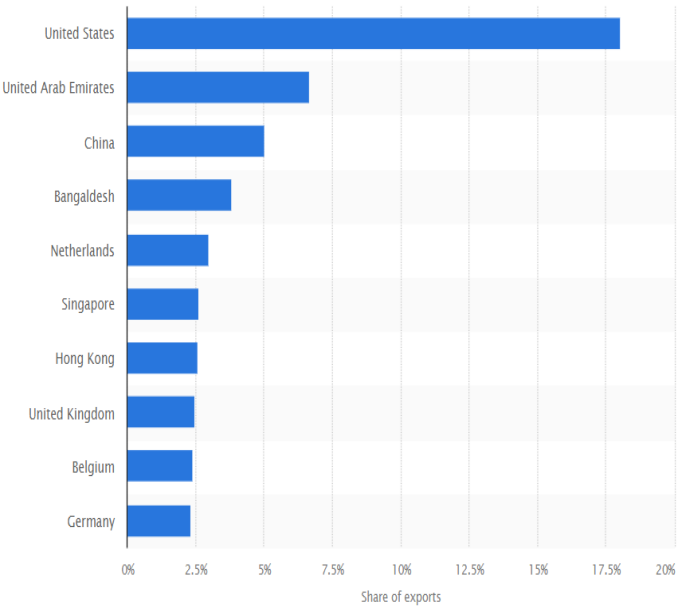
भारत सरकार भारतीय वस्तुओं और सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार करने और उन्हें वैश्विक बाजार में अधिक प्रतिस्पर्धी बनाने के लिए भी काम कर रही है।

भारत देश के अनुसार आयात	**2022 में निर्यात मूल्य**
संयुक्त राज्य अमेरिका	**$80.23B**
संयुक्त अरब अमीरात	**$31.32B**
नीदरलैंड	**$18.50B**
चीन	**$15.08B**
बांग्लादेश	**$13.83B**
सिंगापुर	**$11.83B**

यूनाइटेड किंगडम	**$11.24B**
जर्मनी	**$10.44B**
सऊदी अरब	**$10.15B**
टर्की	**$10.01B**

भारत के मुख्य निर्यात भागीदार हैं: संयुक्त राज्य अमेरिका (कुल निर्यात का 15 प्रतिशत), संयुक्त अरब अमीरात (11 प्रतिशत), हांगकांग (5 प्रतिशत), चीन (4 प्रतिशत), सिंगापुर (4 प्रतिशत) और यूनाइटेड किंगडम (3 प्रतिशत)। भारत से शीर्ष निर्यात किए जाने वाले सामानों में इंजीनियरिंग सामान, वस्त्र, रसायन और फार्मास्यूटिकल्स शामिल हैं।

13.5.2 आयातों की दिशा



समय के साथ भारत के आयात की दिशा बदल गई है। अतीत में, भारत ने संयुक्त राज्य अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम और जापान जैसे विकसित देशों से अपने माल का एक बड़ा हिस्सा आयात किया था। हालांकि, हाल के वर्षों में, विकासशील देशों, विशेष रूप से एशिया के साथ भारत का व्यापार काफी बढ़ा है। आयातों की दिशा भी समय के आर्थिक, सामाजिक, और तकनीकी परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में बदली है।

भारत सरकार अपने आयात स्रोतों में विविधता लाने के लिए भी कदम उठा रही है। उदाहरण के लिए, सरकार ने तेल आयात पर भारत की निर्भरता को कम करने के लिए कई पहल शुरू की हैं। सरकार भारतीय कंपनियों को चीन के अलावा अन्य देशों से वस्तुओं और सेवाओं का आयात करने के लिए भी प्रोत्साहित कर रही है

यह कई कारकों के कारण है, जिनमें शामिल हैं:

1. एक प्रमुख आर्थिक शक्ति के रूप में चीन का उदय

2. दक्षिण कोरिया और वियतनाम जैसे अन्य एशियाई देशों की बढ़ती अर्थव्यवस्थाएं

3. भारत और अन्य एशियाई देशों के बीच मुक्त व्यापार समझौतों पर हस्ताक्षर

अगस्त 2023 में भारत का आयात सालाना आधार पर 5.2% घटकर 58.64 अरब डॉलर हो गया, क्योंकि तेल की बढ़ी हुई कीमतों और कमजोर रुपये ने आयात लागत बढ़ा दी, जबकि घरेलू मांग मजबूत रही।

भारत देश के अनुसार आयात	**2022 में आयात मूल्य**
चीन	**$102.25B**
संयुक्त अरब अमीरात	**$53.85B**
संयुक्त राज्य अमेरिका	**$51.77B**
सऊदी अरब	**$46.198**
रूस	**$40.63B**
इराक	**$39.07B**
इंडोनेशिया	**$28.67B**
सिंगापुर	**$24.42B**
दक्षिण कोरिया	**$20.72B**
ऑस्ट्रेलिया	**$19.62B**

इस तालिका से पता चलता है कि चीन भारत का सबसे बड़ा आयात भागीदार है, जो कुल आयात का 16ः से अधिक है। संयुक्त अरब अमीरात, संयुक्त राज्य अमेरिका, सऊदी अरब और रूसी संघ भी महत्वपूर्ण आयात भागीदार हैं। भारत के प्रमुख आयात भागीदार हैंः चीन (कुल आयात का 16 प्रतिशत), संयुक्त राज्य अमेरिका (6 प्रतिशत), संयुक्त अरब अमीरात (6 प्रतिशत), सऊदी अरब (5 प्रतिशत) और स्विट्जरलैंड (5 प्रतिशत)।

इन देशों से शीर्ष आयातित वस्तुओं में पेट्रोलियम उत्पाद, मशीनरी और उपकरण, रसायन और इलेक्ट्रॉनिक्स शामिल हैं।

13.6 विदेश व्यापार का विनियमन

विदेशी व्यापार का विनियमन एक जटिल और विकसित क्षेत्र है, जो आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक विचारों द्वारा आकार दिया गया है। देशों का उद्देश्य व्यापार को सुविधाजनक बनाने और अपने घरेलू हितों की रक्षा के बीच संतुलन बनाना है।

- **विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियमः** विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम (फेमा) भारत में विदेशी मुद्रा लेनदेन, विदेशी निवेश और अंर्तराष्ट्रीय मुद्राओं से जुड़े भुगतान को विनियमित करने के लिए अधिनियमित कानून का एक महत्वपूर्ण टुकड़ा है। इसे पहले के विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम (फेरा) को बदलने के लिए पेश किया गया था और 1 जून, 2000 को लागू किया गया था। फेमा भारत में विदेशी मुद्रा और बाहरी व्यापार के विभिन्न पहलुओं को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। फेमा का प्राथमिक उद्देश्य बाहरी व्यापार और भुगतान को सुविधाजनक बनाना, भारत में विदेशी मुद्रा बाजार के व्यवस्थित विकास और रखरखाव को बढ़ावा देना और देश के विदेशी मुद्रा भंडार की स्थिरता को संरक्षित करना है।

- **सीमा शुल्क अधिनियम, 1962:** भारत में कानून का एक महत्वपूर्ण भाग है जो सीमा शुल्क के लेवी और संग्रह को नियंत्रित करता है, अंर्तराष्ट्रीय सीमाओं के पार माल की आवाजाही को नियंत्रित करता है, और सीमा शुल्क प्रशासन और प्रक्रियाओं के लिए कानूनी ढांचा प्रदान करता है। अधिनियम का उद्देश्य राजस्व संग्रह सुनिश्चित करते हुए, तस्करी को रोकने और राष्ट्रीय सुरक्षा की रक्षा करते हुए अंर्तराष्ट्रीय व्यापार को सुविधाजनक बनाना है। यह अधिनियम केंद्र सरकार को भारत में आयातित या निर्यात की जाने वाली वस्तुओं पर सीमा शुल्क लगाने और एकत्र करने का अधिकार देता है। इन शुल्कों में मूल सीमा शुल्क, अतिरिक्त सीमा शुल्क, एंटी–डंपिंग शुल्क और रक्षोपाय शुल्क शामिल हो सकते हैं।

- **निर्यात गुणवत्ता नियंत्रण और निरीक्षण अधिनियम, 1963:** निर्यात गुणवत्ता नियंत्रण और निरीक्षण अधिनियम, 1963 भारत में एक महत्वपूर्ण कानून है जिसे देश से निर्यात किए जाने वाले सामानों की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए अधिनियमित किया गया था। इस अधिनियम का उद्देश्य निर्यात उत्पादों की गुणवत्ता को बढ़ावा देना और विनियमित करना, अंर्तराष्ट्रीय मानकों को बनाए रखना और वैश्विक बाजार में भारतीय निर्यात की विश्वसनीयता को बढ़ाना है। अधिनियम गुणवत्ता नियंत्रण उपायों, निरीक्षण प्रक्रियाओं और निर्यात उत्पादों के प्रमाणन की स्थापना के लिए एक कानूनी ढांचा प्रदान करता है।

- **विदेश व्यापार (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1992**– भारत में एक महत्वपूर्ण कानून है जिसका उद्देश्य विदेशी व्यापार के विकास, विनियमन और संवर्धन के लिए कानूनी ढांचा प्रदान करना है। यह अधिनियम सरकार को भारत के निर्यात को बढ़ाने, आयात को सुविधाजनक बनाने और आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए नीतियां बनाने और लागू करने का अधिकार देता है। इसने पहले के आयात और निर्यात (नियंत्रण) अधिनियम, 1947 को प्रतिस्थापित किया।

- एफटीडीआर, 1992 का मूल उद्देश्य देश में आयात को सुविधाजनक बनाकर विदेशी व्यापार के विकास और विनियमन के लिए एक रूपरेखा प्रदान करना है, साथ ही भारत से निर्यात बढ़ाने और किसी अन्य संबंधित मामलों के लिए उपाय करना है।

- यह अधिनियम केंद्र सरकार को इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए कोई भी प्रावधान करने का अधिकार देता है।

- एफटीडीआर अधिनियम, 1992 में निहित इन शक्तियों के अनुसार, सरकार निर्यात और आयात नीति तैयार करके उद्देश्यों को पूरा करने के लिए प्रावधान करती है।

- पहले इस नीति को निर्यात और आयात नीति यानी एक्जिम नीति कहा जाता था, हालांकि, बाद में नीति को देश की विदेश व्यापार नीति (एफटीपी) कहा जा रहा है क्योंकि यह देश में निर्यात और आयात से परे क्षेत्रों को कवर करती है।

- अधिनियम के अनुसार यह नीति विदेश व्यापार महानिदेशालय (डीजीएफटी) के कार्यालय द्वारा तैयार की जाती है, जो वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय, भारत सरकार का एक संबद्ध कार्यालय है।

  - अधिनियम में कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति भारत में आयात या निर्यात व्यवसाय में प्रवेश नहीं कर सकता है जब तक कि उसे डीजीएफटी के कार्यालय द्वारा आयातक निर्यातक कोड संख्या (आईईसी संख्या) जारी नहीं की जाती है।

- यदि देश में कोई निर्यातक या आयातक विदेश व्यापार नीति के किसी प्रावधान का उल्लंघन करता है या उस मामले के लिए केंद्रीय उत्पाद शुल्क या सीमा शुल्क या विदेशी मुद्रा जैसे किसी अन्य कानून को लागू करता है, तो उसका आईईसी नंबर डीजीएफटी के कार्यालय द्वारा रद्द किया जा सकता

है और उसके बाद निर्यातक या आयातक निर्यात या आयात में कोई कारोबार नहीं कर सकेगा।

- इस अधिनियम में आयात या निर्यात के लिए लाइसेंस या प्राधिकरण नामक अनुमति जारी करने का भी प्रावधान है, जहां भी नीति के संदर्भ में इसकी आवश्यकता होती है। इसी प्रकार, आयात या निर्यात के लिए लाइसेंस को निलंबित और रद्द करने की शक्तियां भी अधिनियम में प्रदान की गई हैं। तलाशी और जब्ती आदि से संबंधित शक्तियां। अधिनियम में उन परिसरों का भी प्रावधान किया गया है जहां निर्यात आयात नीति का कोई उल्लंघन हुआ है अथवा होने की संभावना है।

विदेश व्यापार नीति के किसी भी उल्लंघन या उल्लंघन के मामले में ऐसा करने के लिए सक्षम प्राधिकारियों द्वारा लगाए जा सकने वाले दंडों का भी अधिनियम में वर्णन किया गया है। सरकार के कुछ अन्य महत्वपूर्ण विनियमन इस प्रकार से हैं। आइये इन्हें बिन्दुवार समझने का प्रयास करें :–

- **टैरिफः** टैरिफ आयातित वस्तुओं पर लगाए गए कर या शुल्क हैं। उनका उपयोग सरकार के लिए राजस्व उत्पन्न करने, घरेलू उद्योगों को विदेशी प्रतिस्पर्धा से बचाने और उपभोक्ताओं को स्थानीय रूप से उत्पादित वस्तुओं को खरीदने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए किया जा सकता है।

- **गैर–टैरिफ बाधाएंः** इनमें कोटा (आयात की मात्रा पर सीमाएं), लाइसेंसिंग आवश्यकताएं, तकनीकी मानक और अन्य उपाय शामिल हैं जो प्रत्यक्ष टैरिफ का उपयोग किए बिना आयात को प्रतिबंधित करते हैं।

- **आयात और निर्यात लाइसेंसिंगः** सरकारों को आयातकों और निर्यातकों को देश के अंदर और बाहर विशिष्ट वस्तुओं की आवाजाही को नियंत्रित करने के लिए लाइसेंस या परमिट प्राप्त करने की आवश्यकता हो सकती है।

- **व्यापार समझौते और संधियाँः** देश अपने भागीदारों के साथ व्यापार के नियमों को स्थापित करने के लिए व्यापार समझौतों और संधियों पर बातचीत करते हैं। ये समझौते टैरिफ, कोटा, बौद्धिक संपदा अधिकार और निवेश जैसे क्षेत्रों को कवर कर सकते हैं।

- **व्यापार उपचारः** जब घरेलू उद्योग आयात से प्रतिकूल रूप से प्रभावित होते हैं, तो सरकारें एंटी–डंपिंग शुल्क (सामान्य से कम कीमतों पर माल की बिक्री का मुकाबला करने के लिए), काउंटरवेलिंग शुल्क (विदेशी सरकारों

द्वारा प्रदान की जाने वाली सब्सिडी की भरपाई के लिए), और सुरक्षा उपाय (आयात में अचानक वृद्धि से घरेलू उद्योगों की रक्षा के लिए अस्थायी प्रतिबंध) जैसे व्यापार उपचार लागू कर सकती हैं।

- **निर्यात नियंत्रणः** ये ऐसे नियम हैं जो कुछ वस्तुओं, प्रौद्योगिकियों या सेवाओं के निर्यात को प्रतिबंधित करते हैं, विशेष रूप से संभावित सैन्य या सुरक्षा निहितार्थ वाले।
- **प्रतिबंध और प्रतिबंधः** सरकारें विशिष्ट देशों पर व्यापार प्रतिबंध या प्रतिबंध लगा सकती हैं, विदेश नीति या राष्ट्रीय सुरक्षा उद्देश्यों के लिए एक उपकरण के रूप में व्यापार को प्रतिबंधित या प्रतिबंधित कर सकती हैं।
- **सीमा शुल्क प्रक्रियाएंः** सीमा शुल्क नियमों में प्रलेखन, निरीक्षण और अन्य प्रक्रियाएं शामिल हैं जो सीमाओं को पार करते समय माल को गुजरना चाहिए।
- **व्यापार सुविधाः** सरकारें सीमा शुल्क प्रक्रियाओं को सरल और सुव्यवस्थित करने, प्रशासनिक बोझ को कम करने और माल की आवाजाही को सुविधाजनक बनाने के उपायों को लागू कर सकती हैं।
- **व्यापार नीति निर्माणः** सरकारें व्यापार नीतियों को विकसित करती हैं जो लक्ष्यों, रणनीतियों और प्राथमिकताओं सहित अंर्तराष्ट्रीय व्यापार के लिए उनके दृष्टिकोण को रेखांकित करती हैं।
- **विदेशी मुद्रा नियंत्रणः** कुछ देश अपनी विनिमय दरों का प्रबंधन करने और पूंजी के प्रवाह को नियंत्रित करने के लिए विदेशी मुद्राओं की खरीद और बिक्री को विनियमित करते हैं।
- **बौद्धिक संपदा अधिकार (आईपीआर) संरक्षणः** ज्ञान आधारित वस्तुओं और सेवाओं में व्यापार को विनियमित करने के लिए कॉपीराइट, पेटेंट, ट्रेडमाक्र और अन्य बौद्धिक संपदा का प्रभावी संरक्षण महत्वपूर्ण है।

13.7 निर्यात संवर्धन के उपाय

निर्यात संवर्धन के महत्वपूर्ण उपायों में निम्नलिखित उपायो का सुव्यवस्थित अध्ययन करना अति महत्वपूर्ण होगा।

13.7.1 उत्पादन आधार बनाने की सुविधाएं

उत्पादन आधार के निर्माण के लिए सुविधाएं सरकारों, उद्योगों और अन्य हितधारकों द्वारा प्रदान किए गए विभिन्न समर्थन प्रणालियों, प्रोत्साहनों और

संसाधनों को संदर्भित करती हैं ताकि व्यवसायों को अपने विनिर्माण कार्यों को स्थापित करने और विस्तार करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके। एक मजबूत उत्पादन आधार आर्थिक विकास, रोजगार सृजन और बेहतर प्रतिस्पर्धा में योगदान देता है। यहां कुछ सामान्य सुविधाएं और उपाय दिए गए हैं जो उत्पादन आधार के निर्माण की सुविधा प्रदान करते हैंः एक्सपोर्ट प्रमोशन कैपिटल गुड्स (ईपीसीजी) योजना, शुल्क–मुक्त लाइसेंस और निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्र (ईपीजेड) के शीर्ष – प्रमुख तत्व हैं जो उत्पादन आधार के निर्माण की सुविधा प्रदान करते हैं और निर्यात को बढ़ावा देते हैं। आइए इन सुविधाओं में से प्रत्येक पर करीब से नजर डालेंः

1. निर्यात संवर्धन पूंजीगत वस्तुएं (ईपीसीजी) योजनाः

- ईपीसीजी योजना एक व्यापार नीति उपाय है जो निर्माताओं को रियायती सीमा शुल्क पर पूंजीगत वस्तुओं (मशीनरी, उपकरण, आदि) का आयात करने की अनुमति देता है, इस शर्त के साथ कि आयातित वस्तुओं का उपयोग निर्यात–उन्मुख उत्पादन के लिए किया जाएगा।
- इस योजना के तहत, पूंजीगत वस्तुओं को कम सीमा शुल्क के साथ आयात किया जा सकता है, और निर्यातक एक निश्चित अवधि में निर्यात प्रदर्शन के एक विशिष्ट स्तर को प्राप्त करने के लिए प्रतिबद्ध है।
- यह योजना आधुनिक प्रौद्योगिकी और मशीनरी में निवेश को प्रोत्साहित करती है, जो उत्पादकता और गुणवत्ता को बढ़ाती है, अंततः निर्यात को बढ़ावा देती है।

2. शुल्क मुक्त लाइसेंसः

- शुल्क–मुक्त लाइसेंस, जिसे शुल्क–मुक्त आयात प्राधिकरण (डीएफआईए) के रूप में भी जाना जाता है, निर्यातकों को जारी किए जाते हैं, जिससे वे सीमा शुल्क का भुगतान किए बिना निर्दिष्ट वस्तुओं का आयात कर सकते हैं।
- ये लाइसेंस आम तौर पर उन इनपुट के लिए दिए जाते हैं जो निर्यात वस्तुओं के उत्पादन के लिए आवश्यक होते हैं।
- शुल्क मुक्त लाइसेंस का उद्देश्य आयात शुल्क में छूट देकर उत्पादन की लागत को कम करना है, इस प्रकार निर्यात किए गए माल को अंतरराष्ट्रीय बाजारों में अधिक प्रतिस्पर्धी बनाना है।

3. निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्र (ईपीजेड):

- निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्र (ईपीजेड), जिसे निर्यात संवर्धन क्षेत्र (ईपीजेड) या विशेष आर्थिक क्षेत्र (एसईजेड) के रूप में भी जाना जाता है, नामित क्षेत्र हैं जो विदेशी और घरेलू निवेश को आकर्षित करने के लिए विभिन्न प्रोत्साहन प्रदान करते हैं।
- ईपीजेड निर्यात उन्मुख विनिर्माण और व्यापार को प्रोत्साहित करने के लिए विशेष बुनियादी ढांचा, सीमा शुल्क सुविधा और नियामक छूट प्रदान करते हैं।
- ईपीजेड के भीतर काम करने वाले व्यवसायों को कम करों, सुव्यवस्थित प्रक्रियाओं और निर्यात के लिए उत्पादन के लिए अनुकूल वातावरण से लाभ होता है।

4. औद्योगिक पाक्र और क्षेत्र: विनिर्माण के लिए विशेष बुनियादी ढांचे, उपयोगिताओं और सेवाओं के साथ नामित क्षेत्र, अक्सर कर प्रोत्साहन, सुव्यवस्थित नियम और कुशल कार्यबल तक पहुंच प्रदान करते हैं।

5. विशेष आर्थिक क्षेत्र (एसईजेड):

- अद्वितीय व्यापार और व्यापार नियमों के साथ भौगोलिक क्षेत्र, निर्यात–उन्मुख उत्पादन, व्यापार और निवेश के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करते हैं।
- विशेष आर्थिक क्षेत्र (एसईजेड) निर्दिष्ट भौगोलिक क्षेत्र हैं जिनमें व्यवसायों को निर्यात को बढ़ावा देने और आर्थिक गतिविधि उत्पन्न करने के लिए राजकोषीय और गैर–राजकोषीय प्रोत्साहनों की एक श्रृंखला का आनंद मिलता है।
- एसईजेड इकाइयों को सीमा शुल्क और अधिकांश अप्रत्यक्ष करों से छूट दी गई है, और वे सुव्यवस्थित प्रक्रियाओं, बुनियादी ढांचे की सुविधाओं और अनुकूल कारोबारी माहौल से लाभान्वित होते हैं।
- एसईजेड का उद्देश्य विदेशी निवेश को आकर्षित करना, विनिर्माण को बढ़ावा देना और विश्व स्तरीय बुनियादी ढांचे और व्यापार के अनुकूल पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करके निर्यात को बढ़ावा देना है।

6. बुनियादी ढांचा विकास: विनिर्माण गतिविधियों का समर्थन करने के लिए परिवहन, ऊर्जा, जल आपूर्ति और संचार बुनियादी ढांचे में सरकारी निवेश।

7. शुल्क छूट योजना (डीईएस):

- शुल्क छूट योजना (डीईएस) निर्यातकों को कुछ निर्यात दायित्वों के अधीन सीमा शुल्क का भुगतान किए बिना इनपुट (कच्चा माल, घटक, मध्यवर्ती) आयात करने की अनुमति देती है।
- यह योजना निर्यात उत्पादों के निर्माण के लिए उपयोग किए जाने वाले आयातित आदानों पर सीमा शुल्क में छूट देकर निर्यात–उन्मुख उद्योगों के लिए उत्पादन की लागत को कम करने के लिए डिजाइन की गई है।
- डीईएस का लाभ निर्यातक की विशिष्ट आवश्यकताओं के आधार पर विभिन्न साधनों जैसे अग्रिम प्राधिकरण, शुल्क मुक्त आयात प्राधिकरण (डीएफआईए), या इसी तरह के तंत्र के माध्यम से लिया जा सकता है।

8. निर्यातोन्मुख इकाई योजना (100% ईओयू योजना):

- निर्यातोन्मुख इकाई (ईओयू) योजना विभिन्न प्रोत्साहनों और लाभों के साथ वस्तुओं के उत्पादन और निर्यात के लिए औद्योगिक इकाइयों की स्थापना को सक्षम बनाती है।
- इस योजना के तहत, इकाइयों को सीमा शुल्क या करों का भुगतान किए बिना कच्चे माल, घटकों और अन्य इनपुट आयात करने की अनुमति है, और अंतिम उत्पादों को सीमा शुल्क चुकाने के लिए किसी भी दायित्व के बिना निर्यात किया जा सकता है।
- ईओयू को सरलीकृत प्रक्रियाओं, अनुपालन आवश्यकताओं में कमी और निर्यात–उन्मुख विनिर्माण को बढ़ावा देने के लिए कर प्रोत्साहन से लाभ होता है।

9. स्टेटस होल्डर स्कीम:

- स्टेटस होल्डर स्कीम उन निर्यातकों को पहचानती है और पुरस्कृत करती है जिन्होंने अपने निर्यात प्रयासों में असाधारण प्रदर्शन और वृद्धि दिखाई है।
- निर्यात कारोबार की एक निश्चित सीमा प्राप्त करने वाले निर्यातकों को उनके निर्यात प्रदर्शन के आधार पर ''स्टार एक्सपोर्ट हाउस,'' ''ट्रेडिंग हाउस,'' ''सुपर स्टार एक्सपोर्ट हाउस'', या ''प्रीमियर ट्रेडिंग हाउस'' के रूप में दर्जा दिया जाता है।
- स्टेटस धारकों को अतिरिक्त शुल्क क्रेडिट, छूट और तेजी से मंजूरी जैसे

लाभ मिलते हैं।8. अनुकूलित नियामक सहायताः विनिर्माण व्यवसायों की स्थापना और संचालन में तेजी लाने के लिए सरलीकृत लाइसेंसिंग, परमिट और नियामक प्रक्रियाएं।

10.अनुसंधान और विकास (आर एंड डी) सुविधाएंः आर एंड डी केंद्रों, प्रौद्योगिकी पार्कों और नवाचार केंद्रों तक पहुंच जो उत्पाद विकास, प्रक्रिया सुधार और तकनीकी नवाचार को बढ़ावा देते हैं।

इन सुविधाओं और उपायों का उद्देश्य व्यवसायों को अपनी उत्पादन गतिविधियों को स्थापित करने और विस्तार करने, आर्थिक विकास, औद्योगिकीकरण और रोजगार सृजन को चलाने के लिए एक अनुकूल वातावरण बनाना है। वे निवेश को आकर्षित करने, नवाचार को प्रोत्साहित करने और वैश्विक बाजार में देश की प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये सुविधाएं सामूहिक रूप से निर्माताओं और निर्यातकों को कुशलतापूर्वक काम करने, आधुनिक तकनीक में निवेश करने और अंतरराष्ट्रीय बाजारों में प्रतिस्पर्धी वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए अनुकूल परिस्थितियां प्रदान करके उत्पादन आधार की स्थापना और विकास में योगदान करती हैं। वे आर्थिक विकास, रोजगार सृजन और निर्यात विस्तार को चलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

13.7.2 विशेष प्रतिष्ठा के निर्माण द्वारा सुविधाएं

स्टेटस होल्डर स्कीम किसी देश की विदेश व्यापार नीति (एफटीपी) में शामिल एक महत्वपूर्ण निर्यात संवर्धन उपाय है, जिसका उद्देश्य स्थापित निर्यातकों को उनके असाधारण निर्यात प्रदर्शन के लिए पहचानना और पुरस्कृत करना है। निर्यातकों को एक विशिष्ट अवधि में उनके कुल निर्यात मूल्यों के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है। इन श्रेणियों में एक्सपोर्ट हाउस, स्टार एक्सपोर्ट हाउस, ट्रेडिंग हाउस, स्टार ट्रेडिंग हाउस और प्रीमियर ट्रेडिंग हाउस शामिल हैं। वर्गीकरण और संबंधित निर्यात प्रदर्शन सीमाएं निम्नानुसार हैं:

- **एक्सपोर्ट हाउसः** चालू वर्ष और पिछले 3 वर्षों के दौरान कुल निर्यात – 20 करोड़ रुपये
- **स्टार एक्सपोर्ट हाउसः** चालू वर्ष और पिछले 3 वर्षों के दौरान कुल निर्यात – 100 करोड़ रुपये
- **ट्रेडिंग हाउसः** चालू वर्ष के दौरान कुल निर्यात और पिछले 3 वर्षों को मिलाकर – 500 करोड़ रुपये
- **स्टार ट्रेडिंग हाउसः** चालू वर्ष और पिछले 3 वर्षों के दौरान कुल निर्यात –

2,500 करोड़ रुपये

- **प्रीमियर ट्रेडिंग हाउसः** चालू वर्ष और पिछले 3 वर्षों के दौरान कुल निर्यात – 10,000 करोड़ रुपये

- स्थिति धारक, उनके वर्गीकरण के आधार पर, कई प्रकार की सुविधाओं के हकदार हैं जो उनकी निर्यात–आयात प्रक्रियाओं को सरल और तेज करने और उनकी प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ाने के लिए डिजाइन किए गए हैं। इन सुविधाओं में शामिल हैं:

  1. **प्राधिकरण और सीमा शुल्क मंजूरी के लिए स्व–घोषणा आधारः** स्थिति धारक स्व–घोषणा के आधार पर आयात और निर्यात गतिविधियों के लिए प्राधिकरण प्राप्त कर सकते हैं, जो प्रशासनिक बोझ को कम करता है और प्रक्रिया को गति देता है। वे अनिवार्य जांच के बिना सीमा शुल्क को भी मंजूरी दे सकते हैं, जिससे तेजी से मंजूरी मिल सकती है और लेनदेन का समय कम हो सकता है।

  2. **बैंकों के माध्यम से अनिवार्य बातचीत से छूटः** स्टेटस धारकों को अनिवार्य रूप से बैंकों के माध्यम से अपने निर्यात–आयात दस्तावेजों को रूट करने की आवश्यकता नहीं है। उनके पास अपने आयातकों या निर्यातकों के साथ दस्तावेजों पर सीधे बातचीत करने का विकल्प है, जो अधिक लचीलापन प्रदान करता है।

  3. **मानक इनपुट–आउटपुट मानदंडों (एसआईओएन) का प्राथमिकता निर्धारणः** शुल्क छूट प्रयोजनों के लिए मानक इनपुट–आउटपुट मानदंड (एसआईओएन) निर्धारित करने के अनुरोधों को स्थिति धारकों के लिए प्राथमिकता दी जाती है, जिससे अधिकतम 60 दिनों की अवधि के भीतर त्वरित प्रसंस्करण सुनिश्चित होता है।

  4. **विस्तारित प्रत्यावर्तन अवधिः** स्थिति धारकों को निर्यात आय के प्रत्यावर्तन के लिए 360 दिनों की विस्तारित अवधि की अनुमति दी जाती है, जबकि अन्य निर्यातकों के लिए 180 दिनों की सामान्य अवधि होती है। यह विदेशी मुद्रा लेनदेन के प्रबंधन में अधिक लचीलापन प्रदान करता है।

  5. **बैंक गारंटी आवश्यकता से छूटः** प्रीमियर ट्रेडिंग हाउस श्रेणी के निर्यातकों को एफटीपी के प्रावधानों के तहत बैंक गारंटी जमा करने की आवश्यकता से छूट दी गई है। यह वित्तीय दायित्वों और प्रशासनिक जटिलताओं को कम करता है।

स्टेटस होल्डर योजना का उद्देश्य स्थापित निर्यातकों को प्रोत्साहित करना और उनका समर्थन करना है, देश के विदेश व्यापार में उनके योगदान को पहचानना और आगे के विकास को बढ़ावा देना है। इन सुविधाओं को प्रदान करके, यह योजना स्थिति धारकों के लिए व्यापार करने में आसानी को बढ़ाने और निर्यात–उन्मुख गतिविधियों के लिए अधिक अनुकूल वातावरण बनाने का प्रयास करती है।

13.7.3 राजकोषीय प्रोत्साहन

निर्यातकों को देश से निर्यात बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करने की दृष्टि से उन्हें राजकोषीय प्रोत्साहन प्रदान किए गए हैं। प्रमुख राजकोषीय प्रोत्साहन शुल्क वापसी योजना हैं। निर्यात लाभ पर केंद्रीय उत्पाद शुल्क छूट और आयकर छूट। आइए हम उन्हें जानें–

i) **ड्यूटी ड्रॉबैक योजनाः** ड्यूटी ड्रॉबैक स्कीम निर्यातकों को निर्यात ति वस्तुओं के उत्पादन में उपयोग किए जाने वाले इनपुट पर भुगतान किए गए आयात शुल्क की वापसी प्रदान करने के लिए एक तंत्र है। इस योजना का उद्देश्य निर्यात–उन्मुख उद्योगों के लिए उत्पादन की लागत को कम करना है। यहां बताया गया है कि यह कैसे काम करता हैः

1. **दरों के प्रकारः** शुल्क वापसी दरें दो प्रकार की होती हैंः

   - **सभी उद्योग दरें**ः ये दरें विशिष्ट उत्पाद श्रेणियों के लिए तय की जाती हैं और उस श्रेणी के सभी निर्यातकों पर लागू होती हैं। वे पूरे उद्योग के लिए इनपुट पर औसत शुल्क के आधार पर मानकीकृत दरें हैं।

   - **ब्रांड दरें**ः ये दरें इनपुट पर भुगतान किए गए वास्तविक आयात शुल्क के आधार पर प्रत्येक निर्माता के लिए व्यक्तिगत रूप से तय की जाती हैं। निर्माता ब्रांड दरों के लिए आवेदन कर सकते हैं यदि वे अपने इनपुट पर किए गए वास्तविक कर्तव्यों का प्रदर्शन कर सकते हैं।

2. **ड्राबैक क्रेडिट योजनाः** इस योजना के तहत, निर्दिष्ट वाणिज्यिक बैंक निर्यातकों को उनके शुल्क वापसी हकदारी के आधार पर क्रेडिट प्रदान कर सकते हैं। इससे निर्यातकों को वास्तविक शुल्क वापसी रिफंड की प्रतीक्षा किए बिना अपने परिचालन के वित्तपोषण के लिए धन तक पहुंचने में मदद मिलती है।

3. **ड्राबैक नियमः** यह योजना ड्राबैक निदेशालय, वित्त मंत्रालय द्वारा अधिसूचित ड्रॉबैक नियमों द्वारा शासित होती है। ये नियम ड्यूटी ड्रॉबैक का दावा करने के लिए पात्रता मानदंड, प्रक्रियाओं और प्रलेखन आवश्यकताओं को रेखांकित करते

है।

4. **ड्राबैक क्रेडिट योजनाः** इस योजना के तहत, निर्दिष्ट वाणिज्यिक बैंक निर्यातकों को उनके शुल्क वापसी हकदारी के आधार पर क्रेडिट प्रदान कर सकते हैं। इससे निर्यातकों को वास्तविक शुल्क वापसी रिफंड की प्रतीक्षा किए बिना अपने परिचालन के वित्तपोषण के लिए धन तक पहुंचने में मदद मिलती है।

ii) **केंद्रीय उत्पाद शुल्क छूटः** केंद्रीय उत्पाद शुल्क छूट निर्यातकों को प्रदान किया जाने वाला एक और राजकोषीय प्रोत्साहन है, विशेष रूप से विनिर्माण क्षेत्र में। इसमें निर्यात उत्पादन में उपयोग किए जाने वाले कच्चे माल और अंतिम उत्पादों पर चुकाए गए केंद्रीय उत्पाद शुल्क की वापसी शामिल है। यह योजना लागत में कमी और निर्यात प्रतिस्पर्धा में योगदान देती हैः

1. **धनवापसी प्रक्रियाः** निर्यातक निर्यात ति वस्तुओं के निर्माण में उपयोग किए जाने वाले इनपुट पर भुगतान किए गए केंद्रीय उत्पाद शुल्क की वापसी का दावा कर सकते हैं। रिफंड प्रक्रिया में संबंधित अधिकारियों द्वारा प्रलेखन और सत्यापन शामिल है।

2. **बॉन्ड प्रणालीः** यह योजना एक बॉन्ड प्रणाली भी प्रदान करती है जहां निर्यातक केंद्रीय उत्पाद शुल्क से एकमुश्त छूट का दावा कर सकते हैं। यह उत्पादन की कुल लागत को कम करने में मदद करता है और निर्यात उत्पादों की प्रतिस्पर्धात्मकता में सुधार करता है।

iii) **आयकर छूटः निर्यात**–उन्मुख गतिविधियों को प्रोत्साहित करने के लिए निर्यातकों को आयकर छूट एक महत्वपूर्ण प्रोत्साहन प्रदान किया जाता है। यहां बताया गया है कि यह कैसे काम करता हैः

1. **निर्यात लाभ छूटः** निर्यातकों द्वारा अर्जित निर्यात लाभ को आयकर से पूरी तरह से छूट दी गई है। यह छूट प्रत्यक्ष निर्यातकों और निर्माताओं दोनों पर लागू होती है जो अपने उत्पादों का निर्यात करते हैं।

2. **विस्तारित लाभः** निर्यात लाभ पर आयकर छूट का लाभ निर्यातध्व्यापारध्स्टार हाउस के माध्यम से निर्यात करने वाले विनिर्माताओं को दिया गया है। यह निर्माताओं को निर्यात गतिविधियों में संलग्न होने के लिए प्रोत्साहित करता है और निर्यात क्षेत्र के विकास को बढ़ावा देता है।

3. **ईपीजेडध्ईओयू के लिए कर अवकाशः** निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्रों

(ईपीजेड) या निर्यात उन्मुख इकाइयों (ईओयू) में काम करने वाली इकाइयों को पांच साल की कर छूट मिलती है, जिसके दौरान उनके निर्यात लाभ को आयकर से पूरी तरह से छूट दी जाती है।

4. **बिक्री कर छूटः** आयकर लाभ के अलावा, निर्यात बिक्री पर बिक्री कर में भी छूट दी जाती है। यह निर्यात गतिविधियों पर समग्र कर बोझ को और कम करता है।

ये राजकोषीय प्रोत्साहन, अन्य वित्तीय प्रोत्साहनों के साथ, निर्यातकों के लिए अनुकूल वातावरण बनाने, उनकी प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ाने और निर्यात क्षेत्र के विकास को प्रोत्साहित करने के लिए डिजाइन किए गए हैं। वे निवेश को आकर्षित करने, निर्यात को बढ़ावा देने और समग्र आर्थिक विकास में योगदान देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

13.7.4 बाजार विकास सहायता

विपणन विकास सहायता (एमडीए) एक सरकारी अनुदान है जो निर्यातकों को उनके निर्यात संवर्धन गतिविधियों जैसे ईपीसी के नेतृत्व वाले अंर्तराष्ट्रीय व्यापार मेलों/प्रदर्शनियों/व्यापार प्रतिनिधिमंडलों/बीएसएम में भागीदारी के लिए उपलब्ध है ताकि प्रारंभिक चरण में भारत से उनके विशिष्ट उत्पाद और वस्तुओं के निर्यात के लिए नए बाजारों का पता लगाया जा सके। योजना का पूरा विवरण दिशानिर्देशों में उपलब्ध है। आाइये इसे बिन्दुवार समझने का प्रयास करें :–

(i) विदेशों में निर्यात संवर्धन कार्यकलापों के लिए निर्यातकों की सहायता करना।

(ii) निर्यात संवर्धन परिषदों (ईपीसी) को उनके उत्पादों और वस्तुओं के लिए निर्यात संवर्धन कार्यकलाप शुरू करने में सहायता करना।

(iii) अनुमोदित संगठनों/व्यापार निकायों को उनके सदस्यों के लिए निर्यात संवर्धन प्रयासों से संबंधित अनन्य गैर–आवर्ती नवान्वेषी कार्यकलाप शुरू करने में सहायता करना।

(iv) फोकस (एलएसी), फोकस (अफ्रीका), फोकस (सीआईएस) और फोकस (आसियान. 2) कार्यक्रमों जैसे विदेश के विशिष्ट क्षेत्रों में फोकस निर्यात संवर्धन कार्यक्रमों में सहायता करें।

(v) विदेशों में विपणन संवर्धन प्रयासों से संबंधित अवशिष्ट आवश्यक कार्यकलाप।

पिछले वर्ष में 30 करोड़ रुपये तक के निर्यात मूल्य वाली निर्यातक कंपनियां

प्रारंभिक चरण में भारत से अपने विशिष्ट उत्पाद और वस्तुओं के निर्यात के लिए नए बाजारों का पता लगाने के लिए विदेश में बीएसएम मेलों/प्रदर्शनियों में भागीदारी के लिए एमडीए सहायता के लिए पात्र होंगी। यह इस शर्त के अधीन होगा कि निर्यातक ने संबंधित ईपीसी के साथ 12 महीने की सदस्यता पूरी कर ली है और नियमित रूप से संबंधित ईपीसी/संगठन के साथ रिटर्न दाखिल किया है। हालांकि, यह शर्त नए ईपीसी के मामले में इसके निर्माण की तारीख से 5 साल की अवधि के लिए लागू नहीं होगी। फोकस एलएसी क्षेत्र में भागीदारी के लिए ऐसी कोई सीमा लागू नहीं है।

1. ईपीसी के नेतृत्व वाले अंर्तराष्ट्रीय व्यापार मेलों तथा प्रदर्शनियों में सहभागिता :

1. निर्यात संवर्धन परिषद (ईपीसी) निर्यात संवर्धन के लिए विशिष्ट उद्योगों या क्षेत्रों को बढ़ावा देने और समर्थन करने के लिए भारत सरकार द्वारा स्थापित विशेष संगठन हैं।
2. एमडीए के इस घटक के तहत, निर्यातकों को अंतरराष्ट्रीय व्यापार मेलों, प्रदर्शनियों और कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए वित्तीय सहायता प्राप्त होती है जो ईपीसी द्वारा आयोजित या नेतृत्व किए जाते हैं।
3. इस तरह के आयोजनों में भाग लेने से निर्यातकों को अपने उत्पादों का प्रदर्शन करने, संभावित खरीदारों, वितरकों और विदेशी बाजारों के भागीदारों के साथ बातचीत करने और बाजार खुफिया जानकारी इकट्ठा करने की अनुमति मिलती है।
4. प्रदान की गई वित्तीय सहायता में स्टाल/बूथ किराया, प्रदर्शन सामग्री, यात्रा व्यय, आवास और अन्य संबंधित खर्चों से संबंधित लागतों का एक हिस्सा शामिल है।

2. व्यापार प्रतिनिधिमंडलः

1. एक व्यापार प्रतिनिधिमंडल में व्यापार प्रतिनिधियों और अधिकारियों का एक समूह होता है जो व्यापार और निवेश के अवसरों का पता लगाने, व्यावसायिक बैठकों में संलग्न होने और व्यावसायिक संबंध स्थापित करने के लिए विदेशी देशों का दौरा करते हैं।
2. इस घटक के तहत, उन निर्यातकों को वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है जो ईपीसी या अन्य सरकारी एजेंसियों द्वारा आयोजित आधिकारिक व्यापार प्रतिनिधिमंडलों में भाग लेते हैं।

3. व्यापार प्रतिनिधिमंडल निर्यातकों को विदेशी बाजारों में संभावित खरीदारों, वितरकों और भागीदारों के साथ नेटवक्र करने और स्थानीय व्यापार प्रथाओं और बाजार की गतिशीलता में अंतर्दृष्टि प्राप्त करने का अवसर प्रदान करते हैं।

3. विदेश में क्रेता–विक्रेता बैठकें (बीएसएम):

1. क्रेता–विक्रेता बैठक (बीएसएम) ईपीसी या व्यापार संवर्धन संगठनों द्वारा भारतीय निर्यातकों और विदेशी खरीदारों के बीच सीधी बातचीत की सुविधा के लिए आयोजित कार्यक्रम हैं।
2. निर्यातकों को विभिन्न लक्षित बाजारों में आयोजित बीएसएम में भाग लेने के लिए वित्तीय सहायता प्राप्त होती है।
3. बीएसएम निर्यातकों को पूर्व–पहचान और इच्छुक विदेशी खरीदारों से मिलने, व्यापार के अवसरों पर चर्चा करने, सौदों पर बातचीत करने और दीर्घकालिक व्यावसायिक संबंध बनाने के लिए एक मंच प्रदान करते हैं।

13.8 सारांश

आयात और निर्यात वैश्विक अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे देशों को उन वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में विशेषज्ञता प्राप्त करने की अनुमति देते हैं जिनमें उनके पास तुलनात्मक लाभ है, और उन वस्तुओं और सेवाओं का आयात करने के लिए जो वे कुशलता से उत्पादन नहीं कर सकते हैं। इससे इसमें शामिल सभी देशों के लिए आर्थिक दक्षता और उच्च जीवन स्तर में वृद्धि होती है।

हाल के दशकों में, उत्पादन के वैश्वीकरण, उभरते बाजारों के उदय और नई प्रौद्योगिकियों के

विकास जैसे कारकों से प्रेरित वैश्विक व्यापार तेजी से बढ़ा है। इस वृद्धि से आयात और निर्यात दोनों की मात्रा और मूल्य में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

आज आयात और निर्यात का परिदृश्य बढ़ती जटिलता और परस्पर संबंध में से एक है। देश तेजी से माल और सेवाओं की एक विस्तृत श्रृंखला का आयात और निर्यात कर रहे हैं, और कई उत्पादों के लिए वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला अत्यधिक जटिल हैं। इस जटिलता ने वैश्विक व्यापार प्रणाली को व्यवधानों के प्रति अधिक संवेदनशील बना दिया है, जैसे कि प्राकृतिक आपदाओं, व्यापार युद्धों और कोविड–19 महामारी के कारण।

चुनौतियों के बावजूद, भविष्य में आयात और निर्यात में वृद्धि जारी रहने की संभावना है। 2050 तक दुनिया की आबादी 10 अरब तक पहुंचने की उम्मीद है,

और इससे वस्तुओं और सेवाओं की भारी मांग पैदा होगी। इसके अलावा, उभरते बाजारों में तेजी से वृद्धि जारी रहने की उम्मीद है, और इससे वैश्विक व्यापार को भी बढ़ावा मिलेगा। निम्नलिखित कुछ प्रमुख रुझान हैं जो आयात और निर्यात के भविष्य को आकार देने की संभावना रखते हैं:

1. ई–कॉमर्स के उदय से ऑनलाइन क्रॉस–बॉर्डर व्यापार की ओर बदलाव हो रहा है।
2. नई प्रौद्योगिकी प्रारूपों का विकास, जैसे कि 3 डी प्रिंटिंग और कृत्रिम बुद्धिमत्ता, माल के उत्पादन और व्यापार के तरीके को बदल रहा है।
3. स्थिरता के बढ़ते महत्व से नैतिक और पर्यावरण के अनुकूल व्यापार प्रथाओं पर अधिक ध्यान केंद्रित किया जा रहा है।

सरकारों और व्यवसायों को इन रुझानों के लिए तैयार रहने और तदनुसार अपनी नीतियों और प्रथाओं को अनुकूलित करने की आवश्यकता है। सरकारों को सीमा पार व्यापार का समर्थन करने के लिए बुनियादी ढांचे और डिजिटल प्रौद्योगिकियों में निवेश करने की आवश्यकता है। व्यवसायों को वैश्विक बाजार में प्रतिस्पर्धा करने और टिकाऊ उत्पादों और सेवाओं के लिए उपभोक्ताओं की मांगों को पूरा करने के लिए नई रणनीतियों को विकसित करने की आवश्यकता है।

13.9 उपयोगी शब्दावली

- **आयातः** आयातक देश के भीतर उन्हें बेचने या उपयोग करने के उद्देश्य से किसी अन्य देश से किसी देश में वस्तुओं या सेवाओं को लाने का कार्य।
- **निर्यातः** किसी देश के भीतर उत्पादित वस्तुओं या सेवाओं को बेचने के उद्देश्य से दूसरे देश में भेजने का कार्य।
- **एक्जिम नीतिः** आमतौर पर किसी देश की निर्यात–आयात नीति को संदर्भित करती है। एक निर्यात–आयात नीति एक सरकार द्वारा वस्तुओं और सेवाओं के आयात और निर्यात को नियंत्रित करने के लिए स्थापित दिशानिर्देशों, विनियमों और प्रोत्साहनों का एक सेट है। इन नीतियों को विभिन्न आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक उद्देश्यों को संबोधित करते हुए अंर्तराष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने और विनियमित करने के लिए डिजाइन किया गया है।
- **विशेष आर्थिक क्षेत्र (एसईजेड)** एक देश के भीतर एक निर्दिष्ट क्षेत्र है जहां व्यवसाय आर्थिक विकास, निवेश और निर्यात को प्रोत्साहित करने के लिए विशेष कर प्रोत्साहन, शिथिल नियमों और अन्य लाभों का आनंद ले सकते हैं।

- **ईपीसीजीः** निर्यात संवर्धन पूंजीगत सामान (ईपीसीजी) कुछ देशों में एक योजना है जो निर्यातकों को निर्यात को बढ़ावा देने के लिए सीमा शुल्क की रियायती दर पर पूंजीगत वस्तुओं, मशीनरी और उपकरणों का आयात करने की अनुमति देती है। यह निर्यात को प्रोत्साहित करने और विनिर्माण क्षेत्र को बढ़ावा देने के लिए कुछ देशों में लागू एक निर्यात संवर्धन कार्यक्रम है।

13.10 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न 1. एफटीडीआर अधिनियम, 1992 की महत्वपूर्ण विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 2. एफटीपी के मूल उद्देश्यों को बताएं और इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए क्या रणनीति तैयार की गई है?

प्रश्न 3. एफटीपी के महत्वपूर्ण प्रावधान क्या हैं, जिनके बारे में किसी भी संभावित आयातक या निर्यातक को पता होना चाहिए?

प्रश्न 4. देश में प्रचलित विभिन्न निर्यात संवर्धन योजनाएं क्या हैं और ऐसी ही एक योजना को विस्तार से समझाएं?

प्रश्न 5. उदाहरणों की मदद से शुल्क छूट और छूट योजनाओं के बीच अंतर करें?

प्रश्न 6. 100% ईओयू योजना को विस्तार से समझाएं?

प्रश्न 7. देश में SEZ'ऽं को क्या लाभ उपलब्ध हैं?

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- विवेकानंद एन 2011 ''एशिया में विदेशी निवेश और विवाद समाधान कानून और अभ्यास'', क्लूवर लॉ इंटरनेशनल
- देशपांडे, अश्विनी (सं.), (2007): वैश्वीकरण और विकास, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
- ''एशिया और प्रशांत में बहुराष्ट्रीय निगम और उभरती नेटवक्र अर्थव्यवस्था'', 2015, एडवर्ड एल्गर प्रकाशन विदेशी निवेश और बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर अंर्तराष्ट्रीय पुस्तकेंः
- डनिंग, 1993 ''बहुराष्ट्रीय उद्यम और वैश्विक अर्थव्यवस्था'', एडिसन–1998 वेस्ले पब्लिशिंग कंपनी
- थिओडोर एच मोरान, 1998 ''विदेशी प्रत्यक्ष निवेश और सरकारेंः आर्थिक पुनर्गठन के लिए उत्प्रेरक'', रूटलेज।

इकाई –14 भुगतान शेष एवं निर्यात आयात नीति

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 भुगतान शेष की अवधारणा एवं उपयोगिता

14.2.1 चालू खाता एवं पूँजी खाता

14.2.2 भुगतान शेष

14.3 भारत के भुगतान शेष की प्रवृतियों

14.4 भुगतान शेष में घाटों के कारण

14.5 समस्या के समाधान के लिए उठाए गए कदम

14.6 विनिमय दर की अवधारणा

14.6.1 विदेशी विनिमय दर

14.6.2 चालू दर एवं समता दर

14.7 विनिमय दर निर्धारण की प्रणाली

14.7.1 मांग एवं आपूर्ति

14.7.2 भारत में विनिमय दर निर्धारण

14.8 निर्यात आयात नीति (1997–2002)

14.9 एक्सिम बैंक की भूमिका

14.9.1 एक्सिम बैंक का औचित्य

14.9.2 एक्सिम बैंक के ऋण सम्बंधी कार्यक्रम

14.10 सारांश

14.11 उपयोगी शब्दावली

14.12 महत्वपूर्ण प्रश्न

14.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगें कि

- व्यापार शेष एवं भुगतान शेष में भेद कर सकेंगे

- चालू खाते एवं पूँजी खाते में भेद कर सकेंगे
- भुगतान शेष की अवधारणा और इसके महत्व की व्याख्या कर सकेंगे
- विनिमय दर की अवधारणा को समझ सकेंगे
- विनिमय दर के निर्धारण के प्रणाली की चर्चा कर सकेंगे
- सरकार की वर्तमान निर्यात–आयात नीति का मूल्यांकन कर सकेंगे तथा
- भारत के विदेशी व्यापार की चर्चा कर सकेंगे

14.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने स्वतंत्रता के बाद से भारत के विदेशी व्यापार की बदलती संरचना का अध्ययन किया है। व्यापार अंतरराष्ट्रीय आर्थिक लेनदेन का केवल एक पहलू है। राष्ट्रों के बीच मानव संसाधन; सामग्री;सेवा और पूंजी का एक निरंतर प्रवाह होता है।

अंर्तराष्ट्रीय अर्थशास्त्र के लगातार विकसित परिदृश्य में, राष्ट्र आर्थिक लेनदेन के एक जटिल नृत्य में संलग्न होते हैं जो भौगोलिक सीमाओं को पार करते हैं। व्यापार, निवेश और वित्तीय प्रवाह एक वैश्विक टेपेस्ट्री बनाने के लिए आपस में जुड़ते हैं जो राष्ट्रों के भाग्य को आकार देता है और अर्थव्यवस्थाओं के पाठ्यक्रम को प्रभावित करता है। इन जटिल गतिशीलताओं की हमारी खोज में, हम भुगतान संतुलन (बीओपी) और इसके आवश्यक घटकों के दायरे में उद्यम करते हैं, जिसमें व्यापार संतुलन (बीओटी) की मनोरम अवधारणाएं, चालू खाता और पूंजी खाते की गूढ़ परस्पर क्रिया और विदेशी मुद्रा दरों के पीछे पेचीदा ताकतें शामिल हैं। हम व्यापार संतुलन और भुगतान संतुलन की मूलभूत धारणाओं में उतरते हैं, जो दुनिया भर के देशों के आर्थिक मार्गदर्शन पर आवश्यक स्तंभ के रूप में काम करते हैं। भारत के भुगतान संतुलन में रुझानों की सावधानीपूर्वक जांच के माध्यम से, हम उन आर्थिक संकेतकों को समझते हैं जो इसके बाहरी आर्थिक संबंधों को आकार देते हैं और उन सम्मोहक कारकों को प्रकट करते हैं जो व्यापार और पूंजी प्रवाह की गतिशीलता में योगदान करते हैं। हम जटिल तंत्र की जांच करते हैं जो विनिमय दरों को प्रभावित करता है जो अंतरराष्ट्रीय बाजार में मुद्राओं के मूल्य को नियंत्रित करता है। हम मांग और आपूर्ति के परस्पर क्रिया

में उतरते हैं, उन निर्धारकों की खोज करते हैं जो विनिमय दरों के उतार–चढ़ाव और प्रवाह का मार्गदर्शन करते हैं, और हम इस बात की अंर्तदृष्टि प्राप्त करते हैं कि भारत का अनूठा संदर्भ अपनी मुद्रा के मूल्य के निर्धारण में कैसे योगदान देता है।

इसके अलावा, हम निर्यात–आयात (एक्जिम) नीति पर अपना ध्यान केंद्रित करते हैं, एक महत्वपूर्ण ढांचा जो देश की अंर्तराष्ट्रीय व्यापार रणनीतियों को नियंत्रित करता है। इस परिदृश्य के भीतर, हम उस ऐतिहासिक प्रक्षेपवक्र का पता लगाते हैं जिसके कारण एक्जिम बैंक की स्थापना हुई, जो अंर्तराष्ट्रीय व्यापार को सुविधाजनक बनाने और राष्ट्र के आर्थिक विकास में योगदान देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली संस्था है। हमारी खोज बैंक के रणनीतिक उधार कार्यक्रमों को उजागर करती है जो निर्यात को प्रोत्साहित करते हैं और देश के विकास के लिए महत्वपूर्ण उद्योगों का समर्थन करते हैं।

आगे आने वाले अध्यायों में, हम इन अवधारणाओं में गहराई से उतरते हैं, उन बारीकियों का विश्लेषण करते हैं जो अंर्तराष्ट्रीय व्यापार और वित्तीय कूटनीति के इंजन को चलाते हैं। सिद्धांत, विश्लेषण और वास्तविक दुनिया के उदाहरणों के मिश्रण के माध्यम से, हम इस बात की व्यापक समझ प्राप्त करते हैं कि राष्ट्र वैश्विक आर्थिक बातचीत की जटिल धाराओं को कैसे नेविगेट करते हैं। जैसा कि हम इस ज्ञानवर्धक यात्रा की शुरुआत करते हैं, हम आर्थिक कूटनीति की जटिलताओं और वैश्विक मंच पर राष्ट्रों के भाग्य को आकार देने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका को उजागर करते हैं।

14.2 भुगतान शेष की अवधारणा एवं उपयोगिता

14.2.1 चालू खाता एवं पूँजी खाता

(क) <u>चालू खाता</u>

चालू खाता किसी देश के भुगतान शेष का एक मौलिक घटक है, जो देश और बाकी दुनिया के बीच सभी आर्थिक लेनदेन का एक व्यापक रिकॉर्ड है। चालू खाता विशेष रूप से माल और सेवाओं के व्यापार, आय प्रवाह और एकतरफा हस्तांतरण से संबंधित अल्पकालिक आर्थिक बातचीत और लेनदेन पर केंद्रित है। यह अन्य देशों के साथ देश के आर्थिक संबंधों और इसके समग्र वित्तीय स्वास्थ्य में अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।

चालू खाता अधिशेष	संतुलित चालू खाता	चालू खाता घाटा
भुगतान > आगम	आगम = **भुगतान**	**भुगतान** < आगम

भुगतान शेष के चालू खाते में दो मुख्य घटक होते हैं: व्यापार –शेष और अदृश्य मदों अथवा सेवाओं व्यापार का शेष।

1. **माल का निर्यात और आयात (दृश्यमान व्यापार या व्यापारिक लेनदेन):** यह घटक किसी देश के माल के निर्यात के मूल्य और माल के आयात के बीच के अंतर को संदर्भित करता है। विदेशी व्यापार में लेनदेन में ज्यादातर वस्तुओं या दृश्य वस्तुओं का निर्यात और आयात शामिल है। दृश्य वस्तुओं या वस्तुओं के आयात के लिए भुगतान डेबिट पक्ष पर दर्ज किया जाता है और दृश्य वस्तुओं के निर्यात से प्राप्ति भुगतान खाते की शेष राशि के क्रेडिट पक्ष पर दर्ज की जाती है। वस्तुओं के दिखाई देने वाले निर्यात और आयात के संतुलन को व्यापार– शेष कहा जाता है। यदि किसी देश के माल का निर्यात उसके आयात से अधिक है, तो उसके पास व्यापार अधिशेष है। इसके विपरीत, यदि माल का आयात निर्यात से अधिक है, तो व्यापार घाटा होता है। जब वस्तुओं का निर्यात माल के आयात के बराबर हो जाता है तो व्यापार शेष में संतुलन स्थापित हो जाता है। व्यापार शेष किसी देश की समग्र व्यापार स्थिति और चालू खाते पर इसके प्रभाव को निर्धारित करने में एक महत्वपूर्ण कारक है।

2. **अदृश्य मदों अथवा सेवाओं व्यापार का शेष** : यह घटक सेवाओं में व्यापार और विभिन्न अन्य अंतरराष्ट्रीय लेनदेन को **कवर** करता है जिसमें भौतिक सामान शामिल नहीं हैं। सेवाओं में पर्यटन, बैंकिंग और वित्तीय सेवाएं, परिवहन, शिक्षा और अधिक जैसे क्षेत्र शामिल हैं। इसे अदृश्य व्यापार के रूप में भी जाना जाता है क्योंकि अमूर्त होने के कारण सेवाओं को सीमा पार चलते हुए नहीं देखा जा सकता है। व्यापार शेष की तरह, यदि किसी देश की सेवाओं का निर्यात उसके आयात से अधिक है, तो उसके पास सेवा अधिशेष है। यदि सेवाओं का आयात निर्यात से अधिक है, तो सेवा घाटा होता है। सेवाओं का भुगतान **डेबिट** पक्ष पर और प्राप्तियां भुगतान खाते की शेष राशि के **क्रेडिट** पक्ष पर दर्ज की जाती हैं।

3. **विदेश से एकतरफा या एकतरफा हस्तांतरण (एकतरफा लेनदेन)** : ये स्थानांतरण एक निवासी और एक अनिवासी के बीच उपहार, अनुदान और दान के रूप में होते हैं। इसमें नगद और दान में अनुदान जैसे आधिकारिक हस्तांतरण भी शामिल हैं। ये एकतरफा लेनदेन हैं और आमतौर पर मुफ्त में स्थानांतरण नाम दिए जाते हैं। ये भुगतान और **रसीदें** हैं जो किसी भी तरह की सेवाओं को प्राप्त किए बिना होती हैं। इसे आमतौर पर बीओपी खाते में 'अदृश्य' का एक हिस्सा माना जाता है। बाकी दुनिया से एकतरफा हस्तांतरण की प्राप्ति **क्रेडिट** पक्ष पर दर्ज की जाती है और बीओपी के **डेबिट** पक्ष पर भुगतान किया जाता है।

4. **आय प्राप्तियां और विदेशों से भुगतान** : इसमें किराए, मुनाफे और ब्याज के रूप में निवेश आय शामिल है। चालू खाते का यह हिस्सा देश और बाकी दुनिया के बीच आय प्रवाह को पता करता है। इसमें विदेशी निवेश से होने वाली कमाई शामिल है, जैसे लाभांश, ब्याज और अन्य देशों में निवेश से लाभ।

व्यापार– शेष और अदृश्य– शेष का संयोजन किसी देश के अंर्तराष्ट्रीय आर्थिक लेनदेन की अधिक व्यापक तस्वीर प्रदान करता है। यह मूर्त वस्तुओं और अमूर्त सेवाओं के साथ–साथ एकतरफा हस्तांतरण और निवेश आय दोनों पर विचार करता है। इन घटकों को एक साथ जोड़ने का परिणाम आपको चालू खाते का समग्र शेष देता है।

(ख) पूँजी खाता

पूंजी खाता गैर–उत्पादित, गैर–वित्तीय परिसंपत्तियों के पूंजी हस्तांतरण और अधिग्रहण से संबंधित लेनदेन को अभिलेख करता है। इन लेनदेन में वित्तीय परिसंपत्तियों और देनदारियों के स्वामित्व में परिवर्तन, साथ ही कुछ प्रकार की गैर–वित्तीय संपत्तियां शामिल हैं।

पूंजी खाता किसी देश के भुगतान–शेष के दो मुख्य घटकों में से एक है, दूसरा चालू खाता है। जबकि चालू खाता अल्पकालिक आर्थिक लेनदेन पर केंद्रित है, पूंजी खाता एक देश और बाकी दुनिया के बीच संपत्ति और देनदारियों के स्वामित्व में परिवर्तन से संबंधित है।

इसमें वे सभी लेनदेन शामिल हैं, जिनका बाहरी दुनिया के संबंध में देश या सरकार की संपत्ति और देनदारियों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। इसके तहत किसी देश और बाहरी दुनिया के बीच लोन और निवेश जैसे

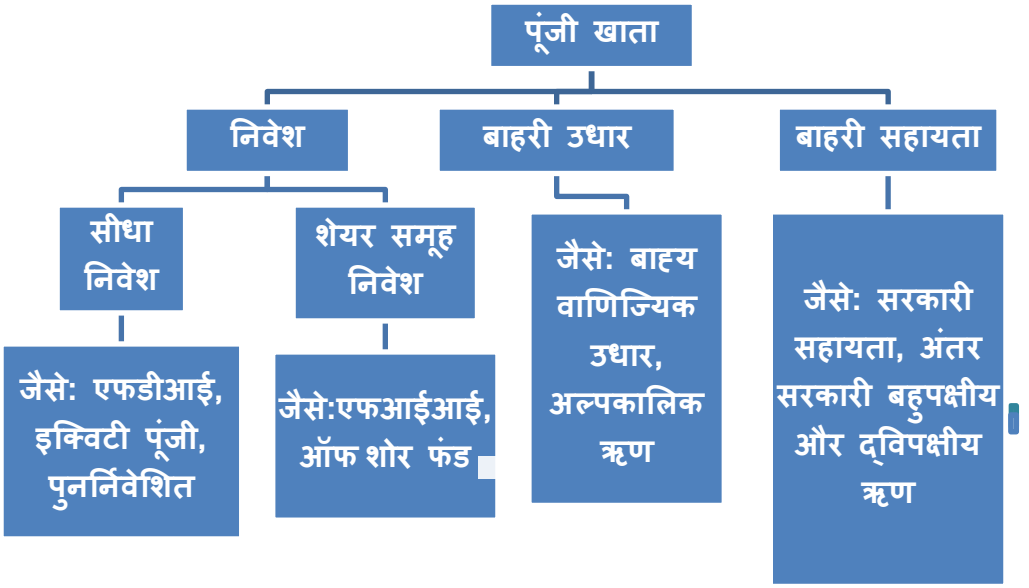
लेन–देन को दर्ज किया जाता है। इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पूंजी खाते संभावित दावों का कारण बनते हैं। कभी–कभी, इस बारे में भ्रम होता है कि पूंजीगत वस्तुओं के निर्यात और आयात को पूंजी खाते में शामिल किया जाना है या नहीं। लेकिन इस सवाल का जवाब 'नहीं' है। ऐसा इसलिए है क्योंकि माल का निर्यात और आयात (चाहे पूंजी या उपभोक्ता) चालू खाते में शामिल है। इस प्रकार, यह पूंजी खाते के मामले में अप्रासंगिक है। सरल शब्दों में, एक पूंजी खाते में वे लेनदेन शामिल होते हैं, जो किसी देश के निवासियों या उसकी सरकार की संपत्ति या देनदारियों में बदलाव का कारण बनते हैं।

पूंजी खाते के घटक

1. **बाहरी उधार:** बाहरी उधार उन निधियों को संदर्भित करता है जो एक देश विदेशी संस्थाओं, जैसे सरकारों, अंर्तराष्ट्रीय संगठनों, वाणिज्यिक बैंकों या निजी निवेशकों से उधार लेता है। इन निधियों का उपयोग विभिन्न उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है, जिसमें बुनियादी ढांचे का विकास, बजट समर्थन, या विशिष्ट परियोजनाओं का वित्तपोषण शामिल है।

- **बाह्य वाणिज्यिक उधार (ईसीबी):** ये एक देश में कंपनियों या सरकारों द्वारा उस देश के बाहर के स्रोतों से उठाए गए ऋण हैं। ईसीबी का उपयोग अक्सर कम ब्याज दरों पर धन तक पहुंचने या धन के स्रोतों में विविधता लाने के लिए किया जाता है।

- **अल्पकालिक ऋण:** इसमें अल्पकालिक ऋण और ऋण साधन शामिल हैं जिन्हें अपेक्षाकृत कम अवधि के भीतर चुकाने की आवश्यकता होती है, आमतौर पर एक वर्ष या उससे कम। इसमें तत्काल जरूरतों के लिए व्यापार ऋण या वित्तपोषण के अन्य रूप शामिल हो सकते हैं।



2. **बाहरी सहायता**: बाहरी सहायता प्राप्तकर्ता देशों के विकास प्रयासों का समर्थन करने के लिए विदेशी सरकारों, अंर्तराष्ट्रीय संगठनों या द्विपक्षीय और बहुपक्षीय संस्थानों द्वारा प्रदान की जाने वाली वित्तीय सहायता, ऋण, अनुदान या रियायती धन को संदर्भित करती है।

- **सरकारी सहायता**: इसमें विकास परियोजनाओं, मानवीय सहायता या अन्य उद्देश्यों के लिए एक सरकार से दूसरी सरकार को सीधे प्रदान की जाने वाली वित्तीय सहायता शामिल है।
- **बहुपक्षीय और द्विपक्षीय ऋण**: ये प्राप्तकर्ता देशों में आर्थिक विकास और अन्य पहलों का समर्थन करने के लिए अंर्तराष्ट्रीय संगठनों (बहुपक्षीय) या व्यक्तिगत विदेशी सरकारों (द्विपक्षीय) द्वारा दिए गए ऋण हैं।

3. निवेश:

- **प्रत्यक्ष निवेश**: प्रत्यक्ष निवेश में एक विदेशी कंपनी या इकाई में पर्याप्त स्वामित्व हिस्सेदारी का अधिग्रहण शामिल है। इसमें विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एफडीआई) जैसे विभिन्न रूप शामिल हो सकते हैं, जिसमें नए व्यवसाय संचालन स्थापित करना या मौजूदा व्यवसाय में महत्वपूर्ण नियंत्रण प्राप्त करना शामिल है। उदाहरण के लिए, भूमि, भवन आदि की खरीद।
- **पोर्टफोलियो निवेश**: पोर्टफोलियो निवेश में विदेशी संस्थाओं द्वारा जारी स्टॉक, बॉन्ड और अन्य प्रतिभूतियों जैसी वित्तीय परिसंपत्तियों में निवेश शामिल है। इन निवेशों में अक्सर प्रतिभूतियों को जारी करने वाली कंपनियों पर पर्याप्त नियंत्रण शामिल नहीं होता है। उदाहरण के लिए, शेयरों की खरीद। पोर्टफोलियो निवेश में एफआईआई (विदेशी संस्थागत

निवेश) भी शामिल है।

4. **<u>बाहरी उधार</u>**: इस श्रेणी में वित्तीय लेनदेन की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है, जिसमें ऋण, जमा, व्यापार ऋण और वित्तीय साधनों के अन्य रूप शामिल हैं जो प्रत्यक्ष या पोर्टफोलियो निवेश के अंतर्गत नहीं आते हैं।

- **ऋण और जमा**: इनमें देशों के बीच धन उधार देना या उधार लेना शामिल है, जो प्रकृति में अल्पकालिक या दीर्घकालिक हो सकता है।
- **ऑफशोर फंड**: ऑफशोर फंड निवेश फंड हैं जो अनुकूल कर नियमों के साथ एक अधिकार क्षेत्र में स्थापित किए जाते हैं। वे दुनिया भर के व्यक्तियों और संस्थागत निवेशकों से निवेश आकर्षित करते हैं।

पूंजी खाता संतुलन में होता है जब पूंजी प्रवाह (जैसे विदेश से ऋण की प्राप्ति, विदेशी कंपनियों में संपत्ति या शेयरों की बिक्री) पूंजी बहिर्वाह (जैसे ऋण का पुनर्भुगतान, विदेशों में संपत्ति या शेयरों की खरीद) के बराबर होता है। पूंजी खाते में अधिशेष तब उत्पन्न होता है जब पूंजी प्रवाह पूंजी बहिर्वाह से अधिक होता है, जबकि पूंजी खाते में घाटा तब उत्पन्न होता है जब पूंजी प्रवाह पूंजी बहिर्वाह से कम होता है।

14.2.2 भुगतान शेष

भुगतान शेष को अंर्तराष्ट्रीय भुगतान शेष के रूप में भी जाना जा सकता है। यह एक निर्दिष्ट समय अवधि में एक देश और बाहरी दुनिया में संस्थाओं के बीच सभी लेनदेन का एक विवरण है, जैसे कि एक तिमाही या एक वर्ष। यह एक देश के निवासियों और अन्य देशों के निवासियों के बीच सभी परस्पर प्रभाव डालना को सूचीबद्ध करता है जिसमें व्यवसाय, संगठन या सरकारें शामिल हैं। भुगतान शेष में सभी आर्थिक लेनदेन शामिल हैं, जिसमें माल और सेवाओं की **होल्डिंग** या शीर्षक का हस्तांतरण शामिल है। आर्थिक लेनदेन में वह गतिविधि शामिल होती है जिसका मौद्रिक प्रभाव होता है, और इसमें धन, संपत्ति, वस्तुओं और सेवाओं के शीर्षक या स्वामित्व का हस्तांतरण भी शामिल होता है। ये लेनदेन किसी देश के भीतर व्यक्तियों, फर्मों और देश की सरकार और देश के बाहर व्यक्तियों, फर्मों और सरकारों के बीच किए जा सकते हैं।

भुगतान – शेष की विशेषताएं

1. इसमें सभी अंतरराष्ट्रीय लेनदेन शामिल हैं जिसमें व्यक्तिगत, कॉर्पोरेट और सरकारी लेनदेन शामिल हैं।

2. एक आदर्श परिदृश्य में यानी, जब सभी तत्वों को भुगतान– शेष में सही ढंग से शामिल किया जाता है, तो राशि हमेशा शून्य होती है।

3. इसका मतलब है कि धन के प्रवाह और बहिर्वाह को संतुलित किया गया है।

4. हालांकि, यह एक आदर्श स्थिति है और इसलिए दिन–प्रतिदिन की स्थिति में ऐसा नहीं होता है।

5. अधिशेष बीओपी इंगित करता है कि अंतरराष्ट्रीय लेनदेन में किसी देश का धन सकारात्मक पक्ष में रहा है। दूसरी ओर, बीओपी घाटा इंगित करता है कि अंतरराष्ट्रीय लेनदेन में किसी देश का धन नकारात्मक रहा है।

भुगतान – शेष संतुलन के तीन घटक हैं – चालू खाता, पूंजी खाता, आधिकारिक आरक्षित लेनदेन और त्रुटियां और चूक।

- **चालू खाताः** चालू खाता माल, सेवाओं, आय और हस्तांतरण से जुड़े अल्पकालिक आर्थिक लेनदेन पर केंद्रित है। इसमें व्यापार – शेष (माल के आयात को छोड़कर निर्यात), सेवाओं का संतुलन (सेवाओं के आयात को छोड़कर निर्यात), आय प्रवाह (जैसे लाभांश और ब्याज), और एकतरफा हस्तांतरण (धन या वस्तुओं का एकतरफा हस्तांतरण) शामिल हैं। चालू खाता दिन–प्रतिदिन के आधार पर अन्य देशों के साथ देश के व्यापार और वित्तीय संबंधों में अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।

- **पूंजी खाताः** पूंजी खाता एक देश और बाकी दुनिया के बीच वित्तीय और गैर–वित्तीय परिसंपत्तियों के स्वामित्व में परिवर्तन को रिकॉर्ड करता है। इसमें बाहरी उधार, निवेश (प्रत्यक्ष और पोर्टफोलियो दोनों), और पूंजी हस्तांतरण जैसे घटक शामिल हैं। यह खाता पूंजी के आंदोलनों को दर्शाता है जो किसी देश की आय पर तत्काल प्रभाव नहीं डाल सकता है लेकिन इसकी भविष्य की आर्थिक स्थितियों को प्रभावित कर सकता है।

- **वित्तीय खाताः** वित्तीय खाता वित्तीय परिसंपत्तियों और देनदारियों के स्वामित्व में परिवर्तन को पकड़ता है, जिससे अंर्तराष्ट्रीय वित्तीय प्रवाह और निवेश गतिविधियों का पता चलता है। इसमें प्रत्यक्ष विदेशी निवेश, पोर्टफोलियो निवेश और भंडार में बदलाव जैसे लेनदेन शामिल हैं। वित्तीय खाता वैश्विक वित्तीय बाजारों में किसी देश की भागीदारी और विदेशी निवेश को आकर्षित करने की क्षमता में अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।

- **आधिकारिक रिजर्व लेनदेनः** यह घटक किसी देश के आधिकारिक विदेशी

मुद्रा भंडार में परिवर्तन को पता करता है, जिसमें केंद्रीय बैंक द्वारा आयोजित विदेशी मुद्राएं, सोना और अन्य अंतरराष्ट्रीय संपत्तियां शामिल हैं। यह किसी देश की अपनी विदेशी मुद्रा स्थिति का प्रबंधन करने की क्षमता और विदेशी मुद्रा बाजार में हस्तक्षेप करने की इच्छा को दर्शाता है।

- **त्रुटियाँ और चूकः** यह श्रेणी किसी भी विसंगतियों के लिए जिम्मेदार है जो डेटा संग्रह में त्रुटियों या उन परिवर्तनों के कारण उत्पन्न हो सकती हैं जिन्हें वर्गीकृत करना मुश्किल है। यह अनिवार्य रूप से यह सुनिश्चित करने में मदद करता है कि भुगतान खातों का संतुलन शेष है, क्योंकि यह अन्य घटकों में किसी भी अशुद्धियों या अलिखित लेनदेन के लिए क्षतिपूर्ति करता है।

14.3 भारत के भुगतान शेष की प्रवृतियों

भुगतान शेष की प्रवृत्ति से पता चलता है कि इस अवधि में औसतन पर्याप्त वृद्धि हुई थी। 1991–92 में, यह 2599 मिलियन अमेरिकी डॉलर से 2019–20 में 58524 मिलियन अमेरिकी डॉलर था। 1992–93, 1995–96, 2008–09, 2011–2012 और 2018–19 में इस खाते में घाटा हुआ था। भारतीय भुगतान शेष संतुलन के चालू खाते की स्थिति प्रवृत्ति के अध्ययन से पता चलता है कि, पूर्व–अवमूल्यन अवधि के दौरान, इस खाते के घाटे में काफी वृद्धि हुई। यह 1978–79 के दौरान 290 मिलियन से बढ़कर 1990–91 के दौरान पूर्ण अमेरिकी डॉलर मूल्य में 9680 मिलियन हो गया। यह मुख्य रूप से इस समय के दौरान अदृश्य खाता अधिशेष की निरंतर कमी के कारण है। आरबीआई के अनुसार, 2022–23 की पहली छमाही के लिए चालू खाता घाटा (सीएडी) GDP जनवरी 2023 में, गैर–तेल आयात में तेज गिरावट के कारण व्यापार घाटा कम होकर 17.7 अरब डॉलर हो गया।

1. एफपीआई की निकासी में कमी आई है।
2. श्रमिकों के प्रेषण में वृद्धि हुई
3. सोने के आयात में आई गिरावट

14.4 भुगतान शेष में घाटों के कारण

भुगतान शेष में घाटे तब होता है जब माल, सेवाओं और पूंजी बहिर्वाह के आयात पर किसी देश का व्यय निर्यात, वदेशी निवेश और पूंजी प्रवाह से अपनी प्राप्तियों से अधिक होता है। भुगतान शेष में घाटे के कई अंतर्निहित कारण हो सकते हैंःआइये इन्हें क्रमशः समझने का प्रयास करें–

(क) आर्थिक कारकः आर्थिक स्थितियां किसी देश के भुगतान शेष को प्रभावित कर सकती हैं। कमजोर आर्थिक विकास, उच्च मुद्रास्फीति, या मंदी से निर्यात में कमी या आयात में वृद्धि हो सकती है, जिससे घाटे में योगदान हो सकता है।

(ख) विनिमय दर में उतार–चढ़ावः यदि किसी देश की मुद्रा अन्य प्रमुख मुद्राओं के मुकाबले कम हो जाती है, तो इसका आयात अधिक महंगा हो जाता है, जिससे संभावित रूप से आयात में वृद्धि और उच्च व्यापार घाटा होता है।

(ग) व्यापार शेष के घाटे : भारत के आयात और निर्यात के बीच असंतुलन एक लंबे समय से मुद्दा रहा है। देश निर्यात की तुलना में अधिक वस्तुओं और सेवाओं का आयात कर रहा है, जिससे व्यापार घाटा बढ़ रहा है। वैश्विक प्रतिस्पर्धा और तकनीकी प्रगति जैसे कारकों से प्रेरित अर्थव्यवस्था की बढ़ती आयात आवश्यकताओं ने निर्यात की वृद्धि को पीछे छोड़ दिया है। यह असंतुलन विदेशी मुद्रा भंडार पर दबाव डालता है, क्योंकि जब तक निर्यात वृद्धि आयात तीव्रता से मेल नहीं खाती है, तब तक भंडार पर एक निकासी का खतरा है। परिणामतः व्यापार–शेष के घाटे निरन्तर बढ़ते गए।

(घ) अदृश्य मदों के अतिरेक में गिरावटः भारत ने ऐतिहासिक रूप से अदृश्य मदों के व्यापार से अधिशेष अर्जित किया है, जिसमें विदेशों में काम करने वाले भारतीयों से प्रेषण और यात्रा सेवाओं से कमाई शामिल है। हालांकि, इन सकारात्मक कारकों और नकारात्मक कारकों के बीच संतुलन, जैसे कि निवेश आय घाटा, समग्र अधिशेष को निर्धारित करता है। यदि निवेश आय घाटा अन्य सकारात्मक कारकों से अधिक है, तो इससे अदृश्य व्यापार में घाटा हो सकता है। यदि यह प्रवृत्ति जारी रहती है, तो भुगतान–शेष की स्थिति जटिल हो सकती है।

(च) विदेशी ऋण सेवाओं का बढ़ता बोझः विदेशी ऋण सेवाओं का बढ़ता बोझ, भारत के भुगतान शेष को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक रहा है। विदेशी ऋण की बढ़ती मात्रा और बाजार दरों पर अल्पकालिक वाणिज्यिक उधार की उच्च हिस्सेदारी ने उच्च ऋण सेवा देयता को जन्म दिया है। देनदारियों के इस विकसित स्वरूप के कारण विदेशी ऋण पर ब्याज भुगतान में वृद्धि हुई है, जिससे चालू खाता भुगतान को कम या अंत करने के लिए बाहरी उधार की आवश्यकता होती है।

(छ) रियायती सहायता प्राप्त करने की कम संभावनाएंः अतीत में, चालू खाता घाटे को द्विपक्षीय और बहुपक्षीय स्रोतों से रियायती सहायता द्वारा वित्त पोषित किया जा सकता था। हालांकि, समय के साथ ऐसी सहायता की उपलब्धता

में कमी आई है। इसके कई कारण हैं, जिनमें विकसित देशों द्वारा अपने योगदान को बनाए रखने या बढ़ाने की अनिच्छा, यह धारणा कि भारत वित्तपोषण के वाणिज्यिक स्रोतों तक पहुंच सकता है, सहायता के लिए नए दावेदारों का उद्‌भव और नए स्वतंत्र राष्ट्रों का प्रवेश शामिल है। जैसे–जैसे रियायती सहायता कम होती जाती है, वाणिज्यिक उधारों पर निर्भरता बढ़ जाती है, जिससे उनकी उच्च लागत के कारण चुनौतियां पैदा होती हैं।

(ज) <u>प्रत्यक्ष</u> विदेशी **<u>निवेश (एफडीआई) की कमी</u>:** उत्पादक क्षेत्रों में अपर्याप्त प्रत्यक्ष विदेशी निवेश विदेशी पूंजी के प्रवाह को सीमित कर सकता है, जो अन्यथा आर्थिक विकास का समर्थन कर सकता है और निर्यात को बढ़ावा दे सकता है। महत्वपूर्ण एफडीआई के बिना, देश में नए निर्यात–उन्मुख उद्योगों को विकसित करने के लिए आवश्यक पूंजी और विशेषज्ञता की कमी है। इसके परिणामस्वरूप निर्यात और विदेशी मुद्रा आय में वृद्धि के अवसर चूक जाते हैं।

(झ) <u>विनिमय दर प्रबंधन</u>: बीओपी संकट का सामना करने वाली सरकार संकट को सामान्य करने के लिए अपनी मुद्रा की विनिमय दरों को बदल सकती है। और यह अपने चालू खाता घाटे को नियंत्रित करने के लिए अपनी मौद्रिक नीति का उपयोग करके किया जा सकता है। यह अपनी शक्तियों का उपयोग नई मुद्रा जारी करने, ब्याज दरों और विदेशी मुद्रा भंडार को बदलने, खुले बाजार के संचालन आदि को अस्थायी रूप से अपनी मुद्रा का अवमूल्यन करने के लिए कर सकता है।

(ट) <u>आयातित माल पर उच्च निर्भरता</u>: आयातित माल और सेवाओं, विशेष रूप से ऊर्जा या भोजन जैसी आवश्यक वस्तुओं पर निर्भरता से आयात व्यय में वृद्धि हो सकती है और घाटे में योगदान हो सकता है।

(ठ) <u>विनिमय दर में अस्थिरता</u>: विनिमय दरों में उतार–चढ़ाव आयात और निर्यात की सापेक्ष लागत को प्रभावित कर सकता है। एक अवमूल्यन घरेलू मुद्रा आयात को अधिक महंगा बना सकती है, जबकि एक मजबूत मुद्रा निर्यात प्रतिस्पर्धा को प्रभावित कर सकती है। मूल्यह्रास देश के नागरिकों के लिए आयात को अधिक महंगा बनाता है, जिससे उच्च आयात लागत होती है। निर्यात पक्ष पर, देश के सामान अधिक प्रतिस्पर्धी हो जाते हैं, लेकिन निर्यात की मात्रा को समायोजित करने में समय लगता है, जिससे अस्थायी असंतुलन होता है।

(ड) <u>ब्याज और ऋण भुगतान</u>: बाहरी ऋण पर ब्याज और मूल भुगतान विदेशी मुद्रा के महत्वपूर्ण बहिर्वाह पैदा करते हैं। यह अन्य लेनदेन के लिए विदेशी मुद्रा की उपलब्धता को कम करके भुगतान के समग्र संतुलन को प्रभावित करता है। बाहरी ऋण के उच्च स्तर से विदेशी लेनदारों को पर्याप्त ब्याज और मूल

भुगतान हो सकता है, जिससे पूंजी बहिर्वाह हो सकता है और घाटे में योगदान हो सकता है।

भुगतान शेष घाटे के इन कारणों को संबोधित करने के लिए एक व्यापक दृ ष्टिकोण की आवश्यकता है:जिसे हम निम्न बिन्दुओं के माध्यम से आत्मसात कर सकते हैं–

1. व्यापार घाटे को कम करने के लिए निर्यातोन्मुखी उद्योगों को प्रोत् साहन देना।
2. निर्यात क्षमता बढ़ाने के लिए विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करना।
3. विदेशी ऋण स्थिरता का प्रबंधन करना ताकि ऋण चुकाने के बोझ से बचा जा सके।
4. केवल रियायती सहायता पर निर्भर किए बिना घाटे के प्रबंधन के लिए वैकल्पिक वित्तपोषण स्रोतों और रणनीतियों की खोज करना।
5. विदेशी ऋण जोखिमों को कम करने के लिए उत्पादक परियोजनाओं के लिए विवेकपूर्ण उधार सुनिश्चित करना।

ये प्रयास भुगतान के स्थायी संतुलन की स्थिति को प्राप्त करने और वैश्विक चुनौतियों का सामना करने में देश के आर्थिक लचीलेपन को बढ़ाने के लिए एक व्यापक रणनीति के हिस्से के रूप में निरन्तर क्रियान्वित किये जाने का प्रयास किया जा रहा है।

14.5 समस्या के समाधान के लिए उठाए गए कदम

1991 तकः इस अवधि के दौरान, भारत सरकार ने कई उपायों के माध्यम से भुगतान–शेष घाटे को नियंत्रित करने का प्रयास किया, है। जिनके अन्तर्गत निम्नलिखित प्रयासो को सम्मिलित किया जा सकता हैः–

1. आयात प्रतिस्थापन उद्योगों के विकास को बढ़ावा देना

2. आयात पर भौतिक प्रतिबंध लगाना

3. निर्यात संवर्धन के लिए सहायता प्रदान करना तथा

4. अदृश्य व्यापार से विदेशी मुद्रा आय बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन की पेशकश।

इन प्रयासों के बावजूद, देश को अभी भी अभूतपूर्व बीओपी संकट का सामना करना पड़ता है।

1991 के बाद सेः भारत ने निम्नलिखित प्रमुख तत्वों पर ध्यान केंद्रित करते हुए भुगतान–शेष घाटे को संबोधित करने के लिए एक व्यापक रणनीति अपनाईःहै। जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित प्रयासो का बिन्दुवार अध्ययन करना समी चीन होगा।

(क) राजकोषीय और मौद्रिक अनुशासनः

1. राजकोषीय अनुशासन का उद्देश्य कुल मांग को नियंत्रित करना है।
2. केन्द्रीय राजकोषीय घाटे को 1990–91 में सकल घरेलू उत्पाद के 8.4ः से घटाकर 1996–97 में 5.5ः करना।
3. मौद्रिक नीति का उद्देश्य मुद्रा आपूर्ति की वृद्धि को धीमा करना है।

(ख) विनिमय दर नीति और विदेश व्यापार नीति सुधारः

1. 1992–93 में दोहरी विनिमय दर प्रणाली (एलईआरएमएस) की शुरुआत।
2. बाजार–निर्धारित विनिमय दरों की ओर धीरे–धीरे बदलाव।
3. चालू खाते पर पूर्ण परिवर्तनीयता की शुरूआत।
4. पूंजीगत वस्तुओं, कच्चे माल और घटकों पर आयात प्रतिबंधों का उन्मूलन।
5. विशेष रूप से पूंजीगत वस्तुओं पर पीक टैरिफ में कमी।
6. नकद मार्जिन और आयात ऋण पर ब्याज अधिभार को समाप्त करना।

(ग) संरचनात्मक सुधारः

1. व्यापार और उद्योग का विनियमन।
2. कई उद्योगों को लाइसेंस मुक्त करना।
3. निजी और विदेशी निवेश के लिए क्षेत्रों को खोलकर प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देना।
4. प्रत्यक्ष विदेशी निवेश और पोर्टफोलियो निवेश को आकर्षित करने के लिए नीतियां।
5. वित्तीय क्षेत्र में सुधार, जिसमें ब्याज दरों का विनियमन, बैंकिंग प्रणाली में सुधार और पूंजी बाजार में सुधार शामिल हैं।

(घ) असाधारण वित्तपोषण का जुटानः

1. बहुपक्षीय एजेंसियों और द्विपक्षीय दाताओं से असाधारण वित्त प्राप्त करना।
2. आईएमएफ के साथ के विन्यास (stand by arrangements) किए गए।
3. एशियाई विकास बैंक के साथ संरचनात्मक समायोजन और सामाजिक सुरक्षा शुद्ध ऋण पर बातचीत।

समन्वित और व्यापक रणनीति ने सकारात्मक परिणाम दिए है। भुगतान शेष पर दबाव काफी कम हो गया, जो विदेशी मुद्रा भंडार की वृद्धि से स्पष्ट है; उदाहरण के लिए, विदेशी मुद्रा भंडार, जो 1991 में 2.236 बिलियन अमेरिकी डॉलर जितना कम था, वर्तमान में बढ़कर 21.5 बिलियन अमेरिकी डॉलर से अधिक हो गया था (तालिका 14.2 की अनुपस्थिति के कारण आंकड़े प्रदर्शित नहीं किए गए थे)। इन उपायों ने सामूहिक रूप से भारत के भुगतान–शेष की स्थिति को स्थिर करने और अपने विदेशी मुद्रा भंडार को मजबूत करने में योगदान दिया।

इसी क्रम में भुगतान–शेष (बीओपी) घाटे को दूर करने के लिए सरकारें प्रमुख रणनीतियों को नियोजित कर सकती हैं: जिन्हें समझने के लिये हमे निम्नलिखित बिन्दुओं का वर्गीकरण कर विश्लेषित करने का प्रयास करना होगा। आइये इन्हें क्रमशः समझने का प्रयास करें–

1. आयात प्रतिबंध और निर्यात संवर्धन: सरकारें कोटा, तटकरों और सीमा शुल्क जैसे उपायों के माध्यम से आयात को नियंत्रित कर सकती हैं, साथ ही लाइसेंसिंग नियंत्रण को आसान बनाकर या निर्यात सब्सिडी की पेशकश करके निर्यात को बढ़ावा दे सकती हैं। ऐसा करने से आयात घटता है, निर्यात बढ़ता है और चालू खाता घाटा अधिशेष में बदल सकता है। यह रणनीति बीओपी को मजबूत करने के लिए व्यापार प्रवाह को फिर से संतुलित करने पर केंद्रित है।

2. ब्याज दर प्रबंधन: सरकारें आर्थिक गतिविधि को प्रभावित करने के लिए अपने केंद्रीय बैंकों के माध्यम से ब्याज दरों का प्रबंधन कर सकती हैं। ब्याज दरों में वृद्धि से खर्च पर अंकुश लगता है और बचत को बढ़ावा मिलता है, जिससे घरेलू खपत कम होने के कारण आयात कम होता है। इसके अतिरिक्त, उच्च ब्याज दरें मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने में मदद कर सकती हैं, जिससे निर्यात अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अधिक प्रतिस्पर्धी हो सकता है। यह चालू खाता अधिशेष में योगदान दे सकता है और बीओपी संकट को दूर करने में सहायता कर सकता है। हालांकि, संभावित परिणामों के कारण एक सतर्क दृष्टिकोण आवश्यक है:

- उच्च ब्याज दरें विदेशी पूंजी को आकर्षित कर सकती हैं, जिससे घरेलू मुद्रा में वृद्धि हो सकती है। इससे मुद्रा के उच्च मूल्य के कारण आयात में वृद्धि और निर्यात में कमी आ सकती है।

- इसलिए, सरकारों को बीओपी चुनौतियों को प्रभावी ढंग से संबोधित करने के लिए अन्य उपायों के साथ संयोजन में ब्याज दर नीतियों का उपयोग करना चाहिए।

- संक्षेप में, एक संतुलित दृष्टिकोण जो आयात नियंत्रण, निर्यात संवर्धन और ब्याज दर प्रबंधन को जोड़ता है, भुगतान संतुलन को स्थिर करने, स्थायी आर्थिक विकास को बढ़ावा देने और बाहरी असंतुलन के प्रभाव को कम करने में मदद कर सकता है।

3. विनिमय दर प्रबंधनः एक ऐसे देश की कल्पना करें जो ऐसी स्थिति का सामना कर रहा है जहां वह अपने स्वयं के उत्पादों के निर्यात से कमाई की तुलना में अन्य देशों से वस्तुओं और सेवाओं के आयात पर अधिक पैसा खर्च कर रहा है। इससे भुगतान –शेष का संकट पैदा होता है। इसे संबोधित करने के लिए, सरकार अन्य मुद्राओं की तुलना में अपनी मुद्रा के मूल्य में कुछ बदलाव कर सकती है। बीओपी संकट का सामना करने वाली सरकार संकट को सामान्य करने के लिए अपनी मुद्रा की विनिमय दरों को बदल सकती है। और यह अपने चालू खाता घाटे को नियंत्रित करने के लिए अपनी मौद्रिक नीति का उपयोग करके किया जा सकता है। यह अपनी शक्तियों का उपयोग नई मुद्रा जारी करने, ब्याज दरों और विदेशी मुद्रा भंडार को बदलने, खुले बाजार के संचालन आदि को अस्थायी रूप से अपनी मुद्रा का अवमूल्यन करने के लिए कर सकता है।

4. मुद्रा का अवमूल्यनः जब कोई सरकार अन्य मुद्राओं की तुलना में अपनी मुद्रा के मूल्य को कम करती है, तो यह कहने जैसा है कि अन्य देशों के साथ व्यापार करते समय इसकी मुद्रा की एक इकाई कम मूल्यवान है। यह आयातित वस्तुओं को अधिक महंगा बनाता है क्योंकि आपको उन्हें खरीदने के लिए घरेलू मुद्रा की अधिक आवश्यकता होती है। दूसरी ओर, देश में बने उत्पाद अन्य देशों के लोगों के लिए सस्ते हो जाते हैं, इसलिए वे उन्हें अधिक खरीदते हैं। इससे देश को विदेशों में अधिक उत्पाद बेचने और आयात पर खर्च कम करने में मदद मिल सकती है। सरल शब्दों में, यह अपने स्वयं के सामान को दूसरों के लिए अधिक आकर्षक बनाने और आयातित वस्तुओं को कम आकर्षक बनाने के लिए माल पर मूल्य सूची को समायोजित करने जैसा

है।

5. बाहरी उधार: एक ऐसे व्यक्ति की कल्पना करें जिसे वर्तमान में चीजों को खरीदने के लिए अधिक धन की आवश्यकता है। वे अपने खर्चों को पूरा करने के लिए दूसरों से पैसे उधार ले सकते हैं। इसी तरह, भुगतान संकट के संतुलन का सामना करने वाला देश अपनी स्थिति का प्रबंधन करने के लिए अन्य देशों या अंर्तराष्ट्रीय संगठनों से पैसा उधार ले सकता है।

6. अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने के लिए उधार लेना: जब कोई देश बाहर से पैसा उधार लेता है, तो वह उस पैसे का उपयोग अपनी अर्थव्यवस्था में निवेश करने के लिए कर सकता है। उदाहरण के लिए, सरकार नए कारखानों के निर्माण या बुनियादी ढांचे में सुधार पर खर्च कर सकती है। इससे देश के भीतर माल का अधिक उत्पादन हो सकता है, जिसे बाद में अन्य देशों को बेचा जा सकता है। यह एक व्यवसाय शुरू करने के लिए ऋण प्राप्त करने और उन उत्पादों को बनाने के लिए धन का उपयोग करने जैसा है जिन्हें आप अधिक पैसा कमाने के लिए बेच सकते हैं।

7. आयात पर निर्भरता को कम करना: अपने स्वयं के उत्पादन में निवेश करके, एक देश अन्य देशों से सामान खरीदने पर कम निर्भर हो सकता है। यदि यह घरेलू स्तर पर अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए अधिक उत्पादन कर सकता है, तो इसे आयात पर ज्यादा पैसा खर्च नहीं करना पड़ेगा। यह एक देश के खर्च और अंतरराष्ट्रीय व्यापार से होने वाली कमाई के बीच असंतुलन को कम करने में मदद कर सकता है।

8. ऋण और विश्वास पर सकारात्मक प्रभाव: जब कोई देश निवेश करने और अपनी अर्थव्यवस्था में सुधार करने के लिए पैसा उधार लेता है, तो यह न केवल अपने भुगतान संकट के संतुलन को हल कर रहा है, बल्कि अपने वित्त का प्रबंधन करने की क्षमता में विश्वास भी बना रहा है। यह अन्य देशों से अधिक निवेश आकर्षित कर सकता है और देश को लंबे समय में अपने ऋणों का अधिक आसानी से भुगतान करने में मदद कर सकता है।

वस्तुतः सरल शब्दों में, विनिमय दर प्रबंधन आपके उत्पादों को अधिक बेचने और महंगे आयात खरीदने को हतोत्साहित करने के लिए मूल्य को समायोजित करने जैसा है। बाहरी उधार लेना अपने स्वयं के व्यवसाय में निवेश करने के लिए ऋण लेने जैसा है ताकि आप अधिक कमा सकें और दूसरों से चीजें खरीदने पर कम निर्भर हो सकें। ये दोनों रणनीतियाँ किसी देश को भुगतान समस्याओं के

संतुलन से निपटने में मदद कर सकती हैं।

14.6 विनिमय दर की अवधारणा

''विनिमय दर'', जो विनिमय दर के लिए एक और शब्द है। विनिमय दर वह मूल्य है जिस पर एक मुद्रा को दूसरी मुद्रा के लिए विनिमय किया जा सकता है। यह दर विदेशी मुद्रा बाजार में दो मुद्राओं के सापेक्ष मूल्य का प्रतिनिधित्व करती है। विनिमय दर अंर्तराष्ट्रीय वित्त और व्यापार में एक मौलिक अवधारणा है। यह निर्धारित करता है कि आपको दूसरी मुद्रा की एक निश्चित राशि प्राप्त करने के लिए एक मुद्रा का कितना खर्च करने की आवश्यकता है। विनिमय दरों को अनुपात के रूप में व्यक्त किया जाता है, जहां प्रगणक आधार मुद्रा (आपके पास मौजूद मुद्रा) के मूल्य का प्रतिनिधित्व करता है और भाजक काउंटर मुद्रा (वह मुद्रा जिसे आप प्राप्त करना चाहते हैं) के मूल्य का प्रतिनिधित्व करता है।

किसी देश द्वारा अपनाई गई विनिमय दर व्यवस्था के आधार पर विनिमय दरों को तय, अस्थायी या प्रबंधित किया जा सकता है। सरकारें और केंद्रीय बैंक अक्सर विनिमय दरों को प्रभावित करने, अपनी मुद्राओं को स्थिर करने और अपने आर्थिक उद्देश्यों का प्रबंधन करने के लिए विदेशी मुद्रा बाजार में हस्तक्षेप करते हैं।

विनिमय दर अंतरराष्ट्रीय व्यापार, निवेश, पर्यटन और वैश्विक आर्थिक स्थिरता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। विनिमय दरों में उतार–चढ़ाव आयात और निर्यात की लागत को प्रभावित कर सकता है, सीमा पार निवेश निर्णयों को प्रभावित कर सकता है, किसी देश के व्यापार संतुलन को प्रभावित कर सकता है, और आर्थिक विकास और मुद्रास्फीति के लिए व्यापक प्रभाव डाल सकता है।

14.6.1 विदेशी विनिमय दर

विदेशी मुद्रा दर को किसी अन्य मुद्रा के संबंध में घरेलू मुद्रा की कीमत के रूप में परिभाषित किया गया है। आमतौर पर विनिमय दर के रूप में जाना जाता है, एक देश की मुद्रा का मूल्य दूसरे देश की मुद्रा के संदर्भ में व्यक्त किया जाता है। यह उस मूल्य का प्रतिनिधित्व करता है जिस पर एक मुद्रा को दूसरे के लिए बदला जा सकता है। विदेशी मुद्रा का उद्देश्य उनके सापेक्ष मूल्यों को दिखाने के लिए एक मुद्रा की तुलना दूसरे के साथ करना है।

विदेशी मुद्रा दर को वह दर भी कहा जा सकता है जिस पर एक मुद्रा का दूसरे के साथ आदान–प्रदान किया जाता है या इसे एक मुद्रा की कीमत के रूप में कहा जा सकता है जिसे दूसरी मुद्रा के संदर्भ में बताया जाता है।

किसी मुद्रा की विनिमय दरें या तो स्थिर या अस्थायी हो सकती हैं। निश्चित

विनिमय दर देश के केंद्रीय बैंक द्वारा निर्धारित की जाती है जबकि अस्थायी दर बाजार की मांग और आपूर्ति की गतिशीलता से निर्धारित होती है।

विनिमय दरें अंर्तराष्ट्रीय व्यापार, वित्त, निवेश और पर्यटन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वे विभिन्न देशों के बीच लेनदेन की लागत और लाभों को प्रभावित करते हैं और समग्र वैश्विक आर्थिक परिदृश्य को प्रभावित करते हैं।

14.6.2 चालू दर एवं समता दर

चालू विनिमय दर, जिसे स्पॉट एक्सचेंज रेट के रूप में भी जाना जाता है, वह दर है जिस पर एक मुद्रा को उस समय दूसरी मुद्रा के लिए विनिमय किया जा सकता है। यह वह दर है जिसका उपयोग आप वास्तविक समय में एक मुद्रा को दूसरे में बदलने के लिए करेंगे। विनिमय दरों में बाजार की मांग और आपूर्ति, आर्थिक संकेतकों, भू–राजनीतिक घटनाओं और ब्याज दर अंतर जैसे विभिन्न कारकों के कारण अक्सर उतार–चढ़ाव हो सकता है।

उदाहरण के लिए, यदि अमेरिकी डॉलर (USD) और यूरो (EUR) के बीच वर्तमान विनिमय दर 1.20 है, तो इसका मतलब है कि 1 अमेरिकी डॉलर को 1.20 यूरो में बदला जा सकता है।

2. **<u>समता विनिमय दर परः</u>** ''समतुल्य'' शब्द उस स्थिति को संदर्भित करता है जहां दो मुद्राओं का आदान–प्रदान 1: 1 के अनुपात में किया जाता है, जिसका अर्थ है कि उनके पास समान मूल्य है। एक ''सम विनिमय दर'' आवश्यक रूप से एक विशिष्ट संख्यात्मक विनिमय दर को संदर्भित नहीं करता है, बल्कि एक ऐसी स्थिति को संदर्भित करता है जहां दो मुद्राओं को मूल्य में बराबर माना जाता है।

एक समान विनिमय दर की अवधारणा का उपयोग अक्सर मुद्रा पेग या निश्चित विनिमय दर प्रणाली जैसे संदर्भों में किया जाता है। एक निश्चित विनिमय दर प्रणाली में, एक देश अपनी मुद्रा को किसी अन्य मुद्रा या मुद्राओं की टोकरी में एक विशिष्ट विनिमय दर पर रख सकता है। इस अनुमानित दर को कभी–कभी ''सम मूल्य'' के रूप में जाना जाता है। ऐसी प्रणालियों का लक्ष्य एक सुसंगत विनिमय दर संबंध बनाए रखकर अंतरराष्ट्रीय व्यापार और निवेश में स्थिरता प्रदान करना है।

14.7 विनिमय दर निर्धारण की प्रणाली

14.7.1 मांग एवं आपूर्ति

किसी वस्तु की बाजार मूल्य मांग और आपूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है।

उदाहरण के लिए, जब किसी विशेष दिन पर, त्योहार या किसी अन्य कारण से, दूध की मांग बाजार में सामान्य दिन की तुलना में अधिक होती है, और दूध विक्रेता महसूस करते हैं कि उनके स्टॉक मांग को पूरा नहीं कर सकते हैं, तो वे दूध की कीमत बढ़ाते हैं। दूसरी ओर, एक दूसरे दिन, अगर मांग कम है और उन्हें लगता है कि वे अपने स्टॉक को सामान्य मूल्य पर नहीं बेच पाएंगे, तो वे कीमत कम करते हैं। उचित मूल्य पर मांग के मामूली वृद्धि की स्थिति में, डॉलर की मांग इतनी अधिक है कि परिपूर्ण विनिमय दर पर मिल नहीं सकती है, तो वे डॉलर की मूल्य को बढ़ा कर मांग और आपूर्ति को समान करते हैं रुपए के माध्यम से। यदि दूसरी ओर, वे पाएं कि उनके डॉलर शेष आम हैं और उस मुद्रा की कम मांग है, तो मांग और आपूर्ति के बीच संतुलन को घटा करके वे डॉलर की कीमत को कम करते हैं। मुद्रा की मांग कम होने के कारण, विनिमय बाजार में उसका मूल्य गिर जाता है।

व्यापार खाते पर मुद्रा की मांग निम्नलिखित कारकों के कारण होती हैः

1. देश के निवासी विदेशों को सामग्री निर्यात करते हैं, जिनके लिए उन्हें भुगतान प्राप्त करना होता है।
2. देश की जहाजी, बैंकिंग और बीमा कंपनियां अन्य देशों के लिए सेवाएं प्रदान करती हैं, जिनके लिए उन्हें पुरस्कार मिलता है।
3. व्यापार विदेश में उद्यमी कार्यबाह्य देश में सेट करने के लिए तकनीकी कर्मचारी और प्रबंधक लाभ और वेतन प्राप्त करते हैं,
4. पर्यटक और विदेश से आने वाले छात्र देश में पैसा खर्च करते हैं।
5. केवल पर्यटक हिटलों में देश से देश यात्रा करने वाले सामान्य पर्यटक जो केवल पर्यटक हिटलों के लिए विदेशों में जाते हैं, उन्हें विभिन्न सरकारी प्रायोजित मंडलों के तहत सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रमों पर यात्रा करने की आवश्यकता और अन्य देशों में रहने वाले दोस्तों और संबंधियों के प्राइवेट यात्राओं का यह आवश्यकता पैदा करता है। हाल के सालों में, इन खातों पर व्यक्तियों और समूहों की गति बढ़ गई है, और इन खातों पर विनिमय का समूह कृषि विनिमय बैलेंस के रूप में समग्र योगदान कर रहे हैं।

14.7.2 भारत में विदेशी विनिमय दर निर्धारण की प्रणाली

कल्पना कीजिए कि विनिमय दरें विभिन्न मुद्राओं पर मूल्य टैग की तरह हैं। भारतीय रुपये (Rs.) जैसी मुद्रा की विनिमय दर, आपूर्ति और मांग की ताकतों

द्वारा निर्धारित की जाती है – ठीक उसी तरह जैसे उत्पादों की कीमतें इस आधार पर बदलती हैं कि कितना मांग हैं और कितने उपलब्ध हैं।

1 मार्च, 1993 से, भारत सरकार ने भारतीय रुपये की विनिमय दर को बाजार द्वारा निर्धारित करने का फैसला किया। इसका मतलब है कि अन्य मुद्राओं की तुलना में रुपये का मूल्य इस बात से तय होता है कि लोग इसे कितना मांग हैं और कितना उपलब्ध है। लेकिन एक पेंच हैः सरकार अभी भी कदम उठा सकती है अगर उन्हें लगता है कि यह आवश्यक है।

उदाहरण के लिए, यदि बहुत सारा विदेशी धन (जैसे अमेरिकी डॉलर) अचानक भारत में आता है, तो भारतीय रुपया मजबूत हो सकता है। यह सुनने में अच्छा लग सकता है, लेकिन यह वास्तव में अन्य देशों को चीजें बेचने की भारत की क्षमता को नुकसान पहुंचा सकता है क्योंकि इसका सामान तुलनात्मक रूप से अधिक महंगा हो जाता है। इसलिए, सरकार का बैंक, जिसे भारतीय रिजर्व बैंक कहा जाता है, चीजों को संतुलित करने के लिए कुछ विदेशी धन खरीद सकता है। इससे विदेशी मुद्रा की मांग अधिक होती है, और रुपये का मूल्य उतना नहीं बदलता है।

दूसरी ओर, अगर अचानक भारत में हर कोई बहुत अधिक विदेशी धन (जैसे डॉलर) चाहता है, तो भारतीय रुपया कमजोर हो सकता है। इससे वे चीजें और महंगी हो सकती हैं जिन्हें भारत दूसरे देशों से खरीदता है, जिससे महंगाई बढ़ सकती है– ज्यादा कीमत वाली चीजें. इसे रोकने के लिए रिजर्व बैंक अपने पास मौजूद कुछ विदेशी धन जारी कर सकता है। बाजार में अधिक विदेशी धन का मतलब है कि मुद्र जल्दी से अपना मूल्य नहीं खोता है।

इसलिए, इसे संक्षेप में कहें, तो अन्य मुद्राओं की तुलना में भारतीय रुपये का मूल्य आमतौर पर इस बात से निर्धारित होता है कि लोग इसे कितना चाहते हैं और कितना है। लेकिन अगर चीजें बहुत तेजी से बदल रही हैं तो सरकार का बैंक, भारतीय रिजर्व बैंक कदम उठा सकता है। इससे रुपये के मूल्य को स्थिर रखने में मदद मिलती है

14.8 निर्यात आयात नीति (1997-2002)

एक्जिम नीति एक सरकारी रणनीति है जो दो उद्देश्यों को पूरा करती हैः आयात के माध्यम से गैर–आवश्यक वस्तुओं के प्रवेश को नियंत्रित करना और निर्यात को बढ़ावा देना। इस नीति के दो आयाम हैंः आयात नीति, जो आयात की देखरेख और प्रबंधन करती है, और निर्यात नीति, जो न केवल निर्यात को

प्रोत्साहित करती है, बल्कि उन्हें विनियमित भी करती है।

सरकार की एक्जिम नीति का प्राथमिक लक्ष्य निर्यातों को अधिकतम बढ़ावा देना है। हालांकि, इस प्रचार को इस तरह से किया जाना चाहिए जो देश के भीतर महत्वपूर्ण वस्तुओं के अप्रतिबंधित निर्यात की अनुमति देकर देश की अर्थव्यवस्था को नकारात्मक रूप से प्रभावित न करे।

इसलिए, नीति उनके निर्यात को नियंत्रित करने के लिए वस्तुओं की एक सीमित श्रृंखला का सावधानीपूर्वक प्रबंधन करती है। ऐसा इसलिए किया जाता है क्योंकि कुछ वस्तुएं देश की आंतरिक जरूरतों के लिए महत्वपूर्ण हैं। इन निर्यातों को विनियमित करके, सरकार यह सुनिश्चित करती है कि देश के व्यापक हितों की रक्षा की जाए। एक्जिम नीति का मुख्य लक्ष्य निम्नलिखित को प्राप्त करना हैः

1. अर्थव्यवस्था को वैश्विक स्तर पर सक्रिय बनाकर आर्थिक गतिविधि के निचले स्तर से उच्च स्तर तक बढ़ावा देना। इसका मतलब अर्थव्यवस्था को लाभ पहुंचाने के लिए वैश्विक बाजार में अवसरों का लाभ उठाना है।
2. व्यवसाय आसानी से सामग्री, भागों, और उपकरण प्राप्त कर उन्हें अधिक चीजें बनाने की आवश्यकता है। यह सुनिश्चित करके स्थिर आर्थिक विकास को बढ़ावा दें सकते हैं।
3. भारत की कृषि, उद्योग और सेवाओं को अधिक उन्नत और कुशल बनाकर उन्हें मजबूत करना। इससे उन्हें दुनिया में बेहतर प्रतिस्पर्धा करने में मदद मिलती है।
4. लोगों के लिए अधिक नौकरियां पैदा करें और यह भी सुनिश्चित करें कि उत्पादित चीजें उच्च गुणवत्ता वाले मानकों को पूरा करती हैं जिन पर दुनिया सहमत है।
5. उचित कीमतों पर उपभोक्ताओं को उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादों की पेशकश करें।

सरकार आयात–निर्यात नीति के माध्यम से गैर–आवश्यक वस्तुओं के आयात को नियंत्रित करती है। साथ ही, निर्यात को बढ़ावा देने के लिए हर संभव प्रयास किए जाते हैं। इस प्रकार, एक्जिम नीति के दो पहलू है। आयात नीति जो आयातों के विनियमन और प्रबंधन से संबंधित है और निर्यात नीति जो न केवल निर्यात संवर्धन बल्कि विनियमन से भी संबंधित है। सरकार की एक्जिम नीति का मुख्य उद्देश्य अधिकतम सीमा तक निर्यात को बढ़ावा देना है। निर्यात को इस तरह से बढ़ावा दिया जाना चाहिए कि देश की अर्थव्यवस्था देश के भीतर विशेष रूप से

आवश्यक अनियमित निर्यात योग्य वस्तुओं से प्रभावित न हो। इसलिए, निर्यात नियंत्रण का प्रयोग सीमित संख्या में वस्तुओं के संबंध में किया जाता है जिनकी आपूर्ति की स्थिति यह मांग करती है कि उनके निर्यात को देश के व्यापक हित में विनियमित किया जाना चाहिए।

एक्जिम नीति अधिकांश वस्तुओं को अनुचित प्रतिबंधों के बिना आयात और निर्यात करने की अनुमति देकर खुले व्यापार को प्रोत्साहित करती है। यह भारत और अन्य देशों के बीच माल के गतिशील आदान–प्रदान को बढ़ावा देता है, आर्थिक विकास और विविधीकरण को बढ़ावा देता है। हालांकि, नकारात्मक सूची में सूचीबद्ध कुछ वस्तुओं का व्यापार नहीं किया जा सकता है। जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित को रखा जाता है। आइये इन्हें क्रमशः समझने का प्रयास करें–

क) <u>प्रतिबंधित वस्तुएं</u> : ये आयात के लिए सख्ती से निषिद्ध वस्तुएं हैं। उदाहरण के लिए, पशु रेनेट, हाथीदांत, और अन्य सामान जो हानिकारक या नैतिक मानकों के खिलाफ हो सकते हैं।

ख) <u>नियंत्रित मदें</u>: कुछ मदे, जबकि नियंत्रित नहीं हैं, अर्थव्यवस्था, सुरक्षा या पर्यावरण पर उनके संभावित प्रभाव के कारण नियंत्रण के अधीन हैं। इन वस्तुओं के आयातकों को एक विशेष लाइसेंस की आवश्यकता होती है।

ग) <u>सारणीबद्ध मदें</u> : विशिष्ट वस्तुओं को केवल अधिकृत चौनलों, आमतौर पर नामित सरकारी एजेंसियों या संस्थानों के माध्यम से आयात करने की अनुमति है। यह उचित विनियमन और नियंत्रण सुनिश्चित करता है।

घ) <u>माल का निः शुल्क आयातः</u> नकारात्मक सूची में सूचीबद्ध नहीं किए गए माल को कई प्रतिबंधों के बिना स्वतंत्र रूप से आयात किया जा सकता है। यह आयात की एक विस्तृत श्रृंखला को प्रोत्साहित करता है, जिससे भारतीय व्यवसायों और उपभोक्ताओं को दुनिया भर से वस्तुओं और प्रौद्योगिकियों तक पहुंचने की अनुमति मिलती है।

च) <u>सेकंड–हैंड कैपिटल गुड्सः</u> उपयोग किए गए पूंजीगत सामान (मशीनरी, उपकरण) को 5 साल के न्यूनतम शेष जीवन के साथ आयात करने से निर्माताओं को लाभ होता है। यह व्यवसायों को लागत प्रभावी उपकरण प्राप्त करने की अनुमति देता है, संभावित रूप से उत्पादकता में सुधार और लागत को कम करता है।

छ) सीमाशुल्क छूट योजनाः शुल्क छूट योजना प्रावधानों का एक समूह है जो निर्यातकों को अपने निर्यात का विस्तार करने और वैश्विक बाजार में अपनी प्रतिस्पर्धा बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए कुछ लाभ प्रदान करता है। इस

योजना में विभिन्न प्रकार के लाइसेंस जारी करना शामिल है जो निर्यातकों को सामान्य सीमा शुल्क का भुगतान किए बिना माल आयात करने की अनुमति देता है। इस योजना के तहत विभिन्न प्रकार के लाइसेंस हैं:

- **अग्रिम लाइसेंस:**

  1. एक अग्रिम लाइसेंस व्यापारी–निर्यातकों और निर्माता–निर्यातकों दोनों को दिया जाता है।

  2. यह कच्चे माल, घटकों आदि के शुल्क मुक्त आयात की अनुमति देता है, जो निर्यात के लिए उत्पादों के निर्माण के लिए आवश्यक हैं।

  3. यह विचार उत्पादन प्रक्रिया को अधिक लागत प्रभावी बनाने के लिए है, क्योंकि आयात पर लगाए जाने वाले शुल्क माफ कर दिए गए हैं।

  4. यह निर्यातकों को प्रतिस्पर्धी मूल्य पर माल का उत्पादन करने में मदद करता है, जिससे उन्हें अंतरराष्ट्रीय बाजारों में अधिक आकर्षक बना दिया जाता है।

- **मध्यवर्ती लाइसेंस:**

  1. निर्माता–निर्यातकों को एक मध्यवर्ती लाइसेंस जारी किया जाता है।

  2. यह उन आदानों के आयात की अनुमति देता है जो माल के उत्पादन के लिए आवश्यक हैं जो अग्रिम लाइसेंस रखने वाले अंतिम निर्यातक को आपूर्ति की जाएगी।

  3. यह आपूर्ति श्रृंखला में माल के सुचारू प्रवाह की सुविधा प्रदान करता है और विनिर्माण पारिस्थितिकी तंत्र का समर्थन करता है।

- **विशेष आयात लाइसेंस:**

  1. यह लाइसेंस कुछ निर्माताओं को विशिष्ट संस्थाओं या क्षेत्रों को आपूर्ति किए जाने वाले सामानों के लिए आवश्यक आयात करने की अनुमति देता है।

  2. इन संस्थाओं या क्षेत्रों में निर्यात–उन्मुख इकाइयां (ईओयू), अंर्तराष्ट्रीय संगठनों द्वारा वित्तपोषित परियोजनाएं, बिजली क्षेत्र, तेल और गैस क्षेत्र आदि शामिल हो सकते हैं।

  3. इसका उद्देश्य विशिष्ट उद्योगों का समर्थन करना है जो देश के निर्यात या विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

- **डीईपीबी योजना (सीमाशुल्क पात्रता पास बुक योजना):** डीईपीबी योजना निर्यातकों को उनके निर्यात के मूल्य के प्रतिशत के बराबर ऋण प्रदान करके निर्यात को बढ़ावा देने के लिए बनाई गई है। इस ऋण का उपयोग विशिष्ट वस्तुओं के आयात पर देय सीमा शुल्क की भरपाई के लिए किया जा सकता है।

सीमाशुल्क छूट योजना और (सीमाशुल्क पात्रता पास बुक योजना) डीईपीबी योजना दोनों का उद्देश्य निर्यातकों पर वित्तीय बोझ को कम करना है, जो उनके लिए अंर्तराष्ट्रीय व्यापार में संलग्न होने और देश की अर्थव्यवस्था के विकास में योगदान करने के लिए और अधिक आकर्षक बनाता है।

14.9 एक्सिम बैंक की भूमिका

भारतीय निर्यात–आयात बैंक (एक्जिम बैंक) भारत में एक विशेष वित्तीय संस्थान है जिसे 1982 में स्थापित किया गया था। बैंक का प्राथमिक कार्य भारत के अंर्तराष्ट्रीय व्यापार को वित्तपोषित करना, सुविधाजनक बनाना और बढ़ावा देना है। यह भारत सरकार के स्वामित्व में है और एक वैधानिक निगम के रूप में काम करता है। इसके संचालन भारतीय निर्यात–आयात बैंक अधिनियम, 1981 द्वारा शासित होते हैं। एक्जिम बैंक भारतीय निर्यातकों और आयातकों को वित्तीय सेवाओं की एक विस्तृत श्रृंखला प्रदान करता है। इन सेवाओं में निर्यात ऋण, लदान–पूर्व ऋण, और विदेशी निवेश वित्त शामिल हैं। बैंक अपने अंतरराष्ट्रीय परिचालन का विस्तार करने के इच्छुक भारतीय व्यवसायों को सलाहकार और सहायता सेवाओं की एक श्रृंखला भी प्रदान करता है।

14.9.1 एक्सिम बैंक का औचित्य

एक्जिम बैंक की स्थापना 1982 में भारत सरकार द्वारा अंर्तराष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने और आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के उद्देश्य से की गई थी। यह एक विशेष वित्तीय संस्थान की आवश्यकता के परिणामस्वरूप बनाया गया था जो अंर्तराष्ट्रीय व्यापार की अनूठी चुनौतियों और अवसरों को संबोधित कर सकता था। बैंक संसद के एक अधिनियम के तहत स्थापित किया गया था और एक सरकारी स्वामित्व वाली वित्तीय संस्था के रूप में काम करता है।

14.9.2 एक्सिम बैंक के ऋण सम्बंधी कार्यक्रम

एक्जिम बैंक के उधार कार्यक्रम अंर्तराष्ट्रीय व्यापार और विदेशी

परियोजनाओं के विभिन्न पहलुओं का समर्थन करने के लिए डिजाइन किए गए हैं। ये कार्यक्रम मुख्य रूप से छह उपयोगकर्ता समूहों पर ध्यान केंद्रित करते हैंः भारतीय निर्यातक, भारतीय वाणिज्यिक बैंक, विदेशी खरीदार, विदेशी सरकारें, अंर्तराष्ट्रीय बैंक और विदेशी वित्तीय संस्थान। यहां एक्जिम बैंक के उधार कार्यक्रमों की व्याख्या की गई हैः **क.** भारतीय निर्यातकों को ऋण **ख.** भारत के वाणिज्यिक बैंकों को ऋण **ग.** विदेशी सरकारों, आयातकों और वित्तीय संस्थानों को ऋण **घ.** दायित्वों की जिम्मेदारी।

(क). भारतीय निर्यातकों के लिए ऋण व्यवस्था

- **विक्रेता ऋण :**

1. एक्जिम बैंक भारतीय निर्यातकों को आपूर्तिकर्ता ऋण प्रदान करता है। इसमें पात्र वस्तुओं और सेवाओं के निर्यातकों को सावधि निर्यात क्रेडिट का विस्तार करना शामिल है।
2. यह क्रेडिट निर्यातकों को अपने विदेशी खरीदारों को स्थगित भुगतान की शर्तें प्रदान करने में सक्षम बनाता है। उदाहरण के लिए, एक भारतीय निर्यातक एक विदेशी खरीदार को माल बेच सकता है और उन्हें बाद की तारीख में उन सामानों के लिए भुगतान करने की अनुमति दे सकता है।
3. यह सुविधा भारतीय उत्पादों को विदेशी खरीदारों के लिए अधिक आकर्षक बनाती है और निर्यातकों और आयातकों दोनों के नकदी प्रवाह का समर्थन करती है।

- **परामर्श और प्रौद्योगिकी सेवाएंः**

1. एक्जिम बैंक की वित्तीय सहायता का उपयोग निर्यातकों द्वारा भारतीय परामर्श, प्रौद्योगिकी और अन्य सेवाओं के लिए विदेशी खरीदारों को आस्थगित ऋण की पेशकश करने के लिए किया जा सकता है।
2. यह भारतीय विशेषज्ञता और सेवाओं के निर्यात को बढ़ावा देता है, जो देश की समग्र निर्यात आय में योगदान देता है।

- **लदान–पूर्व ऋण :**

1. उन अनुबंधों के लिए जिनमें 6 महीने से अधिक का विनिर्माण चक्र शामिल है, एक्जिम बैंक लदान–पूर्व ऋण प्रदान करता है।
2. यह ऋण निर्यात के लिए माल तैयार होने से पहले विनिर्माण और तैयारी

प्रक्रियाओं का समर्थन करता है।

- **निर्यातोन्मुखी इकाइयों के लिए परियोजना वित्तः**

1. एक्जिम बैंक निर्यातोन्मुखी इकाइयों की स्थापना के लिए सावधि ऋण प्रदान करता है, चाहे वे निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्रों या घरेलू तटकारों (टैरिफ) क्षेत्रों में हों।
2. इन इकाइयों को अपनी वार्षिक बिक्री का न्यूनतम 25% निर्यात करना आवश्यक है। प्रदान किए गए ऋण उनकी स्थापना और बाद में निर्यात गतिविधियों की सुविधा प्रदान करते हैं।

- **आयात वित्तः** एक्जिम बैंक आयात के लिए वित्तपोषण प्रदान करता है जो निर्यात से संबंधित हैं। इसमें निर्यातोन्मुख इकाइयों द्वारा आयात और निर्यात बाजारों के लिए उत्पादन क्षमताओं को बढ़ाने के लिए मशीनरी, प्रौद्योगिकी और उपकरणों का आयात शामिल है।
- **विदेशी निवेश वित्तः** एक्जिम बैंक विदेशों में संयुक्त उद्यमों में भाग लेने की इच्छुक भारतीय कंपनियों को वित्त प्रदान करता है। इससे भारतीय कंपनियों को अपनी वैश्विक उपस्थिति का विस्तार करने और विदेशी परियोजनाओं में योगदान करने में मदद मिलती है।

(ख). <u>भारत के वाणिज्यिक बैंकों को ऋणः</u>

- **निर्यात बिल पुनः छूटः**

1. विदेशी मुद्रा में सौदा करने के लिए अधिकृत भारतीय वाणिज्यिक बैंक एक्जिम बैंक के साथ अपने अल्पकालिक निर्यात बिलों को फिर से छूट दे सकते हैं।
2. यह बैंकों को तरलता प्रदान करता है और निर्यातकों के लिए समय पर धन की वसूली का समर्थन करता है।

- **लघु उद्योग (एसएसआई) निर्यात बिल पुनर्भुगतान :**

1. यह ऊपर उल्लिखित निर्यात बिल पुनर्भुगतान के समान है, लेकिन यह विशेष रूप से लघु उद्योगों से संबंधित निर्यात बिलों को लक्षित करता है।

- **निर्यात ऋण का पुनर्वित्तः**

1. अधिकृत विदेशी मुद्रा डीलर पात्र भारतीय वस्तुओं के निर्यात के लिए

विस्तारित स्थगित भुगतान ऋण के लिए एक्जिम बैंक से 100: पुनर्वित्त प्राप्त कर सकते हैं।

2. यह निर्यात वित्तपोषण को प्रोत्साहित करता है और निर्यातकों को अपने नकदी प्रवाह का प्रबंधन करने में मदद करता है।

- **मीयादी ऋणों का पुनर्वित्त:**

1. एक्जिम बैंक पात्र निर्यातोन्मुख इकाइयों और कंप्यूटर सॉफ्टवेयर निर्यातकों को सावधि ऋण के लिए पूर्ण पुनर्वित्त प्रदान करता है।
2. यह निर्यातकों को अपनी परियोजनाओं और गतिविधियों के लिए आवश्यक धन तक पहुंचने की अनुमति देता है।

(ग.) <u>विदेशी सरकारों, आयातकों और वित्तीय संस्थानों को ऋण:</u>

- **विदेशी खरीदारों को ऋण:**

1. एक्जिम बैंक पात्र भारतीय वस्तुओं और संबंधित सेवाओं के आयात के लिए विदेशी संस्थाओं को सीधे ऋण प्रदान करता है।
2. यह ऋण सुविधा विदेशी खरीदारों के लिए भारतीय उत्पादों की सामर्थ्य को बढ़ाती है, जिससे निर्यात को बढ़ावा मिलता है।

- **ऋण :**

1. एक्जिम बैंक विदेशी सरकारों और वित्तीय संस्थानों को पात्र भारतीय ळव्वै और सेवाओं के आयात के लिए सावधि वित्त प्रदान करता है।
2. ये ऋण – भागीदार देशों में परियोजनाओं और पहलों का समर्थन करके भारत की आर्थिक कूटनीति में योगदान करती हैं।

- **विदेशी बैंकों को ऋण देने की सुविधा:**

1. अंर्तराष्ट्रीय बैंक पात्र भारतीय वस्तुओं के आयात के लिए विदेशों में अपने ग्राहकों को सावधि वित्त प्रदान करने के लिए एक्जिम बैंक की पुनःऋण सुविधा का उपयोग कर सकते हैं।
2. यह अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय सीमाओं से परे एक्जिम बैंक की पहुंच और वित्तीय सहायता का विस्तार करता है।

(घ.) <u>दायित्वों की गारंटी:</u>

- **दायित्वों की गारंटी:**

1. एक्जिम बैंक निर्यात अनुबंधों के निष्पादन के लिए अग्रिम भुगतान, प्रदर्शन,

प्रतिधारण धन और विदेश में उधार लेने की गारंटी जैसे विभिन्न गारंटी जारी करने के लिए वाणिज्यिक बैंकों के साथ सहयोग करता है।

2. इन गारंटियों को प्रदान करके, एक्जिम बैंक भारतीय निर्यातकों की विश्वसनीयता को बढ़ाता है और उनकी संविदात्मक प्रतिबद्धताओं का समर्थन करता है।

संक्षेप में, एक्जिम बैंक के उधार कार्यक्रम अंतरराष्ट्रीय व्यापार और विदेशी परियोजनाओं में शामिल हितधारकों की विविध आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वित्तीय उत्पादों और सेवाओं की एक विस्तृत श्रृंखला को कवर करते हैं। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य भारतीय निर्यात को बढ़ावा देना, घरेलू उद्योगों का समर्थन करना, आयात की सुविधा प्रदान करना, विदेशी सरकारों और संस्थानों के साथ आर्थिक संबंधों को बढ़ावा देना और वित्तीय समाधान प्रदान करना है जो वैश्विक स्तर पर भारत की अर्थव्यवस्था के विकास में योगदान करते हैं।

14.10 सारांश

भारतीय निर्यात–आयात बैंक (एक्जिम बैंक) और एक्जिम नीति एक साथ एक महत्वपूर्ण ढांचा बनाते हैं जो वैश्विक अर्थव्यवस्था में भारत की भागीदारी को संचालित करता है। एक्जिम बैंक, एक विशेष वित्तीय संस्थान के रूप में, अंर्तराष्ट्रीय व्यापार को सुविधाजनक बनाने, निर्यातकों और आयातकों का समर्थन करने, विदेशी परियोजनाओं को बढ़ावा देने और आर्थिक विकास को बढ़ावा देने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके विविध ऋण कार्यक्रम भारतीय निर्यातकों और वाणिज्यिक बैंकों से लेकर विदेशी सरकारों और वित्तीय संस्थानों तक विभिन्न हितधारकों को पूरा करते हैं, जिससे सीमाओं के पार वस्तुओं, सेवाओं और निवेश के निर्बाध प्रवाह को सक्षम किया जा सकता है।

अंत में, भुगतान–शेष (बीओपी) और व्यापार–शेष की अवधारणाओं के साथ–साथ एक्जिम नीति, वैश्विक मंच पर एक राष्ट्र के आर्थिक प्रक्षेपवक्र को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक्जिम नीति एक रणनीतिक ढांचे के रूप में कार्य करती है जो अंर्तराष्ट्रीय व्यापार के लिए एक देश के दृष्टिकोण को रेखांकित करती है, निर्यात को बढ़ावा देने, आयात को सुविधाजनक बनाने और आर्थिक विकास को बढ़ावा देने पर ध्यान केंद्रित करती है। यह दिशानिर्देश और प्रोत्साहन स्थापित करता है जो व्यवसायों को नए बाजारों का पता लगाने, उत्पाद की पेशकश में विविधता लाने और वैश्विक क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करता है।

भुगतान–शेष और व्यापार –शेष की अवधारणाएं एक्जिम नीति की सफलता

से जटिल रूप से जुड़ी हुई हैं। एक अनुकूल व्यापार संतुलन, जब निर्यात आयात से अधिक होता है, एक सकारात्मक भुगतान संतुलन में योगदान देता है, जो एक राष्ट्र की आर्थिक ताकत और स्थिरता को दर्शाता है। निर्यात को बढ़ावा देने पर एक्जिम नीति का जोर इस संतुलन को प्राप्त करने, विदेशी मुद्रा भंडार पैदा करने और आर्थिक लचीलापन को मजबूत करने में मदद करता है।

इसके अलावा, एक अच्छी तरह से डिजाइन की गई एक्जिम नीति रणनीतिक व्यापार संबंधों को बढ़ावा देने, वस्तुओं और सेवाओं के निर्यात मूल्य में सुधार और विदेशी निवेश को आकर्षित करके व्यापार घाटे और असंतुलन को संबोधित कर सकती है। एक व्यापक नीति दृष्टिकोण न केवल वाणिज्यिक विचारों को ध्यान में रखता है, बल्कि भू–राजनीतिक कारकों को भी ध्यान में रखता है, जो अंर्तराष्ट्रीय व्यापार के लिए एक समग्र दृष्टिकोण सुनिश्चित करता है।

इस परस्पर जुड़ी वैश्विक अर्थव्यवस्था में, एक्जिम नीति, भुगतान–शेष संतुलन और व्यापार शेष के प्रभावी प्रबंधन के साथ, एक राष्ट्र के आर्थिक परिदृश्य को आकार देती है, इसके मुद्रा मूल्यांकन को प्रभावित करती है, और समग्र आर्थिक विकास को प्रभावित करती है। इन तत्वों को संरेखित करके, एक देश सतत विकास के लिए प्रयास कर सकता है, अपनी वैश्विक स्थिति को बढ़ा सकता है, और अपने नागरिकों के लिए समृद्धि की नींव बना सकता है।

14.11 उपयोगी शब्दावली

- **विदेशी मुद्रा** : विदेशी मुद्रा, किसी दिए गए देश की घरेलू मुद्रा के अलावा सभी मुद्राएं। अन्य देशों की मुद्रा की इकाइयाँ।
- **व्यापार –शेष** : किसी राष्ट्र द्वारा माल के कुल निर्यात और आयात के मौद्रिक मूल्य का एक वार्षिक लेखा विवरण।
- **भुगतान–शेष** : दुनिया के बाकी हिस्सों के साथ किसी देश के सभी मौद्रिक लेनदेन का एक वार्षिक लेखा विवरण।
- **विनिमय दर** : विदेशी मुद्रा की इकाइयों की संख्या जिन्हें घरेलू मुद्रा की एक इकाई के लिए बदला जा सकता है।

14.12 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न 1. भारत के भुगतान–शेष के दृष्टिकोण से सबसे कठिन अवधि क्या रही है।

प्रश्न 2. भारत में भुगतान संतुलन की कठिनाइयों के चार महत्वपूर्ण कारणों का उल्लेख कीजिए?

प्रश्न 3. एक्जिम नीति की मुख्य विशेषताएं क्या हैं?

प्रश्न 4. भारत के विदेशी व्यापार को बढ़ावा देने में एक्जिम बैंक की क्या भूमिका है?

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. डॉर्नबुश, आर और एस फिशर, 1994– मैक्रोइकॉनॉमिक्स, छठा संस्करण, मैकग्रा–हिल, पेरिस।
2. आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार, 2006–07।
3. क्रुगमैन, पीआर और एम ओब्स्टफेल्ड, 2000– अंर्तराष्ट्रीय अर्थशास्त्र, सिद्धांत और नीति, पांचवां संस्करण, पियर्सन शिक्षा।

इकाई 15 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सम्बन्ध

इकाई रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 द्विपक्षीय व्यापार सम्बन्ध

15.3 बहुपक्षी व्यापारिक प्रणाली

15.3.1 मुक्त व्यापार के लाभ

15.3.2 मुक्त व्यापार के दोष

15.3.3 संरक्षण के पक्ष में तर्फ

15.3.4 संरक्षण के उपकरण

15.4 व्यापार एवं टैरिफ का सामान्य समझौता

15.4.1 उद्देश्य

15.4.2 की भूमिका

15.5 विश्व व्यापार संगठन

15.5.1 कार्य

15.5.2 समझौते

15.5.3 मूल्यांकन

15.6 सारांश

15.7 उपयोगी शब्दावली

15.8 महत्वपूर्ण प्रश्न

15.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- द्विपक्षीय व्यापार सम्बन्धों की अवधारणा की व्याख्या कर सकेंगें;
- द्विपक्षीय और बहुपक्षीय व्यापार सम्बन्धों को परिभाषित करते हुए प्रमुख भिन्नताओं को रेखांकित कर सकेगें;

- द्विपक्षीय और बहुपक्षीय व्यापार सम्बन्धों के सापेक्ष गुणों को सूचिबद्ध कर सकेगें;
- विश्व व्यापार संगठन की अवधारणा; भूमिका क्षेत्र और कार्य प्रणाली को समझ सकेगें,
- गैट और विश्व व्यापार संगठन में भिन्नता को स्पष्ट कर सकेगें,
- द्विपक्षीय और बहुपक्षीय सम्बन्धों के साथ आने वाले लाभ और चुनौतियां को मूल्यांकन कर सकेगें; तथा
- द्विपक्षीय और बहुपक्षीय व्यापार के आदान–प्रदान के अर्न्तराष्ट्रीय प्रभाव को विश्लेषित करते हुए इसके महत्व को सिद्ध कर सकेगें।

15.1 प्रस्तावना

अंर्तराष्ट्रीय व्यापार संबंध आधुनिक वैश्विक अर्थव्यवस्था का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू हैं, जिसमें राष्ट्रों के बीच समझौतों, नीतियों और बातचीत का एक जटिल जाल शामिल है। यह जटिल ढांचा मार्गदर्शन करता है कि देश व्यापार में कैसे संलग्न हैं, सीमाओं के पार कैसे वस्तुओं और सेवाओं का आदान–प्रदान करते हैं, और हमारी परस्पर दुनिया के आर्थिक परिदृश्य को आकार देते हैं। यह संरचित अन्वेषण अंर्तराष्ट्रीय व्यापार संबंधों के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालता है, द्विपक्षीय और बहुपक्षीय व्यापार गतिशीलता, मुक्त व्यापार के फायदे और नुकसान, संरक्षणवाद के लिए तर्क और संरक्षण के लिए नियोजित उपकरणों पर प्रकाश डालता है।

वैश्विक स्तर पर व्यापार उपभोक्ताओं और देशों को उन वस्तुओं और सेवाओं के संपक्र में आने का अवसर देता है जो अपने देशों में उपलब्ध नहीं हैं, या घरेलू स्तर पर अधिक महंगे हैं। सबसे पहले, एडम स्मिथ और डेविड रिकार्डो जैसे राजनीतिक अर्थशास्त्रियों द्वारा अंर्तराष्ट्रीय व्यापार के महत्व को मान्यता दी गई थी। फिर भी, कुछ लोग तर्क देते हैं कि अंर्तराष्ट्रीय व्यापार वास्तव में छोटे देशों के लिए बुरा हो सकता है, जिससे उन्हें विश्व मंच पर अधिक नुकसान हो सकता है।

अंर्तराष्ट्रीय व्यापार की दुनिया के माध्यम से इस यात्रा में, हम व्यापार संबंधों के ऐतिहासिक विकास, टैरिफ और व्यापार पर सामान्य समझौते जैसे प्रमुख संस्थानों की भूमिका और विश्व व्यापार संगठन के समकालीन महत्व की जांच करेंगे। इन आयामों को समझना महत्वपूर्ण है, क्योंकि वे राष्ट्रों के आर्थिक भाग्य

को रेखांकित करते हैं, वैश्विक आर्थिक विकास, और अरबों की आजीविका को प्रभावित करते हैं।

आइये इस इकाई में अंतरराष्ट्रीय व्यापार संबंधों की एक व्यापक खोज शुरू करते हैं, जटिलताओं और बारीकियों का विश्लेषण करते हैं जो राष्ट्रों को वाणिज्य में संलग्न होने और विश्व मंच पर सहयोग करने के तरीके को विस्तार से अध्ययनोपयोगी बनाती है। आइये आगे के अध्ययन मे हम इसे विस्तार से समझनें का प्रयास करतें हैं।

15.2 द्विपक्षीय व्यापार सम्बन्ध

द्विपक्षीय व्यापार एक प्रकार का अंतरराष्ट्रीय व्यापार है जिसमें दो देशों के बीच सामग्री और सेवाओ का विनिमय के साथ– साथ निवेश को प्रोत्साहित किया जाता है। इन दो देशों को आपसी सहमति के आधार पर टैरिफ , आयात कोटा, निर्यात रोक, और अन्य व्यापार बाधाओं को कम करने या उन्हें हटा देंने जिससे व्यापार और निवेश को प्रोत्साहित किया जा सके जैसे महत्वपूर्ण पहलुओ पर निर्णय लिये जाते है।

द्विपक्षीय वाणिज्य के सबसे महत्वपूर्ण लाभों में से एक यह है कि इससे दोनों देशों में आर्थिक वृद्धि और विकास में वृद्धि हो सकती है। देश वस्तुओं और सेवाओं की एक विस्तृत श्रृंखला तक पहुंच प्राप्त कर सकते हैं और एक दूसरे के साथ व्यापार के माध्यम से वैश्विक अर्थव्यवस्था में अपनी प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दे सकते हैं। यह बदले में, उत्पादकता, नवाचार और नौकरी के विकास को बढ़ावा दे सकता है। द्विपक्षीय व्यापार भी देशों को अपनी अर्थव्यवस्था में विविधता लाने और कुछ प्रमुख वस्तुओं या बाजारों पर अपनी निर्भरता कम करने में सहायता कर सकता है। वस्तुतः द्विपक्षीय व्यापार के लिए कुछ नुकसान हैं–उदाहरण के लिए, इसके परिणामस्वरूप देशी उद्योगों और विदेशी उद्यमों के बीच प्रतिद्वंद्विता बढ़ सकती है, जिसके परिणामस्वरूप रोजगार का नुकसान और अन्य प्रतिकूल आर्थिक नतीजे हो सकते हैं। यह विकासशील देशों में श्रमिक और प्राकृतिक संसाधन शोषण का कारण भी बन सकता है, खासकर अगर व्यापार समझौते मजबूत श्रम और पर्यावरणीय सुरक्षा उपायों द्वारा समर्थित नहीं हैं। आइये इसके कुछ माहत्वपूर्ण तथ्यों को समझने का प्रयास करें:–

1. द्विपक्षीय व्यापार समझौते देशों के बीच व्यापार और वाणिज्यिक गतिविधियों को प्रोत्साहित करने के लिए होते हैं। इन अवसरों को प्रोत्साहित करने के लिए वे व्यापार बाधाओं जैसे कि खरीफ, आयात कोटा, और निर्यात रोक जैसी

व्यापार बाधाओं को हटा देते हैं।

2. द्विपक्षीय व्यापार समझौतों के मुख्य लाभ दो देशों के बीच समझौते के माध्यम से एक देश के उत्पादों के बाजार का विस्तार होता है।इसके अलावा, द्विपक्षीय व्यापार समझौतों का अन्य भी विकल्प हो सकते हैं, जैसे कि व्यापार कार्यवाहकों के बीच विनिमय और सहमति के आधार पर व्यापार बढ़ाने के लिए नेतृत्व करना और नए विपणन अवसरों को पहचानना भी होता है।

15.3 बहुपक्षीय व्यापारिक प्रणाली

बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली व्यापार समझौतों और संस्थानों के वैश्विक ढांचे को संदर्भित करती है जो देशों के बीच अंर्तराष्ट्रीय व्यापार को नियंत्रित करती है। यह व्यापार बाधाओं को कम करते हुए और सभी प्रतिभागियों के लिए निष्पक्ष और न्यायसंगत उपचार सुनिश्चित करते हुए राष्ट्रों के बीच वस्तुओं और सेवाओं के आदान–प्रदान को बढ़ावा देने और विनियमित करने के लिए डिजाइन किया गया है। बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के प्रमुख तत्वों में निम्नलिखित को सम्मिलित किया जाता है। आइये इन्हें समझने का प्रयास करें:–

1. **विश्व व्यापार संगठनः** यह एक प्राथमिक अंतरराष्ट्रीय संगठन है जो बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली की देखरेख के लिए जिम्मेदार है। यह 1995 में स्थापित किया गया था और इसका मुख्यालय जिनेवा, स्विट्जरलैंड में है। विश्व व्यापार संगठन सदस्य देशों को व्यापार समझौतों पर बातचीत करने, व्यापार विवादों को सुलझाने और व्यापार नीतियों की निगरानी करने के लिए एक मंच प्रदान करता है।

2. **व्यापार समझौतेः** विश्व व्यापार संगठन के सदस्य विभिन्न व्यापार समझौतों पर बातचीत करते हैं और प्रवेश करते हैं, जिसमें टैरिफ और व्यापार पर सामान्य समझौता और सेवाओं में व्यापार पर सामान्य समझौता शामिल हैं। ये समझौते अंतरराष्ट्रीय व्यापार के लिए नियम और सिद्धांत निर्धारित करते हैं, जिसमें टैरिफ में कमी, गैर–टैरिफ बाधाओं को समाप्त करना और बौद्धिक संपदा अधिकारों का संरक्षण शामिल है।

3. **सर्वधिक पसंदीदा राष्ट्रः** सर्वधिक पसंदीदा राष्ट्र (एमएफएन) सिद्धांतः एमएफएन सिद्धांत के तहत, डब्ल्यूटीओ सदस्य व्यापार के मामले में एक–दूसरे के साथ समान व्यवहार करने के लिए सहमत होते हैं। इसका मतलब यह है कि एक सदस्य को दिए गए किसी भी व्यापार लाभ को सभी

सदस्यों तक बढ़ाया जाना चाहिए, जिससे गैर–भेदभावपूर्ण व्यापार प्रथाओं को सुनिश्चित किया जा सके।

4. **राष्ट्रीय उपचारः** विश्व व्यापार संगठन के समझौतों में सदस्यों को अपने बाजारों में प्रवेश करने के बाद अपने घरेलू समकक्षों की तुलना में विदेशी उत्पादों और सेवाओं को कम अनुकूल व्यवहार करने की आवश्यकता होती है। इस सिद्धांत का उद्देश्य विदेशी वस्तुओं और सेवाओं के खिलाफ भेदभाव को रोकना है।

5. **विवाद निपटान तंत्रः** डब्ल्यूटीओ, सदस्य देशों के बीच व्यापार विवादों को हल करने के लिए एक तंत्र प्रदान करता है। यह सुनिश्चित करने में मदद करता है कि व्यापार समझौतों को लागू किया जाता है और विवादों को स्थापित नियमों और प्रक्रियाओं के अनुसार निपटाया जाता है।

6. **व्यापार दौरः** विश्व व्यापार संगठन के सदस्य व्यापार समझौतों को अद्यतन और विस्तारित करने के लिए बातचीत के दौर में संलग्न होते हैं। सबसे उल्लेखनीय दौरों में से एक उरुग्वे दौर था, जो 1994 में संपन्न हुआ और विश्व व्यापार संगठन की स्थापना का कारण बना। बाद के दौरों जैसे– दोहा विकास एजेंडा जैसे बाद के दौरों का उद्देश्य विभिन्न व्यापार मुद्दों को संबोधित करना है।

7. **व्यापार सुविधाः** बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली व्यापार सुविधा के महत्व पर भी जोर देती है, जिसमें सीमा शुल्क प्रक्रियाओं को कारगर बनाने, लाल फीताशाही को कम करने और सीमाओं के पार वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह को बढ़ाने के उपाय शामिल हैं।

बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली वैश्विक आर्थिक विकास को बढ़ावा देने, गरीबी को कम करने और राष्ट्रों के बीच सहयोग को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हालांकि, यह चुनौतियों का भी सामना करता है, जिसमें सदस्य देशों के बीच असहमति, श्रम और पर्यावरण पर व्यापार के प्रभाव के बारे में चिंताएं और क्षेत्रीय व्यापार समझौतों का उदय शामिल है। इन चुनौतियों के बावजूद, विश्व व्यापार संगठन और बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली वैश्विक अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण स्तंभ बने हुए हैं।

15.3.1 मुक्त व्यापार के लाभ

आइये मुक्त व्यापार के लाभो को बिन्दुवार क्रमशःसमझने का प्रयास करें:–

1. **आर्थिक दक्षताः** मुक्त व्यापार देशों को वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में विशेषज्ञता प्राप्त करने की अनुमति देता है जिसमें उन्हें तुलनात्मक लाभ होता है। यह विशेषज्ञता अधिक आर्थिक दक्षता और उच्च समग्र वैश्विक उत्पादन की ओर ले जाती है।

2. **उपभोक्ता लाभः** मुक्त व्यापार के परिणामस्वरूप अक्सर आयातित वस्तुओं और सेवाओं के लिए कम कीमतें होती हैं, जिससे उपभोक्ताओं को लाभ होता है जिनके पास किफायती उत्पादों की एक विस्तृत श्रृंखला तक पहुंच होती है।

3. **बढ़ी हुई प्रतिस्पर्धाः** खुले बाजार प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देते हैं, जो व्यवसायों को नवाचार, गुणवत्ता में सुधार और लागत को कम करने के लिए प्रोत्साहित करता है। इससे उपभोक्ताओं के लिए बेहतर उत्पाद और सेवाएं मिल सकती हैं।

4. **निर्यात के अवसरः** मुक्त व्यापार देशों को बड़े निर्यात बाजारों तक पहुंच प्रदान करता है, जो उनके घरेलू उद्योगों के विकास को बढ़ावा दे सकता है और रोजगार पैदा कर सकता है।

5. **आर्थिक विकासः** व्यापार का विस्तार करके, देश उच्च आर्थिक विकास दर का अनुभव कर सकते हैं, क्योंकि व्यापार आर्थिक गतिविधि और निवेश को उत्तेजित करता है।

6. **शांति और सहयोगः** अधिवक्ताओं का तर्क है कि मुक्त व्यापार राष्ट्रों के बीच शांति और सहयोग को बढ़ावा दे सकता है, क्योंकि आर्थिक अन्योन्याश्रितता संघर्षों की संभावना को कम कर सकती है।

15.3.2 मुक्त व्यापार के दोष

जिस प्रकार आपने उपरोक्त लाभो को बिन्दुवार समझा; आइये मुक्त व्यापार के कुछ प्रमुख दोषो को भी बिन्दुवार क्रमशः समझने का प्रयास करेः–

1. **<u>नौकरी विस्थापनः</u>** कुछ मामलों में, जो उद्योग विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धी नहीं हैं, उन्हें विदेशी प्रतिस्पर्धा के संपक्र में आने पर नौकरी के नुकसान या यहां तक कि पतन का सामना करना पड़ सकता है, जिससे बेरोजगारी और आर्थिक अव्यवस्था हो सकती है।

2. **<u>आय असमानताः</u>** मुक्त व्यापार के लाभ समान रूप से वितरित नहीं किए जा सकते हैं, जिससे देशों के भीतर आय असमानता हो सकती है। निर्यातोन्मुखी उद्योगों में कुशल श्रमिकों को घटते उद्योगों में कम कुशल श्रमिकों की तुलना में अधिक लाभ हो सकता है।

3. **नियंत्रण खोना** : देश अपनी घरेलू नीतियों पर कुछ नियंत्रण खो सकते हैं, जैसे कि पर्यावरणीय नियम, जब वे अंतरराष्ट्रीय व्यापार समझौतों के अधीन होते हैं।

4. **आयात पर निर्भरता:** कुछ आवश्यक वस्तुओं के लिए आयात पर अधिक निर्भरता एक देश को वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं में व्यवधान या मूल्य में उतार–चढ़ाव के लिए कमजोर बना सकती है।

5. **पर्यावरणीय चिंताएं:** आलोचकों का तर्क है कि मुक्त व्यापार पर्यावरणीय गिरावट का कारण बन सकता है जब देश नीचे की दौड़ में संलग्न होते हैं, निवेश और उत्पादन को आकर्षित करने के लिए पर्यावरणीय मानकों को कम करते हैं।

15.3.3 संरक्षण के पक्ष में तर्क

संरक्षण के लिए तर्क, विशुद्ध रूप से आर्थिक तर्कों और गैर–आर्थिक तर्कों में वर्गीकृत करके ही आत्मसात् करना उचित होगा। आइये प्रथमता संरक्षण के लिए विशुद्ध रूप से आर्थिक तर्क को समझनें का प्रयास करें:–

1. **शिशु उद्योग तर्क** : विकास के अपने प्रारंभिक चरणों के दौरान नए या उभरते उद्योगों की रक्षा करना। इसका उद्देश्य उन्हें पैमाने और प्रतिस्पर्धा की अर्थव्यवस्थाओं को प्राप्त करने में मदद करना है, अंततः अर्थव्यवस्था को लाभान्वित करना है। उभरते उद्योगों को पोषित करने के लिए संरक्षण को उचित ठहराया जा सकता है जब तक कि वे वैश्विक मंच पर प्रतिस्पर्धी नहीं बन जाते।

2. **उत्पादन में बाहरी अर्थव्यवस्थाएं:** उन मामलों में जहां उत्पादन की सामाजिक लागत निजी लागत से कम है। संरक्षण उन उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित कर सकता है जो सकारात्मक बाह्यताओं को उत्पन्न करते हैं, जैसे कि ज्ञान स्पिलओवर या तकनीकी प्रगति।

3. **श्रम बाजार विकृतियां:** जब श्रम बाजार विकृत होते हैं, और श्रम का उपयोग करने की सामाजिक लागत निजी लागत से कम होती है। संरक्षण का उपयोग उन उद्योगों का समर्थन करने के लिए किया जा सकता है जो रोजगार के अवसर प्रदान करते हैं और श्रम बाजार को स्थिर करते हैं।

4. **अंर्तराष्ट्रीय विकृतियां (इष्टतम टैरिफ तर्क):** जब अंर्तराष्ट्रीय विकृतियां माल के बीच परिवर्तन की घरेलू दर को विदेशी दर से काफी भिन्न करती हैं। अंर्तराष्ट्रीय व्यापार में एकाधिकार शक्ति, व्यापार की उचित शर्तों को

सुनिश्चित करने जैसे मुद्दों को हल करने के लिए संरक्षण का उपयोग किया जा सकता है।

5. **रणनीतिक व्यापार नीतिः** कुछ लोग तर्क देते हैं कि सब्सिडी या टैरिफ जैसे रणनीतिक सरकारी हस्तक्षेप, किसी देश को प्रमुख उद्योगों में प्रतिस्पर्धात्मक बढ़त हासिल करने में मदद कर सकते हैं।

उपरोक्त को समझने के उपरान्त आइये संरक्षण के लिए गैर–आर्थिक तर्को को भी बिन्दुवार समझनें का प्रयास करें:–

1. **किसी भी कीमत पर औद्योगोकरणः** आर्थिक दक्षता की परवाह किए बिना घरेलू उद्योगों की वृद्धि और विकास को प्राथमिकता देना। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिए तेजी से औद्योगीकरण का लक्ष्य।

2. **रणनीतिक कारणों के लिए आत्मनिर्भरताः** महत्वपूर्ण वस्तुओं या संसाधनों में आत्मनिर्भरता सुनिश्चित करने के लिए प्रमुख उद्योगों की रक्षा करना। राष्ट्रीय सुरक्षा को बढ़ाता है और विदेशी आपूर्तिकर्ताओं पर निर्भरता को कम करता है। रक्षा या महत्वपूर्ण बुनियादी ढांचे जैसे कुछ उद्योगों की रक्षा करना, राष्ट्रीय सुरक्षा कारणों से आवश्यक के रूप में देखा जा सकता है।

संरक्षण के लिए ये तर्क किसी देश के विशिष्ट आर्थिक और रणनीतिक लक्ष्यों के आधार पर उनकी प्रयोज्यता और प्रभावशीलता में भिन्न हो सकते हैं। जबकि विशुद्ध रूप से आर्थिक तर्क आर्थिक परिणामों में सुधार पर ध्यान केंद्रित करते हैं, गैर–आर्थिक तर्क व्यापक राष्ट्रीय हितों और रणनीतिक विचारों को प्राथमिकता दे सकते हैं।

15.3.4 संरक्षण के उपकरण

सुरक्षा के उपकरणो के अन्तर्गत निम्नलिखित को सम्मिलित किया जा सकता है:–

1. **टैरिफः** टैरिफ आयातित वस्तुओं पर लगाए गए कर हैं, जिससे वे घरेलू बाजार में अधिक महंगे और कम प्रतिस्पर्धी हो जाते हैं।

2. **कोटाः** कोटा विशिष्ट वस्तुओं की मात्रा को सीमित करता है जिसे किसी देश में आयात किया जा सकता है। वे आपूर्ति को प्रतिबंधित करते हैं, संभावित रूप से कीमतें बढ़ाते हैं और घरेलू उद्योगों की रक्षा करते हैं।

3. **सब्सिडीः** सरकारें घरेलू उद्योगों को वित्तीय सहायता या सब्सिडी प्रदान कर सकती हैं, जिससे उत्पादन लागत कम करके उन्हें अधिक प्रतिस्पर्धी बनाया जा सकता है।

4. **निर्यात प्रतिबंधः** कुछ देश यह सुनिश्चित करने के लिए कुछ वस्तुओं के निर्यात को प्रतिबंधित करते हैं कि वे घरेलू स्तर पर उपलब्ध हैं।

5. **गैर–टैरिफ बाधाएं (एनटीबी):** इनमें नियम, तकनीकी मानक और लाइसेंसिंग आवश्यकताएं शामिल हैं जो विदेशी वस्तुओं के लिए बाजार में प्रवेश करना अधिक कठिन बना सकती हैं।

6. **एंटी–डंपिंग उपायः** एंटी–डंपिंग शुल्क तब लगाए जाते हैं जब किसी देश का मानना है कि एक विदेशी कंपनी घरेलू बाजार में अनुचित रूप से कम कीमतों पर सामान बेच रही है, जिससे घरेलू उत्पादकों को नुकसान हो रहा है।

7. **स्वैच्छिक निर्यात प्रतिबंध (वीईआर):** कुछ मामलों में, निर्यातक देश अधिक कड़े संरक्षणवादी उपायों को लागू करने से बचने के लिए स्वेच्छा से अपने निर्यात को सीमित करने के लिए सहमत हो सकते हैं।

वस्तुतः देश अक्सर अपने घरेलू उद्योगों की रक्षा के लिए इन उपकरणों के संयोजन का उपयोग करते हैं जब वे ऐसा करने की आवश्यकता महसूस करते हैं। संरक्षणवादी उपायों का चयन सरकार की विशिष्ट परिस्थितियों और उद्देश्यों पर निर्भर करता है।

15.4 व्यापार एवं टैरिफ का सामान्य समझौता गैट

हवाना चार्टर, जिसे 1947–48 में व्यापार और रोजगार पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन के दौरान बातचीत की गई थी, का उद्देश्य अंर्तराष्ट्रीय व्यापार संगठन (आईटीओ) की स्थापना करना था। आईटीओ का उद्देश्य द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की अंर्तराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में एक प्रमुख संस्थान बनना था, जो रोजगार, आर्थिक विकास, व्यापार नीतियों, कमोडिटी समझौतों और विवाद समाधान सहित वैश्विक व्यापार के विभिन्न पहलुओं की देखरेख करता था। दुर्भाग्य से, राजनीतिक कारणों से, हवाना चार्टर कभी भी प्रभावी नहीं हुआ, जिससे उस अवधि के दौरान अंर्तराष्ट्रीय आर्थिक संबंधों में एक दूरी पैदा हो गया।

आईटीओ की अनुपस्थिति से पैदा हुआ एक महत्वपूर्ण अंतर व्यापार नीति और विवाद समाधान के दायरे में था। हालांकि, इस अंतर को आंशिक रूप से जनरल एग्रीमेंट ऑन टैरिफ एंड ट्रेड (जीएटीटी) द्वारा भर दिया गया था।

GATT की उत्पत्ति का पता 1945 में लगाया जा सकता है जब इसे वैश्विक व्यापार उदारीकरण को बढ़ावा देने के लक्ष्य के साथ एक बहुपक्षीय व्यापार समझौते के रूप में कल्पना की गई थी। इसका उद्देश्य अंतरराष्ट्रीय व्यापार प्रथाओं

में स्थिरता, पूर्वानुमान और पारदर्शिता लाना था, खासकर 1930 के दशक के दौरान संरक्षणवाद और द्विपक्षीय व्यापार की अवधि के बाद। GATT की अनूठी विशेषता इसकी संविदात्मक, कानूनी रूप से बाध्यकारी प्रकृति थी।

गैट एक व्यापक ढांचा है जो विश्व व्यापार के 90% से अधिक को कवर करता है। यह तीन प्राथमिक कार्य करता हैः

1. **आचार संहिताः** गैट अपने सदस्य देशों की व्यापार नीतियों के लिए आचार संहिता के रूप में कार्य करता है, जो सभी पक्षों के बीच अधिकारों और दायित्वों का संतुलन सुनिश्चित करता है।

2. **वार्ता मंचः** यह अपने सदस्य राज्यों के बीच व्यापार को उदार बनाने के उद्देश्य से वार्ता के लिए एक मंच प्रदान करता है। गैट इन वार्ताओं के लिए सिद्धांतों, नियमों और प्रक्रियाओं को रेखांकित करता है, उन्हें एक संस्था के रूप में समर्थन देता है।

3. **विवाद निपटानः** गैट सदस्य देशों के बीच विवादों के समाधान की सुविधा भी प्रदान करता है, जिससे इसके नियमों की प्रवर्तनीयता सुनिश्चित होती है।

गैट का गठन मूल रूप से निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित है। आइये इन्हें समझने का प्रयास करेः–

1. **मोस्ट फेवर्ड नेशन ट्रीटमेंट (एमएफएन):** यह सिद्धांत यह सुनिश्चित करता है कि सभी सदस्य देश व्यापार रियायतों में भेदभाव के बिना एक–दूसरे के साथ समान व्यवहार करें। किसी एक देश को दिया गया कोई भी व्यापार लाभ सभी सदस्य देशों को तुरंत और बिना शर्त दिया जाना चाहिए।

2. **केवल टैरिफ के माध्यम से संरक्षणः** गैट मुख्य रूप से देशों को सुरक्षा के साधन के रूप में सीमा शुल्क का उपयोग करने की अनुमति देता है, व्यापार में पारदर्शिता और पूर्वानुमान को बढ़ावा देता है।

3. **मात्रात्मक प्रतिबंधों का सामान्य उन्मूलनः** गैट मात्रात्मक प्रतिबंधों के उपयोग को प्रतिबंधित करता है, कृषि, भुगतान कठिनाइयों के संतुलन और विकासशील देशों में शिशु उद्योगों को बढ़ावा देने जैसे विशिष्ट मामलों को छोड़कर।

4. **राष्ट्रीय उपचारः** आयातित उत्पादों को घरेलू उत्पादों की तुलना में कम अनुकूल व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए, जब वे घरेलू बाजार में प्रवेश करते हैं, जिसमें करों, नियमों और आवश्यकताओं के संबंध में शामिल हैं।

5. **पारस्परिकताः** जबकि स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया गया है गैट वार्ता पारस्परिकता और पारस्परिक लाभ के सिद्धांत पर आधारित है।

6. **विकासशील देशों के लिए विभेदक और अधिक अनुकूल उपचार:** गैट कम विकसित देशों के विकास का समर्थन करने की आवश्यकता को पहचानता है और व्यापार वार्ता में उनके लिए विशेष उपचार और छूट प्रदान करता है।

वस्तुतः गैट ने वैश्विक व्यापार उदारीकरण को बढ़ावा देने, टैरिफ को कम करने और सदस्य देशों के बीच बातचीत को सुविधाजनक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हालांकि इसकी कुछ सीमाएं थीं और यह वास्तव में सार्वभौमिक नहीं था, लेकिन इसने 1995 में विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) द्वारा सफल होने तक अंर्तराष्ट्रीय व्यापार के लिए एक मूलभूत ढांचे के रूप में कार्य किया। विश्व व्यापार संगठन ने जीएटीटी द्वारा स्थापित सिद्धांतों और नियमों पर विस्तार किया, जो वैश्विक व्यापार प्रशासन के लिए एक अधिक व्यापक संस्थागत ढांचा प्रदान करता है।

15.4.1 गैट के उद्देश्य

टैरिफ और व्यापार पर सामान्य समझौता गैट जो 1948 से प्रभावी था जब तक कि इसे 1995 में विश्व व्यापार संगठन (WTO) द्वारा सफल नहीं किया गया था, कई प्रमुख उद्देश्य थेः

1. **व्यापार उदारीकरण को बढ़ावा देनाः** गैट का प्राथमिक उद्देश्य व्यापार बाधाओं को कम करके अंर्तराष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देना और सुविधाजनक बनाना था। ळ।ज्ज का उद्देश्य धीरे–धीरे टैरिफ को कम करके, आयात कोटा को समाप्त करके और संरक्षणवाद के अन्य रूपों को हतोत्साहित करके इसे प्राप्त करना था।

2. **गैर–भेदभाव सुनिश्चित करें:** गैट ने सर्वाधिक पसंदीदा राष्ट्र (मोस्ट–फेवर्ड–नेशन (एम0 एफ0 एन0) उपचार के सिद्धांत की स्थापना की, जिसके लिए सदस्य देशों को व्यापार के मामले में अन्य सभी सदस्य देशों के साथ समान व्यवहार करने की आवश्यकता थी। इसका मतलब यह था कि एक सदस्य को दिए गए किसी भी व्यापार लाभ, रियायत या विशेषाधिकार को सभी सदस्यों को बढ़ाया जाना था, जिससे गैर–भेदभावपूर्ण व्यापार प्रथाओं को सुनिश्चित किया जा सके।

3. **पूर्वानुमान और स्थिरता प्रदान करें:** गैट ने व्यापार नीतियों को नियंत्रित करने वाले नियमों और प्रक्रियाओं के ढांचे की स्थापना करके अंर्तराष्ट्रीय व्यापार में पूर्वानुमान और स्थिरता प्रदान करने की मांग की। सदस्य देश व्यापार संबंधों में अपने अधिकारों और दायित्वों को समझने के लिए इन नियमों पर भरोसा कर सकते हैं।

4. **अनुचित व्यापार प्रथाओं को रोकना**: गैट का उद्देश्य अनुचित व्यापार प्रथाओं जैसे डंपिंग (लागत से कम पर सामान बेचना) और सब्सिडी को रोकना और संबोधित करना है जो अंर्तराष्ट्रीय व्यापार को विकृत करते हैं। गैट ने विवाद निपटान प्रक्रियाओं के माध्यम से इन प्रथाओं को संबोधित करने के लिए तंत्र प्रदान किया गया।

5. **वार्ता की सुविधा**: गैट ने सदस्य देशों के बीच बहुपक्षीय वार्ता के लिए एक मंच के रूप में कार्य किया। इसने देशों को व्यापार बाधाओं को कम करने और अपने उत्पादों के लिए बाजार पहुंच का विस्तार करने के उद्देश्य से व्यापार वार्ता में शामिल होने के लिए एक मंच प्रदान किया।

6. **आर्थिक वृद्धि और विकास को बढ़ावा देना**: जबकि प्राथमिक ध्यान व्यापार को उदार बनाने पर था, गैट ने आर्थिक वृद्धि और विकास का समर्थन करने के महत्व को मान्यता दी। इसमें ऐसे प्रावधान शामिल थे जो विकासशील देशों को अपने आर्थिक विकास के लिए अनुकूल व्यापार नीतियों को लागू करने की अनुमति देते थे।

7. **व्यापार विवादों का समाधान** : गैट ने सदस्य देशों के बीच व्यापार विवादों को हल करने के लिए प्रक्रियाओं की स्थापना की। इससे यह सुनिश्चित करने में मदद मिली कि व्यापार समझौतों को लागू किया गया था और विवादों को सहमत नियमों के आधार पर निपटाया गया था।

8. **व्यापारिक संधशो पर विराम**: व्यापार के मुद्दों और विवादों को संबोधित करने के लिए एक संरचित ढांचा प्रदान करके, ळ।ज्ज का उद्देश्य व्यापार संघर्षों को पूर्ण विकसित व्यापार युद्धों में बढ़ने से रोकना है, जैसा कि 1930 के दशक के दौरान हुआ था।

9. **बहुपक्षवाद को सुविधाजनक बनाना**: गैट ने व्यापार समझौतों में सामूहिक निर्णय लेने और पारस्परिकता के महत्व पर जोर देते हुए व्यापार वार्ता और व्यापार संबंधों के लिए बहुपक्षीय दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया।

वस्तुतः यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि जबकि गैट व्यापार बाधाओं को कम करने और अंर्तराष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने में अत्यधिक सफल रहा, इसकी अपनी सीमाएं थीं, जिसके कारण 1995 में विश्व व्यापार संगठन (डब्लू टी0 ओ0) की स्थापना हुई। विश्व व्यापार संगठन ने गैट के सिद्धांतों और उपलब्धियों पर निर्माण किया और सेवाओं और बौद्धिक संपदा सहित व्यापार से संबंधित मुद्दों की एक विस्तृत श्रृंखला को कवर करने के लिए अपने दायरे का विस्तार किया, और विवाद निपटान तंत्र को मजबूत किया।

15.4.2 गैट की भूमिका

टैरिफ और व्यापार पर सामान्य समझौता (गैट), जो 1948 से प्रभावी था जब तक कि 1995 में विश्व व्यापार संगठन (डब्लू टी0 ओ0) द्वारा इसे सफल नहीं किया गया, ने वैश्विक व्यापार प्रणाली में कई महत्वपूर्ण भूमिकानिभाईः

1. **व्यापार बाधाओं में कमीः** गैट की प्राथमिक भूमिका व्यापार बाधाओं को कम करके अंर्तराष्ट्रीय व्यापार को सुविधाजनक बनाना था, मुख्य रूप से आयातित वस्तुओं पर टैरिफ। वार्ता के दौर की एक श्रृंखला के माध्यम से, ळ।ज्ज सदस्य देशों ने अपनी टैरिफ दरों को कम करने के लिए प्रतिबद्ध किया, जिसके कारण वर्षों में व्यापार प्रतिबंधों में महत्वपूर्ण कमी आई। इसने वैश्विक व्यापार और आर्थिक विकास में वृद्धि में योगदान दिया।

2. **गैर–भेदभावः** गैट ने मोस्ट–फेवर्ड–नेशन (एम0 एफ0 एन0) सिद्धांत पेश किया, जिसके लिए सदस्य देशों को अन्य सभी सदस्य देशों के साथ समान व्यवहार करने की आवश्यकता थी। इसका मतलब यह था कि एक सदस्य को दी गई किसी भी व्यापार रियायत या अधिमान्य उपचार को सभी सदस्यों तक बढ़ाया जाना था। इस सिद्धांत ने गैर–भेदभावपूर्ण व्यापार प्रथाओं को बढ़ावा दिया और द्विपक्षीय और भेदभावपूर्ण व्यापार समझौतों को हतोत्साहित किया।

3. **वार्ता मंचः** गैट ने सदस्य देशों को बहुपक्षीय व्यापार वार्ता में शामिल होने के लिए एक मंच प्रदान किया। इन वार्ताओं का उद्देश्य व्यापार बाधाओं को और कम करना, बाजार पहुंच का विस्तार करना और व्यापार से संबंधित मुद्दों को संबोधित करना था। ळ।ज्ज ढांचे ने इन वार्ताओं के लिए सिद्धांतों, नियमों और प्रक्रियाओं को रेखांकित किया।

4. **नियम और प्रक्रियाएंः** गैट ने अंतरराष्ट्रीय व्यापार को नियंत्रित करने वाले नियमों और प्रक्रियाओं का एक सेट स्थापित किया। इन नियमों ने व्यापार के लिए एक अनुमानित और स्थिर वातावरण प्रदान किया, जिससे देशों को अपने अधिकारों और दायित्वों को समझने की अनुमति मिली। इससे व्यापार संबंधों में अनिश्चितता कम हुई और निवेश तथा आर्थिक गतिविधियों को प्रोत्साहन मिला।

5. **विवाद निपटानः** गैट में एक विवाद निपटान तंत्र था जो सदस्य देशों को बातचीत और परामर्श के माध्यम से व्यापार विवादों को हल करने की अनुमति देता था। इससे यह सुनिश्चित करने में मदद मिली कि व्यापार समझौतों को लागू किया गया था और विवाद व्यापार संघर्षों में नहीं बढ़े थे।

विवाद निपटान प्रणाली अंतरराष्ट्रीय व्यापार में व्यवस्था बनाए रखने में ळ।ज्ज की भूमिका का एक महत्वपूर्ण हिस्सा थी।

6. **आर्थिक विकास को बढ़ावा देना**: व्यापार उदारीकरण पर ळ।ज्ज के ध्यान ने आर्थिक वृद्धि और विकास में योगदान दिया। व्यापार बाधाओं को कम करके और अंर्तराष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देकर, गैट सदस्य देश बड़े बाजारों तक पहुंच सकते हैं और बढ़ी हुई आर्थिक गतिविधि से लाभ उठा सकते हैं।

7. **व्यापार युद्धों की रोकथाम**: गैट की स्थापना द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की गई थी, उस अवधि के दौरान जब व्यापार संघर्षों और संरक्षणवाद ने महामंदी और वैश्विक आर्थिक अस्थिरता में योगदान दिया था। युद्ध के बाद की दुनिया में शांति और स्थिरता बनाए रखने में व्यापार संघर्षों और व्यापार युद्धों को बढ़ने से रोकने में गैट की भूमिका महत्वपूर्ण थी।

8. **विकासशील देशों के लिए लचीलापन**: गैट ने कम विकसित देशों की विकासात्मक आवश्यकताओं को मान्यता दी और उन्हें व्यापार नीतियों को लागू करने में लचीलापन प्रदान किया जो उनके आर्थिक विकास का समर्थन करते थे। विशेष और विभेदक उपचार प्रावधानों ने विकासशील देशों को अंर्तराष्ट्रीय व्यापार प्रणाली के अनुकूल होने की अनुमति दी।

9. **बहुपक्षवाद को बढ़ावा देना**: गैट ने बहुपक्षीय व्यापार वार्ता और सामूहिक निर्णय लेने के महत्व पर जोर दिया। इसने देशों को व्यापार संबंधों में सहयोग और कूटनीति को बढ़ावा देने, व्यापार मामलों को बातचीत करने और निपटाने के लिए मिलकर काम करने के लिए प्रोत्साहित किया।

जबकि गैट अपने कई उद्देश्यों को प्राप्त करने में अत्यधिक सफल रहा, यह अंततः 1995 में व्यापार से संबंधित मुद्दों की एक विस्तृत श्रृंखला को संबोधित करने और वैश्विक व्यापार शासन के लिए एक अधिक व्यापक ढांचा प्रदान करने के लिए विश्व व्यापार संगठन (डब्लू टी0 ओ0) में विकसित हुआ। विश्व व्यापार संगठन ने ळ।ज्ज के सिद्धांतों और उपलब्धियों पर निर्माण किया, अंर्तराष्ट्रीय व्यापार को विनियमित करने में अपनी भूमिका का विस्तार किया।

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि जबकि गैट व्यापार बाधाओं को कम करने और अंर्तराष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने में अत्यधिक सफल रहा, इसकी अपनी सीमाएं थीं, जिसके कारण 1995 में विश्व व्यापार संगठन (डब्लू टी0 ओ0) की स्थापना हुई। विश्व व्यापार संगठन ने गैट के सिद्धांतों और उपलब्धियों पर निर्माण किया और सेवाओं और बौद्धिक संपदा सहित व्यापार से संबंधित मुद्दों की एक विस्तृत श्रृंखला को कवर करने के लिए अपने दायरे का विस्तार किया, और

विवाद निपटान तंत्र को मजबूत किया।

15.5 विश्वव्यापार संगठन (डब्लू टी0 ओ0)

विश्व व्यापार संगठन (डब्लू टी0 ओ0)एक अंतरराष्ट्रीय संगठन है जो अपने सदस्य देशों के बीच अंर्तराष्ट्रीय व्यापार को विनियमित और सुविधाजनक बनाने के लिए स्थापित किया गया है। यह आधिकारिक तौर पर 1 जनवरी, 1995 को बनाया गया था, और इसका मुख्यालय जिनेवा, स्विट्जरलैंड में है। विश्व व्यापार संगठन का प्राथमिक कार्य सदस्य देशों को व्यापार समझौतों पर बातचीत करने, व्यापार विवादों को सुलझाने और व्यापार नीतियों की निगरानी करने के लिए एक मंच प्रदान करना है।

विश्व व्यापार संगठन अपने सदस्य देशों को व्यापार समझौतों पर बातचीत करने और लागू करने के लिए एक रूपरेखा प्रदान करता है, जिससे अंर्तराष्ट्रीय व्यापार, आर्थिक विकास और स्थिरता को बढ़ावा मिलता है। हालांकि, इसे आलोचना और चुनौतियों का सामना करना पड़ा है, कुछ लोगों का तर्क है कि यह विभिन्न व्यापार मुद्दों और चिंताओं को संबोधित करने में अधिक प्रभावी हो सकता है। बहरहाल, यह वैश्विक व्यापार प्रणाली में एक केंद्रीय संस्था बनी हुई है।

15.5.1 (डब्लू टी0 ओ0) के कार्य

आइये विश्व व्यापार संगठन के कुछ प्रमुख कार्य और आयामो को सूचिबद्ध करते हुए समझनें का प्रयास करें:–

1. **व्यापार वार्ता :** विश्व व्यापार संगठन सदस्य देशों के लिए बातचीत करने और व्यापार समझौतों में प्रवेश करने के लिए एक मंच के रूप में कार्य करता है। इन वार्ताओं में अंर्तराष्ट्रीय व्यापार के विभिन्न पहलुओं को शामिल किया गया है, जिसमें टैरिफ, गैर–टैरिफ बाधाएं, सेवाएं और बौद्धिक संपदा शामिल हैं।

2. **व्यापार विवाद समाधानः** विश्व व्यापार संगठन में एक विवाद समाधान तंत्र की तरह काम करता है जो सदस्य देशों को व्यवस्थित और निष्पक्ष तरीके से व्यापार विवादों को हल करने की अनुमति देता है। यह व्यापार संघर्षों को व्यापार युद्धों में बढ़ने से रोकने में मदद करता है।

3. **व्यापार नीति की समीक्षाः** विश्व व्यापार संगठन अपने सदस्य देशों की व्यापार नीतियों और प्रथाओं की नियमित समीक्षा करता है। ये समीक्षाएं पारदर्शिता को बढ़ावा देती हैं और सदस्य देशों को एक–दूसरे की व्यापार नीतियों को समझने समझने के लिए में मदद करती हैं।

4. **व्यापार सुविधाः** विश्व व्यापार संगठन अंर्तराष्ट्रीय व्यापार को सुचारू और अधिक कुशल बनाने के लिए सीमा शुल्क प्रक्रियाओं और व्यापार नियमों के सरलीकरण और सामंजस्य को प्रोत्साहित करता है।

5. **तकनीकी सहायता और क्षमता निर्माणः** विश्व व्यापार संगठन विकासशील देशों को अपनी व्यापार क्षमता के निर्माण और डब्ल्यूटीओ समझौतों को समझने और कार्यान्वित करने में सहायता प्रदान करता है।

6. **निगरानी और निरीक्षः** संगठन वैश्विक व्यापार के रुझान और विकास की निगरानी करता है, सदस्य देशों को डेटा और विश्लेषण प्रदान करता है।

7. **बौद्धिक संपदा संरक्षणः** बौद्धिक संपदा अधिकारों के व्यापार से संबंधित पहलुओं पर डब्ल्यूटीओ समझौता (ट्रिप्स) पेटेंट, कॉपीराइट और ट्रेडमाक्र सहित बौद्धिक संपदा की सुरक्षा के लिए वैश्विक मानकों को निर्धारित करता है।

8. **सेवा व्यापारः** सेवाओं में व्यापार पर सामान्य समझौता (जीएटीएस) बैंकिंग, दूरसंचार और पर्यटन जैसी सेवाओं में व्यापार को कवर करता है, जो अधिक बाजार पहुंच और पारदर्शिता को बढ़ावा देता है।

9. **कृषिः** कृषि पर समझौते (एओए) का उद्देश्य कृषि व्यापार को उदार बनाना और व्यापार–विकृत सब्सिडी को कम करना है।

10. **माल में व्यापारः** टैरिफ और व्यापार पर सामान्य समझौता GATT माल में व्यापार को नियंत्रित करता है, जिसका उद्देश्य टैरिफ और अन्य व्यापार बाधाओं को कम करना है।

11. **व्यापार से संबंधित निवेश उपाय (ट्रिम):** यह समझौता विदेशी निवेश से संबंधित व्यापार–विकृत उपायों को संबोधित करता है।

12. **पर्यावरण उपायों (टीआरईएम) के व्यापार से संबंधित पहलू:** यह समझौता पर्यावरण संरक्षण और व्यापार उदारीकरण को संतुलित करने का प्रयास करता है।

13. **प्रतिस्पर्धा नीति के व्यापार संबंधी पहलू:** हालांकि पूरी तरह से विकसित नहीं किया गया है, लेकिन डब्ल्यूटीओ के भीतर प्रतिस्पर्धा नीति पर चर्चा चल रही है।

15.5.2 विश्वव्यापार संगठन (डब्लू टी0 ओ0) समझौते

विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) समझौतों में अंर्तराष्ट्रीय व्यापार के विभिन्न

पहलुओं को शामिल किया गया है, जिसमें माल में व्यापार, सेवाओं में व्यापार और अन्य मुद्दे शामिल हैं। यहां इन समझौतों और उनके प्रमुख घटकों का अवलोकन किया गया हैः आइये इन्हें बिन्दुवार समझने का प्रयास करें:–

- **वस्तुओं का व्यापारः**

  1. **टैरिफ और व्यापार का सामान्य समझौता (गैट):** गैट और (डब्लू टी0 ओ0) के मूलभूत समझौतों में से एक है और मुख्य रूप से माल के व्यापार से संबंधित है। इसमें निम्नलिखित से संबंधित प्रावधान शामिल हैंः

     - बातचीत के माध्यम से टैरिफ में कमी और उन्मूलन।
     - सर्वाधिक पसंदीदा राष्ट्र (एमएफएन) सिद्धांत, व्यापारिक भागीदारों के गैर–भेदभावपूर्ण उपचार को सुनिश्चित करता है।
     - कृषि उत्पादों, वस्त्रों और अन्य वस्तुओं में व्यापार के लिए नियम।
     - आयात वृद्धि से बचने के लिए एंटी–डंपिंग (डंपिंग रोधी उपाय) और सुरक्षा उपाय।
     - व्यापार विवादों को सुलझाने के लिए विवाद समझौता तंत्र।

  2. **कृषि पर समझौता (एओए):** एओए कृषि उत्पादों में व्यापार को संबोधित करता है और इसका उद्देश्य वैश्विक कृषि व्यापार में विकृतियों को कम करना है। इसमें कृषि सब्सिडी को कम करने और बाजार पहुंच में सुधार करने की प्रतिबद्धता शामिल है।

  3. **व्यापार के लिए तकनीकी बाधाओं पर समझौता (टीबीटी समझौता):** टीबीटी समझौता तकनीकी नियमों और मानकों को संबोधित करता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे व्यापार के लिए अनावश्यक बाधाएं पैदा न करें।

- **सेवाओं में व्यापारः**

  1. **सेवाओं में व्यापार पर सामान्य समझौता (जीएटीएस):** जीएटीएस सेवाओं में अंर्तराष्ट्रीय व्यापार को विनियमित करने के लिए डब्ल्यूटीओ का ढांचा है। इसमें सदस्य देशों द्वारा वित्त, दूरसंचार और स्वास्थ्य सेवा जैसे विभिन्न सेवा क्षेत्रों में विदेशी प्रतिस्पर्धा के लिए अपने सेवा क्षेत्रों को खोलने की प्रतिबद्धताएं शामिल हैं।

  2. **आपूर्ति का तरीकाः** जीएटीएस सेवाओं में व्यापार को आपूर्ति के चार तरीकों में वर्गीकृत करता हैः

     - सीमा पार आपूर्ति (जैसे, ऑनलाइन सेवाएं)।

- विदेशों में खपत (जैसे, पर्यटन और शिक्षा सेवाएं)।
- वाणिज्यिक उपस्थिति (उदाहरण के लिए, विदेशी स्वामित्व वाली सहायक कंपनियां)।
- प्राकृतिक व्यक्तियों की उपस्थिति (उदाहरण के लिए, पेशेवरों की अस्थायी आवाजाही)।

- **अन्य मुद्दे:**

1. **बौद्धिक संपदा अधिकारों के व्यापार से संबंधित पहलू (ट्रिप्स समझौता):** यह समझौता बौद्धिक संपदा अधिकारों की सुरक्षा के लिए वैश्विक मानकों को निर्धारित करता है, जिसमें पेटेंट, ट्रेडमाक्र, कॉपीराइट और व्यापार रहस्य शामिल हैं।
2. **व्यापार से संबंधित निवेश उपाय (ट्रिम्स समझौता): ट्रिम्स** का उद्देश्य व्यापार–प्रतिबंधात्मक निवेश उपायों को समाप्त करना है, जैसे कि स्थानीय सामग्री आवश्यकताएं, जो व्यापार और निवेश को प्रभावित करती हैं।
3. **विवाद निपटान समझ (डीएसयू):** डीएसयू सदस्य देशों के बीच व्यापार विवादों को हल करने के लिए कानूनी ढांचा प्रदान करता है।
4. **व्यापार से संबंधित निवेश उपायों पर समझौता (ट्रिम्स): ट्रिम्स** कुछ निवेश–संबंधी व्यापार प्रतिबंधों को प्रतिबंधित करता है।
5. **सरकारी खरीद पर समझौता (जीपीए):** जीपीए सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा वस्तुओं और सेवाओं की खरीद को नियंत्रित करता है और सरकारी खरीद में पारदर्शिता और खुली प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देता है।
6. **सब्सिडी और प्रतिकारी उपायों पर समझौता (एससीएम समझौता):** एससीएम सब्सिडी के उपयोग को संबोधित करता है जो व्यापार को विकृत करता है और ऐसी सब्सिडी के प्रभावों का मुकाबला करने के लिए प्रतिकारी उपायों के लिए नियम प्रदान करता है।

वस्तुतः ये समझौते सामूहिक रूप से विश्व व्यापार संगठन के तहत अंर्तराष्ट्रीय व्यापार के लिए कानूनी ढांचा बनाते हैं। उनका उद्देश्य खुले और निष्पक्ष व्यापार को बढ़ावा देना, व्यापार बाधाओं को कम करना और नियम–आधारित प्रणाली के माध्यम से व्यापार विवादों को हल करना है। प्रत्येक सदस्य देश प्रतिबद्धताएं करता है और इन समझौतों में उल्लिखित नियमों और प्रावधानों का पालन करने के

लिए सहमत होता है क्योंकि वे अंर्तराष्ट्रीय व्यापार में संलग्न होते हैं।

15.5.3 मूल्यांकन

(डब्लू टी0 ओ0) और **(गैट)** के बीच की तुलना करते समय, हम कुछ मुख्य बिंदुओं को समझ सकते हैं जिनसे पता चलता है कि WTO गतिशील और सुधारा हुआ संगठन हैः

1. **विश्वव्यापी सदस्यताः (**डब्लू टी0 ओ0) एक विश्वव्यापी संगठन है, जिसमें अधिकांश देश शामिल हैं, जबकि (गैट): एक केवल एक अनुबंध था। इसका मतलब है कि (डब्लू टी0 ओ0) का आदान–प्रदान विश्व व्यापार को संशोधित और बढ़ावा देने की दिशा में किया गया है।
2. **आपसी मतभेदों का सुधारः** गैट में, आपसी मतभेदों को हल करने में बहुत समय लगता था। (डब्लू टी0 ओ0) में आपसी मतभेदों के निपटान के लिए नियमों का सरलीकरण किया गया है, जिससे इस काम को तेज और सुगम बनाया गया है।
3. **सर्वोदय दृष्टिकोणः** गैट में विकसित देशों का दबदबा था, जबकि (डब्लू टी0 ओ0) में एक राष्ट्र–एक वोट के सिद्धांत को अपनाया गया है। इसका मतलब है कि सभी सदस्य देशों को समान अधिकार है और उन्हें बराबरी के आधार पर देखा जाता है।

वस्तुतः(डब्लू टी0 ओ0) का मुख्य उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को किसी प्रकार की बनावट या रोकटोक से बिना, स्वतंत्र रूप से प्रवाहित करना है। साथ ही, व्यापार से उत्पन्न होने वाले विवादों का संगठन उन्हें समझाने और सुलझाने में उत्साह दिखाएगा। इसके परिणामस्वरूप, व्यापार की मात्रा और मूल्य में वृद्धि होगी, जो आर्थिक विकास और सामाजिक सुधार को प्रोत्साहित करेगी।

उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार, इन सभी कारणों से विश्व व्यापार की मात्रा में हर वर्ष लगभग 200 बिलियन डॉलर की वृद्धि होने की अपेक्षा है। इस वृद्धि का लगभग एक तिहाई भाग विकासशील देशों के हिस्से आने की अपेक्षा की जा रही है।

15.6 सारांश

अंत में, इस अध्याय में विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ), टैरिफ और व्यापार पर सामान्य समझौता (जीएटीटी), बहुपक्षीय व्यापार और द्विपक्षीय व्यापार की जांच अंर्तराष्ट्रीय वाणिज्य और आर्थिक सहयोग की जटिल और गतिशील प्रकृति को रेखांकित करती है।

गैट से (डब्ल्यूटीओ), में संक्रमण वैश्विक व्यापार प्रणाली में एक महत्वपूर्ण

विकास को दर्शाता है, जो न केवल वस्तुओं में पारंपरिक व्यापार बल्कि सेवाओं, बौद्धिक संपदा और विवाद समाधान तंत्र में व्यापार को शामिल करने के लिए अपने दायरे का विस्तार करता है। यह परिवर्तन तेजी से परस्पर जुड़े हुए विश्व में राष्ट्रों की बढ़ती अन्योन्याश्रितता को दर्शाता है।

बहुपक्षीय व्यापार, जैसा कि डब्ल्यूटीओ द्वारा वकालत की गई है, गैर–भेदभाव, पारदर्शिता और खुले बाजार के सिद्धांतों को बढ़ावा देने में सहायक रहा है। इसने वैश्विक व्यापार की मात्रा के विस्तार की सुविधा प्रदान की है, जिससे दुनिया भर में आर्थिक विकास और विकास को बढ़ावा मिला है। हालांकि, व्यापार असंतुलन को दूर करने, घरेलू उद्योगों की सुरक्षा करने और निष्पक्ष और न्यायसंगत व्यापार प्रथाओं को सुनिश्चित करने की चुनौतियां बनी हुई हैं।

द्विपक्षीय व्यापार समझौते, विशिष्ट देशों के बीच घनिष्ठ आर्थिक संबंधों को बढ़ावा देते हुए, बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के सामंजस्य के लिए चुनौतियां भी पेश करते हैं। बहुपक्षीय और द्विपक्षीय व्यापार समझौतों का सह–अस्तित्व इस बात को रेखांकित करता है कि देशों को अपने व्यक्तिगत हितों को आगे बढ़ाने और अधिक एकीकृत वैश्विक अर्थव्यवस्था में योगदान करने के बीच नाजुक संतुलन बनाना चाहिए।

इस जटिल परिदृश्य को नेविगेट करने में, यह पहचानना आवश्यक है कि अंर्तराष्ट्रीय व्यापार केवल एक आर्थिक प्रयास नहीं हैय इसमें राजनीतिक, सामाजिक और रणनीतिक आयाम शामिल हैं। व्यापार नीतियों को घरेलू और वैश्विक कल्याण पर उनके प्रभाव की समग्र समझ के साथ तैयार किया जाना चाहिए।

जैसे–जैसे हम आगे बढ़ेंगे, अंर्तराष्ट्रीय व्यापार का भविष्य चल रही वार्ताओं, विकसित व्यापार प्रथाओं और डिजिटल व्यापार और स्थिरता जैसी उभरती चुनौतियों से निपटने की आवश्यकता से आकार लेगा। राष्ट्रीय हितों और वैश्विक सहयोग के बीच संतुलन खोजना केंद्रीय चुनौती बनी हुई है, क्योंकि राष्ट्र समृद्धि, स्थिरता और अधिक परस्पर दुनिया के लिए प्रयास करते हैं।ज्वच वत्थितउ

15.7 उपयोगी शब्दावली

- **द्विपक्षीय व्यापार सम्बन्ध** : दोनों देशों में परस्पर व्यापार।
- **बहुपक्षीय व्यापार** : सम्बन्ध अनेक देशों में आपसी व्यापार।
- **'कॉऊंटर व्यापार** : दोनों देशों में वस्तुओं का लेन–देन।

- **निर्बाध व्यापार** : व्यापार की वह प्रणाली जिसमें व्यापार पर किसी तरह की अड़चने नहीं डाली जाती।
- **संरक्षण** : विदेशों से वस्तुओं के प्रवाह पर लगाई जाने वाली अड़चने।
- **टेरिफ** : दूसरे देशों से किए जाने वाले आयात पर लगाए गए सीमा शुल्क।
- **गैर–टेरिफ अड़चने** : विदेशों से वस्तुओं के प्रवाह पर लगाए गए प्रतिबन्ध।

15.8 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न 1. गैट और डब्ल्यूटीओ के बीच महत्वपूर्ण अंतर क्या हैं? इन दोनो ही संस्थाओ ने अंर्तराष्ट्रीय व्यापार को कैसे प्रभावित किया है। विस्तार से समझाये।

प्रश्न 2. विश्व व्यापार संगठन वैश्विक व्यापार में गैर–भेदभाव और पारदर्शिता के सिद्धांतों को कैसे बढ़ावा देता है? अपने विचार प्रस्तुत करिये।

प्रश्न 3. वैश्विक स्तर पर आर्थिक वृद्धि और विकास को बढ़ावा देने में बहुपक्षीय व्यापार समझौतों के महत्व को स्पष्ट कीजिए ?

प्रश्न 4. द्विपक्षीय व्यापार सम्बन्धों की अवधारणा की व्याख्या कीजिए, द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय व्यापार सम्बन्धों में भेद कीजिए ?

प्रश्न 5. मुक्त व्यापार के गुण व अवगुण बताएँ ?

प्रश्न 6. टेरिफ एवं गैर–टेरिफ अड़चनों की व्याख्या कीजिए?

प्रश्न 7. गैट के क्या उद्देश्य एवं भूमिका की व्याख्या कीजिए ?

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. डॉर्नबुश, आर और एस फिशर, 1994- मैक्रोइकॉनॉमिक्स, छठा संस्करण, मैकग्रा-हिल, पेरिस।
2. ''विश्व व्यापार संगठनः संगठन, कार्यकारीकरण और नीतियाँ'' – एल. डब्ल्यू. ग्रीन, 2010
3. ''वैश्विक व्यापार और उपयोगिताः जीएटीटी के परिणाम'' – डॉ. अर्विन्द सुभाष, 2002
4. आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार, 2022-23
5. क्रुगमैन, पीआर और एम ओब्स्टफेल्ड, 2000- अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, सिद्धांत और नीति, पांचवां संस्करण, पियर्सन शिक्षा।

इकाई 16 नई आर्थिक नीति

इकाई रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 नई आर्थिक नीति की आवश्यकता

16.3 नई आर्थिक नीति का स्वरूप और क्षेत्र

16.3.1 उदारीकरण

16.3.2 सार्वजनिक क्षेत्र का सुधार

16.3.3 निजीकरण

16.3.4 विश्वव्यापीकरण

16.4 नई आर्थिक नीति के कार्यान्वयन की प्रगति और उससे संबंधित समस्याएं

16.5 नई आर्थिक नीति का मूल्यांकन

16.6 सारांश

16.7 उपयोगी शब्दावली

16.8 महत्वपूर्ण प्रश्न

16.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- नई आर्थिक नीति (NEP) की आवश्यकता को स्पष्ट कर सकेंगे
- नई आर्थिक नीति के स्वरूप और क्षेत्र का वर्णन कर सकेंगे
- नई आर्थिक नीति के कार्यान्वयन में प्रगति और उससे संबंधित समस्याओं के संबंध में बता सकेंगे
- नई आर्थिक नीति का मूल्यांकन कर सकेगे ं।

16.1 प्रस्तावना

1950 के दशक से 1980 के दशक तक, भारत की आर्थिक नीतियां सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार पर केंद्रित थीं। सरकार ने कई महत्वपूर्ण उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया और निजी क्षेत्र को इन उद्योगों में प्रवेश करने से रोका। इसका परिणाम यह हुआ कि सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम अक्षम और घाटे में रहने लगे।

इसके अलावा, लाइसेंस और नियंत्रण प्रणाली ने निजी क्षेत्र द्वारा निवेश पर रोक लगा दिया। इस प्रणाली के तहत, किसी भी नए उद्योग को शुरू करने या मौजूदा उद्योग में विस्तार करने के लिए सरकार से लाइसेंस लेना आवश्यक था। इसने निवेशकों के लिए जोखिम को बढ़ा दिया और उन्हें निवेश करने से हतोत्साहित किया। 1991 में, भारत की अर्थव्यवस्था संकट में थी। विदेशी मुद्रा भंडार कम था और देश को अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) से सहायता प्राप्त करने की आवश्यकता थी। IMF ने भारत को नई आर्थिक नीतियां अपनाने की शर्त पर सहायता प्रदान की।

नई आर्थिक नीति का उद्देश्य अर्थव्यवस्था को उदारीकरण और वैश्वीकरण करना था। इसने सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार को कम करने और निजी क्षेत्र को प्रोत्साहित करने पर जोर दिया। नई आर्थिक नीति के प्रमुख बिंदु

- सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार को कम करना और निजी क्षेत्र को प्रोत्साहित करना।
- लाइसेंस और नियंत्रण प्रणाली को कम करना।
- विदेशी निवेश को आकर्षित करना।
- व्यापार को उदारीकरण करना।
- बाजार–आधारित मूल्य निर्धारण को बढ़ावा देना।

नई आर्थिक नीति ने भारत की अर्थव्यवस्था को महत्वपूर्ण रूप से बदल दिया है। इसके कुछ प्रमुख प्रभाव हैं नई आर्थिक नीति के कारण भारत की अर्थव्यवस्था में तेजी से वृद्धि हुई है। नई आर्थिक नीति के कारण भारत में गरीबी में कमी आई है। नई आर्थिक नीति के कारण भारत में विदेशी निवेश में वृद्धि हुई है। नई आर्थिक नीति के कारण भारत के व्यापार में वृद्धि हुई है।

नई आर्थिक नीति के कुछ चुनौतियां भी हैं। नई आर्थिक नीति के कारण भारत में असमानता में वृद्धि हुई है। नई आर्थिक नीति के कारण भारत में क्षेत्रीय असंतुलन बढ़ गया है। आर्थिक नीति भारत की अर्थव्यवस्था के लिए एक महत्वपूर्ण मोड़ थी। इसने अर्थव्यवस्था को उदारीकरण और वैश्वीकरण की ओर ले जाया, जिससे आर्थिक विकास, गरीबी में कमी और विदेशी निवेश में वृद्धि हुई। हालांकि, नई आर्थिक नीति के कुछ चुनौतियां भी हैं, जिनका समाधान करने की आवश्यकता है। कुछ लोगों का मानना है कि नई आर्थिक नीति ने भारत की अर्थव्यवस्था को मजबूत किया है। वे तर्क देते हैं कि नई आर्थिक नीति के कारण भारत की अर्थव्यवस्था में तेजी से वृद्धि हुई है, गरीबी में कमी आई है और विदेशी निवेश में

वृद्धि हुई है। कुछ अन्य लोगों का मानना है कि नई आर्थिक नीति ने असमानता और पर्यावरणीय क्षरण को बढ़ावा दिया है। वे तर्क देते हैं कि नई आर्थिक नीति के कारण भारत में असमानता में वृद्धि हुई है और पर्यावरणीय क्षरण हुआ है।

अंततः, नई आर्थिक नीति के प्रभावों का आकलन करना एक जटिल कार्य है। इस नीति के कुछ सकारात्मक और कुछ नकारात्मक प्रभाव हुए हैं।

16.2 नई आर्थिक नीति की आवश्यकता

नई आर्थिक नीति (एनईपी) भारत के आर्थिक प्रक्षेपवक्र में एक महत्वपूर्ण बदलाव का प्रतिनिधित्व करती है, जिसका उद्देश्य देश को सूचना प्रौद्योगिकी, नवाचार और विनिर्माण जैसे क्षेत्रों में वैश्विक आर्थिक नेता के रूप में स्थापित करना है। इसके अलावा, यह रोजगार पैदा करने, गरीबी को कम करने और देश के बुनियादी ढांचे को बढ़ाने का प्रयास करता है। आइए एनईपी के प्रमुख घटकों में गहराई से जाएं और भारत की अर्थव्यवस्था पर इसके संभावित प्रभाव की जांच करें।

नई आर्थिक नीति, या एनईपी को भारत में 1991 में पेश किया गया था ताकि व्यापक आर्थिक स्थिरता को बहाल करने की आवश्यकता को पूरा किया जा सके। यह तात्कालिकता मुद्रास्फीतिजनित मंदी (स्टैगफ्लेशन) के संकट के कारण उत्पन्न हुई, जो खाद्य और निर्मित वस्तुओं दोनों के लिए कीमतों में एक साथ वृद्धि की विशेषता है। एनईपी में सुधारों की एक श्रृंखला शामिल थी, जिसमें वित्तीय क्षेत्र का उदारीकरण, आयात शुल्क में कटौती और खाद्य, ईंधन और उर्वरकों जैसी आवश्यक वस्तुओं पर सब्सिडी को चरणबद्ध रूप से समाप्त करना शामिल था।

एनईपी व्यापक आर्थिक स्थिरता को बहाल करने और आर्थिक विकास को बढ़ावा देने में सफल साबित हुई। 1991 और 1994 के बीच, जीडीपी वृद्धि औसतन 7% थी, और 1995 से 2000 तक, यह औसतन 9% थी। 2001 में, सरकार ने बहु–वर्षीय कार्यक्रम (एमएपी) पेश किया, जिसका उद्देश्य उच्च आर्थिक विकास दर हासिल करना था, अंततः 10% से 12% तक की विकास दर प्राप्त करना। हालांकि, 2007–2008 के वैश्विक वित्तीय संकट के बाद, विकास दर 2009 में 5% और 2010 में 2% तक गिर गई।

भारत की नई आर्थिक नीति का सार 1991 में पेश की गई भारत की नई आर्थिक नीति ने दशकों से हावी समाजवादी नीतियों से एकदम अलग कर दिया। इसका व्यापक उद्देश्य भारत की अर्थव्यवस्था को वैश्विक बाजारों के लिए खोलना और निजी उद्यम को प्रोत्साहित करना था। यह परिवर्तन विशेष रूप से सफल रहा है, जिसने भारत को दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं की श्रेणी में

पहुंचा दिया है।

इस नीति ने न केवल आर्थिक विकास को गति दी है, बल्कि गरीबी में कमी लाने और भारतीय नागरिकों के लिए जीवन स्तर में सुधार करने में भी योगदान दिया है।

भारत में नई आर्थिक नीति कब लागू की गई थी?

नई आर्थिक नीति (एनईपी) 1991 में पीवी नरसिम्हा राव की सरकार द्वारा राष्ट्र को जकड़ने वाले गंभीर आर्थिक संकट के जवाब में पेश की गई थी। एनईपी का प्राथमिक लक्ष्य भारत की अर्थव्यवस्था को उदार बनाना, विदेशी निवेश को आकर्षित करना और आर्थिक विकास को बढ़ावा देना था। इन उद्देश्यों को काफी हद तक महसूस किया गया है, जिसके परिणाम स्वरूप हाल के वर्षों में भारत का तेजी से आर्थिक विस्तार हुआ है।

नई आर्थिक नीति के उद्देश्य भारत की नई आर्थिक नीति निजीकरण, उदारीकरण और वैश्वीकरण की विशेषता थी, जिसमें टैरिफ को कम करने, विदेशी खिलाड़ियों के लिए बाजार खोलने और आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने के लिए कर के बोझ को हल्का करने जैसे कार्यों को शामिल किया गया था। इसके मुख्य उद्देश्यों में शामिल हैं:

- मुद्रास्फीति की दर से निपटना।
- आर्थिक स्थिरता हासिल करना।
- अनावश्यक प्रतिबंधों को समाप्त करके मौजूदा बाजारों को एक बाजार अर्थव्यवस्था में बदलना।
- पूंजी, प्रौद्योगिकी, माल, मानव संसाधन और सेवाओं के अप्रतिबंधित अंर्तराष्ट्रीय प्रवाह को सुविधाजनक बनाना।

एनईपी को विभिन्न रणनीतियों के माध्यम से लागू किया जा रहा है। इसमें भारत को डिजिटल रूप से संचालित समाज में बदलने के लिए एक राष्ट्रीय डिजिटल अर्थव्यवस्था विकसित करना शामिल है। इसके अलावा, सरकार सक्रिय रूप से कारोबारी माहौल में सुधार कर रही है, उद्यमिता और स्टार्टअप को प्रोत्साहित कर रही है, और आर्थिक दक्षता बढ़ाने और विकास को चलाने के लिए बुनियादी ढांचे के विकास पर ध्यान केंद्रित कर रही है।

एनईपी ने कई सामाजिक लाभ उत्पन्न किए हैं। इसने व्यवसायों को भारत में निवेश करने, रोजगार के अवसर पैदा करने और आर्थिक विकास को प्रोत्साहित

करने के लिए प्रोत्साहित किया है। नीति ने उद्यमिता को भी बढ़ावा दिया है, जिससे कार्यबल के भीतर नवाचार और विविधता में वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवा को बढ़ाने के लिए सरकार के प्रयास सभी नागरिकों को लाभान्वित करने के लिए तैयार हैं।

नई आर्थिक नीति (एनईपी) 1991 के प्राथमिक उद्देश्य –

- आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने के लिए मुद्रास्फीति की दर पर अंकुश लगाना और विदेशी मुद्रा भंडार को बढ़ाना।
- इसका केंद्रीय लक्ष्य भारतीय अर्थव्यवस्था को वैश्वीकरण के दायरे में डुबोना था, इसे बाजार में एक नए युग में प्रवेश करना था।
- एनईपी 1991 ने अनावश्यक नियमों द्वारा आर्थिक स्थिरता और बाजार–संचालित अर्थव्यवस्था में संक्रमण प्राप्त करने की मांग की।
- इसने सभी आर्थिक क्षेत्रों में निजी क्षेत्र की भागीदारी को प्रोत्साहित किया, जिससे सरकारी क्षेत्र की भागीदारी में कमी आई।
- इसका उद्देश्य वस्तुओं, सेवाओं के अप्रतिबंधित अंर्तराष्ट्रीय आवागमन को सुविधाजनक बनाना है,

नई आर्थिक नीति 1991 की मुख्य विशेषताएं

- सुधार कार्यक्रम में व्यापक आर्थिक स्थिरीकरण और संरचनात्मक परिवर्तन शामिल थे।संरचनात्मक सुधार, क्षेत्रीय समायोजन और आपूर्ति–पक्ष के मुद्दों को संबोधित करते हुए, अर्थव्यवस्था को मजबूत करने और मध्यम और लंबी अवधि में प्रतिस्पर्धा बढ़ाने का लक्ष्य है।
- मैक्रोइकॉनॉमिक स्थिरीकरण, एक अल्पकालिक संकट प्रबंधन कार्यक्रम, समग्र आर्थिक मांग को विनियमित करने पर केंद्रित है।
- नीति में निर्यात, औद्योगिक विनियमन, विनिवेश, सार्वजनिक क्षेत्र के सुधार, और पूंजी और वित्तीय क्षेत्र के परिवर्तनों पर जोर देते हुए उदारीकृत व्यापार और निवेश नीतियां शामिल थीं।
- एनईपी 1991 के आर्थिक सुधारों के प्राथमिक स्तंभ उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण थे।

16.3 नई आर्थिक नीति का स्वरूप और क्षेत्र

नई आर्थिक नीति का स्वरूप और क्षेत्र भारत की आर्थिक विकास की दिशा

में महत्वपूर्ण होता है। यह नीति देश की आर्थिक प्रगति, रोजगार सृजना, गरीबी निवारण, और उद्योगों के विकास के लिए मार्गदर्शन प्रदान करती है। नई आर्थिक नीति के स्वरूप और क्षेत्र के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं को निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता हैः

1. **रोजगार सृजनाः** नई आर्थिक नीति का एक मुख्य उद्देश्य रोजगार सृजना होता है। यह नीति उद्योगों के विकास, कृषि क्षेत्र की मॉडर्नीकरण, और सेवा क्षेत्र के विकास के माध्यम से रोजगार के अवसरों को बढ़ावा देने का प्रयास करती है। खासकर युवाओं के लिए रोजगार के अवसरों को प्राथमिकता देते हुए।

2. **वित्तीय स्वावलंबनः** नई आर्थिक नीति भारत के वित्तीय स्वावलंबन को मजबूती देने का प्रयास करती है। इसमें निवेशों को बढ़ावा देने, वित्तीय संस्थाओं को सुदृढ़ करने, और अधिक निजी उद्यमों को उत्पन्न करने के लिए कई उपाय शामिल होते हैं।

3. विकासीय क्षेत्रों का समर्थनः नई आर्थिक नीति में विकासीय क्षेत्रों को प्राथमिकता दी जाती है, जैसे कि इंफ्रास्ट्रक्चर, तंत्रज्ञान, प्रौद्योगिकी, और स्टार्टअप्स।

4. **सामाजिक सुरक्षाः** नई आर्थिक नीति में सामाजिक सुरक्षा की दिशा में भी विचार किया जाता है। इसमें जनरल पब्लिक सेविस के माध्यम से सामाजिक लाभों की पहुंच को बढ़ाने का प्रयास शामिल होता है।

5. **विदेशी निवेशः** नई आर्थिक नीति भारत में विदेशी निवेश को बढ़ावा देने का भी प्रयास करती है, जिससे कि विदेशी पूंजी देश के अर्थतंत्र को मजबूती दे सके।

6. **ग्रीन और सस्ती ऊर्जाः** नई आर्थिक नीति के तहत पर्यावरण सुरक्षा का ध्यान रखा जाता है, और ऊर्जा क्षेत्र में ग्रीन और सस्ती ऊर्जा के उपयोग को बढ़ावा देने का प्रयास किया जाता है।

नई आर्थिक नीति भारत की आर्थिक स्थिति को मजबूत और सुस्ती देने का प्रयास करती है, जिससे देश के नागरिकों को और अधिक अच्छी जीवनस्तर और समृद्धि का अवसर मिल सके।

16.3.1 उदारीकरण

उदारीकरण आर्थिक गतिविधियों के प्रति नियमों को कम प्रतिबंधक बनाने की प्रक्रिया है। इसमें टेरिफ को कम करना या गैर–टेरिफ बाधाएं को हटाने भी

शामिल है। उदारीकरण एक आर्थिक प्रक्रिया है जिसमें सरकारी नियंत्रणों और प्रतिबंधों को कम किया जाता है और आर्थिक गतिविधियों को अधिक स्वतंत्रता दी जाती है। इसका मुख्य उद्देश्य बाजार को और अधिक स्वतंत्र बनाना है ताकि वह अपने नियमों और मूल्यों के अनुसार काम कर सके। 1991 से पहले, सरकार ने घरेलू निजी कंपनियों पर कई प्रतिबंध लगाए थे। कुछ मुख्य प्रतिबंध निम्नलिखित है। औद्योगिक लाइसेंस प्रणाली, मात की मूल्य नियंत्रण या वित्तीय नियंत्रण, आयात लाइसेंस, विदेशी मुद्रा नियंत्रण, प्रमुख कंपनी निवेश पर सीमाएँ, और ऐसे ही कई।

भारत में उदारीकरण की प्रक्रिया ने 1991 में नई आर्थिक नीति के रूप में आरंभ हुई। पहले, सरकार ने देशी निजी कंपनियों पर कई प्रकार की प्रतिबंधों को लगाया था, जैसे कि

1. **औद्योगिक लाइसेंसिंग प्रणालीः** सरकार द्वारा विभिन्न उद्योगों को लाइसेंस प्राप्त करने की अनिवार्यता।
2. **मूल्य नियंत्रण या वित्ती नियंत्रणः** माल की मूल्य या वित्ती नियंत्रण की प्राप्ति।
3. **आयात लाइसेंसः** विदेश से माल की आयात के लिए अनिवार्य अनुमति प्राप्त करने की अनिवार्यता।
4. **विदेशी मुद्रा नियंत्रणः** विदेशी मुद्रा के प्रवाह को सरकार द्वारा नियंत्रित करने की नीति।
5. **मुख्य कंपनी निवेश पर सीमाएँः** मुख्य कंपनी निवेश पर सीमाएँ लगाने की प्रक्रिया।

नई आर्थिक नीति ने इन प्रतिबंधों को कम किया और बाजार बलों को अधिक महत्वपूर्ण बनाने का प्रयास किया। इसके तहत, नियमों और विधियों की जगह बाजार के प्रबल प्रभावों पर अधिक भरोसा किया गया।

उदारीकरण के प्रमुख लाभ

1. **आर्थिक विकासः** उदारीकरण ने भारतीय अर्थव्यवस्था को विकसित करने में मदद की है और बढ़ते विदेशी निवेश को आकर्षित किया है।
2. **रोजगार के अवसर** : इसने विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार के अवसर पैदा किए हैं और विभिन्न व्यापारिक क्षेत्रों में नए व्यवसायों की स्थापना को प्रोत्साहित किया है।
3. **विकास और अधिक स्वतंत्रताः** यह सरकारी नियंत्रणों को कम करके

और व्यापारिक स्वतंत्रता को बढ़ावा देने में मदद करता है, जिससे विकास की सद्गति हो सकती है।

1991 से पहले, सरकार ने घरेलू निजी कंपनियों पर कई प्रतिबंध लगाए थे। कुछ मुख्य प्रतिबंध निम्नलिखित है। औद्योगिक लाइसेंस प्रणाली, मात की मूल्य नियंत्रण या वित्तीय नियंत्रण, आयात लाइसेंस, विदेशी मुद्रा नियंत्रण, प्रमुख कंपनी निवेश पर सीमाएँ, और ऐसे ही कई।

आर्थिक उदारीकरण'' शब्द से आर्थिक मैन्युफैक्चरिंग इकाइयों को सरकार द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों से मुक्त करने का मतलब होता है।

सरकार ने देखा कि इन विनियमनों के कारण अर्थव्यवस्था में कई दोष आ गए थे। छम्च् ने आर्थिक उदारीकरण को महत्वपूर्ण घटक माना। नियंत्रणों और विनियमनों की बजाय अधिक तर मार्केट बलों पर अधिक भरोसा कियाजाने वाला था।

16.3.2 सार्वजनिक क्षेत्र का सुधार

नई आर्थिक नीति (एनईपी) के तहत सार्वजनिक क्षेत्र में कई सुधार किए गए, जिनमें शामिल हैंः

- **विनिवेशः** सरकार ने कई सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (PSUs) से विनिवेश किया, निजी क्षेत्र और जनता को इक्विटी शेयर बेचे। यह सरकार के वित्तीय बोझ को कम करने और PSUs की दक्षता और प्रदर्शन में सुधार लाने के लिए किया गया था।
- **पुनर्गठनः** सरकार ने कई PSUs का पुनर्गठन किया ताकि उन्हें अधिक प्रतिस्पर्धी और कुशल बनाया जा सके। इसमें कार्यबल के आकार को कम करना, कार्यों को सुव्यवस्थित करना और नई प्रौद्योगिकियां पेश करना जैसे उपाय शामिल थे।
- **स्वायत्तताः** सरकार ने PSUs को निर्णय लेने और प्रबंधन में अधिक स्वायत्तता प्रदान की। यह PSUs को अधिक लचीलापन देने और उनकी जवाबदेही में सुधार लाने के लिए किया गया था।
- **प्रतियोगिताः** सरकार ने कुछ क्षेत्रों को निजी भागीदारी के लिए खोलकर सार्वजनिक क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा शुरू की। यह सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार लाने और लागत कम करने के लिए किया गया था।

एनईपी के तहत सार्वजनिक क्षेत्र में सुधारों का मिला–जुला प्रभाव पड़ा है। एक तरफ, उन्होंने कुछ PSUs में दक्षता और उत्पादकता बढ़ाई है। दूसरी ओर, उन्होंने नौकरी के नुकसान और कुछ मामलों में सेवाओं की गुणवत्ता में गिरावट का

भी नेतृत्व किया है।

कुल मिलाकर, सार्वजनिक क्षेत्र को अधिक प्रतिस्पर्धी और कुशल बनाने के लिए छम्ब के तहत सार्वजनिक क्षेत्र में सुधार आवश्यक थे। हालांकि, इन सुधारों के कारण पैदा हुई चुनौतियों को दूर करना महत्वपूर्ण है, जैसे कि नौकरी के नुकसान और सेवाओं की गुणवत्ता में गिरावट।

एनईपी के तहत सार्वजनिक क्षेत्र में लागू किए गए कुछ विशिष्ट सुधार यहां दिए गए हैं–

सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों की संख्या में कमीः सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों की संख्या 17 से 8 कर दी गई। इससे निजी कंपनियों को अधिक उद्योगों में प्रवेश करने की अनुमति मिली।

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (PSUs) का विनिवेशः सरकार ने निजी क्षेत्र और जनता को इक्विटी शेयर बेचकर कई PSUs से विनिवेश किया। यह सरकार के वित्तीय बोझ को कम करने और PSUs की दक्षता और प्रदर्शन में सुधार लाने के लिए किया गया था।

PSUS का पुनर्गठनः सरकार ने कई PSUs का पुनर्गठन किया ताकि उन्हें अधिक प्रतिस्पर्धी और कुशल बनाया जा सके। इसमें कार्यबल के आकार को कम करना, कार्यों को सुव्यवस्थित करना और नई प्रौद्योगिकियां पेश करना जैसे उपाय शामिल थे।

चैन को अधिक स्वायत्तता प्रदान करना सरकार ने PSUs को निर्णय लेने और प्रबंधन में अधिक स्वायत्तता प्रदान की। यह PSUs को अधिक लचीलापन देने और उनकी जवाबदेही में सुधार लाने के लिए किया गया था।

सार्वजनिक क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा शुरू करना सरकार ने कुछ क्षेत्रों को निजी भागीदारी के लिए खोलकर सार्वजनिक क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा शुरू की। यह सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार लाने और लागत कम करने के लिए किया गया था।

NEP के तहत सार्वजनिक क्षेत्र में सुधारों का भारतीय अर्थव्यवस्था पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। एक तरफ, उन्होंने आर्थिक वृद्धि और दक्षता में वृद्धि की है। दूसरी ओर, उन्होंने कुछ नकारात्मक परिणाम भी पैदा किए हैं, जैसे कि नौकरी के नुकसान और कुछ मामलों में सेवाओं की गुणवत्ता में गिरावट।

कुल मिलाकर, सार्वजनिक क्षेत्र को अधिक प्रतिस्पर्धी और कुशल बनाने के लिए NEP के तहत सार्वजनिक क्षेत्र में सुधार आवश्यक थे।

16.3.3 निजीकरणः

'निजीकरण सरकारी संपत्ति के मालिकाने या प्रबंधन में निजी क्षेत्र को शामिल करने की प्रक्रिया है। इसका उद्देश्य निजी क्षेत्र को बढ़ावा देना है और सार्वजनिक क्षेत्र की भागीदारी को कम करना है। 'डिसिन्वेस्टमेंट सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों को निजीकरण करने के लिए सार्वजनिक को कुछ हिस्सा सार्वजनिक को बेचने की प्रक्रिया में शामिल करने की होती है। निजीकरण नीति को लागू करने के लिए सरकार ने निम्नलिखित कदम उठाए–

- सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों का डिसिन्वेस्टमेंट, उन्हें निजी क्षेत्र में बदल दिया। इंडस्ट्रियल और फाइनेंशियल रिकंस्ट्रक्शन बोर्ड (बीआईएफआर) की स्थापना की गई।
- BIFR सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों में आर्थिक संघटनों की सहायता करता है
- सरकार की हिस्सेदारी को कम किया गया। डिसिन्वेस्टमेंट के दौरान यदि वे 49% से अधिक हिस्सों अधिग्रहण करते हैं, तो स्वामित्व और प्रबंधन निजी क्षेत्र में स्थानांतरित किए जाते हैं।

16.3.4 विश्वव्यापीकरण :

एनईपी के तहत, बिना किसी सीमा के, सामग्री, सेवाएं, पूंजी, मानव संसाधन, और प्रौद्योगिकी की विश्व स्तर पर गति को सुनिश्चित करने का प्रयास किया जाता है। विश्वव्यापीकरण एक आर्थिक और सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें दुनिया भर की अर्थव्यवस्थाएँ और समाजों के बीच गहरा एकीकरण और अनुकलन होता है। यह एक साथी संवादना, गुदगुदाने, और गति का कारक बनता है जो विश्व के रूप में बदल देता है।

भारत में विश्वव्यापीकरण का प्रारंभ 1991 में हुआ जब नई आर्थिक नीति का आलंब लिया गया। इस नीति के अंतर्गत कई महत्वपूर्ण कदम उठाए गएः

1. **आयात प्रतिबंधों की हटाई गईः** सरकार ने विभिन्न प्रकार के आयात प्रतिबंधों को हटा दिया, जैसे कि आयात लाइसेंसिंग और टैरिफ। इससे भारतीय वाणिज्यिकता को विश्व से अधिक जुड़ने का मौका मिला।
2. **विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम (फेमा):** विदेशी मुद्रा की प्रबंधन के लिए विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम (फेमा) ने विदेशी मुद्रा नियंत्रण अधिनियम (फेरा) की जगह लिया। यह अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संदेशों को प्रबंधित करने में सुविधा प्रदान करता है और भारत को विश्व बाजारों के

साथ और अधिक जुड़ने में मदद करता है।

3. **टैरिफ संरचना का समझदार बनाया गयाः** भारत ने अपने आयात और निर्यात करने के निर्देशक आर्थिक नीति को समझदार बनाया और इसे अंतरराष्ट्रीय बाजारों के साथ अधिक संगठित बनाया।

4. **निर्यात कर का खात्माः** निर्यात कर को हटा दिया गया, जिससे भारतीय उत्पादों की विश्व बाजारों में अधिक पहुँच मिली।

विश्वव्यापीकरण के कारण, भारत का आर्थिक परिपर्णता और विदेशी निवेश में वृद्धि हुई है। इसने अधिक रोजगार के अवसर पैदा किए हैं और भारत को विश्व अर्थव्यवस्था के अधिक संघटित होने में मदद की है। इसके साथ ही, भारत ने अंर्तराष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहित करने के लिए विश्व व्यापार संगठन डब्ल्यूटीओ में सक्रिय भागी बनकर अपनी भूमिका निभाई है। भारत सरकार ने 1991 में एक विश्वव्यापीकरण रणनीति को अपनाया। इसमें निम्नलिखित कदम शामिल थे–

- आयात प्रतिबंध, जैसे कि लाइसेंसिंग और टेरिफ को ढील दी गई।
- विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम (फेमा) ने विदेशी मुद्रा नियंत्रण अधिनियम (फेरा) की जगह लिया।
- टैरिफ संरचना को समझदार बनाया गया।
- निर्यात कर अवसर हटा दिए गए।

विश्वव्यापीकरण में आर्थिक सहयोग के लिए सार्वजनिक और राजनीतिक दोनों प्रकार की बाधाओं को हटा दिया। इसने विश्व के एक ग्लोबल समुदाय में बदल दिया। इसने बढ़ती जुड़ाव और आर्थिक संघटन के बीच राष्ट्रों के बीच बढ़ती जुड़ेदारी और आपसी आधारिता लाया है।

भारत आउटसोर्सिंग नौकरियों का महत्वपूर्ण प्रदाता बन गया। इसे विशेष रूप से बीपीओ और बैंकिंग सेवाओं के क्षेत्र में देखा जाता है। भारत अंर्तराष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने के लिए विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) में सक्रिय भागी बना।

16.4 नई आर्थिक नीति के कार्यान्वयन की प्रगति और उससे संबंधित समस्याएं

एक नई आर्थिक नीति के कार्यान्वयन में प्रगति और समस्याओं का आकलन प्रश्न में विशिष्ट नीति और देश के संदर्भ पर निर्भर करता है। आर्थिक

नीतियों के कार्यान्वयन में अक्सर सामने आने वाली सामान्य चुनौतियों और प्रगति के संकेतकों का एक सामान्य अवलोकन, कार्यान्वयन में प्रगतिः

1. **अर्थव्यवस्था का उदारीकरणः** सरकार ने 15 को छोड़कर सभी उद्योगों में लाइसेंसिंग को समाप्त करके नियामक ढांचे को उदार बनाया है। इसने उद्यम की पर्याप्त स्वतंत्रता प्रदान की है और निजी निवेश में वृद्धि हुई है।

2. **सार्वजनिक क्षेत्र के सुधारः** सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र में सुधार के लिए कई कदम उठाए हैं, जिसमें ओवरस्टाफिंग को कम करना, स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए मुआवजा प्रदान करना और बीमार पीएसयू को बीआईएफआर में भेजना शामिल है। इन सुधारों के परिणामस्वरूप सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के प्रदर्शन में सुधार हुआ है।

3. **विनिवेशः सरकार ने 5 से 20%**तक पीएसयू का विनिवेश किया है। इससे राजस्व बढ़ाने और अर्थव्यवस्था में सरकार की हिस्सेदारी कम करने में मदद मिली है।

4. **बुनियादी ढांचे का विकासः** सरकार ने बुनियादी ढांचे, जैसे सड़क, रेलवे और दूरसंचार में महत्वपूर्ण निवेश किया है। इससे अर्थव्यवस्था की दक्षता में सुधार हुआ है और यह विदेशी निवेशकों के लिए अधिक आकर्षक हो गया है।

5. **गरीबी में कमीः** यदि गरीबी में कमी नीति का एक लक्ष्य है, तो गरीबी दर में कमी या कमजोर आबादी के जीवन स्तर में सुधार को प्रगति माना जा सकता है।

6. **विदेशी निवेश को बढ़ावा देनाः** सरकार ने विदेशी निवेश को बढ़ावा देने के लिए टैरिफ कम करने और एफडीआई प्रतिबंधों में ढील देने जैसे कई कदम उठाए हैं। इससे विदेशी निवेश प्रवाह में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। एनईपी का एक प्रमुख योगदान है कि इसने विदेशी निवेश के प्रवाह को सुगम बनाया है। विदेशी निवेश के दो प्रकार हैंः

    1. प्रत्यक्ष विदेशी निवेश

    2. पोर्टफोलियो निवेश

प्रत्यक्ष निवेश (FDI) वह निवेश है जिसमें निवेशक का दीर्घकालिक हित होता है और उद्यम के प्रबंधन पर नियंत्रण होता है। पोर्टफोलियो निवेश वित्तीय परिसंपत्तियों में निवेश है, जैसे कि स्टॉक और बॉन्ड, आय और पूंजीगत लाभ उत्पन्न करने के उद्देश्य से।विदेशी निवेश से भारत में रोजगार पैदा होते हैं, माल

और सेवाओं का उत्पादन बढ़ता है, और अर्थव्यवस्था मजबूत होती है। NEP ने विदेशी निवेश को बढ़ाकर भारत को एक आकर्षक निवेश गंतव्य के रूप में स्थापित करने में मदद की है, उदाहरण–

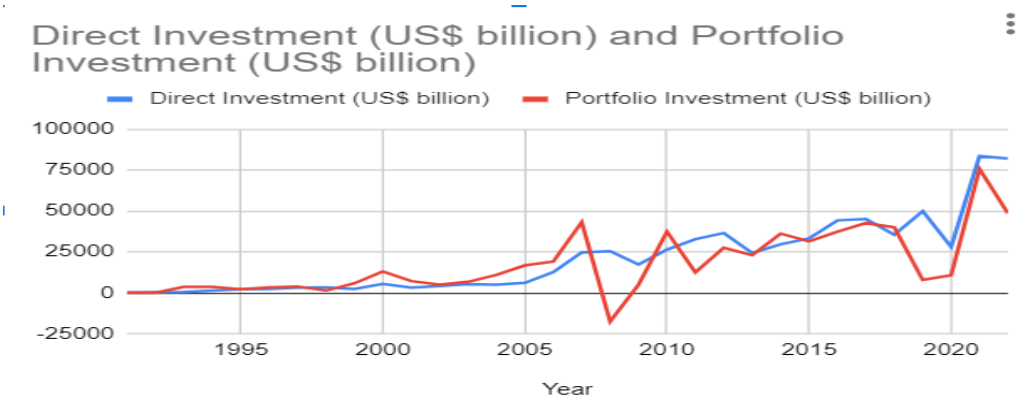
- जब कोई विदेशी कंपनी भारत में कारखाना खोलती है, तो यह प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का एक उदाहरण है। इस तरह के निवेश से रोजगार पैदा होते हैं और अर्थव्यवस्था को बढ़ाने में मदद मिलती है।
- जब कोई विदेशी निवेशक भारतीय कंपनी के शेयर खरीदता है, तो यह पोर्टफोलियो निवेश का एक उदाहरण है। इस तरह के निवेश से भारतीय कंपनियों को पूंजी जुटाने में मदद मिलती है और उन्हें बढ़ने में मदद मिलती है।

  एनईपी ने प्रत्यक्ष विदेशी निवेश और पोर्टफोलियो निवेश दोनों को बढ़ाकर भारतीय अर्थव्यवस्था को लाभान्वित किया है।

TABLE 16.1 वर्गों के अनुसार विदेशी निवेश प्रवाह

Year	Direct Investment	Portfolio Investment	Total (US$ billion)
1991	150	8	158
1995	2,133	2,214	4,347
1996	2,304	3,241	5,545
2000	5,366	13,084	18,450
2005	6,124	16,727	22,851
2010	26,365	37,393	63,758
2015	33,273	31,405	64,678
2020	28,047	10,753	38,790
2021	83,579	75,731	159,310
2022	82,085	48,641	130,726

भारत की नई आर्थिक नीति (एनईपी) 1991 में अर्थव्यवस्था को उदार बनाने और विदेशी निवेश को आकर्षित करने के उद्देश्य से पेश की गई थी। तालिका से पता चलता है कि एनईपी इस उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल रही, क्योंकि 1991 से 2022 तक भारत में विदेशी निवेश प्रवाह में काफी वृद्धि हुई है। तालिका से पता चलता है कि 1991 से 2022 की अवधि के दौरान भारत में एफडीआई और पोर्टफोलियो निवेश प्रवाह दोनों में काफी वृद्धि हुई है। एफडीआई प्रवाह 1991 में 150 मिलियन अमेरिकी डॉलर से बढ़कर 2022 में 82,085 मिलियन अमेरिकी डॉलर हो गया। पोर्टफोलियो निवेश प्रवाह 1991 में यूएस $ 8 मिलियन से बढ़कर 2022 में यूएस $ 48,641 मिलियन हो गया।



प्रगति के बावजूद, एनईपी के कार्यान्वयन के साथ अभी भी कुछ समस्याएं हैं। सबसे बड़ी समस्याओं में से एक यह है कि आर्थिक विकास के लाभों को समान रूप से साझा नहीं किया गया है। असमानता बढ़ी है, और क्षेत्रीय असमानताएं बढ़ी हैं। एक और समस्या यह है कि एनईपी का पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। आर्थिक विकास पर ध्यान केंद्रित करने से प्रदूषण और संसाधनों की कमी में वृद्धि हुई है।

एनईपी को लागू करने में आने वाली समस्याओं के कुछ विशिष्ट उदाहरण यहां दिए गए हैं:

1. **असमानता**: एनईपी ने असमानता में वृद्धि की है, जिसमें अमीर आर्थिक विकास से असंगत रूप से लाभान्वित हुए हैं।
2. **क्षेत्रीय असमानताएं**: एनईपी ने क्षेत्रीय असमानताओं को भी बढ़ाया है, कुछ राज्य दूसरों की तुलना में बहुत तेजी से बढ़ रहे हैं।
3. **पर्यावरणीय क्षरण**: बढ़ते प्रदूषण और संसाधनों की कमी के कारण एनईपी का पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है।
4. **श्रम अधिकार**: एनईपी ने श्रम अधिकारों को कमजोर कर दिया है, क्योंकि नियोक्ता अधिक शक्तिशाली हो गए हैं।
5. **छोटे और मध्यम आकार के उद्यम (एसएमई)**: एसएमई को एनईपी से उतना फायदा नहीं हुआ है जितना बड़े व्यवसायों को हुआ है।
6. **राजनीतिक विरोध**: राजनीतिक दलों या हित समूहों का विरोध किसी नीति के सुचारू कार्यान्वयन में बाधा डाल सकता है, खासकर अगर नीति विवादास्पद है।
7. **नौकरशाही चुनौतियां**: निर्णय लेने में देरी, सरकारी एजेंसियों के भीतर क्षमता की कमी और भ्रष्टाचार सहित प्रशासनिक बाधाएं नीति कार्यान्वयन में

बाधा डाल सकती हैं।

8. **बजट की बाधाएं:** अपर्याप्त बजट आवंटन या राजकोषीय बाधाएं किसी नीति को प्रभावी ढंग से लागू करने की सरकार की क्षमता को सीमित कर सकती हैं।

9. **अप्रत्याशित आर्थिक झटके:** आर्थिक संकट या अप्रत्याशित बाहरी कारक (जैसे, वैश्विक आर्थिक मंदी, प्राकृतिक आपदाएं, या महामारी) नीति कार्यान्वयन को बाधित कर सकते हैं और समायोजन की आवश्यकता होती है।

10. **वैश्विक आर्थिक कारक:** अंर्तराष्ट्रीय आर्थिक स्थितियां और व्यापार गतिशीलता आर्थिक नीतियों के कार्यान्वयन को प्रभावित कर सकती हैं, और वैश्विक आर्थिक चुनौतियां समस्याएं पैदा कर सकती हैं।

भारत में विदेशी निवेश प्रवाह में वृद्धि का अर्थव्यवस्था पर कई सकारात्मक प्रभाव पड़ा है, जिनमें शामिल हैं:

1. **रोजगार में वृद्धि:** एफडीआई प्रवाह ने भारत में नई नौकरियों का निर्माण किया है।

2. वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में वृद्धि: एफडीआई प्रवाह ने भारत में वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में भी वृद्धि की है।

3. **बेहतर बुनियादी ढांचा:** एफडीआई प्रवाह का उपयोग भारत में बुनियादी ढांचे में सुधार के लिए भी किया गया है, जैसे कि सड़क, रेलवे और दूरसंचार।

4. **विदेशी मुद्रा भंडार में वृद्धि:** एफडीआई प्रवाह ने भारत के विदेशी मुद्रा भंडार को बढ़ाने में भी मदद की है।

एक विशिष्ट आर्थिक नीति के कार्यान्वयन में प्रगति और समस्याओं का आकलन करने के लिए, एक व्यापक मूल्यांकन करना आवश्यक है जिसमें डेटा विश्लेषण, हितधारक प्रतिक्रिया और इच्छित और अनपेक्षित दोनों परिणामों की गहन परीक्षा शामिल है। नीति निर्माताओं को लचीला रहना चाहिए और चुनौतियों का सामना करने के लिए समायोजन करने के लिए तैयार रहना चाहिए क्योंकि वे नीति की सफलता सुनिश्चित करने के लिए उत्पन्न होते हैं।

16.5 नई आर्थिक नीति का मूल्यांकन

1991 में शुरू की गई भारत की नई आर्थिक नीति (एनईपी) देश के

आर्थिक इतिहास में एक प्रमुख मोड़ थी। इसने एक केंद्रीय नियोजित अर्थव्यवस्था से अधिक बाजार–उन्मुख अर्थव्यवस्था में बदलाव को चिह्नित किया। एनईपी ने अल्पावधि में कुछ उल्लेखनीय सफलताएं हासिल कीं, जैसे कि आर्थिक विकास को पुनर्जीवित करना, मुद्रास्फीति को नियंत्रित करना और विदेशी मुद्रा भंडार में वृद्धि करना। हालांकि, इसमें कुछ कमियां भी थीं, जिनमें दीर्घकालिक लक्ष्यों की उपेक्षा और कुछ अल्पकालिक उद्देश्यों में आंशिक सफलता शामिल थी।

एनईपी की उपलब्धियां

1. **आर्थिक विकास सुधारः** एनईपी को धीरे–धीरे भारत की आर्थिक वृद्धि को पुनर्जीवित करने का श्रेय दिया जाता है, जो 1991–92 में जीडीपी के 0.8% तक गिर गया था। बाद के वर्षों (1994–95 से 1996–97) में, यह सकल घरेलू उत्पाद का एक प्रभावशाली 7% औसत था, जो एक उल्लेखनीय बदलाव को दर्शाता है।

2. **सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (पीएसयू) में प्रदर्शन सुधारः** नीति ने निजीकरण के खतरों का सामना करते हुए पीएसयू को अपने प्रदर्शन में सुधार करने की चुनौती दी। इस दबाव के कारण केंद्र सरकार के सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की दक्षता और लाभप्रदता को बढ़ाने के लिए जोरदार प्रयास किए गए, जैसा कि 1995–96 में नियोजित पूंजी पर रिकॉर्ड स्तर की सकल वापसी दर से स्पष्ट है।

3. **सरकार का राजकोषीय घाटा,** जो अपने कुल राजस्व और कुल व्यय के बीच के अंतर को मापता है, 1990–91 में जीडीपी के 6.6% से गिरकर 1996 में 4.1% के निचले स्तर पर आ गया। यह कमी राजकोषीय अनुशासन और गैर–आवश्यक व्यय को कम करने सहित विभिन्न उपायों के माध्यम से हासिल की गई थी।

4. **मुद्रास्फीति नियंत्रणः** एनईपी मुद्रास्फीति के दबाव को रोकने में सफल रही। थोक मूल् य मुद्रास् फीति, जो 1991–92 में 137 प्रतिशत थी, वर्ष 1995–96 में उल् लेखनीय रूप से घटकर 44 प्रतिशत और वर्ष 1996–97 में 76 प्रतिशत रह गई, जो एक सकारात् मक विकास को दर्शाता है।

5. **औद्योगिक उत्पादन वृद्धिः** औद्योगिक उत्पादन सूचकांक ने महत्वपूर्ण वृद्धि दिखाई, जो 1991–92 में 0.6% से बढ़कर 1995–96 में 11.8% हो गई। हालांकि 1996–97 में यह घटकर 6.6% हो गया, लेकिन समग्र प्रवृत्ति सकारात्मक थी।

6. **निर्यात वृद्धिः** एनईपी ने निर्यात की वृद्धि में योगदान दिया, जिसमें 1992–93 में 3.8% (यूएस डॉलर में मापा गया) से 1995–96 में 20.8% तक पर्याप्त सुधार हुआ।

7. **विदेशी मुद्रा भंडारः** विदेशी मुद्रा भंडार, जो 1990–91 में कम था, जुलाई 1997 तक काफी बढ़कर 25.4 बिलियन अमेरिकी डॉलर हो गया। इसने भारतीय अर्थव्यवस्था को स्थिर करने में मदद की और अंर्तराष्ट्रीय बाजार में इसकी विश्वसनीयता को बढ़ाया।

8. **एकाधिकार और प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार (एमआरटीपी)** एनईपी ने व्यापारिक घरानों को नई कंपनियों या पर्याप्त विस्तार के लिए एकाधिकार और प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार (एमआरटीपी) आयोग से मंजूरी लेने की आवश्यकता से छूट दी। इसने व्यवसायों को शुरू करने और विस्तार ति करने की प्रक्रिया को सुव्यवस्थित किया, जिससे उद्यमियों के लिए विभिन्न क्षेत्रों में प्रवेश करना और काम करना आसान हो गया।

भारत में 1991 की नई आर्थिक नीति में औद्योगिक लाइसेंसिंग को हटाना, एमआरटीपी मंजूरी से छूट, नौकरशाही बाधाओं को कम करना, निजी निवेश में वृद्धि, नियंत्रणों को समाप्त करना, प्रौद्योगिकी उन्नयन और विदेशी पूंजी का प्रवाह शामिल है। इन सुधारों ने भारत के आर्थिक परिदृश्य को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिससे यह अधिक बाजार–उन्मुख, विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धी और घरेलू और विदेशी निवेशकों दोनों के लिए आकर्षक हो गया। हालांकि, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि इन सुधारों से जुड़े नकारात्मक परिणाम और चुनौतियां भी थीं, जैसे कि आर्थिक विकास में असमानता और असमानताएं, जिन्हें नीति के व्यापक मूल्यांकन में माना जाना चाहिए। आइए नकारात्मक पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करें, विशेष रूप से एनईपी के लिए कमियों और चिंता के क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करें।

1. दीर्घकालिक लक्ष्यों की उपेक्षाः एनईपी मुख्य रूप से अल्पकालिक उद्देश्यों पर केंद्रित है, जैसे कि भुगतान संतुलन का प्रबंधन, विदेशी मुद्रा भंडार का निर्माण, राजकोषीय घाटे को कम करना और मुद्रास्फीति को नियंत्रित करना। हालांकि, इसने दीर्घकालिक लक्ष्यों पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया, जैसे कि गरीबी में कमी, पूर्ण रोजगार प्राप्त करना, आत्मनिर्भरता और आय असमानताओं को कम करना। इस असंतुलन ने समावेशी और सतत विकास को बाधित किया हो सकता है।

2. अल्पकालिक उद्देश्यों में आंशिक सफलताः मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने और निजीकरण जैसे कुछ अल्पकालिक उद्देश्यों में भी, एनईपी ने केवल आंशिक सफलता हासिल की। उदाहरण के लिए, 1990 के दशक की शुरुआत में मुद्रास्फीति की दर उच्च बनी रही, और निजीकरण कार्यक्रम को श्रमिक संघों और राजनीतिक दलों के प्रतिरोध के साथ मिला।

3. 1991 की एनईपी की आलोचनाओं में से एक यह है कि इसमें कृषि क्षेत्र पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया। कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ रही है, जो आबादी के एक महत्वपूर्ण हिस्से को रोजगार देती है। इस क्षेत्र की उपेक्षा से ग्रामीण आजीविका और खाद्य सुरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

4. नीति ने विदेशी प्रौद्योगिकी पर निर्भरता बढ़ाने की अनुमति दी। जबकि यह तकनीकी प्रगति के संदर्भ में लाभ ला सकता है, यह देश को महत्वपूर्ण प्रौद्योगिकियों के लिए विदेशी स्रोतों पर निर्भर बनाता है। इस निर्भरता के रणनीतिक और आर्थिक प्रभाव हो सकते हैं।

5. विदेशी पूंजी के तेजी से प्रवाह को दोधारी तलवार के रूप में देखा जा सकता है। हालांकि इसने बहुत आवश्यक निवेश को आकर्षित किया, लेकिन एक चिंता थी कि यह एक ऐसी स्थिति पैदा कर सकता है जहां भारतीय अर्थव्यवस्था विदेशी संस्थाओं पर अत्यधिक निर्भर हो जाती है। विदेशी पूंजी पर अति निर्भरता के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था के प्रमुख क्षेत्रों पर नियंत्रण का नुकसान हो सकता है।

6. कुछ आलोचकों ने तर्क दिया कि सरकार को विदेशी पूंजी को आमंत्रित करने में अधिक सावधानी बरतनी चाहिए थी। उन्होंने सुझाव दिया कि विदेशी निवेश को सभी क्षेत्रों को विदेशी निवेश के लिए खोलने के बजाय उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगों तक सीमित होना चाहिए था, जहां इसकी सबसे अधिक आवश्यकता थी। इस दृष्टिकोण ने विदेशी पूंजी के प्रवाह और अर्थव्यवस्था पर इसके प्रभाव पर बेहतर नियंत्रण सुनिश्चित किया होगा।

7. भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) द्वारा लाभांश के भुगतान की निगरानी का उल्लेख विदेशी निवेशकों द्वारा मुनाफे के प्रत्यावर्तन के बारे में चिंताओं को दर्शाता है। डर यह था कि मुनाफे के अत्यधिक प्रत्यावर्तन से देश के संसाधनों पर एक निकासी हो सकती है और भारतीय अर्थव्यवस्था में मुनाफे के पुनर्निवेश में बाधा उत्पन्न हो सकती है।

1991 की एनईपी ने सार्वजनिक क्षेत्र के लिए एक व्यापक और अच्छी तरह से परिभाषित रणनीति निर्धारित नहीं की। आलोचकों ने तर्क दिया कि सरकार को सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के प्रदर्शन में सुधार पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए था, विशेष रूप से वे जो अधिशेष पैदा करने में सक्षम थे। इन उद्यमों, जो निवेश का एक बड़ा हिस्सा थे, को बेहतर प्रबंधन, आधुनिकीकरण और जवाबदेही की आवश्यकता थी। 1991 की एनईपी में सार्वजनिक क्षेत्र की नीति की आलोचना कई महत्वपूर्ण बिंदुओं पर प्रकाश डालती हैः

1. सरकार को सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के प्रदर्शन में सुधार पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए था। यह बेहतर प्रबंधन प्रथाओं, प्रौद्योगिकी उन्नयन और बढ़ी हुई जवाबदेही जैसे उपायों के माध्यम से हासिल किया जा सकता था।

2. एनईपी को भुनाने योग्य और अधिशेष पैदा करने वाले सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों पर विशेष जोर देना चाहिए था। ये उद्यम लाभ उत्पन्न कर सकते हैं और सरकार के राजस्व में योगदान कर सकते हैं, जिससे करदाताओं पर बोझ कम हो सकता है।

3. थोक निजीकरण दृष्टिकोण को आगे बढ़ाने के बजाय, सरकार रणनीतिक क्षेत्रों की पहचान कर सकती थी जहां सार्वजनिक स्वामित्व राष्ट्रीय हित के लिए आवश्यक था, साथ ही साथ इन क्षेत्रों के भीतर प्रतिस्पर्धा और दक्षता को प्रोत्साहित किया जा सकता था।

4. सार्वजनिक क्षेत्र को प्रतिस्पर्धी बने रहने के लिए महत्वपूर्ण आधुनिकीकरण और प्रौद्योगिकी उन्नयन की आवश्यकता थी। अनुसंधान और विकास, नवाचार और कौशल विकास में निवेश प्राथमिकताएं होनी चाहिए थीं।

संक्षेप में, 1991 की एनईपी के नकारात्मक पहलू, विशेष रूप से सार्वजनिक क्षेत्र की नीति के संबंध में, बताते हैं कि उदारीकरण और अर्थव्यवस्था के खुलने से कई लाभ हुए, लेकिन कुछ क्षेत्रों की उपेक्षा और विदेशी पूंजी और प्रौद्योगिकी पर अत्यधिक निर्भरता से जुड़े संभावित जोखिमों के बारे में भी चिंताएं थीं। आर्थिक सुधारों के लिए एक अधिक संतुलित और रणनीतिक दृष्टिकोण ने उदारीकरण के लाभों को अधिकतम करते हुए इनमें से कुछ चिंताओं को संबोधित किया होगा।

16.6 सारांश

भारत की नई आर्थिक नीति चुनौतियों और आलोचकों के बिना नहीं रही है। कुछ का तर्क है कि यह अमीर अभिजात वर्ग को असमान रूप से लाभान्वित करता है,

जबकि अन्य का तर्क है कि इसने गरीबों और हाशिए के उत्थान के लिए पर्याप्त नहीं किया है। अर्थव्यवस्था के विनियमन और पर्यावरण और सामाजिक स्थिरता पर इसके संभावित प्रतिकूल प्रभावों के बारे में चिंताएं भी मौजूद हैं। फिर भी, अधिकांश पर्यवेक्षक इस बात से सहमत हैं कि एनईपी ने सकारात्मक बदलाव किया है, अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित किया है और समाज के सबसे कमजोर वर्गों को महत्वपूर्ण सामाजिक सहायता प्रदान की है।

नई आर्थिक नीति (एनईपी) भारत के आर्थिक इतिहास में एक प्रमुख मोड़ थी। इससे आर्थिक विकास को बढ़ावा देने और गरीबी को कम करने में मदद मिली। हालांकि, उन चुनौतियों का समाधान करना महत्वपूर्ण है जो इसके कारण उत्पन्न हुई हैं, जैसे असमानता, क्षेत्रीय असंतुलन और पर्यावरणीय क्षरण।

एनईपी को 1991 में अर्थव्यवस्था को उदारीकृत करने और विदेशी निवेश को आकर्षित करने के उद्देश्य से पेश किया गया था। सरकार ने 15 को छोड़कर सभी उद्योगों में लाइसेंसिंग समाप्त करके नियामक ढांचे को उदारीकृत किया। इसने सार्वजनिक क्षेत्र में सुधार और विदेशी निवेश को बढ़ावा देने के लिए भी कई कदम उठाए।

एनईपी अपने कई उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल रहा है। अर्थव्यवस्था एनईपी की शुरूआत के बाद से तेज दर से बढ़ी है और गरीबी का स्तर घटा है। एनईपी ने विदेशी निवेश और व्यापार में भी वृद्धि की है।

हालांकि, एनईपी की आलोचना असमानता, क्षेत्रीय विकास और पर्यावरण पर इसके नकारात्मक प्रभावों के लिए भी की गई है। एनईपी की शुरूआत के बाद से असमानता बढ़ी है, और क्षेत्रीय असंतुलन बढ़ा है। एनईपी ने श्रमिक अधिकारों को भी कमजोर किया है और छोटे और मध्यम उद्यमों (SMEs) को बड़े व्यवसायों जितना लाभ नहीं पहुंचाया है।

सरकार इन चुनौतियों का समाधान सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों, जैसे शिक्षा और स्वास्थ्य सेवा में निवेश करके और SMEs के लिए अधिक सक्षम वातावरण बनाकर कर सकती है। सरकार स्थायी आर्थिक विकास को भी बढ़ावा दे सकती है नवीकरणीय ऊर्जा और अन्य हरित प्रौद्योगिकियों में निवेश करके। यहाँ एनईपी पर आधारित अध्याय पर आधारित एक और अधिक विस्तृत निष्कर्ष है:

एनईपी भारत की अर्थव्यवस्था को आधुनिक बनाने और वैश्विक बाजार में इसे अधिक प्रतिस्पर्धी बनाने के लिए एक आवश्यक कदम था। हालांकि, यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि आर्थिक विकास के लाभ अधिक समान रूप से

साझा किए जाएं और पर्यावरण की रक्षा की जाए। सरकार यह हासिल कर सकती है:

- गरीबों और वंचितों के जीवन को बेहतर बनाने के लिए सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों, जैसे शिक्षा और स्वास्थ्य सेवा में निवेश करके।
- छोटे और मध्यम उद्यमों के लिए अधिक सक्षम वातावरण बनाकर, जो भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी हैं।
- नवीकरणीय ऊर्जा और अन्य हरित प्रौद्योगिकियों में निवेश करके स्थायी आर्थिक विकास को बढ़ावा देना।
- संकटों को रोकने और उपभोक्ताओं की रक्षा के लिए वित्तीय क्षेत्र को विनियमित करना।
- श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए श्रम कानून बनाना और लागू करना।

एनईपी कई मायनों में एक सफलता रही है, लेकिन उन चुनौतियों का समाधान करना महत्वपूर्ण है जो इसके कारण उत्पन्न हुई हैं ताकि भारत के लिए एक अधिक न्यायपूर्ण और स्थायी भविष्य बनाने के लिए। उपरोक्त के अलावा, सरकार निम्नलिखित उपायों पर भी विचार कर सकती है

- **लक्षित सब्सिडी**: सरकार गरीबों और वंचितों को उनकी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने में मदद करने के लिए लक्षित सब्सिडी प्रदान कर सकती है।
- **प्रगतिशील कराधान**: सरकार यह सुनिश्चित करने के लिए एक अधिक प्रगतिशील कर प्रणाली लागू कर सकती है कि धनी अपने उचित हिस्से के करों का भुगतान करें।
- **भूमि सुधार**: सरकार यह सुनिश्चित करने के लिए भूमि सुधार लागू कर सकती है कि भूमि का वितरण अधिक समान रूप से हो।
- **विकेंद्रीकरण**: सरकार स्थानीय समुदायों को अपने विकास पर अधिक नियंत्रण देने के लिए शक्ति का विकेंद्रीकरण कर सकती है।

16.7 उपयोगी शब्दावली

- **घाटा निजीकरण (Deficit Privatisation)**: बजट घाटे को पूरा करने के लिए सरकार जब 5% से 10% तक अपने शेयरों का विनिवेश करती है तब उसे पाटा निजीकरण कहा जाता है।
- **विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (Foreign Direct Investment)**: निवेश का

वह रूप जो वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन को बढ़ाने में सहायक होता है और इस प्रकार वह अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता को भी बढ़ाता है।

- **विश्वव्यापीकरण (Globalisation)**: इससे आशय अर्थव्यवस्था को शेष विश्व के लिए खोलने से होता है। जिससे वस्तुओं, सेवाओं, प्रौद्योगिकी और निवेश का मुक्त रूप से प्रवाह हो सके।

- **उदारीकरण (Liberalisation)**: इससे आशय है निजी क्षेत्र की स्वतंत्रता पर लगाए गए अनावश्यक प्रतिबंधों को हटाने की प्रक्रिया इस प्रक्रिया के अंतर्गत आता है। अनावश्यक लाइसेस, नियंत्रणों एव सुधार विनियमों को हटाना जो नौकरशाही और भ्रष्टाचार को प्रोत्साहित करते हैं।

- **एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार (MRTP) आयोग**: वह आयोग जिसकी स्थापना का उद्देश्य है नए निवेशों के लिए आवेदनपत्रों की जांच करना तथा उन व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के आवेदन पत्रों को नामंजूर करना है जिनकी परिस्थिति डत्ज्च् अधिनियम (1970) द्वारा एवं समय–समय पर इस अधिनियम में किए गए संशोधनों द्वारा निर्धारित सीमा से अधिक है।

- **पोर्टफोलियो निवेश (Portfolio Investment)**: विदेशी राष्ट्रिकों या विदेशी कंपनियों द्वारा इक्विटी. स्टाको बाहों और डिबेंचरों के रूप में भारत में किया गया वित्तीय निवेश है।

- **निजीकरण (Privatisation)**: वह प्रक्रिया जिसके द्वारा किसी सार्वजनिक क्षेत्रक की इकाई के स्वामित्व का हस्तांतरण निजी क्षेत्र हो जाता है।

- **प्रत्यक्ष निवेश**: एक ऐसा निवेश है जहां निवेशक का दीर्घकालिक हित होता है और उद्यम के प्रबंधन पर नियंत्रण होता है।

16.8 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न 1. उन कारकों की चर्चा कीजिए जिन्होंने प्रथम तीन दशकों के दौरान अपनाई गई नीतियों के परिणाम स्वरूप भारतीय आर्थिक विकास पर बेड़ियों का काम किया?

प्रश्न 2. नई आर्थिक नीति के प्रमुख तत्व क्या हैं? एनईपी के प्रत्येक प्रमुख तत्व के संबंध में किए गए उपायों को विस्तार से समझाएं?

प्रश्न 3 निजीकरण की संकीर्ण और व्यापक अवधारणा पर चर्चा कीजिए?

प्रश्न 4. भारत में निजीकरण के विभिन्न रूपों के प्रयास क्या हैं? क्या उन्होंने ठोस परिणाम दिए हैं?

प्रश्न 5. वैश्वीकरण के विभिन्न घटकों पर चर्चा कीजिए?

प्रश्न 6 निजीकरण, उदारीकरण और वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख उपलब्धियों का उल्लेख कीजिए। पिछले छह वर्षों (1991 से 1997) के अनुभव से क्या सबक लिया जा सकता है?

प्रश्न 7. विकास के अल्पकालिक और दीर्घकालिक दोनों उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए नई आर्थिक नीति का आलोचनात्मक मूल्यांकन करें?

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- डॉर्नबुश, आर और एस फिशर, 1994– मैक्रोइकॉनॉमिक्स, छठा संस्करण, मैकग्रा–हिल, पेरिस।
- ''विश्व व्यापार संगठनः संगठन, कार्यकारीकरण और नीतियाँ'' – एल. डब्ल्यू. ग्रीन, **2010**
- ''वैश्विक व्यापार और उपयोगिताः जीएटीटी के परिणाम'' – डॉ. अर्विन्द सुभाष, 2002
- आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार, 2022–23
- क्रुगमैन, पीआर और एम ओब्स्टफेल्ड, 2000– अंर्तराष्ट्रीय अर्थशास्त्र, सिद्धांत और नीति, पांचवां संस्करण, पियर्सन शिक्षा।

Notes